"અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્" ગ્રંથ જીર્ણોધ્ધાર ૨૮

શિલ્પશાસ્ત્ર ગ્રંથ

ક્ષીરાર્ણવ

: દ્રવ્ય સહાયક :

પ.પૂ. આચાર્ય ભગવંત સાગરાનંદસૂરીશ્વરજી મ.સા.ના સમુદાયના
પ.પૂ. ગચ્છાધિપતિ આચાર્ય શ્રી સૂર્યોદયસાગરસૂરીશ્વરજી મ.સા.ના
આજ્ઞાનુવર્તિની પ.પૂ. સા. શ્રી પ્રશમગુણાશ્રીજી મ.ના સદ્દુપદેશથી
આનંદ આરાધના ભુવન– મધુપુરી-જૈનનગર, સાબરમતી
બહેનોના ઉપાશ્રયના જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી

: સંયોજક :

શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળા
શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર
શા. વીમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-૩૮૦૦૦૫
(મો.) ૯૪૨૬૫૮૫૯૦૪ (ઓ.) ૨૨૧૩૨૫૪૩ (રહે.) ૨૭૫૦૫૭૨૦

સંવત ૨૦૬૫ ઈ.સ. ૨૦૦૯

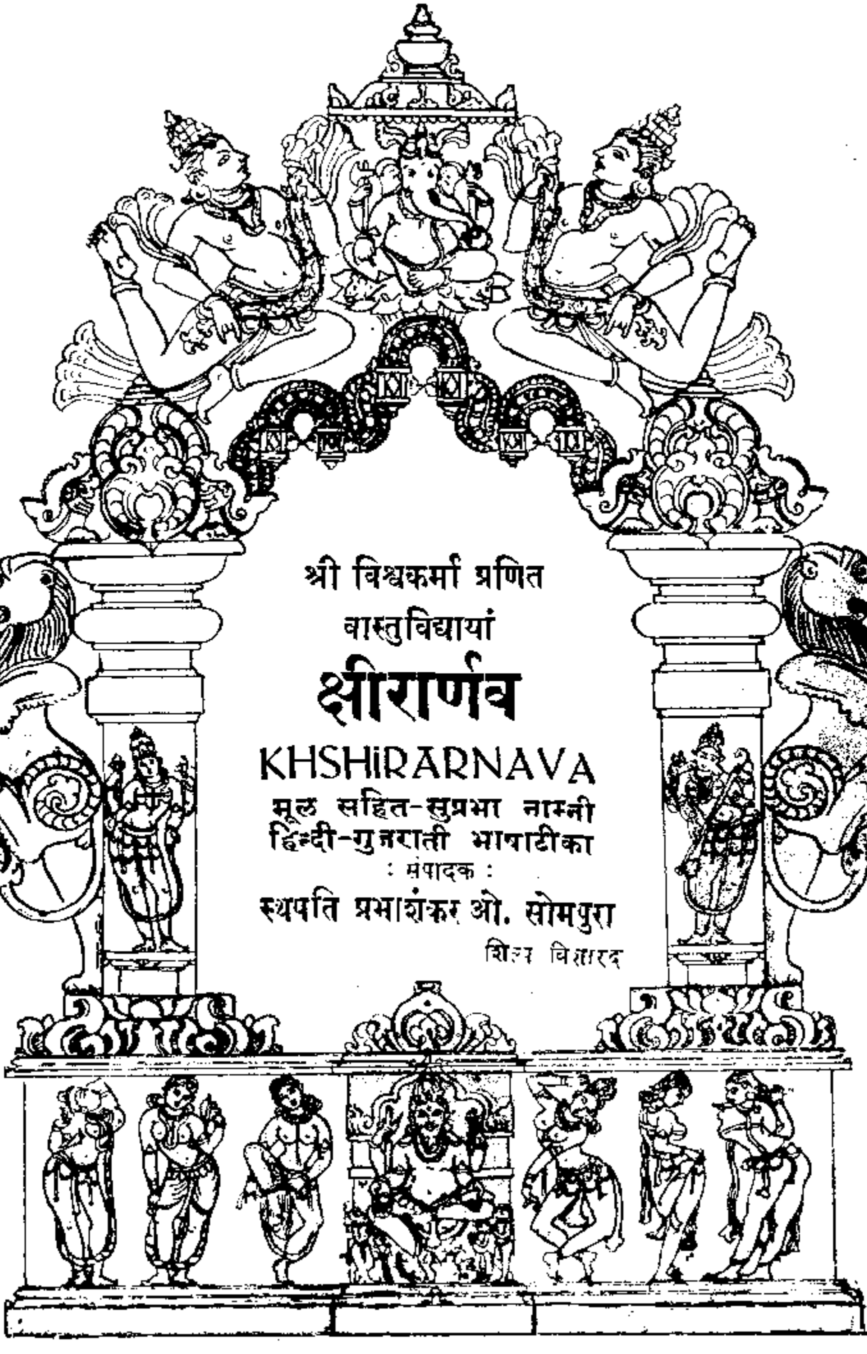

श्री विश्वकर्मा प्रणित

वास्तुविद्यायां

क्षीरार्णव

KHSHIRARNAVA

मूल सहित-सुप्रभा नाम्नी
हिन्दी-गुजराती भाषाटीका

: संपादक :

स्थपति प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा
शिल्प विशारद

Edited by :

Sthapati Prabhashanker O. Sompura, Shilpa Visharad.
PALITANA (Saurashtra)

‘शिल्प स्थापत्य’ ग्रंथ प्राप्तिस्थान : Shilpa books will be available at

: संपादक :

१. **स्थपति. प्रभाशंकर. ओ. सोमपुरा,**
शिल्प विशारद,
गोरावाडी, **पालीताणा**

: प्रकाशक :

२ **बलवंतराय. सोमपुरा तथा भातृवै**
३, पथिक सोसायटी, **अहमदाबाद-१३**

३. **सरस्वति पुस्तक भंडार, बुक सेलर्स,**
रतनपोल, हाथीखाना, **अहमदाबाद**

४. **महादेव रामचंन्द्र जागुष्ठे**
त्रण दरवाजा, **अहमदाबाद**

: Edited by :

1. **Prabhashanker. O. Sompura**
Architect Shilpa Visharad,
Gorawadi, **Palitana.** (Gujarat)
(INDIA)

: Publishers :

2. **B. P. Sompura & Bros.**
3, Pathik Soci v,
Ahmedabad–13.

3. **N. M. Tripathi & Co.**
Princ ss Street, **Bombay 2.**

4. **Motilal Banarasidas**
Bungalow Road, Jawahar
Nagar, **Delhi–7.**

5. **Motilal Banarasidas**
Nepali Khapada, P. B. No.
75, **Varanasi.** (U. P.)

प्रत १००० 1000 Copies

All Rights Reserved

मुल्य रू. 7000 (पोस्टेज पृथक)

Price Rs. 7000 (Postage Extra)

: मुद्रक :
श्री मणिलाल छगनलाल शाह
नवप्रभात प्रिन्टिंग प्रेस,
घीकांटा रोड, अहमदाबाद.

क्षीरार्णव ग्रंथकी संक्षिप्त अनुक्रमणिका

१ क्षीरार्णव ग्रंथानुक्रमणिका
२ ग्रंथ-ऋण
३ संपादकके हस्तलीखीत ग्रंथ-संग्रह
४ प्रस्तावना
५ विस्तृत अनुक्रमणिका
६ भूमिका :–सुप्रसिद्ध विद्वान पुरातत्त्वज्ञ डॅा० मोतीचन्द्रजी ।
७ आमुख :–माननीय कनैयालाल मा० मुनशीजी ।
८ पुरोवाचन श्री श्री गोपालजी नेवटीया
९ देवस्तुति ग्रंथसंपादकको अभिनन्दन

१ वास्तु स्थापत्य
२ शिल्पकी व्याख्या
३ वास्तुशास्त्रका प्रणेता
४ भारतका शिल्पिवर्ग
५ स्थापत्यधिकारी
६ भारतीय शिल्पीयोंकी प्रसंशा
७ प्रासादकी चौद जातियाँ
८ शिल्पस्थापत्यमें विवादाग्रस्त प्रश्नो ।
९ क्षीरार्णव ग्रंथ संशोधन
१० क्षमायाचना
११ आभारदर्शन ।

अध्याय	क्रमांक		
९९	१	प्रासाद पुरुषांङ्ग–प्रासाद जाति आयादि गणिताधिकार	१
१००	२	जगती लक्षणाधिकार	२८
१०१	३	कूर्मशिला निवेशन	४१
१०२	४	भिट्टमान	४९
१०३	५	पीठमान प्रमाण	५२
१०४	६	प्रासादोदयमान	५६
१०५	७	द्वारमानप्रमाण	६१–६१
१०६	८	पीठ थर विभाग	६५
१०७	९	मंडोवर थर विभाग	७४
१०८	१०	मेरुमंडोवराधिकार	८८
१०९	११	गर्भगृहोदय–द्वारशाखाधिकार	१०१
११०	१२	प्रतिमा–पीठ–लिङ्गमान	११५
१११	१३	देवतादृष्टि–पदस्थापन	१२१
११२	१४	शिखरभद्रनासकादि सरवेधादि	१३७
११३	१५	शिखराधिकार	१४३
११४	१६	रेखा विचार	१७४
११५	१७	स्तंम्भमान–लक्षणाधिकार	१८२
११६	१८	मंडपाधिकार	१९८
११७	१९	सांधार भ्रम निरुपणाधिकार	२३८
११८	२०	सांधार चातुर्मुख प्रासाद	२४८
११९	२१	केशरादि वैराग्यकुल प्रासाद	२६४
१२०	२२	चातुर्मुख महाप्रासाद स्वरुप	२७८

क्षीरार्णव ग्रंथका अनुवाद संशोधनमें प्राचिन ग्रंथोंका ऋणस्विकार

विश्वकर्मा प्रणित

१ वृक्षार्णव
२ ज्ञानरत्नकोश
३ सूत्र संतान–अपराजित पृच्छा
४ जयपृच्छा
५ विश्वकर्म प्रकाश
६ प्रासादमण्डन
७ रुपमण्डन
८ देवतामूर्ति प्रकरणम् सूत्रधार
९ वास्तुमञ्जरी
१० प्रासादतिलक
११ वास्तुराज
१२ समराङ्गण सूत्रधार
१३ मयमतम् **मयमुनि**
१४ काश्यपशिल्प
१५ शिल्परत्नम (कुमार)
१६ सच्छिल्पतंत्र
१७ वास्तुप्रदीप
१८ शुक्रनीति
१९ ब्रहद्संहिता
२० वत्थुसार ठकुरफेरु
२१ विवेकविलास **जिनदत्तसूरि**
२२ प्रतिष्ठासार **दी–वसुनन्दी** व्यास मुनि
२३ **मत्स्य** पुराणम्
२४ अग्नि पुराणम्
२५ विष्णु धर्मोत्तर **४०**
२६ द्रविड आगमग्रंथो

स्थपति प्रभाशङ्कर–ओघडभाइ–सोमपुरा–शिल्पविशारदके वास्तुशास्त्रके ग्रंथसंग्रह

श्री विश्वकर्माप्रणित

१ क्षीरार्णव
२ वृक्षार्णव
३ दीपार्णव
४ जयपृच्छा
५ वास्तुविद्या
६ सूत्रसंतान–अपराजित पृच्छा
७ ज्ञान रत्नकोश
८ सूत्रप्रतान
९ विश्वकर्मा प्रकाश
१० वास्तुशास्त्रकारिका
११ विश्वकर्मा विद्याप्रकाश
१२ विश्वकर्मा वास्तुशास्त्रम्
१३ समराङ्गण सूत्रधार
१४ राजवल्लभ
१५ वास्तुसार
१६ वास्तुमण्डन
१७ प्रासादमंण्डन
१८ रुपमण्डन
१९ रुपावतार
२० देवतामूर्ति प्रकरणम्
२१ ज्ञानसार अपराजित
२२ वास्तुमञ्जरी (ठक्करफेरु)
२३ वास्तुसार मंडन
२४ बेडायाप्रासादतिलक सू० वीरपाल
२५ प्रमाणमञ्जरी सूत्र० मल्लदेव
२६ वास्तुराज सूत्र० राजसिंह
२७ वास्तुराज अन्य सर्व विषय
२८ वास्तुकौतुक सूत्र० गणेश
२९ कलानिधि सूत्र० गोविंद
३० वास्तुउद्धारधोरणी
३१ वास्तवध्याय सूत्र० कौशिक
३२ सुखानंदवास्तु सूत्र० सुखानंद
३३ वास्तुरत्नतिलक
३४ जलाश्रयाधिकार
३५ देव्याधिकार
३६ वास्तुप्रदीप पं० वासुदेव
३७ सच्छिल्पतंत्र
३८ वापिलक्षणम्
३९ मयशास्त्र
४० शिल्पशास्त्र (उडीया)
४१ **लक्षण समुच्चय** (विरोचन प्रणित)
४२ नारदीय शिल्प

उपग्रंथ (छुटक प्रकरण)

१ आयतत्व
२ केशराज
३ जिनप्रासाद
४ ऋषभादिप्रासाद
५ मेकविंशतिमेरु
६ लिङ्गलक्षण

७ श्री वश्यप्रासाद लक्षण

नीतिशास्त्रके ग्रंथ मुद्रित

१ शुक्रनिति २ विवेकविलास
३ बृहदसंहिता ४ वसिष्ठसंहित
५ नारदसंहिता ६ गर्गसंहिता
७ हयशिर्ष पंचरात्र
८ अभिलषितार्थ चिन्तामणी
९ मानसोल्लास

द्राविड शिल्पग्रंथ

१ मयमतम् २ शिल्परातम्
३ मानसार
४ काश्यपशिल्प ५ वास्तुविद्या
६ मनुष्यालयचंद्रिका
७ इशानशिवगुरुदेव पद्धति (३)
८ विश्वकर्माय शिल्प

पुराण व्यासमुनि

१ मत्स्य २ अग्नि ३ भविष्य
४ गरुड ५ स्कंध ६ उत्कल
७ विष्णुधर्मोत्तर

आगम ग्रंथ

१ सुप्रभेद २ कामिक
३ किरणा ४ अंशुमनभेद
५ सकला ६ सिद्धांत शेखर
७ जीर्णोद्धार दर्शक
८ सारसंग्रह ९ पूर्वकीरण

प्रस्तावना

किसी भी देशके प्राचीन स्थापत्य और साहित्यसे ही उस देशकी संस्कृतिक मूल्य आँका जाता है। विद्या और कला देशका अनमोल धन है। शिल्प-स्थापत्य मानव जीवनका अति उपयोगी और मर्मपूर्ण अंग है।

भारतीय शिल्प स्थापत्य (वास्तुविद्या) का प्रारम्भ काल कब से माना जाय जिस बारेमें निर्णय करनेमें प्राचीन साहित्यके आधार लेनेकी आवश्यकता है। ऋग्वेद, ब्राह्मण ग्रंथों, रामायण, महाभारत, पुराण, जैन आगमों और बौद्ध ग्रंथों आदि साहित्यके संदर्भ सहायक हो सकते हैं। ऋग्वेदके सातवें मंडलके दो अध्यायोंमें घरको सुदृढ स्तंभोंके साथ वास्तुपति इंद्रकी स्तुति है। यहाँ इंद्रको देवोंके स्थपति त्वष्टा कहा गया है। विश्वकर्मा को समग्र विश्वके त्वष्टा माना गया है, उनके पुत्रको भी त्वष्टा कहकर उनके शिष्य विभुकी स्तुति की गई है।

और ऋग्वेदमें वास्तुविद्याके ज्ञाता अगस्त्य और वसिष्ठके नाम भी दिये गये हैं। त्वष्टा और विभुने इन्द्रको वज्र बना दिया था। पाषाणके बनाये हुए सौ नगरोंमें सप्रमाण भवनोंकी रचनाका उल्लेख मिलता है। जिससे हम यह अनुमान लगा सकते है कि स्थापत्य कलाका प्रारम्भ ऋग्वेदसे भी बहुत वर्षोंसे पहले हुआ होगा। अथर्ववेदके सूक्तोंमें स्थापत्यकलाके बहुत शब्द पाये जाते हैं। सामवेदके गृह्यसूत्रमें गृहारम्भकी धार्मिक क्रियाके तीन अध्याय हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्रमें भी वास्तु विद्याके पर तीन अध्याय हैं। भूमिको अतीव वंदनीय मानकर उसका पूजन और उसकी स्तुति दी गई है। इन सब बातोंको होते हुए भी ऋग्वेद या ब्राह्मण ग्रंथोंमें वास्तुविद्याके बारेमें स्वतन्त्र अध्याय नहीं मिलते हैं। मूर्तिपूजाका प्रारम्भ भी वैदिक ब्राह्मण युगमें हुआ था।

संसारके प्रत्येक प्राणीको जन्मसे ही शीत उष्ण और वर्षाकी प्राकृतिक प्रतिकूलताओंके सामने सुरक्षाकी जरूरत महसूस हुई इसीसे ही वास्तुविद्याका प्रारम्भ स्थूल रूपसे आदिकालमें माना जा सकता है। पर्वतोंकी गुफा या पर्णकुटि बनाकर मानवीने वास किया। वास्तुद्रव्यमें प्रथम घास और वांसका उपयोग हुआ, बादमें काष्टका, बादमें ईंटोंका उपयोग होने लगा। अंतमें पाषाणका उपयोग बाँधकामोंमें होने लगा।

शुक्राचार्य कहते हैं कि विद्या अनंत है और कलाकी तो गिनती ही नहीं हो सकती। परन्तु मुख्य विद्या बत्तीस और कलाओं चौसठ उनके द्वारा कही

गई हैं । वे विद्या और कलाकी सामान्य व्याख्या देते हुए कहते हैं कि 'जो कार्य वाणीसे हो सके वह विद्या है और मूक मनुष्य भी जो कार्य कर सके वह कला है ।' शिल्प, चित्र इत्यादि मूक् भावे हो सके उसको कला कहा है ।

भिन्न भिन्न आचार्योंने कलाकी संख्याको कम और अधिक बताया है । शुक्राचार्यने चौसठ कलाएं बतायी हैं । समुद्र पालने जैन सूत्रमें ७२ कलाएं, काम सूत्रमें यशोधरने ६४ (अवान्तरसे ६४ × ८ = ५१२ कलाएं कही गई हैं ।) ललित विस्तरामें ६४, काम सूत्रमें २७, श्रीमद् भागवतमें ६४ कलाएं गिनी गई हैं ।

विविध कलाएं विविध क्रियासे होती हैं । मनुष्य जिस कलाका आश्रय लेता है उस कला परसे उसकी जातिका नाम होता है । इस तरह कलाके वर्गानुसार ज्ञातियोंके समूह भी बनने लगे । चार वर्णाश्रमोंमेंसे भेद पडने लगे ।

वास्तुशास्त्र स्थापत्य और शिल्पकी व्याख्या—

वास्तुविद्या या वास्तुशास्त्र, स्थापत्य और शिल्प शब्दकी व्याख्योंके अभावसे उसका मिश्र स्वरूप समझकर भाषाका प्रयोग हो रहा है । परन्तु वास्तुशास्त्र इन सबोंसे व्यापक अर्थमें है । उसका अंतर्गत स्थापत्य और स्थापत्यका अंतर्गत
१८ शिल्प है ।

१९ १. वास्तुशास्त्र—देशपथ, नगर, दुर्ग, जलाश्रयादि सर्व, उद्यानवाटिका आराम स्थानों, राज प्रासादों, देव प्रासादों, भवनों, सामान्यगृहों, शल्यज्ञान, शिराज्ञान, भूमिपरीक्षा इन सर्व विद्या वास्तुशास्त्र है ।

२. स्थापत्य—दुर्ग, जलाश्रयों, राजप्रासादों, देवप्रासाद, भवनों, सामान्यगृहों वगैरहके बाँधकाम स्थापत्य है । इनके शास्त्रको विशेषकर स्थापत्य शिल्पशास्त्र कहा गया है ।

३. शिल्प—दुर्गके द्वार, राजभवन, देवप्रासाद, जलाश्रयों वगैरह स्थापत्योंके सुशोभन, अलंकृति, गवाक्ष, झरोखे, नकशी, मूर्तियाँ=प्रतिमाऐं ये सब शिल्प है ।

वास्तुशास्त्रके प्रणेता—मत्स्यपुराणमें शिल्पके अठारह आचार्यों के नाम ऋषि-मुनियों आदि के दिये हुए हैं । बृहत् संहितामें दूसरे सात आचार्यों के नाम दिये हुए हैं । अग्निपुराण अ० ३९ में लोकाख्यायिकामें शिल्पशास्त्रके पर पचीस ग्रंथोंकी नोंध दी हुई है । उनमें कई तांत्रिक और क्रियाओंके ग्रंथ है । परन्तु उनमें शिल्पशास्त्रके बहुत उल्लेख हैं । स्मृतिकार आचार्यों के संहिता ग्रंथोंमें और नीतिशास्त्रके ग्रंथोंमें और पुराणोंमें भी शिल्पशास्त्रके बहुत उल्लेख हैं । विश्वकर्म

प्रकाशमें प्रारम्भमें स्तुति करते कहा है कि महादेवने पाराशरको वास्तुशास्त्रका ज्ञान दिया। पाराशरे बृहद्रथको और बृहद्रथने विश्वकर्माको वह ज्ञान दिया। 'मानसार' में बत्तीस शिल्पाचार्यों के नाम दिये हुए हैं। विश्वकर्माके मानसपुत्र चार जय मय सिद्धार्थ और अपराजित नामसे थे। कई ग्रंथोंमें सिद्धार्थको त्वष्टा भी कहा है। उन्होंने लोह कर्म, यंत्रकर्ममें कौशल्य प्राप्त किया। बाकी पुत्रोंने विश्वकर्माको प्रश्नों करके वास्तुविद्याका संपादन किया। उनके संवादके रूपमें ग्रंथ रचे गये हैं।

स्थापत्योंका विकास क्रम

स्थापत्योंमें मुख्यतया देवमंदिरोंके विविध विभाग घाट पद्धतिका विकास क्रमशः पृथक् पृथक् कालमें और देशके खास विभागमें प्रचलित एक या दूसरी सांप्रदायिक शैलीमें देशके उस विभागमें कालबलसे नौवीं दशवीं शताब्दी तक शिल्पकृतियोंमें परिवर्तन होते गये। उसके बाद उसकी रचनाके खास सिद्धांत निश्चित हुए। इस तरह देवमंदिरादिकी रचनाके रूढ नियम पिछले कालमें अर्थात् बारहवीं शताब्दीसे निश्चित होकर लिखे गये यह निःशंक माना जा सकता है।

पाश्चात्य विद्वानों भारतीय शिल्पकलाके सांप्रदायिक भेद मानकर शिल्पकी रचनाकी पहचान कराते है, यह बिलकुल अयोग्य है। यह तो सिर्फ प्रवर्तमान शिल्प पद्धतिमें कालभेद या तो प्रांतिय भेद हैं।

भारतका शिल्पी वर्ग—

भारतका प्रमुख शिल्पी वर्ग—भारतके प्रत्येक प्रांतमें प्राचीन वास्तुशास्त्रका अभ्यासी वर्ग विद्यमान था। वे अपने अपने प्रांतके प्रासादोंकी शैली रचना करते थे। कालबलसे या धर्मके प्रति दुर्लक्ष्यसे या विधर्मिओंकी धर्मांधताके कारण अमुक प्रांतमें यह वर्ग नष्ट हो गया है या धर्म परिवर्तनसें नष्ट हुआ है। बंगाल, बिहार, आंध्र, पंजाब, सिंध, सरहद प्रांत या कश्मिरमें तेरह चौदहवीं शताब्दी तक इस वर्गका अस्तित्व था।

१. पश्चिम भारतमें **सोमपुरा** ब्राह्मण शिल्पीओं–वास्तुशास्त्रके निष्णात् माने जाते हैं। अभी भी वे अपनी कलाको सुरक्षित बनानेका प्रयास करते हैं। गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, राजस्थान और मेवाडमें वे वेर विखेर बसते हैं। स्कंदपुराणके कथनानुसार प्रभासके पुत्र विश्वकर्माके अवतार रूप उनको माना गया है। वे ब्राह्मण जातिके होते हुए भी यजमानवृत्तिका दान नहीं स्वीकारते हैं। शिल्पज्ञ गृहस्थके रूपमें जीवन व्ययतित करनेका आग्रह उनका है। वे शिल्प

ग्रंथके संग्रह कर्ता हैं। उनके चौदह गोत्र ऋषि कुलके हैं। वे यज्ञोपवित रखते हैं। सगोत्र लग्न नहीं करते हैं। और मृत्युके पश्चात् अग्नि संस्कार करते हैं।

२. भारतके पूर्वमें उडीया–ओरिस्सा प्रदेशमें **महाराणा** नामक शिल्पी वर्ग है। वह शिल्पग्रंथोंका संग्रहकर्ता है। मंदिर बनाता है। हालमें उसका व्यवसाय विशेषतः मूर्तिकलाका है। महाराणा ज्ञातिमें पाषाण कर्म करनेवाले लोगोंको राज्य द्वारा महापात्रका मानद् पद भी मिला हुआ है। उसी तरह लोह या काष्ठके काम करनेवालोंको 'चौधरी' और 'ओझा'का मानद् पद भी मिला है। खोरधाके राजाने लोहकर्म करनेवाले एक परिवारको 'दास'का पद दिया है। पाषाण कर्म करनेवालोंमें स्थपति मूर्तिकार भी है। इन सभी काष्ठलोहादि कामों करनेवाली एक ही ज्ञाति महाराणा नामकी है। उसमें परस्पर रोटी बेटी व्यवहार है। उन लोगोंमें क्षत्रिय हो या उससे निम्नवर्ग हो यह नहीं कहा जा सकता है। वे यज्ञोपवित नहीं रखते हैं। स्त्रियाँ पुनलग्न कर सकती है। उडीयामें ब्राह्मणादिमें मत्स्याहारकी छूट है। महाराणा ज्ञातिमें मृत्युके बाद अग्निसंस्कार होता है।

३ द्रविड दक्षिण–मदुराई और मद्रासकी और विराट विश्व ब्राह्मण आचार्यके नामसे अपनेको बताता हुआ शिल्पीवर्ग है। वह शिल्पी ग्रंथका संग्रहकर्ता है। मंदिरका और मूर्तिका काम करता है। विधिसे यज्ञोपवित धारण करता है। उस वर्गमें विधवा पुनर्लग्नकी प्रथा है। उसके तीन गोत्र हैं। १ अगस्त्य २ राज्यगुरु ३ सन्मुख सरस्वती सगोत्र लग्न नहीं करता है। मृत्युके बाद भूमिदाह देता है। उस प्रदेशमें नायकर, पिल्लेशल, कॅन्टर और मुदलीआर असी निम्नजातिके कारीगर शिल्पकाम करते हैं। परंतु वे मूलमें शिल्पी जातिके नहीं हैं। महाबलिपुरममें गणपति स्थपति और कांचिपुरममें गौरीशंकर स्थपति वहाँकी शिल्पशालाओंमें अध्यापक हैं।

४ कर्णाटक–मैसुर–आंध्र तैलंगण और महाराष्ट्र प्रदेशमें <u>पंचाननके</u> नामसे विश्वकर्मा जातिके शिल्पी वसते हैं। उनके पाँच कर्म व्यवसायके अनुसार उसमें गोत्र हैं। (१) पाषाणकर्मवालेका, गोत्र प्रत्नप्रस (२) लोहकर्म; गोत्र सानस (३) काष्ठकर्म, गोत्र सनातन (४) कंसकार, गोत्र अभनवश्र (५) सुवर्णकार, गोत्र सूपर्यास इन पाँचोंका कर्मके अनुसार गोत्र है। ब्राह्मणके सिवा वे किसीके हाथका भोजन नहीं करते हैं। इन पाँचोंमें परस्पर रोटी बेटीका व्यवहार है। वे सगोत्र लग्न नहीं करते हैं। यज्ञोपवित धारण करते हैं। स्त्रियाँ पुनर्लग्न नहीं करती हैं। उनमें कुछ मांसाहारी भी हैं। वे शिल्पग्रंथोंका संग्रह करते

हैं। वे मंदिर, रथ, मूर्ति और काष्ट वगैरहका काम करते हैं। गायत्री आदि का नित्यपाठ करते हैं। मृत्युके बाद अग्निसंस्कार करते हैं। आंध्रमें श्रीकाकुलम् लक्ष्मीपुरम्में उदुपुडु नामकी शिल्पीओंकी जाति थी। उसके दो चार घर वहाँ थे। उन लोगोंके पास "सारस्वती विश्वकर्मीयम" नामका ग्रंथ था। उनका अस्तित्व अभी नहीं मिलता है। यह परिवार शिल्पकार्यके अभावमें अन्य व्यवसायमें पडा हुआ मालुम पडता है।

५ तैलंगणमें विश्वकर्मा शिल्पी बसते हैं। वे शिल्पग्रंथका रक्षण करते हैं। मंदिर और मूर्तिका काम करते हैं। काष्ट और लोहका काम भी करते हैं। क़रीब तीन सौ सालसे मुस्लीम राज्य प्रदेशोंमें रहनेसे सहवास दोषसे मांसाहार करते हैं। तो भी उनका ब्रह्मत्व कम नहीं हुआ है। गायत्री पाठ पूजा आदि करते हैं। यज्ञोपवित धारण करते हैं। किसी भी उच्च जातिके ब्राह्मणके हाथका भोजन भी लेते नहीं हैं। उपरोक्त पंचाननज्ञातिमें वे नहीं गिने जाते हैं। मृत्युके बाद अग्निसंस्कार भी करते हैं।

कर्णाटक मैसुरमें कन्नडी भाषा–मद्रास प्रदेशमें तमिल–केरालामें मलयालम और आंध्र तैलंगण प्रदेशमें तेलुगु भाषाका व्यवहार लोगोंमें है। उनके शिल्प-ग्रंथ संस्कृत नागरीलिपीके बदले उनकी लिपीमें लिखे हुए हैं।

६ जयपुर अलवरके प्रदेशोंमें गौड ब्राह्मणोंकी जातिके शिल्पीओं विशेषकर प्रतिमाका कुशल काम करते हैं। मंदिरोका निर्माण भी करते हैं। यज्ञोपवित विधिसे धारण करते हैं। शुद्ध शाकाहारी हैं। उनमेंसे कओ देहातोंमें कृषिकर्म भी करते हैं। मृत्युके बाद अग्नि संस्कारका रिवाज है।

मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेशमें कओ भागोंमें 'जांगड' नामकी जाति अपनेको शिल्पीवर्गमें गिनती है। उनमें कओ सादा पाषाणकर्म, काष्ठकर्म, चित्रकर्म और लोहकर्म करते हैं। कओ देहातोंमें कृषिकर्म भी करते हैं। विश्वकर्माको अपने इष्टदेव मानते हैं। जांगडमें कओ यंत्रविद्यामें कुशल हैं, जिस तरह गुजरातमें पंचाल जाति है।

७ गुजरात सौराष्ट्र और कच्छमें वैश्य, मेवाडा, गुर्जर, पंचोली जाति काष्ठकर्ममें प्रवीण है। पाँचवीं पंचाल जातिके शिल्पीओं लोहारका काम करते हैं। वे सब विश्वकर्माको अपने इष्टदेव मानते हैं। आगेकी चारों जातिओंके शिल्पी सुथारी काम रथकाम देवमंदिरोंके साधनों वगैरह चांदीका अलंकृत काम करते हैं। पंचालभाइओं लोहकर्ममें और यंत्र विद्यामें भी 'जांगड' जातिकी

तरह कुशल है । उपरोक्त पाँचों जातिमें पंचोली अपनेको उच्च मानते हैं । यज्ञोपवित भी धारण करते हैं ।

स्थापत्याधिकारी शिल्पग्रंथोंमें उल्लेख है कि यजमानको चाहिये कि गुणदोष परखकर वह शिल्पीका सत्कार करें । और अपने कार्यका प्रारम्भ करें । शास्त्रकारोंने बाँधकामके अधिकारीके चार वर्ग बनाये हैं । १ स्थपति (प्रमुख) २ सूत्रग्राही जिसको शिल्पीओंकी भाषामें "सुतर छोडा" कहते हैं । वह नकशे बनानेमें और कार्यकी शुरूआत करनेवाला निपुण होता है । ३ तक्षक–सूत्रमानके प्रमाणको जाननेवाला सुंदर–काष्ट या पाषाणादि कार्य या नकशीरूप करनेवाला करानेवाला ४ वर्धकी–दो प्रकार है । एक तो काष्टकर्म करनेवाला वर्धकी (सुथार–सूत्रधार) और दूसरा माटीकार्यमें निपुण–मोडलीस्ट ।

भारतीय शिल्पीयोंकी प्रशंसा

जहाँ शिल्पीओंने जड पाषाणको सजीवरूप देकर पुराण के काव्यको हुबहु बताया है, जिसका दर्शनकर गुणज्ञ प्रेक्षकों शिल्पीकी सर्जनशक्तिकी प्रशंसा करते नहीं थकते हैं, यहाँ टंकनके शिल्पसे तथा पिंछीके चित्रसे ये शिल्पी अमर कृतियोंका निर्माण कर गये हैं । अखंड पहाडमेंसे कंडारी हुई इलोराकी काव्यमय विशाल स्थापत्यकी रचना तो शिल्पीकी अद्‌भूत चातुर्य कलाका बेनमून प्रतीक है ।

भारतके शिल्पीओंने पुराणोंके प्रसंगोंको पाषाणमें सजीव कंडारें हैं । उनके ओजारकी सर्जनशक्ति परमप्रशंसाके पात्र है । पाषाणके शिल्प परसे शौर्य और धर्मबोध प्राप्त होता है । जडपाषाणको वाणी देनेवाले कुशल शिल्पी भी कवि ही हैं । वे बहुत धन्यवादके पात्र हैं । अलबत्त कला किसी धर्म या जातिकी नहीं है । वह तो समग्र मानव समाजकी है ।

जड पाषाणमें प्रेम, शौर्य, हास्य, करुणा या किसी भी भावको मूर्त करना कठिन है। चित्रकार तो रंगरेखासे वह सरलतासे बता सकता है। परंतु शिल्पीं अैसे रंगोंकी सहायके बिना ही पाषाणमें भावकी सृष्टि खड़ा करता है। उधर ही उसकी अपूर्व शक्तिका परिचय होता है । भारतीय शिल्प स्थापत्य आज भी जिवन्त कला है । युरोपिय शिल्पीओंके साथ तुलना करते कहना पडता है कि भारतीय शिल्पका लक्षण अपनी कृतिमें केवल भावना उतारनेका होता है । जब युरोपी शिल्पी तादृश्यताका निरूपण करता है । उन दोनोंके मूर्ति-विधानका उदाहरण लें । अनेक कवियोंने स्त्रीकी प्रकृति विकृतिके गुणगान किये हैं। उसके सौंदर्यका पान करानेवाले भवभूति और कालिदास जैसे महान कविओंने

उसके रूप गुणकी शाश्वतगाथा गाई है । उसकी प्रकृतिसे प्रसन्न भारतीय शिल्पीओंने स्त्री सौंदर्यको मातृत्व भावसे प्रदर्शित किया है जब युरोपी शिल्पीओंने वासनाके फलरूप स्त्रीको कंडारी है ।

भारतीय शिल्पीओंने भारतीय जीवन दर्शन और संस्कृतिको अपना सर्वोत्तम लक्ष्य मानकर राष्ट्रके पवित्र स्थानोंको चुन कर वहाँ अपना जीवन बिताकर विश्वकी शिल्पकलाके इतिहासमें अद्वितीय विशाल भवनोंका निर्माण किया है । दीर्घ काय शिलाओंको तोडकर भूख और तृषाकी भी परवाह किये बिना अपने धर्मकी महत्तम भावनाको राष्ट्रके चरणोंमें समर्पित किया है । जनताने भी शंखनादसे अपने शिल्पकारोंकी अक्षय कीर्तिका चतुर्दिश प्रसारण किया है । ऐसे शिल्पीओंकी अद्भूत कलाके कारण जगतने भारतको अमरपद दिया है । ऐसे पुण्यश्लोक शिल्पीओंको कोटि कोटि धन्यवाद !

भारतके उत्तम कला धामों पर तेरहवीं सदीके बाद दुर्भाग्यके चक्र चल गये, चारों और धर्मांधताके बहुतसे प्रहार सात सौ साल तक हुए, तो भी भारतीय कला और संस्कृति जिवित रही है उसकी दृढ बुनियादको चलित नहीं किया जा सका है । उसके अवशेष भी गौरवप्रद हैं । आज विदेशी कला-पारखुओं आश्चर्य मुग्ध होकर उनको देखते हैं । भारतीय शिल्पीओंने कलाके द्वारा स्वर्गको–वैकुंठको प्रृथ्वीपर उतारा है । राष्ट्र जीवनको समृद्ध कर प्रेरणा दी है । ऐसी स्थापत्य कलाके प्रति आज राज्य कर्ता सरकार बेपरवाह बनी है । श्रीमंत वर्ग दुर्लक्ष्य करता है यह देशका दुर्भाग्य है । क्षणिक मनोरंजन नृत्य-गीतकी कलाको वर्तमानमें राज्याश्रय मिल रहा है । जब स्थायी ऐसी सुंदर शिल्प कलाके प्रति दुर्लक्ष्य किया जाता है । यह भी कालका वैचित्र्य माननेके सिवा और क्या ?

भारतीय कलामें आयी हुई विकृति

भारतीय कलामें आयी हुई पाश्चात्य विकृति–वर्तमान शिल्प स्थापत्य और चित्र इन तीनों कलाओंमें आयी हुई विकृति प्राचीन भारतीय कलाका विनाश करेगी । १. स्थापत्यमें पश्चिमका अनुकरण कर पक्षीके घोंसले जैसे बेढंग और कढंगे विकृत और कलाविहीन भवन बन रहे हैं । २. शिल्पमें जहाँ सुंदर मूर्तियोंका सर्जन आँख और मनको आनंद प्रद था उनके स्थान पर सुखे काठके ठूंठे कि, जिनको हाथ, पैर, मुँह या माथाका ठिकाना नहीं है उनकी प्रशंसा करते हैं, जो वास्तवमें विकृति है । ३. चित्रकला उसकी तादृश्यता और छाया

प्रकाश या रंगोंकी सुंदर रचनासे शोभती थी, वैसी कलाको देखते ही प्रसंशक आनंद विभोर हो उठता था, उसके स्थान पर जिसके बारेमें कुछ भी समझमें न आये ऐसी टेढी मेढी रेखाओं या शण जैसे तुच्छ द्रव्योंमें रंगके थथेडेमें कल्पनाको उतारकर उसका गुणगान कर कलाका सत्यानाश करनेवाले मोर्डन आर्टके नामसे जगतकी वंचना कर रहे हैं। ऐसी विकृतिको देखकर घृणा और दुःखकी लागणी होती है।

जिस कलाको दूरसे देखते ही प्रेक्षक उसके गुण और मर्मको जानकर आनंदित होता था, उसके बदले यह कही जाती मोडर्न आर्ट नामकी कृति प्रेक्षकको 'यह क्या चीज है?' यह नहीं समझा सकती है। ऐसी विकृतिको 'आर्ट' के नाम पर प्रदर्शनोंमें दिखाकर जगतको उल्लू बनाया जाता है। ऐसी कलाविहीन विकृतिके प्रवाहके सामने देशकी प्राचीन कलावांच्छओंको झुंबेश उठाकर भारतीय कलाकी सुरक्षा करनेका अपना फर्ज नहीं भूलना चाहिये।

भारतके प्रासादकी जातियाँ—

प्रासाद वास्तुग्रंथोंमें मुख्य विषयमें जातिके बारेमें जानना अति आवश्यक है। वास्तुग्रंथों में बतायी हुई धार्मिक विधि और ज्योतिष विषय और ऐसी दूसरी बाबतों की लम्बी चर्चामें स्थापत्यके अभ्याशीओंकी कम रूचि होती है।

क्षीरार्णव–अपराजितपृच्छा और ज्ञानरत्नकोष जैसे नागरादि शिल्प ग्रंथोंमें भारतीय प्रदेशोंमें प्रवर्तमान प्रासादकी चौदह जातियाँ कही गई हैं। वास्तुराज, वास्तुमंजरी और प्रासाद मंडन जैसे पन्द्रहवीं–सोलहवीं सदीके ग्रन्थों में भी उसकी नोंध ली गई है। मण्डनने चौदहमें से आठ जातिओंको श्रेष्ठ कहा है। अपराजितपृच्छाकारने चौदह जातियोंके बारेमें पूरे चार अध्यायों (१०३ से १०६) विगतसे दिये हुए हैं। १ नागर, २ द्रविड, ३ लतिन, ४ भूमिज, ५ वराट, ६ विमान, ७ मिश्र, ८ सांधार, ९ विमान नागर, १० विमान पुष्पक ११ वलभी १२ फांसनाकार (नपुंसकादि), १३ सिंहावलोकन, १४ रथारूह।

समरांगण सूत्रधार अ० ५२ में इस विषयकी चर्चा करता एक छोटा–सा अध्याय है। लेकिन उसमें चौदह जातियाँ नहीं कहीं हैं और उस विषय के पर विस्तृत चर्चा भी जातिके भेद करके नहीं कि गई है। भूमिज, लतिन, नागर, द्रविड, वलभी जातियाँ कही गई हैं। लेकिन उसमें अपराजितपृच्छाकार की तरह व्याख्या नहीं की गई है।

लक्षणसमुच्चयमें छः प्रादेश प्रकार कहे हैं। १ कलिङ्ग, २ नागर, ३

लाट, ४ वराट, ५ द्राविड, ६ गौड ये छः प्रथायें बताई है। लक्षणसमुच्चयकारने विधि स्वरूपानुसार दूसरी छः जातियाँ बताई हैं। जिसके अनुसार १ लतिन, २ कुटिन, ३ शेखरी, ४ चक्रीण, ५ भूमिज, ६ सांधार-इनके उपरांत वलभी और फासनाकारके दो प्रकार निर्दिष्ट हैं।

द्रविड प्रदेशके दशवीं सदीके कामिकागम के अ० ४९ में भी छः प्रकार बताये हैं। १ नागर २ द्रविड ३ वेसर ४ वराट ५ कलिंग ६ सर्वदेशी।

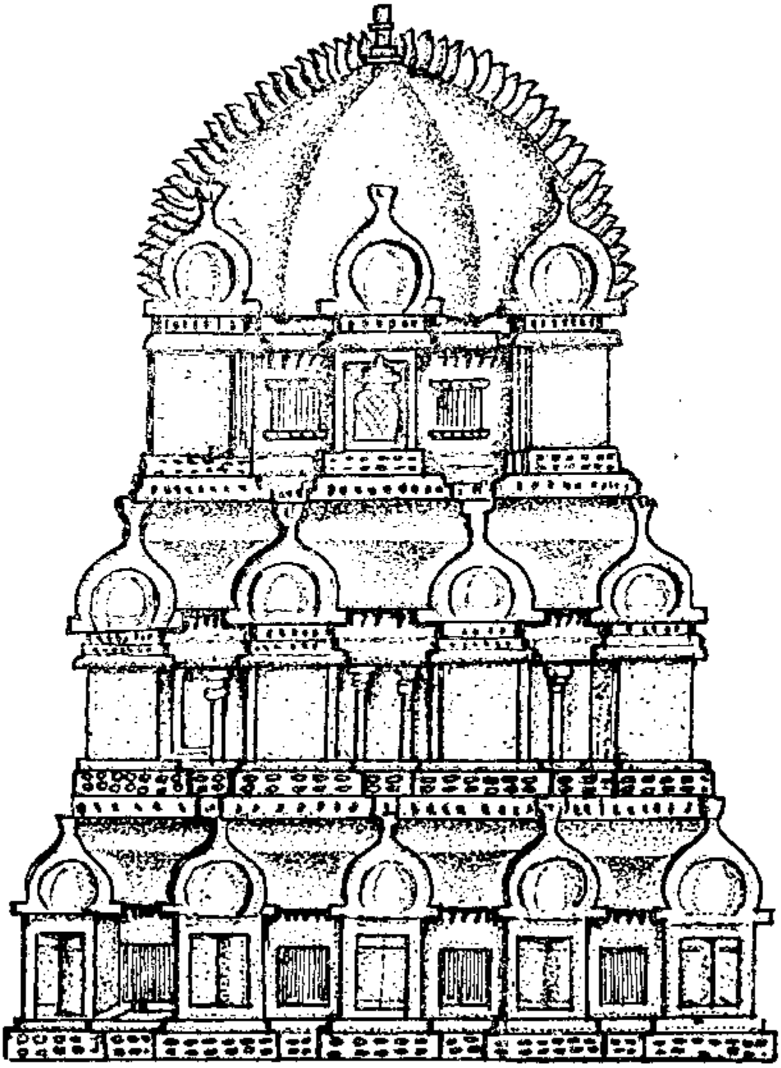

चंद्राशालग्रामके पहेली शताब्दीका स्तूपमें द्रविड प्रासाद शिखरके तकतीमें अंकन
लखनऊ म्युजियम

द्रविड शिल्पग्रंथोंमें काश्यपशिल्प और मयमतम् और शिल्परत्नमें तो सिर्फ तीन ही जातियाँ बताई गई हैं। १ नागर २ द्रविड ३ वेसर। भारतके पूर्व, पश्चिम, उत्तर प्रदेशों में नागर, दक्षिण में नीचे, द्रविड और उन दोनोंके बिचके प्रदेशोंमें वेसर जातिके प्रासादोंकी शैली प्रवर्तमान है ऐसा बताया है।

कामिकागम को बाद करते बाकी के द्रविड वास्तुग्रन्थों में जो उपरोक्त जातिका विवरण किया गया है उसके लक्षणके आधार पर केवल दक्षिणके द्रविड मंदिरों को ही लागु होता है। उत्तर भारत की नागर शैली दक्षिण भारत की नागर शैलीकी विभावना एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न है। द्रविड मंदिरों कोशलमें राजीवलोचन और सौराष्ट्र के बीलेश्वरका प्रख्यात है।

लतिन, भूमिज, फासना और वलभीके प्रकार बहुधा प्रादेशिक शैली के प्रख्यात है। सांधारकी व्याख्याके अनुसार प्रदक्षिणा मार्ग सहितके प्रासाद, उनके लक्षण और प्रकारका वर्णन अस्पष्ट है। प्रदक्षिणा मार्गवाले प्रासादों द्रविड के अलावा बहुत-सी प्रांतीय शैलीके हैं। भारत के पृथक् पृथक् भागों में प्रवर्तमान जातिके बारेमें कई प्राचीन शिल्पग्रंथकारोंने सर्वदेशीयतासे जातिके वर्णनके साथ कहा है।

अपराजितपृच्छामें सम्पूर्ण विगतसे नागरशैलीका वर्णन उत्तर भारत के दूसरे प्रादेशिक लक्षणभेद को बाद करते गुजरात, राजस्थान के ग्यारहवीं सदीके बाद बनाये हुए मंदिरोंको लागु होता है। उत्तर भारतके पश्चिम भागको अर्थात् भारतकी प्रांतीय पद्धतिके मंदिरों को सच्चे स्वरूपमें नागरादि शैलीका कहा है वह योग्य है।

लक्षणसमुच्चय नागरी वर्तना के लिये मध्यप्रदेश, लाट—गुजरात अथवा पश्चिम भारतीय प्रदेशको योग्य मानता है। उपांगवाले चोरसतल पर उर्ध्व वक्र रेखावाले शिखरोंके ऊपर वर्तुल आमलकवाले ऐसी आकृतिके शिखरोंवाले मंदिरों नागर शैलीके व्यापक अर्थमें उस प्रकारमें आ जाते हैं। कर्णाटक प्रदेशमें उत्तर भारत के लतिन स्वरूपवाले मंदिर देखनेमें आते हैं और उत्तर भारत के प्रासादों जो चोरस आकारपर गोल आमलक है उसे वेसरजातिके कई विद्वानों पहचानते हैं। उनको श्री एम. रामराव द्रविडग्रन्थों के आकारसे बताते हैं. लेकिन द्रविडग्रन्थों इस विषयमें अस्पष्ट है। कामिकागम तो कई द्रविड विद्वानों के मतसे विरुद्ध उनको स्पष्टतया उत्तर भारतके मंदिरोंको नागरादि जातिके कहता है।

अपराजितपृच्छाकारके मतसे नागरकों जातियोंमें प्रथम कहा जाता है। परन्तु उनकी दि हुई व्याख्याके अनुसार गुजरात राजस्थान और खजुराहो के और एकांडक प्रासादोंका नागर जातिकी मर्यादामें समावेश हो जाता है, परन्तु

विकासक्रम की दृष्टिसे अर्थात् उस एकांडक शिखरवाली जाति ज्यादा प्राचीन होनेसे और उस एकांडकका ही सन्तान होनेसे लतिन को ही नागर कहने का लक्षणसमुच्चय जैसे अपराजितपृच्छासे भी अधिक प्राचीन ग्रन्थों में मत है। इस दृष्टिकोणको ध्यानमें रखें तो प्रासादों की जातिमें एकां-डक लतिन जातिको आदि मानना चाहिये। अथवा व्यापक अर्थमें देखें तो एकांडक और अनेकांडक दोनोंको नागरके ही प्रकार के मानना चाहिये। एकांडक ज्यादा प्राचीन और

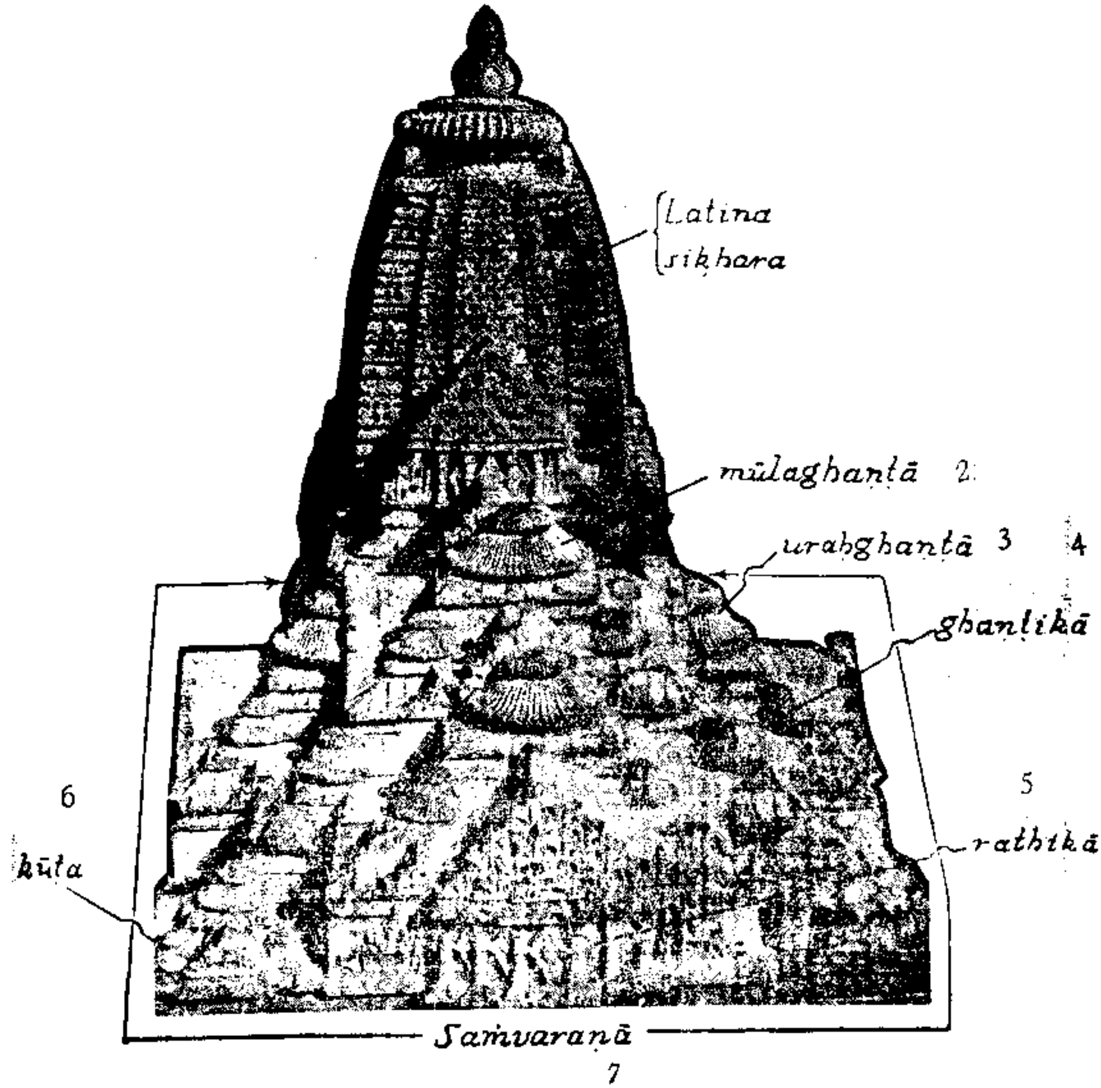

1 ललितशिखर 2 मूलघंटा 3 उरघंटा 4 घंटिका 5 रथ 6 कूट 7 संवर्ण।

नागर प्रासाद शिखर

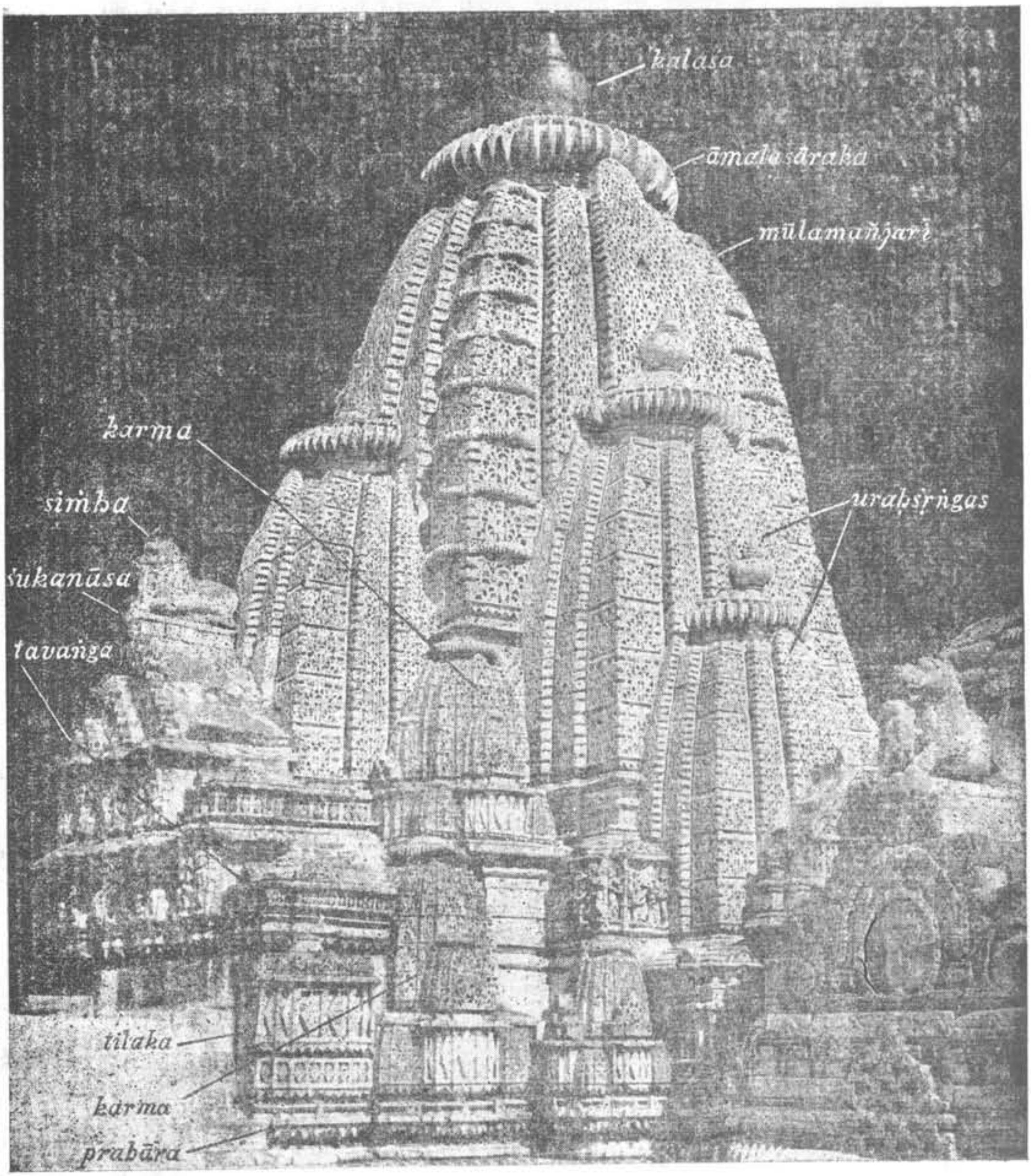

1 कलश. 2 आमलसारक. 3 मूलरेखा. (मूलमंजरी). 4 ऊरुशृंङ्ग. 5 कर्म. 6 सिंह.
7 शुकनास. 8 तवङ्ग. 9 तिलक. 10 कर्म. 11 प्रहार.

१ **नागर**—अनेकाऽक नागरप्रासाद.-सामान्यतया. कामदपीठ या गजाश्वनरादिपीठ पूर्णालंकार मंडोवरछाद्ययुक्त-उसपर शिखरमें शृंङ्ग, ऊरुशृंङ्ग, प्रत्यङ्ग तवङ्ग.

अनेकांडक उत्तरकालीन् भी सविशेष प्रचलित है। इस स्पष्टीकरण के आधारपर प्रासाद जाति विवेचन लतिनसे किया जाय तो विशेष तर्कयुक्त गिना जायगा।

१ **नागर**–अनेकांक नागर–सामान्यतया बृहद्‌का मदपीठ या गजाश्वनरादिपीठ, पूर्णालंकारी मंडोवर, छाद्ययुक्त, उसके शिरपर शृङ्ग, ऊरुश्रृङ्ग, प्रत्याङ्ग, तवङ्ग तिलक और मूलमंजरी को दल विभक्ति से प्रकट होता हुआ अनेक अंडक के समुहसे रचे जाते शिस्तबद्ध शिखर, जिसके स्कंधके सिरपर आमलसारा कलशयुक्त शिखरको अपराजितपृच्छाकारने नागर जातिको माना है, उसके आगे कवली चोकी होती है लेकिन ज्यादातर वितानयुक्त रंगमंडप अथवा गूढमंडप ऊपर फासना या संवरणायुक्त होती है।

अपराजितकारने नागरके पाँच भेदो और उनके स्वरूप और उनके भेद कहे हैं।

नाम	स्वरूप	भेद
१. वैराज्य	चोरस	५८८
२. पुष्पक	लम्बचोरस	३००
३. कैलास	वृत्त (गोल)	५००
४. मणिपुष्प	लम्बगोल	१५०
५. त्रिविष्टप	अष्टांश	३५०
	कुल	१८८८

नागरजातिके तलदर्शन पत्र ७५ पर है नागरजाति नारघाट प्रासादके संपूर्ण अंगयुक्त आलेखन यहां बडा पेज २ पर दिया है।

२ **लतिन**–शिखर जालांकुल लताओं से बना हुआ (कुडचलेवाला) अने रेखा-युक्त वेणुकोपसे आकारबद्ध बनता हुआ और श्रृङ्गाश्रृङ्ग रहित एक अमलसारा को कलशयुक्त शिखर होता है। पुराने लतिनका मंडोवरपर छाद्य नहीं होता है। ऐसे प्रासादोंके आगे कवलीके बाद बहुत करके प्राग्रिव (केवल चोकियाला) होता है। नीचे कामद पीठसे उठे हुए उपांगों शिखरके स्कंध तक जाते हैं। शिखर वरंडिकाके ऊपर अंतराल जैसे कण्ठ पर वेणुकोषसे शिखरकी रेखा उत्पन्न होती है। रेखाके अलावा कईमें लतापंचक (पाँच उपांग) होते हैं। उनके शिखर के मध्य भद्रको मध्यलता कहते हैं। शिखरके उपांगोंको बालपंजर (बालञ्जर) कहते हैं। ऊपर की खडी रेखा खण्ड कला और भूमि आमलयुक्त होती हैं। इन उपांगोंके उपरी भागको स्कन्ध कहते हैं। लतिन प्रासादों रेखा विस्तारसे सामान्य तया सवागुने ($१\frac{१}{४}$) उदयके स्कन्ध तक होते हैं। स्कन्ध पर आमलसारक होता है। उसके अङ्गमें नीचे ग्रीवा चंद्रिका आमलसारिका (पर चुलिका से कही होती है) उसके उपर कलश होता है। शिखर के नीचेका विस्तारका १० भाग करके ५ से ६ भाग स्कन्ध विस्तार होता है।

अपराजितकार कहते हैं कि नागर रेखाके समान परन्तु शृङ्गोंके रहित एकांडी शिखर रूचकादिसे उद्भूत होता है। अपराजितपृच्छाकार लतिन के पाँच स्वरूपके पाँच नाम कहते हैं। १ रूपक–चोरस–लंब चोरस २ भव–विभ

लतिन शिखर

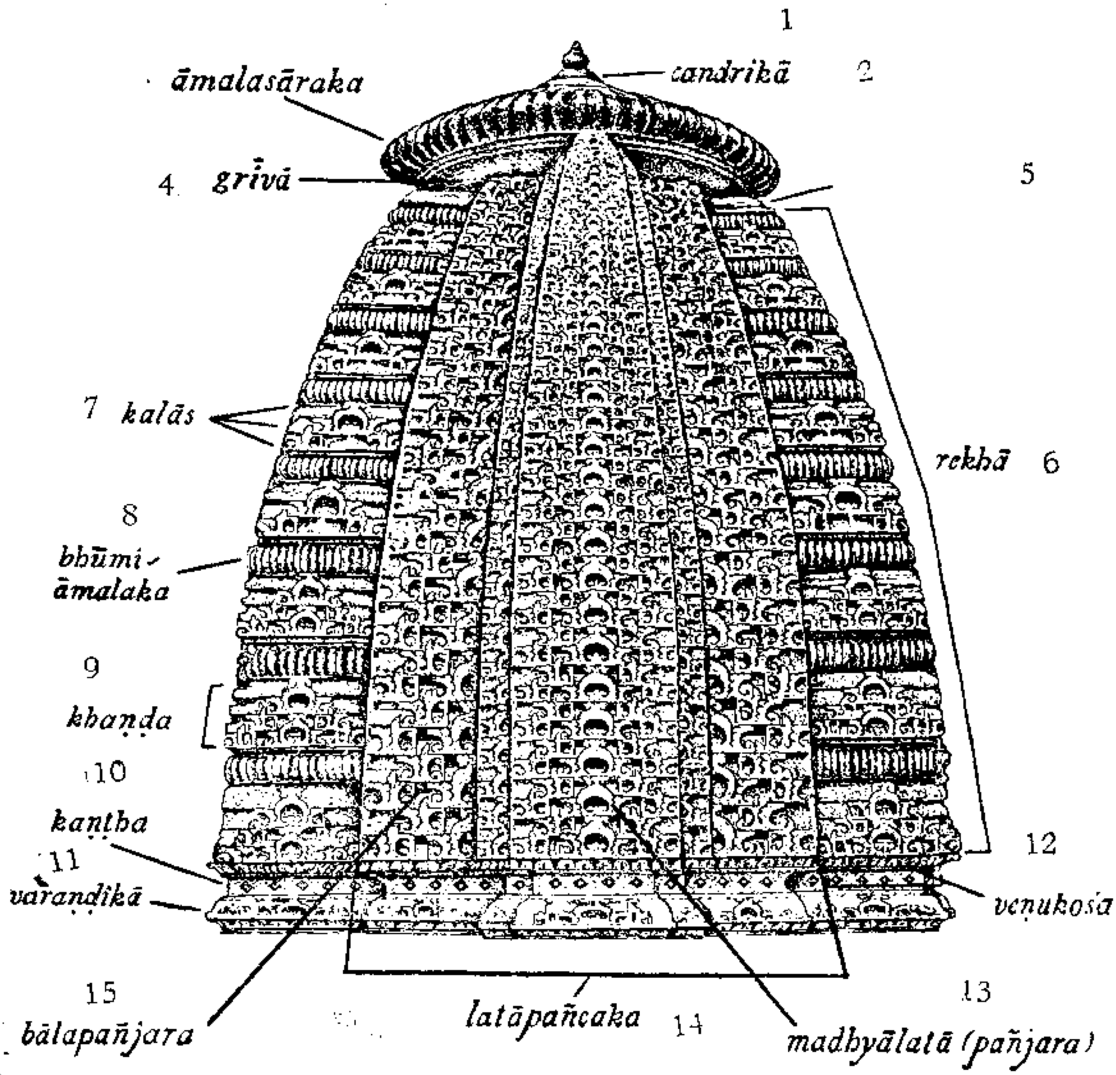

1 कलश. 2 चंद्रिका, 3 आमलसारक, 4 ग्रीवा, 5 स्कंध, 6 रेखा, 7 कला, 8 भूमि–आमलक, 9 खंड, 10 कंठ, 11 वरंडिका, 12 वेणुकोश 13 मध्यलतापंजर 14 लतापंचक 15 बालपंजर—लतिनशिखर

३ वृत–पद्ममालाधर ४ लम्बगोल=मलयमकरध्वज ५ अष्टाश्र वज्रक–स्वस्तिक इस तरह एक द्वारके पच्चीश भेद कहे हैं।

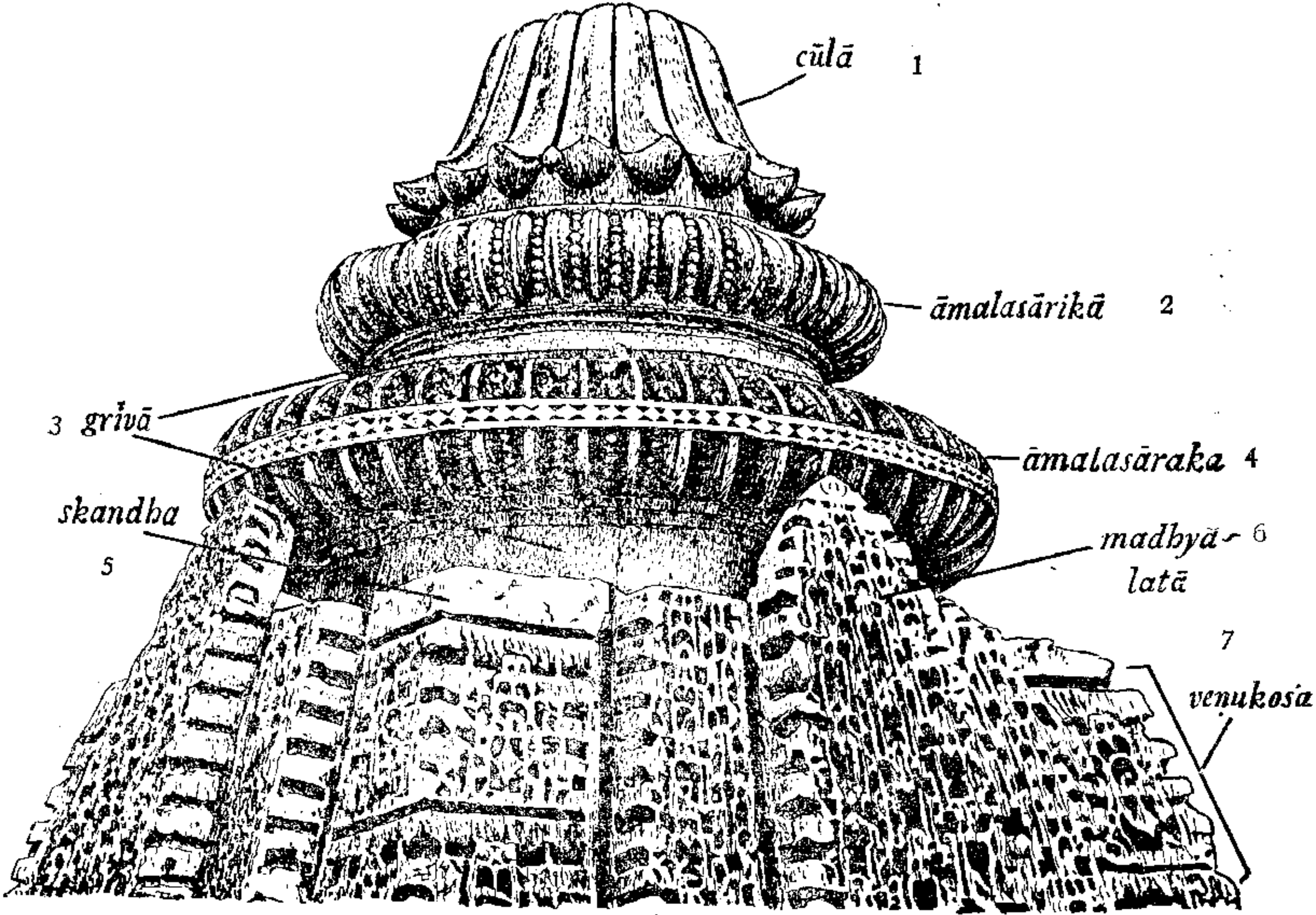

लतिन शिखरके ऊर्ध्व अंश

1 चूला. (चूली) 2 आमलसारिका. 3 ग्रीवा. 4. आमलसारक. 5 स्कंध. 6 मध्यलता. 7 वेणुकोश.

३ द्रविड—दक्षिणपथके वास्तुग्रंथोंके अनुसार द्रविडजाति को षड्वर्ग कहा गया है। तदनुसार १ अधिष्ठान (पीठ) २ पाद (स्तंभयुक्त मंडोवर) ३ प्रस्तर—(वरंडिका और छाद्य—छज्जा) ४ ग्रीवा ५ चुलिका (आमलकचंद्रिका—कर्परी पद्मपत्र) ६ स्तूपिका (कलश) जिसे ईतने अँग होते हैं उसी द्रविडजातिका प्रासाद जानना। कई बार प्रस्तरके ऊपर कूट और शाला शिखर की व्यंजनासे भूमियाँ बनायी जाती हैं। आगे मुखमंडल किया जाता है। उसके बाह्य भागमें पाद—स्तंभयुक्त मंडोवर और ऊपर प्रस्तर होता है। मंडप के अंदर मध्यमें चार स्तम्भों पर छाद्य—छत्तियाँ रखते हैं। इससे मंडप को मात्र समदल छादन (Flat Roof) धब्बा किया जाता है।

द्रविडतल दर्शन—तल आयोजन में सामान्यतया चोरस क्षेत्रमें कर्णभद्रादि अंगों एक सूत्रमें होते हैं। पादान्तर शलिलान्तर से अंगोंको जुदा किया जाता है: नागर छन्दको अट्ठाईकी तरह मध्यका भद्र और छेडे पर कर्ण कहते हैं। उपरोक्त षड् वर्गके प्रत्येक के भिन्न भिन्न अंगों हैं। उनका विशेष स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता है।

१. अधिष्ठान—पीठको तीन थरों सामान्य रीतसे हैं। १ पद्म (जाडम्बा) २ कुमुद (कणी छजी) ३ सिंहमाला (ग्रासपट्टी जैसा) उसके पर प्रति और वेदी नामके दो सपाट थर किये जाते हैं। वहाँसे आदितलका प्रारम्भ होता है। उसे पादमें समाविष्ठ माना जाता है।

२. पाद—(स्तम्भयुक्त मंडोवर) उसकी तीन बाजु पर भद्रको देवकोष्ठ कहा जाता है। उसमें जिस देवका प्रासाद हो उसके पर्याय स्वरूप रखे जाते हैं। यह बाह्यस्वरूप कहा। अंदर गर्भगृह होता है।

३. प्रस्तर—प्रस्तरके अंगमें १ वरंडिका २ उत्तर ३ वाजन और ४ कपोत (अर्धगोल) उसमें चैत्य जैसी नासिकाएँ होती हैं। कपोत—छजेका निर्गम ज्यादा होता है। जो ऊपर मजला हो उसे द्वितीय तल कहते हैं। उसके अंगों नीचे दिये हुए हैं।

अ. प्रस्तरके उपर सिंहमाला—मंचके थरों पर कोण—कोने पर कर्णकूट—(दो स्तम्भोंका पर चैत्य—झूल (कमान) उस स्तम्भिकाके भागको वितर्दिका कहते है। मध्य गर्भमें गवाक्ष—कोष्ठको दो तरफ दो दो स्तम्भपर सन्मुख चैत्य झूल और उसके बिच अर्ध गोलाकार वरंडिका को भद्रशाल कहते हैं। कर्ण कूट और भद्रशाल के बिचके अंतरमें नेत्रकोष्ठ (हारान्तर)—हारके नीचे क्षुद्रनासिका के उपर तिलनासिक (छोटी ठकार) यहाँ द्वितीय तालपूर्ण होता है।

ब—उसके पर चतुस्र अष्टांश्र या वृत—शिखरका (गुँबज जैसे) प्रारम्भ होता है। उसमें सिंहमाला पर पीठान फलक (छत छतियासे ढँका हुआ) उपर जो

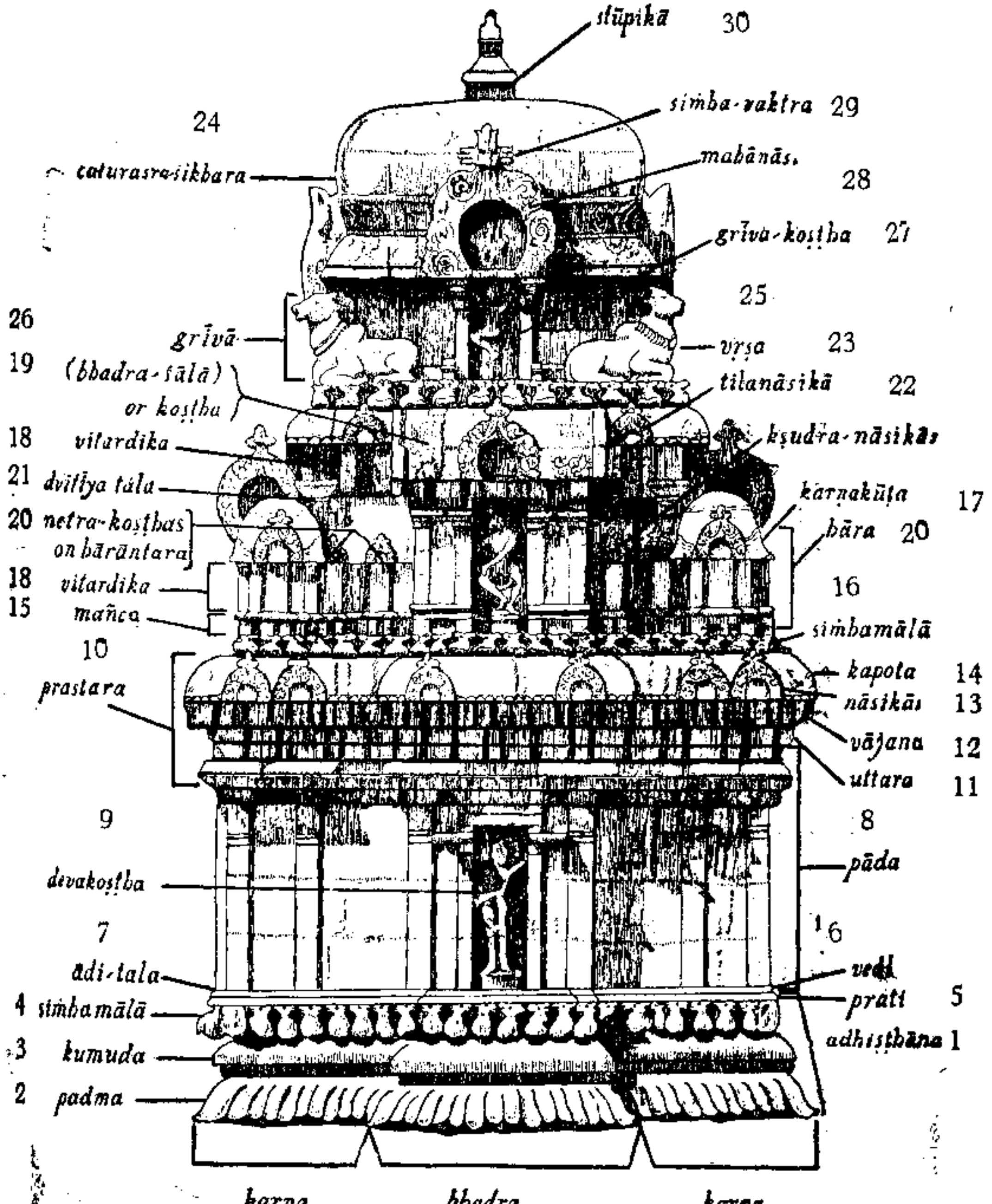

द्रविड प्रासाद शिखर सह

1 अधिष्ठान. 2 पद्म. 3 कुमुद. 4 सिंहमाला. 5 प्रति. 6 वेदी. 7 आदितल. 8 पाद. 9 देवकोष्ठ. 10 प्रस्तर 11 उत्तर. 12 वाजन. 13 नासिका. 14 कपोत. 15 मंच. 16 सिंहमाला. 17 कर्णकूट. 18 वितर्दिका. 19 भद्रशाल-(कोष्ठ). 20 नेत्रकोष्ठ (बारान्तर). 21 द्वितियतल. 22 क्षुद्र नासिका. 23 तील नासिका. 24 चतुरस्र शिखर. 25 वृष. 26 ग्रीवा. 27 ग्रीवा कोष्ठ. 28 महानास. 29 सिंहवक्त्र. 30 स्तुपिका.

गोल या अष्टाश्र शिखर (गुँबज) हो तो कोने पर वृषभ, सिंह या गरूडके बड़े स्वरूप रखते हैं। अगर कर्णकूट रखते हैं।

४. ग्रीवा-वरंडिका कपोत पर सादी जंघाके जैसे भागको ग्रीवा कहते हैं। (उसके कोनेमें वृषादि और मध्यमें दो स्तंभों को ग्रीवाकोष्ट-गोखमें देवस्वरूप करते हैं। उसके उपर महानासी (चैत्य-झूल), महानासी की मंचपर ढेरके रूपमें सिंहवक्त्र (ग्रास मुखके समान) किया जाता है। गर्भके दो महानासी के मध्यमें कोने पर पार्श्वनासिक भी कई लोग करते हैं। महानासीका अपर नाम भद्रनासी भी है। कई स्थलों पर ग्रीवाके थरमें स्तंभो करने के अलावा वहाँ दो देव रूप या ऋषिमुनिके बैठे रूप भी करते हैं। परन्तु उनका पट महानासी से अलंकृत करते हैं। कोई उस रूपके स्थानपर शाला (सादा भद्र) भी करते हैं। उपर महानासी तो कोई भी प्रकारमें होता ही है। ग्रीवाके उपर निकलता हुआ हंसवाजनका फिरता थर करके उसके पर दूसरा छाटवाला उससे निकलता हुआ थर किया जाता है। उसके पर शिखर होता है।

ग्रीवाके पर हंसवाजन या दूसरे थरके स्थानपर दंडछाद्य जैसा छज्जा निकालकर उसके पर भी शिखर (गुँबज जैसा) होता है। ग्रीवा स्तूपिका के मध्यके गुँबज जैसे शिखरका षड्वर्गमें स्थान नहीं है।

५. चूलिका-शिखर अर्द्ध भागमें (नागर छन्दके चंद्रसरूप) पद्मपत्रिका-अथवा कर्परी पत्र रूप विस्तृत होता है।

६. स्तूपिका-चूलिकाके पर द्रविड शिखरका सर्वोपरि स्तूपिका नागर छन्दके कलशरूप होता है।

अपराजितकारने द्रविड प्रासादके पाँच भेद कहे हैं। १ स्वस्तिक, २ सर्वतोभद्र ३ वर्धमान, ४ सूत्रपद्मा, ५ महापद्मा इन पाँचोंके क्रमसे एक एकके सौ दोसौ, तीनसौ, चारसौ और पाँचसौ इस तरह कुल पन्द्रहसौ भेद किये हैं। परन्तु उसका स्पष्टीकरण दिया नहीं है। अपराजितकार द्रविड छंदके स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पीठके उपर कर्णरेखा की भूमिका क्रमसे करना। उसकी विभक्ति दल-लताश्रृंगों के क्रमसे उत्पन्न होती है। मेष, मकर कूटादि कंटकोंसे आवृत्त वेदी घंटा नासिकादि से शोभता हुआ द्रविड छंदका प्रासाद समझना।

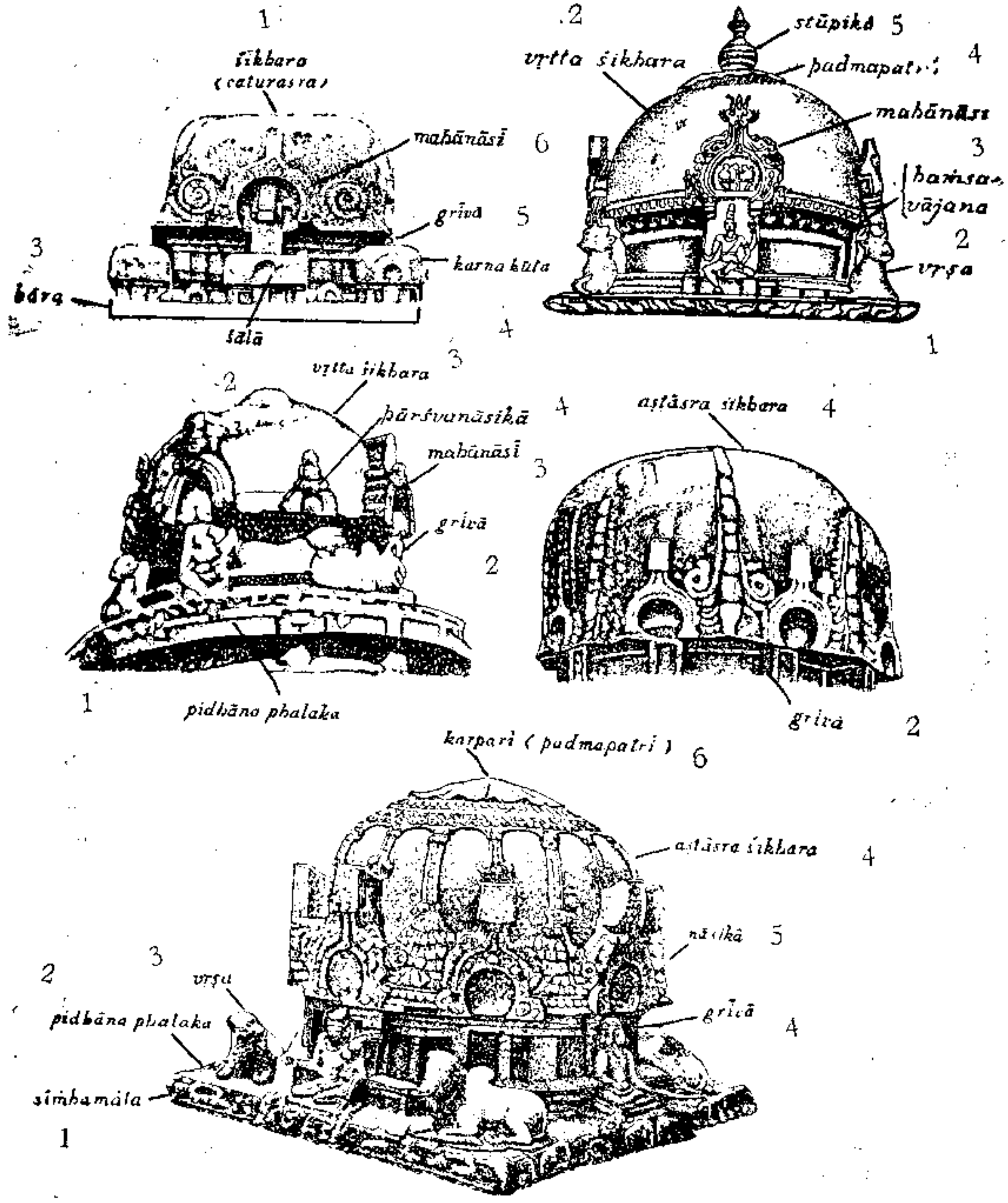

द्रविड प्रासादके शिखरके पृथक् पृथक् स्वरूप

1. 1 चतुस्रशिखर. 2 शाला. 3 हार. 4 कर्णकूट. 5 ग्रीवा. 6 महानासि.
2. वृत्तशिखर–1 वृष. 2 हंसवाजर. 3 महानासि. 4 पद्मपत्र. 5 स्तूपिका.
3. वृत्तशिखर–1 पीडान फलक. 2 ग्रीवा. 3 महानासि. 4 पार्श्वनासि.
4. अष्टाशिखर-1 सिंहमाला. 2 पीडान फलक. 3 वृष. 4 ग्रीवा. 5 नासिक. 6 कर्परि पद्मपत्रिका.

४. भूमिज—

भूमिज प्रासादोंमें कई बार तलदर्शन अष्टभद्री या अष्टकर्णी या वृत्तसंस्थान पर आंका जाता है। पीठ और मंडोवर के सामान्य लक्षणों अनेकांऽक नागर जैसे ही होते हैं। परन्तु शिखर प्रकृतिके मूलगत फर्क होनेसे उसका पूरा दृश्य विशिष्ट बनता है। उसे छाद्य–छज्जा क्वचित् होता है। उसके शिखरकी रेखा नागरीके जैसी लेकिन रेखाकी अंदर उत्तरोत्तर श्रृंगयुक्त होती है। शिखरके कर्ण प्रतिरथ और रथके उपांगमें एक पर दूसरा–तीसरा–इस तरह सात श्रृंगों उत्तरोत्तर चढ़ाये हुए होते हैं। उसके शिखरको बालपंजर (बालंजर) के उपाङ्ग नहीं होते हैं। परन्तु भद्रके पर मालारूपमें लता खिंची हुई होती है। भद्रकी लताको माला कहते हैं? इससे सिर्फ शिखरके भद्रमें कुडचल कंडारा होता है। और कर्ण और प्रतिरथके उपांगोंमें उत्तरोत्तर श्रृंगों (कूट) चढ़ाये हुए होते हैं। प्रत्येक श्रृंगों पर कुंभी स्तंभीकायुक्त जंघा और उसके पर प्रहारके ऊँचे थरों करके फिर क्रमसे श्रृंग–कूट चढ़ाये हुए होते हैं। एक, दो, तीन, पाँच, सात इस तरह क्रमसे उत्तरोत्तर श्रृंगों शिखरके स्कंधतक चढ़ाये हुए होते हैं। स्कंध पर ग्रीवा, घंटा, पद्म, छत्र, चंद्रिकायुक्त आमलक होता है। उसके पर सर्वोपरि कलश होता है।

उसके मंडोवरके थरोंमें छज्जा क्वचित ही होता है। छज्जे पर वरंडिका और केवालके घाटोंवाले थर पर प्रहार होता है। वहाँसे शिखरका प्रारम्भ होता है। भद्रको रथिका कहते हैं। वह देवरूपसे अलंकृत होता है। उसके पर (नागरछंदके उद्गमको) शुरसेनक कहा जाता है नीचे बड़ा होता है। शिखरके कर्ण–प्रतिरथ पर चढ़ाये हुए श्रृंगोंके थरको स्तम्भकूट कहते हैं। नागरछंदकी तरह स्कंधसे नीचे ध्वजाधारके पीछे बाहर प्रतिरथमें निकाला हुआ होता है।

भूमिज दृष्टांतोंमें आगे गूढमंडप अगर रंगमंडप किया जाता है। मालवा, महाराष्ट्रमें भूमिज जातिके प्रासाद देखनेमें आते हैं। क्वचित उतरकर्णाटकमें भी अपराजितकारने भूमिजके स्वरूपका वर्णन करते कहा है कि—बांसकी तरह उत्पन्न हुआ हो अिस तरह कूट बड़ेसे छोटे अैसे क्रमसे चढाते जाना। दल विभक्ति उपांगोंके अंगोंसेयुक्त भूमिज छंदके प्रासाद जानना।

अपराजितकारने भूमिजके तीन प्रकार कहे हैं। १ चोरस निषध–२ वृत्त–कुमुद ३ अष्टाश्र–स्वस्तिक–और उसके दश–सात और आठ इस तरह तीन प्रकारसे भूमिज करना। अिन सबके ६२५ भेद कहते हैं।

५—वराट जाति–भूमिकाके क्रमसे जंघाहीन करते जाना। भूमिकावाले श्रृंग श्रृंगोंसे युक्त–बहुत श्रृंगोंवाला रेखा प्रतिरथ भद्र और प्रतिभद्र युक्त मंदार पुष्पिका और घंटावाला अैसी वराट जातिके लक्षण जानना।

अपराजितकारने वराटजातिके पांच प्रकार कहे हैं । १ वराट २ पुष्पक ३ श्रीपुंज ४ सर्वतोभद्र ५ सिंह । इन पाँचोंके १२०२ भेद कहे हैं ।

६ **विमानजाति**–चोरस तलको रथ उपरथको भद्रके थोडे उपांगोंवाले विमानजातिके प्रासाद जानना ।

विमान छंदके पाँच प्रकार–१ विमान २ गरूड ३ ध्वज ४ विजय ५ गंधमादन । इन प्रत्येक पुष्पमाला घर आकारके लता श्रृंगवाले जानना । उनके प्रत्येक नामानुक्रमसे भेद कहे हैं । ३००–४००–५००–६००–७०० इस तरह कुल पच्चीस सौ भेद कहे हैं ।

७. मिश्रक जाति–नागर छंदका अनेक तिलकवाला तिलकोंसे शोभता मिश्र छंदका प्रासाद जानना । अनेक आकार रूपवाला जानना । अपराजितकार उसके अठारहसौ भेद कहते हैं ।

८ **सांधारा जाति**–या सांधार जाति–व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे स-अंधार–जो प्रासादों गर्भगृह प्रदक्षिणा मार्ग सहितके हों तो उन्हें सांधार कहा जाता है । अैसी रचनामें प्रकाशका बहुत कम अवकाश होता है । अिससे वे स–अंधार कहे जाते हैं । अैसे प्रदक्षिणा मार्गवाले सांधार प्रासाद नागर जातिमें बहुत स्पष्ट रीतसे बताया गया हैं । जिनको प्रदक्षणा मार्ग नहीं होते हैं । वैसे प्रासादोंको निरंधार प्रासाद कहा गया है ।

सांधार प्रासादके बाह्य भागके प्रमाणसे शिखर किया जाता है। अैसे सांधार प्रासादों गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान, मेवाड़में हैं। वैसे सांधार प्रासादों मध्यप्रदेश के खजुराहोंमें भी हैं। सोमनाथका महाप्रसाद सांधार जातिका है। सांधार जातिका तलदर्शन पत्र ७५ पर है। यह देखो !

अपराजितकार उसका स्वरूप बताते हैं। तलच्छंद जिसके विभक्त उपांगों-वाले है, उसमें गर्भगृह, दिवारें, भ्रमवाला–जिसे भ्रमों क्रमयोगसे कहे हो उसके पर शिखर हो उसे सांधार छंदके प्रासाद जानना ।

उसके सात प्रकार—१ केसरी २ नंदन ३ मन्दर ४ श्रीतरू ५ ईन्द्रनील ६ रत्नकूट ७ गरूड उन सातोंका अनुक्रमसे भेद कहा है । दो–तीन–एक–छः–तीन–सात और तीन अिस तरह मिलकर कुल पच्चीस भेद कहे हैं ।

९. विमान नागर–नागर उपर छंदयुक्त लताशृंगवाला हो वैसे प्रासादका विमान नागर छंद जानना ।

१०. विमान पुष्पक–विमान नागर छंद उपर शिखरमें पुष्पक जैसा उरुश्रृंग होवे वैसा, वह सर्व कामनाओंको देनेवाला अैसा विमान पुष्पक छंदका प्रासाद जानना ।

११. वलभी–वलभी जातिके प्रासादों लतिन नागर छंदसे भी प्राचीन जातिके मालुम होते हैं । सौराष्ट्रमें उत्तर गुप्त कालके कदवार (प्रभासके पास) हैं, और पोरबंदर द्वारिकाके बिचके हर्षद माताके स्थानपर बहुत सामान्य रूपमें वलभी प्रासाद हैं ।

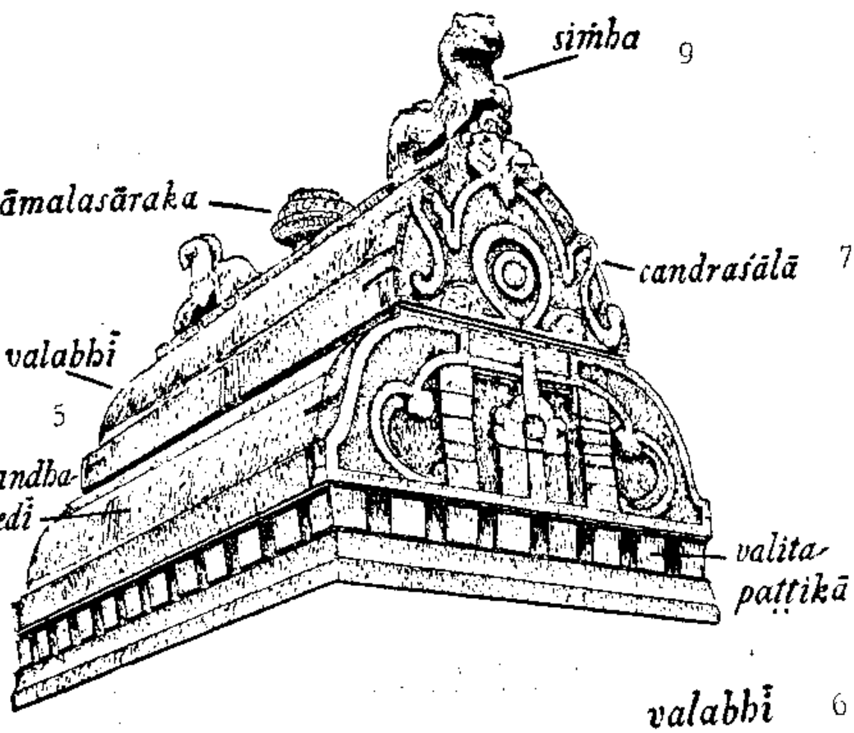

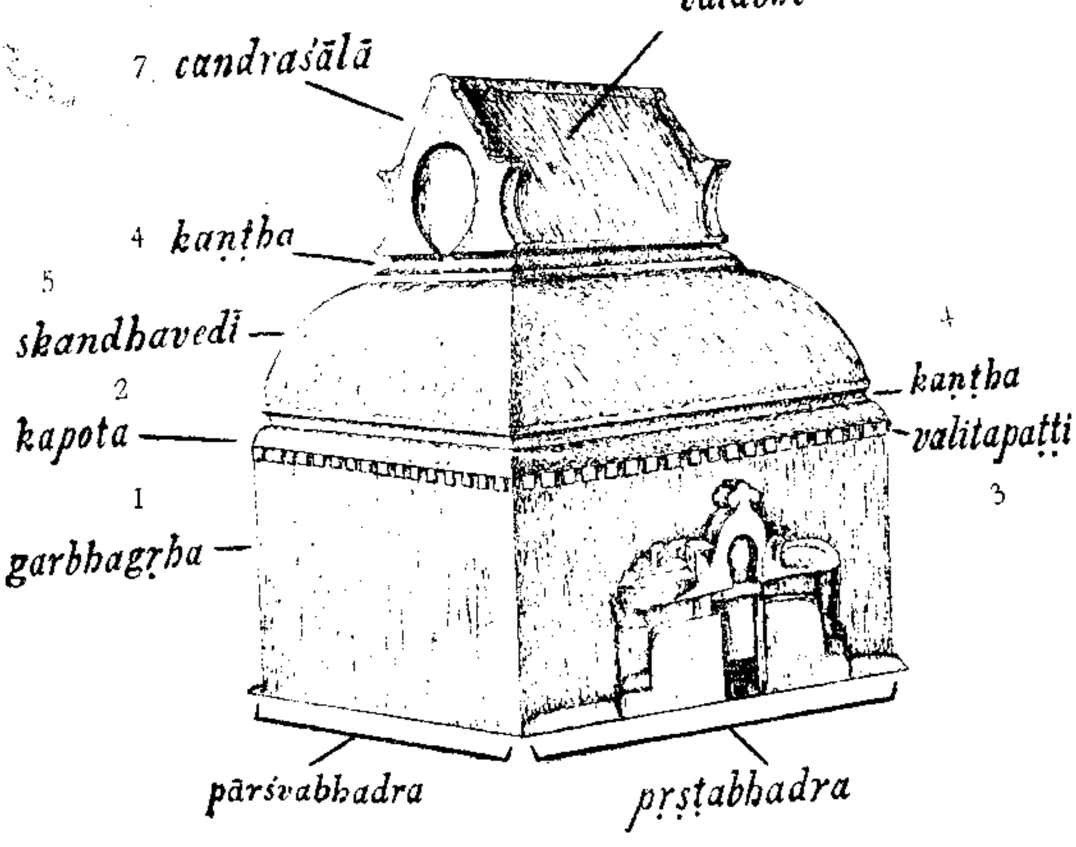

पार्श्वभद्र **वलभी प्रासाद** पृष्ठभद्र

1 गर्भगृह 2 कपोत 3 वलित पट्टिका 4 कंठ 5 स्कंधवेदी 6 वलभी 7 चंद्रशाला 8 आमलसारक 9 सिंह

लम्बचोरस गर्भगृहको बाहरके तलछंद घंटाके विना क्रमसे भूमिका चढाकर उसकी भूमिका गजपृष्ठाकृति (वरंडिका जैसे लोढिये) करना। तब वह सर्व कामनाओंको देनेवाला ऐसा वलभी छंद जानना।

अपराजितकारने उसे विमान नागर छंदके प्रासादके कुलका माना है, और उसके चार प्रकार आकार परसे नामाभिधान दिया है! १. लम्बचोरस पुष्प प्रकार २. चोरस–संकीर्ण ३. धृतको रत्नज्योति ४. लंबगोलको महार्चिष कहते हैं।

द्राविडमें महाबलिपुरम् वगैरह स्थलपर हिमाचल प्रदेश–कलिंगमें वलभी जातिके प्रासादों छुट्टे छवाया देखनेमें आते हैं। भुवनेश्वरमें वैतालदेवलका अलंकृत मंदिर वलभी जातिका है।

आयताश्र (लम्ब–चोरस) तलवाले, हस्तांअगुल उपांगोवाले या उपांगोके विना वलभी प्रासादोंकी टोचपर नागर या भूमिज शिखर नहीं हो सकता है। अभीतक मिले हुए ऐसे प्राचीन–प्रासादोंके अभ्यास परसे मालुम होता है कि कम घाटवाली पीठ और मंडोवर सामान्यतया सादे होते हैं। मंडोवरके शिरो भागमें स्कंधवेदी (गोल वलीके जैसी) करके उसके उपर लम्बाकारमें अर्धगोलाकार वलभी किया जाता है। उसकी छोटी बाजुओंके दोनों सिरों पर चँद्रशालाकी टोच पर दोनों तरफ सिंह बिठाये हुए हैं। वलभीकी टोच पर एक या तीन कलयुशक्त आमलसारिकायें रखी जाती हैं। ऐसा प्रकार वलभीका है, और दूसरा प्रकार लम्बचोरस गर्भगृहके बाहर चारों ओर वलिका अर्धगोलाकार कर मध्यमें वलभी संकुचित लम्ब–चोरस वलभी कर उसकी दोनों तरफ छोटी बाजुओं पर चन्द्रशाल (उद्गम–देढिये) कर उपर कलश चढाया जाता है।

तीसरा प्रकार–लम्ब–चोरस या समचोरस गर्भगृह पर उपरोक्त दोनों प्रकारकी तरह वलित पट्टीका कपोत–कंठादिके निकलते घाटके थर करके उपर वलिकाका घाट करके वैसे तीन या पाँच थरोंको उत्तरोत्तर संकोच कर चढाकर उपर आमलक कलश चढ़ाया जाता है। प्रत्येक वलिकाके थरमें पहलेमें पाँच, दूसरेमें तीन इसी तरह चैत्य–कूट किये जाते हैं।

सामान्यतया वलभी प्रासादोंके अग्र भागमें मंडप जुड़ा हुआ हो, वैसे दृष्टांत देखनेको नहीं मिलते हैं।

१२. फासनाकार–इस जातिके प्रासादोंको सामान्य पीठ मंडोवर पर छाजलियाँ क्रमशः उत्तरोत्तर संकोचकर चढ़ाकर टोचपर घंटाकलश रखा जाता है। भद्रपर सिंहकर्ण (बडा उद्गम) वाली रचनाको अपराजितपृच्छाकारने फासनाको–

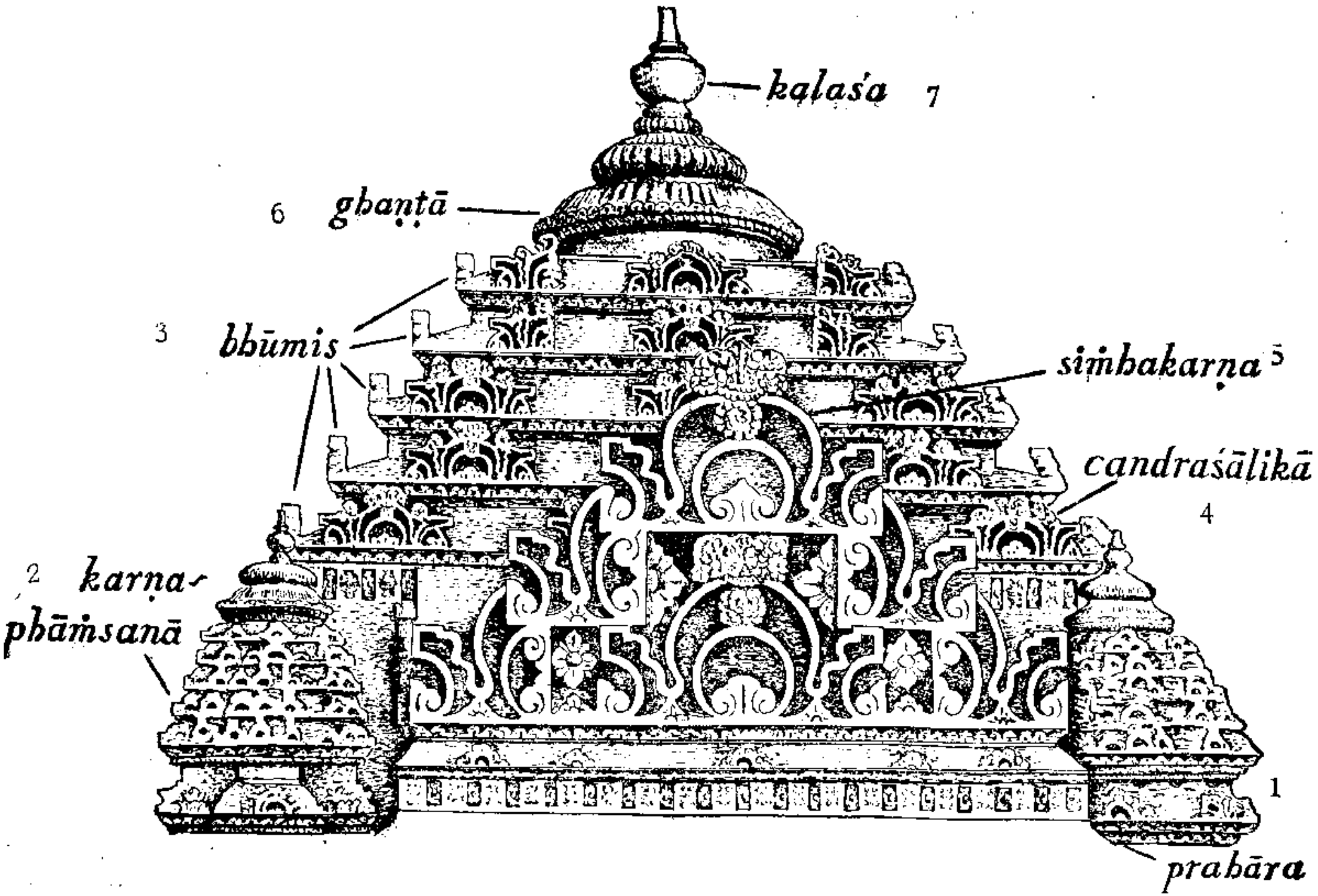

फासनाकार शिखर

1 प्रहार 2 कर्णफासमा 3 भूमिजं 4 चद्रशालिका 5 सिंहकर्ण 6 घंटा 7 कलश

नपुंसका–फासनाकार कहा है। कितनोंके कोने पर कर्णफासना–फासनाकार कूट चढाते हैं। फासनाकार प्रासादोंका तलदर्शन हस्तांगुल उपांगोवाला सिर्फ कर्ण–रेखा और भद्र विशेषकर होता है। उदकान्तर वर्जित–पानीतारके उपांग होते हैं। फँसकिया–फांसना शैली गर्भगृह परसे मंडप फासना करनेकी पद्धति बादमें प्रविष्ट हुई है।

फासनाकार मंदिरों, खजुराहो, गुजरात, चेदी प्रदेश, अमरकंटक, आबू, देलवाडा, राजस्थान, कलिंग–ओरिस्सा–भुवनेश्वरमें हैं। फासनाकारके पाठों जयपृच्छा–प्रमाणमंजरी–वृक्षार्णव–अपराजित पृच्छा और लक्षणसमुच्चयमें उल्लेख है।

फासनाको गुजरात सौराष्ट्रके शिल्पीओंने 'तरसटियु' कहा है। वह 'त्रिषट्' का अपभ्रंश है। अर्थात् तीनों तरफके दर्शनवाला–परंतु त्रिषटा शब्द शिल्पग्रंथोंमें नहीं मिलता है। बहुत सादगीसे फासना मंदिर होता है जिससे भारतके हरेक प्रदेशोंमें सादे स्वरूपमें फासनाकार मंदिर देखनेमें आते हैं।

कलिंग–उडिया प्रदेशोंमें भुवनेश्वर पुरी और कोनार्कके मंदिरोंके मंडपों पर फासना चढाई हुई दिखती है। छाजलीके पाँच, सात या नौ थरोंके बिच एक सादा थर जंघाके जैसा चढाया जाता है उसे "कांति" कहा जाता है। उसके पर फिर पाँचेक थर छाजलीके चढाकर घंटा और कलश चढाते हैं! कलिंग शिल्प ग्रंथोंमें छाजलीको 'पीडा' कहा गया है। वैसे सात–नव थरोंके उदयको 'पोटल' कहते हैं और उसपर बीचके एक सादे थरको कान्ति कहते हैं। उपरके दूसरे पाँच–सात थरोंके उदयको भी 'पोटल' कहते हैं। उसके पर घंटाके नीचे ग्रीवाको "बेकी" कहते हैं। उसके पर मंडपकी फासनाके सर्व थरोंके उदयको "गंडी" कहते हैं। यद्यपि, शिखरके उदय भागको भी "गंडी" कहते हैं। इस तरह शिल्पीओंको प्रांतीय भाषाके शब्दोंसे थरोंका परिचय दिया गया है। अपराजित-कारने फासनाकारको नपुंसक छंदका प्रासाद कहा है।

१३. **सिंहालोकन**—छाद्य–छाद्योंसे उत्पन्न हुआ, जिसके उपर कोनेको सिंहसे शोभायमान करना। उसके पर घंटा–घंटा आकृति की करना। उसे 'सिंहालोकन' छंदका प्रासाद कहते हैं।

१४. **रथारुह**—नागर छंदसे उद्‌भूत–शकट–गाडेके उपर नागरछंदका, जिसको तीन चक्र हो वैसे आकारका कामनाको देनेवाला ऐसा रथारूह छंदका प्रासाद जानना। अपराजितकारने दारू कर्म (काष्टकार्य) से उद्‌भूत सिंहावलोनन दारूके जैसे छंदका रथारूह जाननेके लिये कहा है।

उपरोक्त चौदह जातिमें पाँच–छः जातिका विशेष स्पष्टीकरण नहीं है। इससे उसका परिचय करना मुश्किल है। तो भी उसके अधिक प्रयत्नसे संशोधन प्रादेशिक भ्रमण करके करने की जरूरत है। जावा, सुमात्रा, अनाम (चंपा) कंबोडिया, सियाम आदि बृहद्‌भारत प्रदेशोंमें भारतीय शैलीके भव्य और विशाल प्रासादोंका निर्माण हुआ है। वे अपनी इन चौदह शैलियोंमें आये हुए होना चाहिये। या–भारतीय शैलीकी कौटुंबिक प्रथा है!

शिल्पस्थापत्य में विवादग्रस्त प्रश्नों

शिल्पियों में कई विवादग्रस्त प्रश्न हैं। कई बार यजमानको ऐसे प्रश्न उलझनमें डालते हैं। इनमेंसे कई प्रश्नों बुद्धियुक्त हैं और कई निरर्थक दुराग्रही भी हैं। स्थलके पर हुए पुराने कामके उदाहरण देकर वे विवाद उग्र बनाते हैं। कई रूढिग्रस्त प्रणालिका को अग्र करते हैं। इन सबका समाधान शास्त्राधार विशेष सबल गिना जाता है। कईबार शास्त्रके पाठोंका अपनी बुद्ध्यानुसार अर्थ करके अपने मतका समर्थन करते हैं। निष्पक्ष रीतसे बुद्धि पूर्वक व्यवहार को भी लक्ष्यमें लेकर सोचना चाहिये। जहाँ पाठोंका अभाव हो वहाँ परंपरागत प्रणालिका को भी मान देना पड़ता है। अगर वहाँ पुराने स्थापत्य को उदाहरण रूप स्वीकारने पर बाध्य होना पडता है।

सत्रहवीं सदीसे शिल्पियों कईं प्रथाओंको अनुसरे हैं। उसमें कुछ शास्त्र विमुख है। ये प्रथायें शास्त्रविहीन है परन्तु प्रणालिकाएं हैं इस तरह मानकर उसका अनुसरण या ऐसे मतमतांतर के लिये दुराग्रह न करना चाहिये। ऐसे उदाहरण देकर अपने मतका समर्थन न करना चाहिये। प्रतिपक्ष का अपमान अवगणना करनेकी वलण भी अनीच्छनीय है।

१. गणितके विषयमें—इकीस अंग मीलानेको कहा है। जिस तरह ज्योतिषी को पूरे अंगोंको देखकर मुहूर्त नीकालनेमें असमर्थ होता है उस तरह शिल्पमें विशेषकर लगभग चार–अंगोंको मीलानेका प्रयास करते हैं। १ आय, २ नक्षत्र ३ गण, ४ चन्द्र। शास्त्रकारों कहते हैं कि—

“द्विभिश्रेष्ठं त्रिभिश्रेष्ठं पंचभिः सर्वमुत्तमम्।”

सामान्यतया लंबाई चौड़ाई के गजके उपरके आँगूलोंमें विषमअंक होना चाहिये। तो आय श्रेष्ठ आता है। शिल्पशास्त्रमें शिल्पिओं गज अर्थात्–हस्त और उसके २४ आँगुल प्रमाणका मानते हैं, फूटकी प्रथाको नहीं स्वीकारते

हैं। क्योंकि उसके गणितकी रचना इस प्रकार हुई है। सामान्यतया दो फूटका एक गज होता है।

२. यह गणित कहाँसे मिलायें, यह कहा है–मंदिर के बाहर के भागमें मिलानेके लिये कहा है। व्यवहार दृष्टिसे कुछ ठीक करने के लिये अंदर भी गणित मिलानेकी कोशिष करता है। जब प्रतिपक्ष कहता है कि बाहरके विभाग कर उसके विभाग पर ओसार–दिवार रखते अंदर जो माप रहा उसे वहाँ गणित मिलानेकी जरूरत नहीं है, चाहे वह राक्षस गणका नक्षत्र क्यों न हो? इस पक्षकी बात दुर्लक्ष्य करने योग्य नहीं है। परन्तु जो वहाँ भी गणित मिलाया जाय तो अच्छा ऐसा मेरा मत है।

३ **नक्षत्रके** विषयमें शिल्पियों देवमंदिरको देवगण, गृहोंको मनुष्यगण या यवनको राक्षसगणना नक्षत्र सामान्यतया मिलाते हैं। वह परंपरा है लेकिन ज्योतिषके नियमानुसार देवोंका जन्म नक्षत्र राक्षसगण हो वहाँ देवमंदिरमें राक्षस गण नक्षत्र मिलानेका आग्रह कअी लोग रखते हैं। शिल्पियोंकी परंपरा जो आगे कही गई है वह है। देवमंदिरमें देवगण ओर मंडपों या चोकीको मनुष्य गण या देवगण नक्षत्र मिलाते हैं। शिल्पियोंकी परंपराका समर्थन करता हुआ अेक पाठ है। परंतु उसे द्वीअर्थी मानते हैं।

४ **शिलास्थापन**–मध्यकी कुर्मशिलाके नौ खंडोंमें नौ चिह्नों करनेमें विश्वकर्माके सभी ग्रँथों अेक मत हैं। लेकिन मध्यकालके अेक सूत्रधार वीरपालने 'प्रासादतिलक' ग्रंथमें इन चिह्नोंको अग्निकोणके क्रमसे करनेके लिये स्पष्टरूपसे कहा है। इस विषयमें शिल्पी वर्गमें चर्चा है। लेकिन अब तक कोई दुराग्रह नहीं है इस बात आनंदकी हय।

५ **शिलास्थापन** कहाँ करना? उस विषयमें सामान्य मतसे गर्भगृहके बिच खडे मध्यगर्भमें शिलास्थापन करना। परंतु देवता पद स्थापनके हिसाबसे जहाँ देव स्थापन करना हो उसके नीचे शिला स्थापन करना चाहिये। वह सूत्र अिस दीपार्णव और ज्ञानरत्नकोषमें है। और नाभि खडी करनेकी प्रथा है। ग्रंथोंमें उसका स्पष्टीकरण नहीं है। और मध्यकी कूर्मशिलाका प्रमाण भी कहते हैं। परंतु फिरती अष्टशिलाओंका प्रमाण नहीं दिया हुआ है। वहाँ शिल्पियों प्रथाको अनुसरते हैं। जहाँ शास्त्राधार न हो वहाँ शिल्पियों प्रथानुसार वर्ते यह स्वाभाविक है। कूर्मशिलाके कहे हुअे मानके अनुसार लम्बी और उससे आधी चौडी अष्टशिला रखनेकी परंपरा है।

६ **जगति विषयमें**—प्रासादकी सीमा मर्यादा—शिल्पियों उसका सामान्य अर्थ दुर्ग भी मानते हैं । लेकिन प्रासादकी चारों और देवकुलिकाओं सहस्रलिंगकी या जिनायतनकी या ६४ देव्यायतनकी या पंचायतन जहाँ हो वहाँ विशाल जगती विस्तारसे करनी होती है । जगतीका प्रासादकी भूमिमर्यादा मानकर सामान्य ओटा—जगती ऊँची कर उस पर भीट पीठका प्रारंभ होता है । परन्तु स्थान मान और शहरमें भूमि संकोचके कारण वैसे प्रकारकी जगती न हो तो वह दोष नहीं है । या तो विशाल भूमि पर मध्यमें प्रासादका निर्माण किया जाता है । वहाँ उसकी विशालताको ही जगती माननेका कारण है ।

७. **मीट**—पर पीठके विषयमें प्रासादके प्रमाणसे महापीठ या कामदपीठ शास्त्रमान प्रमाणित बनाना कहा है । परंतु स्थानमान और कभी बार द्रव्यानुसारके हेतुका आश्रय जानकर पीठ प्रमाणसे कम करनेका कहा है । तब कभी शिल्पिओं गहरे अभ्यासके अभावसे विरोध करते हैं । परन्तु कहे हुअे मानसे पीठ कम करनेके प्रमाण दीपार्णव—क्षीरार्णव और 'ज्ञान रत्न कोषादि' ग्रंथोंमें स्पष्ट दिया है ।

अर्ध भागे त्रिभागेवा पीठं चैव नियोजयेत् ।
स्थानमानाश्रयं ज्ञात्वा तत्र दोषो न विद्यते ॥

कहे हुअे मानसे आधा या तीसरे भाग उदय प्रमाण पीठ करनेमें दोष नहीं जानना । मुख्य मंदिरका महापीठ या कामदपीठ और फिरती देवकुलिकाओंको १०८ शिवायतन, ६४ शक्त्याय २४ विष्णायतन् या २४—५२—७२—८४ या १०८ जिनायतनोंको कर्णपीठ कम करनेमें दोष नहीं है ।

८ **प्रासाद्**—उदयमानके विषयमें शिल्पीवर्गमें सोलहवीं सदीके बादके मंदिरोंमें कुछ छूट लेकर उदयमान अधिक करने लगे । क्योंकि पंद्रहवीं सदीके बाद स्तंभके अंतरके बीच कमानों बनानेकी प्रथा शुरु हुई । अिससे द्वारकी शाखाके समसूत्रमें स्तंभको रखते थे । ऐसे रखकर पद (दो स्तंभोके बीचका अंतर) के अर्ध भागके बराबर उदय—उभणी कमानके कारण ठेकीको चढ़ाकर रखते हैं । अिससे उदयमान बढ़ जाता है । परंतु अिस विषयमें शिल्पियोंमें वादविवाद नहीं है । अैसे समयमें स्तंभको कितना ऊँचा गिना जाये यह प्रश्न उपस्थित होता है । वस्तुतः भरणेके तल पर्यंतका स्तंभ गिना जाय, कभ उदय—उभणीमें कमान करने जाते तब द्वार वाढसे स्तंभको छोटा कर उस पर काठासरां चडाके कमान करते हैं । तब उसे 'पाय चागलका दोष अज्ञानतासे कहते हैं । कमान शिल्पमें कहाँ कही गई है ? तब वह 'पायचा' शब्द शिल्पग्रंथोंमें कहाँसे निकाला ? अैसे

बीना समझसे विवाद (कम अभ्यासीओंके द्वारा) उठाये जाते हैं। यह निरी अज्ञानता है। प्रतोल्यामें और मेघनाद मंडपमें तोरण करते हैं। तब स्तंभ पर ठेकी=गडदी चडानेका कहा है।

९ द्वारमान—इस विषयमें खास वादविवाद नहीं है। सामान्यतया निरंधार प्रासादोंमें ५'-५" या ६'-१" या ६'-९" का द्वारोदय अपने हिसाबसे आयमेल करके रखनेकी प्रथा है। परन्तु विस्तारमान विषयमें बर्तमानकालके यजमानोंका आग्रह द्वारविस्तार अधिक रखनेके लिये होता है। यद्यपि यथा योग्य रीतसे विस्तार हो सके इतना रखना। शास्त्रदृष्टिसे थोडी छूट लेकर करे, परंतु यजमान तो गर्भगृहमें वाहनको ले जाना हो वैसा दुराग्रह करे तब शिल्पियोंको शास्त्रीय दृष्टिकी मर्यादासे थोडा बडा करना, परंतु मर्यादाका विशेष लोप न करना चाहिये।

१० द्वार—शाखाके नीचे कुंभीवाढको तिलकडे कहे हैं। उनसे अंगुल डेढ अंगुज उदम्बर—उंबर नीचा होता है। मंडोवरके थरवाले कुंभावाढसे उंबर अर्ध भागमें, तीसरे भागमें या चौथे भागमें नीचे उतारनेका प्रमाण देते हैं। तो कओी शिल्पियों उंबर नीचे उतारनेके साथ तिलकडे और मंडपकी कुंभीओं भी उतारेने मतके हैं। यह वादविवाद उग्र होकर चलता है। ओक पक्ष मानता है कि जो "कुंभके न सभा कुंभी" यह प्रमाण है तो तिलकडों या कुंभीओंको नीचे नहीं उतार सकते हैं। तिलकडे कुंभा कुंभीको बराबर रख सिर्फ उंबर ही खोडना—नीचे उतारनेका प्रमाण कहा है। इस तरह उंबर नीचे उतारना जिससे दर्शनार्थीओंको आने जाने की सानुकूलता रहे।

"उदम्बरान्ते हृते कुंभि स्तम्भ च पूर्ववत्।
सांधारे च निरंधारे कुंभि कृत्वा उदरम्वम्॥

इस श्लोकका अर्थ—उंबर ही फक्त खोडनाकुम्भी और स्तंभकको तो पूर्ववत् रखना। लेकिन प्रतिपक्ष "उदंबर हृते कुंभिः" का अर्थ उंबर और कुम्भी खोडना—नीचे उतारना ऐसा अर्थ करते हैं। यह वादविवाद जो मध्यस्थ दृष्टिसे देखा जाय तो सांधार प्रासादमें उंबर और कुम्भी नीचे उतारे हुए पुराने कामोंमें देखते हैं। परन्तु निरंधार प्रासादमें उंबरके साथ कुंभी खोडनेका बराबर नहीं है। तो भी हम यह नहीं कह सकते कि ये दोनों पक्ष झूठे हैं।

११. मंडोवर पर विभागमें—शास्त्रकारोंने कुम्भा कलश छज्जे तकके बारह, तेरह थरों कहे हैं। परंतु अल्पव्ययके कारण यजमान कम थर करावे उसमें दोष नहीं है। स्तंभ वाढ—समसूत्र जंघा टोच पर होती है और सामान्य रीतसे

द्वार–वाढ समसूत्र भी स्तंभ बराबर होता है। परन्तु जंघामें भद्रके गवाक्षों द्वार वाढसे नीचे होते हैं। ऐसे समयमें द्वार और गवाक्ष वाढ समसूत्र में होनेका आग्रह न रखना चाहिये। अठारहवीं सदीमें बहुतमें मन्दिर गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, राजस्थान वगैरह स्थलों पर हुए तीन पदोंका गर्भगृह पर तीन शिखरों और बाह्य मंडोवरके घाटके बदले कडाउ दाबडी की सादी दिवारोंकी प्रथा शूरू हुई है। यहां समाजने यह शैलीका इस कालमें स्वीकार किया वह सामुहिक रीतसे दोष मान स्विकार किया और हजारो मन्दिरों यह शैलीका हुआ तब वहाँ दोष मानना न चाहिये ऐसा मेरा मंतव्य है।

१२. **देवता–दृष्टिपद**–विषयमें भिन्न भिन्न ग्रंथकारोंमें मतभेद है, परन्तु सर्वसाधारण द्वारोदयके आठ भागके सातवें भागमें फिर उसके आठ भाग कर सातवें भागमें देवदृष्टि त्रिपुरुष और जिनकी–मिलाने के लिये कहा है। अर्थात् द्वारोदयके ६४ भागमें पचपन में भागमें दृष्टि मिलाना। इस प्रथाको शिल्पीवर्ग स्वीकारता है। आये हुए सूत्रमानसे दृष्टि ऊँची या नीची जरा भी न रखने के लिये शिल्पग्रंथोंमें कहा है। कई जैन विद्वानों "सप्तमा सप्तमे भागे" का अर्थ करते हैं कि सातवें के आठवें, भागकर सातवें भागमें अर्थात् छः और सात के बीच दृष्टि आय मेलमें रखना। परन्तु शिल्पीवर्ग सातवें भागमें ही भागपर और नहि कि नीचे–आय मेल–प्रासाद मंडनकार कहते हैं। परन्तु विश्वकर्मा के कोई भी प्राचीन ग्रंथमें आय मेल पर दृष्टि रखनेके लिये नहीं कहा है। वृक्षार्णव और क्षीरार्णव आदि ग्रंथोंमें गजांश विभागमें ही दृष्टिसूत्र रखना। एक बालके अग्रभाग जितना भी फर्क नहीं रखना। यह मतमतान्तर शिल्पियों और जैन विद्वानों के बीचका सामान्य है। गजांशका अर्थ सातमा हि होता है नहि के गजाय।

उपरोक्त मतमतान्तर तो ईंचके आठवें भागके बराबर है। परन्तु ठक्कुर-फेरुके मतसे (५′–५″ द्वारोदयके हिसाबसे) १८ अंगुल नीची, दिगम्बराचार्य वसुनन्दीके मतसे सोलह अंगुल, 'क्षीरार्णव' 'दीपार्णव' के दूसरे मतसे २२ अंगुल दृष्टि उत्तरंगसे नीची रखनेके लिये कहते हैं। ऐसे बडे अंतर ग्रंथकारों के मतमतान्तरमें कौनसा मत स्वीकारना ? यह प्रश्न होता है, यद्यपि वर्तमान में सर्वमान्य ६४ भागके पचपनमें भागका मत अधिक व्यवहारमें है। पृथक् पृथक् देवदेवीकी दृष्टि स्थिर भिन्न भिन्न करके प्रतिष्ठाके समय पर वादविवाद होनेसे पहले उसका निर्णय कुशल शिल्पियोंको ले लेना चाहिये। अब जो कोई पुराने मन्दिरोंमें जो दृष्टि नीची हो तो तब शिल्पियो धीरज रखकर पूर्वाचार्यके कोई ग्रंथका मत देखकर अपना अभिप्राय देना चाहिये।

१३. **देवता पद स्थापन के**–संबंधमें भिन्न भिन्न ग्रंथकारोने पृथक् पृथक् विभाग प्रतिमा स्थापनके कहते हैं। यद्यपि उसमें कमज्यादा तफावत है। प्रासाद तिलक, और विवेकविलास, गर्भगृहार्ध के पीछलेमें पाँचवें के तीसरे भागमें कृष्ण, जिन और सूर्यकी मूर्ति स्थापन करनेके लिये कहा है। अलबत्त, शास्त्राधार सच्चा है, परन्तु जिन तीर्थंकर के बारेमें वह अपबादरूप हो वैसा पुराने उदाहरणोंसे लगता है। अन्य देवोंको तो पधराई हुई मूर्तिके पीछे प्रदक्षिणा करने की प्रथा है। वह जो कहे हुए विभागमें पधराई हुई हो तो प्रदक्षिणा होस के तो जैनोंमें चातुर्मुख के सिवा कहीं भी जिनप्रभु के गर्भगृह के अंदर प्रदक्षिणा होती हो वैसा देखनेमें नहीं आता है। इससे जिन प्रभुकी पिछली दिवार से परिकर जितनी जगह रखकर पधराई हुई देखनेमें आती है। जो कि पद विभाग के अनुसार प्रतिमा बिठानेका आग्रह रखनेवाले शिल्पीका मंतव्य झूठ है ऐसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु वह व्यवहारमें नहीं है। गर्भगृहके अर्धमें $\frac{1}{4}$ भागमें सिंहासनपीठ रखे जाते हैं। 'प्रासाद मण्डन' के एक दूसरे प्रमाणमें—

'पटाऽधो यक्ष भूताद्या—पटाग्रे सर्वदेवता'

इस सूत्रको जिन प्रभुके बारेमें शिल्पियोंने स्वीकारा हो ऐसा लगता है।

१४. **शिखर का विषय**–गहन है। उसे अधिक अंडकों या कर्म उरूशृङ्ग प्रत्यागादि वगैरह चढ़ानेके होते हैं। अनुभवके रहित सूत्रोंसे पकड़कर रखनेवाले और दुसरोंकी क्षति निकालते हैं यह अयोग्य हैं। 'समदल' उपांगवाले प्रासाद के शिखरमें शिल्पिओंको कम तकलीफ पड़ती है। परन्तु 'हस्तांगुल' उपांगवाले प्रासादके शिखरमें तो शिल्पीकी सचमुच कसौटी होती है। उसकी कदर करने के बदले अल्पज्ञों क्षति निकालते हैं, यह दुःसह लगता है। अठारहवीं सदीमें हुए तीन पदपर तीन शिखरोंके पायचे–मूलकर्ण गर्भगृहके पाटके समसूत्रमें मिलाने की शिल्पियों की प्रथा उस समयमें थी। हस्तांगुल शिखरमें शृङ्गोंके निर्गम ऊरू शृङ्गों पर शृङ्ग मिलानेमें शिल्पिओंको मुश्केली आती है। यह सब कठिनाईयां बुद्धिमान शिल्पि मिलाके सुन्दर शिखर बनाते हैं।

१५. **शिखरके ध्वजादंड को** धारण करता हुआ ध्वजाधारध्वजाधार–कलाबा शिखरकी खड़ी मूल रेखाके उदयके छहवें भागमें उसके $\frac{1}{8}$ हीन करके उस स्थानमें करनेके लिये कहते हैं। ध्वजाधार का अर्थ ध्वजादंडको धारण करता आधाररूप कलाबा होता है, यह मेरा मंतव्य है। ऐसा बहुतसे पुराने शिखरोंमें पीछे होता है। किसी स्थानपर ध्वजापुरुष की आकृति भी देखनेमें आती है। इससे ये दोनों मतका परस्पर खंडन करनेवालों का वाद अयोग्य है। परंतु

शिखरके स्कंधसे नीचे ध्वजाधार कलाबा तो होना ही चाहिये। यह निःशंकता से मान्य करना ही चाहिये, उसमें वादको स्थान नहीं है। जो वहाँ दुराग्रह किया जाय तो वह अयोग्य है। शास्त्राधारको मानना ही चाहिये। शास्त्राधार हो वहाँ पुराने किसी स्थानके उदाहरण को प्रमाण नहीं माना जा सकता।

१६. **नागरादि शिल्पमें** शिखरके स्कंधके छः भाग विस्तारसे सात भागका आमलसारा विस्तार करनेके लिये कहा हैं। जो ध्वजाधार शिखरकी खड़ी मूल रेखाके उदयके $\frac{3}{4}$ भागपर स्कंधके नीचे रखनेके लिये कहा है। इस ओलंभेको देखनेसे आमलसारा के वृत्तसे ध्वजादंड बाहर निकल जाय यह स्पष्ट है। इससे ध्वजादंडको स्थिर रखने के तीन स्थानक ध्वजाधार–दूसरा स्कंध (बांधणाके पास) एक लाग-छीद्र पाडकर रखना। तीसरे आमलसारा की बाहर कलावा का घाट करके उसमें छिद्र करके उसमें ध्वजादंड खडा करनेसे कैसे भी झंझावातोंमें वह स्थिर खड़ा रह सके, यह रीत शास्त्राधार है।

आमलसारा में छिद्र करके ध्वजादंड खड़ा करनेकी प्रथा देढसौ–दोसौ सालसे है, यह बराबर नहीं है। 'क्षीरार्णव' अ. १३२ के श्लोक ११ से २४ तकमें इस सरवेध अर्थात् मस्तकमें वेध कहकर बहुतसे दोष दुष्ट फलदाता कहे हैं और स्कंध-बांध के ऊपर ध्वजदंड गाड़ने को भी वैसा ही वेधदोष कहा गया है।

ध्वजादंडकी लंबाईका जो मान कहा है वह ध्वजाधारमें बराबर से गिना जा सकता है, परंतु जो आमलसारा में ध्वजादंड गाढ़ा जाय तो उसे साल रखना पडे और वह शिखरके प्रमाणसे बहुत ऊँचा दंड होवे! यह झूठा है। शास्त्रोंमें ध्वजादण्ड को साल रखनेके लिये कहा नहीं है। आमलसारा में उसे गाड़ना होता तो सालका निर्देश उसमें होता।

आमलसारा में ध्वजादण्ड स्थापन करने का दुराग्रह रखनेवाले शिल्पियों जो पुराना काम हुआ हो उसका उदाहरण देकर अपने मतका समर्थन करते हैं परंतु यहाँ शास्त्राधारके स्थान प्रणाणसे अन्य मार्ग असत्य है।

१७. **ध्वजादण्डके साथ स्तंभिका खडी करनेके लिये** कहते हैं। अपराजित कार और क्षीरार्णवकारने स्तंभिकाको कितनी ऊँची करना? कैसी करना? उसके शिरपर क्या करना? वगैरह विगतसे प्रमाण दिया हुआ है और स्तंभिका को दंडके साथ गज गजपर मजबूत त्रांबेकी पट्टीयां बाँधों, बाँधनेके लिये कहा है। आमलसारेमें दंड रखनेके मतावलंबीओं स्तंभिकाको निरर्थक मानते हैं। दंडको

स्थिर करनेमें वह वह बल नहीं दे सकता है। ऐसी दलीलें करके स्तंभिका की अगत्यको नहीं स्वीकारते हैं। उपरोक्त शास्त्रीय पाठोंके मतका समर्थन करनेवालों के बुजर्गोंने डेढसौ साल पहले जो किया हो उसके प्रमाणरूप देते हैं। परंतु सज्जनोंके लक्ष्यमें सत्य हकीकत समजमें आवे तब वे आगेकी क्षतियों को सुधारें और सत्य मार्गका अवलंबन करें।

१८. **प्रासाद पुरुष** की सुवर्णमूर्ति आमलसारामें स्थापन करनेके लिये कहा है। उसके बायें हाथमें तीन शिखाओंवाली ध्वजापताका धारण करने के लिये कहा है। उसे कई शिल्पीओं त्रिपताकका अर्थ पताका-ध्वजाके बदले मुद्रा मानते हैं। परंतु सामान्यतया शिल्पीओं पताकाका अर्थ ध्वजा करके वैसी आकृति की सुवर्णमूर्ति जो प्रासादके प्राणरूप है उसे स्थापन करते हैं।

१९. **पताका-ध्वजा कैसी करना ?** उस विषयमें शिल्पग्रंथोंमें बहुत स्पष्टता से कहा है कि पताका-ध्वजादंड के बराबर लम्बी और उसके $\frac{1}{?}$ भागकी चौडी चोरस करना। लटकते सिरे को तीन या पाँच शिखाग्र करना! कई ब्राह्मण विद्वानों पताका त्रिकोण होती है और पताका दंड के उदयमें रखना वैसी मान्यता रखते हैं। परंतु उपरोक्त रीतसे शिल्पशास्त्रों के आधारको मान्य रखा जाय तो त्रिकोण पताका का स्थान नहीं रहता है। वे अन्य अशास्त्रीय रीतसे किये हुए परंपरागत पताकाओं के उदाहरण देते हैं, परंतु वह सत्य नहीं है। विद्वान भूदेवों को उनके मतानुसारका शास्त्रीय पाठ प्रासादकी पताकाका दिखाने का आग्रह करनेसे उन्होंने यज्ञयागादि क्रियाके या उसके मंडप परकी ध्वजाओं का पाठ बताया। अमुक दिशामें अमुक वर्णकी त्रिकोण ध्वजा का प्रमाण है, परन्तु प्रासादके शिखरको वह सूत्र लागु नहीं होता है, तो भी किसी विद्वान आचार्य इस विषयमें प्रकाश देंगे वैसी आशा हम रखते हैं।

२०. **राजस्थानमें शिखर पर** पाषाणके कलशके स्थानपर तांबेके या सुवर्ण के पतरेका कलश पोला बनाकर उसमें घी भरते हैं, परन्तु सिर्फ पतरेका कलश कर चढानेकी रीत झूठी है। राजस्थानमें बहुत करके इस प्रथाको मानने वाले विशेष हैं। पतरेके कलशका विधान झूठा है। पाषाणका ही कलश करके उसका विधिसर अभिषेक पूजन करके रखना चाहिये। बादमें उसके पर सुवर्णके पतरेका कलश चढानेमें हरकत नहीं है। ध्वजादंड काष्टका ही होना चाहिये-मगर अब पाईप दण्ड बनाते हैं, ये ठीक है लेकिन पाईपके अंदर सळंग एक काष्टका तो दण्ड रखना ही चाहिये-अन्यथा गलत है!

२१. **अठारहवीं सदीमें मूर्तिभंजक** विधर्मियोंका भय दूर होनेसे गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, राजस्थान वगैरहके जैन संघोंने भयसे भंडारी हुई हजारों मूर्तियों को बाहर निकाला इससे अधिक मूर्तिओं को बिठाया जा सके वैसे तीन पदके गर्भगृह करनेकी आवश्यकता समयानुकूल उत्पन्न हुई। प्रत्येक गाँवके जैन संघने वैसे मन्दिरों पर तीन शिखरों बनवानेका आग्रह रखा! उस कालके शिल्पियों को समयानुकूल वर्तन करने पर बाध्य होना पड़ा। इससे अठारहवीं सदीसे ऐसे तीन पदपर तीन शिखरोंवाले हजारों मन्दिरों हरेक गाँवमें हुए। पालीताणा शत्रुंजय पर उस कालमें हुई ट्रैंकोंके कई सौ मन्दिरों भी ऐसे ही प्रकारके हुए हैं। सामुहिक सर्वमान्य रीतसे इस अपवादको स्वीकारना पडा, परन्तु वह झूठा है यह कहते पहले सोचना चाहिये। वर्तमानकालमें ऐसे तीन पदवाले गर्भगृह करनेके हो तब अभी-चाहे एक शिखर करे या पाँच पदपर तीन करे परन्तु डेढसे-सौ साल पहलेके ऐसे मन्दिरोंको दोषित नहीं कहना चाहिये।

कईबार मूलपाठोंका अर्थ करनेमें मतभेद होता है। कईबार मूलपाठ और क्रियाकी भिन्नतासे ऐसा होता है। परन्तु विद्वान पुरुषों अपने मतका दुराग्रह नहीं रखते हैं। किसी भी कालमें क्रियाका भिन्न अर्थ करके कार्य हुआ हो ऐसा हो सकता है। तब वे सब मन्दिर झूठे हैं, यह कहना अतिशयोक्ति है, सोच समजसे निर्णय करना।

क्षीरार्णव

क्षीरार्णव ग्रंथके संशोधन के लिये हमारे हस्तलिखित ग्रंथसंग्रह की करीब छ-सात प्रतियाँ वि. सं. १८१० से १९०३ तकके समयमें लिखाई हुई है और रोयल एशियाटिक सोसायटी की बॉम्बे ब्रांचकी लाईब्रेरीकी पुस्तककी शके १८१८ की प्रत, (३) बरोड़ा प्राच्य विद्यामन्दिर की प्रत परसे लिखी हुई कॉपी और गुजरातके शिल्पी श्री नटवरलाल मो. सोमपुरा की और वि. सं. १७१० के अंदाजकी प्रत-इन सब प्रतोंका मिलान करके हो सके इतना क्रमबद्ध संशोधन करनेका मैंने प्रयत्न किया है। सौराष्ट्रके सोमपुरा शिल्पीयों की कुछ प्रतें मैंने पहले प्राप्त की थीं, वे मेरे ग्रंथसंग्रहसे अधिक नहीं थी, और बहुत कम भिन्न थी और १०१ अध्यायसे १२० वें अध्यायके ९३ वें श्लोक तककी अपूर्ण प्रतें प्राप्त हुई थीं, कुछ तो इससे भी कम अध्यायोंवाली प्रतें भी मिली थी।

मूल ग्रंथके आगेके ९८ अट्ठानवें अध्यायों लुप्त हैं और अध्याय १२० के बादका ग्रंथ-विस्तार कितना है यह नहीं प्राप्त हुआ। गुजरात सौराष्ट्रकी प्रतों १०१ अध्यायके कूर्म शिला प्रकरण से शुरू होती है परन्तु रोयल एशियाटिक

सोसायटी की पुस्तकोंमेंसे मुझे आगेका दो अध्याय, गणित विषयका और जगति लक्षणका प्राप्त हुई। कहते हैं कि मेवाड राजस्थानमें कोई सोमपुरा शिल्पी के पास ज्यादा विस्तारवाली प्रत हैं। दुर्भाग्यवशात् उसको प्राप्त नहीं कर सका हूँ।

संशोधन करते प्राप्त हुई प्रतोंकी (१) अशुद्धता (२) कुछ अध्यायोंमें अस्तव्यस्तता (३) एक विषय अपूर्ण छोड़कर दूसरे विषयोंके अशुद्ध पाठों आना (४) अध्याय ११२ में सिर्फ तीन ही अशुद्ध श्लोकमें दिया हुआ है, जिसका कुछ अर्थ प्राप्त नहीं होता है। (५) और स्तंभ, कुंभी, द्वार, शंखोद्वार–गर्भगृहके प्रमाण, स्वरूप, मंडोवरके साथ स्तंभके छोड़का समन्वय इन विषयोंकी प्राप्त हुई प्रतोंके अध्याय १०१, १११, ११७ और ११५ में आगे–पीछे या कम–ज्यादा या बारबार पाठो आता है, पुरानी शुद्ध प्रतोंके अभावसे ऐसी स्थितिमें ग्रंथको क्रमबद्ध करने की छुट लेनी ही पड़ती है। इसमें मैं तो क्या निष्णात और बड़े विद्वान भी क्या कर सकें? वैसे समय सुज्ञ विद्वानोंका कर्तव्य छूट देनेका है। अनिच्छासे ऐसी छूटके लिये शिल्पज्ञाता विद्वानोंकी क्षमा चाहता हूँ।

अगर इस ग्रंथको अपूर्ण रखूँ? क्षीरार्णवकी प्राप्त प्रतों इतनी अशुद्ध हैं कि कितने स्थानपर उनको मूल स्वरूपमें रखनेका कार्य अर्थहीन और मुश्किल था! तो भी उसको क्रमबद्ध करने का प्रयास किया है। तो भी मेरे अल्प प्रयत्नोंसे मैं शिल्पी समाज या उसके रसज्ञ विद्वान समाजके आगे कुछ इतना तो रखनेके लिये सौभाग्यशाली हुआ हूँ। इसकी कद्र होगी तो मुझे आत्म-संतोष मिलेगा।

निरन्धार प्रासादोंकी शैलीके नियमों शिल्पीवर्गमें कई लोगोंसे परम्परासे रूढ हो गये हैं। पिताके कार्यका अनुकरण उसका परिवार करे, इस तरहसे सैंकडों वर्षोंसे हुआ है। इससे शिल्पीवर्ग में कुछ निरक्षरता आने लगी। हस्तलिखित ग्रन्थोंकी अगत्यता कम मालूम समजनेसे, और ग्रंथकी प्रतोंमें अशुद्धि बढ़ती जानेसे और ग्रंथों–पिटारों के आभूषणरूप मिलकत गिने जाने लगे इससे पद्धतीपूर्वक अभ्यास बहुत अल्प सहस्रांश में होता था। विद्याके मर्म विस्मृत होते चले। सभाग्यसे सिर्फ सक्रिय ज्ञान रहा है। इसीलिये भारत का शिल्पीवर्ग अभी कुछ सजीव है ऐसा दिखता है।

निरंधार प्रासादों परंपरासे–रूढिसे शिल्पयों बाँधते रहे परन्तु भ्रमवाले सांधार महाप्रासादोंके स्थापत्यका अति दुर्घट ज्ञान और क्रिया छः सौ, सात सौ, सालसे विधर्मी राज्यभयसे बँधाये नहीं गये। इससे वैसे प्रकारका ज्ञान विस्मृत होता गया। वर्तमानमें श्री सोमनाथका सभ्रम महाप्रासादका निर्माण मेरे नेतृत्व

में हुआ। उसके कार्यारंभमें वैसे शिल्प साहित्यकी बहुत अगत्य मालुम हुई। सद्‌भाग्यसे हमारे भारद्वाज कुल परंपरामें ऐसे प्रकारके सांधार महाप्रासाद के विषयका ज्ञान–साहित्य श्री विश्वकर्मा की कृपासे रक्षित रहा था। इससे वैसा कठिन शिल्प-साहित्यको समझनेके लिये बहुत सरलता रही।

क्षीरार्णव ग्रंथमें निरंधार प्रासादोंके यम-नियमों हैं लेकिन विशेष कर वह सांधार महाप्रासादके विषय अधिक उपयोगी साहित्य है। सामान्य शिल्पी-वर्गको उपयोगी अध्यायों में थोड़ी अशुद्धि थी परन्तु जो प्रयोगमें कम है वैसे सांधार महाप्रासादोंके अध्याय बहुत अशुद्धियोंसे भरे हुए थे। इससे ग्रंथशुद्धिका कार्य कठिन बना था।

वृक्षार्णव ग्रंथ भी जितना छुटक छुटक अध्यायों प्राप्त हुआ हैं उसमें महा-प्रासादोंकी रचनाके पाठों, उनके यम नियमों दिये हुए हैं। जैसा कि ऊपर कहा है वह ग्रंथ व्यवहारमें वर्तमान कालमें न होनेसे उनकी प्रतों बहुत अल्प प्राप्त हुई हैं। यद्यपि वह ग्रंथ भी संपूर्ण मिलता नहीं है। उसकी स्थिति भी क्षीरार्णव जैसी है। उसका संशोधन मैंने यथामति प्रयत्नसे करीब तीस सालसे अनुवाद के साथ किया था परन्तु दूसरी प्रतोंके अभावमें उसका मिलान न हो सका था। वहाँ तक उसमें क्षतियाँ रहनेका भय बहुत रहता था। सुयोगसे मारवाड़ पालीकी और वि–सं. १७६८ की एक प्रति और पाटणकी छुटीछवाइ पाठोंवाकी प्रत उपरांत रोयल एशियाटीक सोसायटीकी प्रतके आधारपर अभी उसका संतोषप्रद संशोधन कर रहा हूँ। यह वृक्षार्णव–ग्रंथके प्रकाशनके लिये सुज्ञ विद्वानों और पुरातत्त्वज्ञों मुझपर स्नेहभावसे दबाव डाल रहे थे तो सद्‌भाग्यसे गुजरात की एक बड़ी मानवंती मातबर संस्था की तरफसे प्रकाशन के लिये कार्य होनेकी संभावना है। वृक्षार्णव ग्रन्थ अद्‌भुत है।

वृक्षार्णव ग्रन्थके संशोधनमें बहुत मुश्किल हैं, यह कार्य कठिन है तो भी उसको पूरा करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ, जिसके अंग्रेजी संस्करणमें मेरे स्नेही श्री मधुसुदन अ. ढाकी मुझे सहायक हो रहे हैं।

शिल्प स्थापत्यका विषय हमारे कुल परम्परा का है। इससे परिवारिक संस्कार वारसेमें मिले यह स्वाभाविक है। कैलासवासी पूज्य पिताश्री और मेरे दो स्व. वडील बन्धुओं त्र्यंबकलालभाई और श्री भाईशंकरभाईने विद्या के संस्कार सींचे, मार्गदर्शन दिया। उनका ऋण मुझसे अदा नहीं हो सकता है। कनिष्ठ वडीलबंधु श्री रेवाशंकरभाई हमारी समस्त ज्ञातिमें ५० साल पहले प्रथम ग्रेज्युएट हुए थे। वे मेरे ग्रन्थ-प्रकाशनमें श्रम और अनुभवका लाभ हमेशां देकर

उपकृत कर रहे हैं। वडिलोंके ऋण स्वीकारको नोंध लेते मुझे आनन्द होता है। उनकी शुभाशिषों की कृपावर्षा हमेशां मेरेपर होती रहो ऐसी जगन्नियंता श्रीहरिके प्रति मेरी नम्र प्रार्थना है।

सुप्रसिद्ध श्री सोमनाथ महाप्रासादका निर्माण मेरे हाथोंमें होनेसे उसके ट्रस्टके कामकाजके बारेमें राजप्रमुख श्री नामदार स्व. जामसाहब, सर दिग्विजय सिंहजी साहब और महाराज्ञी वर्तमान राजमाता नामदार गुलाबकुंवरबा साहेबाके परिचय में अवारनवार आनेका प्रसंग होता था। वे नामदार शिल्प के प्राचीन अमूल्य विद्या और साहित्य के प्रकाशन के लिये मुझे प्रोत्साहन देते थे और वर्तमान नामदार राजमाता साहेबा शिल्पका अभ्यासक्रम योजकर उसका क्रियात्मक ज्ञान मिले वैसी पाठशालएँ स्थापकर शिल्पी विद्यार्थीओंको तैयार करनेके लिये मुझपर बहुत दबाव डाल रहे हैं। विद्यार्थीका सर्वप्रकार के आर्थिक बोझा उठाने की व्यवस्था भी कर रही हैं। यह उनका विद्या-कलाके प्रति प्रेम हैं। इस ग्रन्थ-प्रकाशनके लिये मैं उन नामदारोंका ऋणी हूँ।

गुर्जर साहित्यकी अस्मिताके प्रकटकर्ता उत्तर प्रदेशके भूतपूर्व गवर्नर श्रीमान् कन्हैयालाल मा. मुन्शीजी जो हालमें सोमनाथ ट्रस्टके प्रमुखश्री हैं। वे मेरे प्रति सदा सद्भाव बता रहे हैं, उन्होंने ग्रंथका पुरोवाचन लीखनेकी कृपा की है, इसलिये मैं उनका उपकृत हूँ।

श्रीमान् श्रीगोपालजी, नेवटियाजी, शेठजी, शिल्प-स्थापत्य कला प्रति और हमारे परिवार प्रति हमेशां प्रेम और आदर रखते हैं। उन्हींसे श्री बिरला परिवारके संसर्गमें आनेका प्रसंग रहता है। शिल्प-स्थापत्य कला साहित्य के प्रकाशन के लिये हमेशां प्रोत्साहन देते रहते हैं।

प्रीन्स ऑफ वेल्स म्युझियमके डायरेक्टर, पुरातत्त्वके प्रखर विद्वान पुरातत्वज्ञ डॉ. मोतीचन्द्र भाईसाहबने समय और श्रम लेकर यह ग्रन्थकी भूमिका लिखी है इसलिये मैं उनका हृदयपूर्वक आभार मानता हूँ।

क्षीरार्णव ग्रंथके संशोधन कार्यमें व्याकरण शुद्धिकी क्षतियाँ विद्वानों को मालूम पड़ेगी लेकिन वास्तुशास्त्र के ग्रंथोंकी भाषा ही वैसी निराली है। मूल संस्कृतमेंसे प्राकृत, मागधी, पाली वगैरह भाषाएँ उत्पन्न हुई। इस तरह वास्तु-शास्त्रके ग्रन्थोंकी भाषा ही वैसी है। एक विद्वानने संस्कृत पदमें कहा है,

ज्योतिषे तन्त्रशास्त्रे य विवादे वैद्यशिल्पके
अर्थमात्रं तु गृहणीयान्नात्र शब्दं विचारयेत्।

"ज्योतिष, तंत्रशास्त्र, विवाद, आयुर्वेद और शिल्प ग्रन्थोंमें उनकी भाषाके शब्दोंका बहुत विचार न करते उनके भावार्थको ग्रहण करना।" सुज्ञ पुरुषों व्याकरणादि क्षतियोंके प्रति उपेक्षा कर हंसवृत्ति धारण करेंगे ऐसी मेरी प्रार्थना है।

इस ग्रन्थका यथायोग्य अनुवाद किया गया है, परन्तु जहाँ जहाँ अस्पष्ट पाठों हों या जहाँ शंकाओं या अपूर्ण पाठों हों वहाँ भावार्थ दिया है। कई स्थलौपर असंबद्ध पाठों या अति अशुद्धि के कारण अनुवाद करनेका अशक्य हुआ है। वैसे पाठभेदों की स्पष्टता मिलते ही वहाँ योग्य सुधारके लिये अवकाश है। मैं नहीं कह सकता हूँ कि मेरा अनुवाद क्षतिरहित है, अपूर्णता और अशुद्धिसे आई हुई क्षतियोंके लिये उदारभावसे विद्वान महाशयों क्षमा करें।

क्षीरार्णवके प्रारम्भके ९८ अध्यायों की अपूर्णता के कारण प्राप्त ग्रन्थों के अध्यायों के एक साथ क्रमांक, अध्याय संख्या सुगमताके लिये रखे गए हैं।

ग्रन्थके भाषानुवाद के साथ प्रत्येक अंगकी टीका और अन्य ग्रंथोंके मतान्तर की नोंध दी हुई हैं। ग्रन्थ-वांचन से अर्थ नहीं सरता है। क्रियात्मक ज्ञान (प्रेक्टीकल) का मर्म देनेसे ग्रन्थ संपूर्ण बनता है। उसके साथ कोष्ठकों अनेक आलेखनो, नकशे और चित्रों भी इसी विषयोंको स्पष्ट करनेके लिये जरूरी हैं। वे और अन्य प्राचीन ग्रंथोंके अवतरण भी दिये गए हैं। ग्रंथको अधिक समृद्ध बनानेके लिये यथामति प्रयास किया है। मेरे प्रयास की कद्र विद्वान वाचक करेंगे ऐसी आशा रखता हूँ।

वंशपरम्परा के व्यवसाय में मेरा ज्येष्ठ पुत्र श्री बलवंतराय और पौत्र श्रीचन्द्रकांत यह शिल्प-स्थापत्य व्यवसायमें जुड़ायें हैं वो कुलपरम्परा को समृद्ध करेंगें यही प्रभु प्रार्थना है। दूसरा पुत्र विनोदराय एम. ई. अमेरिका सीवील एन्जिनीयर है। श्रीहर्षदराय बी. ए. एल. एल. बी. अहमदाबाद हाईकोर्ट एडवोकेट है। श्रीधनवन्तराय बी.ए. एल. एल. बी. बेंक व्यवसायमें हैं।

क्षमायाचना—एक विद्वान कहते हैं, "कविकी जिह्वामें और शिल्पीयोंके के हाथोंमें सरस्वती बसती हैं" शिल्पीकी बानी-भाषामें व्याकरणकी त्रुटियाँ सहज ही हों उनके प्रति उपेक्षा दिखाकर ग्रन्थके मूल अर्थ-भावार्थको विद्वानों ग्रहण करेंगे ऐसी मेरी प्रार्थना है।

ग्रंथका हिन्दी अनुवाद श्री जयेन्द्रकुमारमाणेकलाल शाह, एम. ए. "राष्ट्र-भाषा रत्न" ने श्रम लेकर सुन्दर किया है और ग्रन्थका सुन्दर और स्वच्छ छपाईकाम अहमदाबादके नवप्रभात प्रेसमें उसके प्रोप्रायटर श्री मणिलालभाई और

प्रेस स्टाफके हेड श्री शंकरसिंहजीने श्रम लेकर किया है। ग्रंथमें आये हुए कई ब्लोकका सुन्दर काम कर प्रोग्युलर प्रोसेस स्टुडियोने ग्रंथको सुन्दर आकर्षक बनाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है, इन सभी मित्रोंकी सहर्ष नोंध लेकर आभार मानता हूँ।

ग्रन्थमें आये हुए कई ब्लोकके आलेखन सौराष्ट्र गुजरातके प्रख्यात युवान शिल्पकार श्री चन्दुलाल भगवानजी और अभी प्रभासपाटण सोमनाथजी के कार्य पर है वे मेरे भानजे शिल्पकार श्री भगवानजी मगनलालने भी अन्य आलेखादि कार्यमें-दोनों मुझे सहायक हुए हैं। इस बातका सहर्ष उल्लेखकर आभार मानता हूँ।

सर्वेत्र् सुखिनःसन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कार्श्चं दुःखमाप्नुयात् ॥

इति शुभं भवतु, श्री कल्याणमस्तु ।

वि. सं. २०२३ वैशाख शुदी त्रीज,
अक्षयत्रतीया
पालीताणा ता. १२, मी मे सन १९६७

स्थपति प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा
शिल्प–विशारद

भूमिका

डॉ. मोतीचन्द्र, (एम्. ए., पीएच्. डी. (लण्डन)
डायरेक्टर, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई.

क्षीरार्णवके टीकाकार श्री. प्रभाशंकर ओघडभाई–सोमपुरा भारतीय स्थापत्य शास्त्रके उन इने गिने विद्वानोंमें है। जिन्होंने अपनी कुलगत परंपरा और संस्कृतमें लिखित वास्तुशास्त्रकी चर्चा और अध्ययनको एक नया रूप दिया है। यह तो प्रायः सभी विद्वान मानते हैं कि स्थापत्य शास्त्रकी पुस्तकोंमें अनेक असंबद्ध विस्तार होने पर भी उनमें सत्यका अच्छा खासा अंश है। जिसका वास्तविकतासे नजदीकका संबंध है। पर उस वास्तविकता को पकड़में लानेके लिये मध्यकालीन वास्तुशास्त्रकी परिभाषिक शब्दावली तथा उपलब्ध देवमंदिरोंके अवयवोंसे उसकी तुलना केवल श्री सोमपुराजी जैसे विद्वानोंके बसकी ही बात है। सच बात तो यह है, श्री सोमपुराजीने मध्यकालीन वास्तुशास्त्र अध्ययनके लिए हमारे सामने एक दृष्टिबिंदु रखा है जिसे ध्यानमें रखकर चलनेसे यह पता चलता है कि देवालयोंके जो नकशे, अवयव तथा अलंकार हमारे सामने आते हैं उनमें सार्थकता है और उनकी कृति वास्तुशास्त्रके उन सिद्धांतों पर आश्रित है जिनका क्रमिक विकास हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि मध्यकालीन वास्तुशास्त्रके अनेक अभिप्राय समायान्तरमें रूढ़िगत होकर अपनी नवीनता खो बैठे, पर यह बात केवल वास्तुशास्त्रों तकका सीमित नहीं थी। मध्यकालीन भारतीय संस्कृतिके अनेक उपादानोंमें भी हमें यही बात दीख पड़ती है।

शास्त्ररूपमें वास्तुविद्याका उदय कब हुआ, यह कहना तो संभव नहीं है। फिर भी प्राचीन साहित्यमें वास्तु संबंधी चाहे वह दैविक हो या नागरिक अनेक उदाहरण मिलते हैं। वैदिक साहित्यसे ऐसे उदाहरणोंका संग्रह श्री. सुविमलचन्द्र सरकारने अपनी पुस्तक "सम ऑसपेक्टस् ऑफ दी अर्लियेस्ट सोशियल हिस्ट्री ओफ इंडिया" में कर दिया है। वैदिक शास्त्रोंमें वास्तुशास्त्र संबंधी शब्द सीधे सादे हैं। पर वास्तुका जीवनसे इतना निकटका संबंध था कि वास्तु संबंधी प्रक्रियायोंके लिए वास्तुयाग और वास्तुनरकी कल्पना की गई। आश्वलायन (४/२/६/१३) गोभिल (४/८) तथा आपस्तंब (६/१६) गृह्यसूत्र तो भूमि शोधन संबंधी नियमोंका विवेचन करते हैं, तथा वास्तुशांतिका उल्लेख करते हैं। ऋग्वेदमें वास्तोत्पति शायद वास्तुके अधि देवता थे, जो गृह्यसूत्रोंमें वास्तुपुरुष हो गये। सूत्रोंके आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक मध्य स्तंभका आधार मानकर ही गृहकी रचना होती थी।

प्राचीन बौद्ध साहित्य (ए. सी. कुमारस्वामी। अर्ली इन्डियन आर्किटेक्चर, ईस्टर्न आर्ट १९३०-१९३१) तथा जैन साहित्य (डॉ. मोतीचन्द्र, आर्किटेक्चरल डेटा इन जैन केनोनिकल लिटरेचर, जर्नल एशियाटिक सोसायटी, वाल्युम २६ भाग २. १९५१) के आधार पर हम ईसापूर्व तथा ईसाकी आरंभिक सदियोंमें भारतीय वास्तु पर प्रकाश डाल सकते हैं। पर वास्तु संबंधी इन साहित्यिक उदाहरणों का सीधा सम्बन्ध या तो स्तूप, चैत्य, तोरण, वेदिकाकी बनावटोंसे अथवा प्रासाद और नगरकी रचना और नकशोंसे है। इन उदाहरणोंका संबंध ईसा पूर्व दूसरी सदीसे लेकर ईसाकी २-३ सदी तकके स्थापत्यसे है।

वास्तुशास्त्र संबंधी जो परिभाषाएँ हमें इस युगमें मिलती है, उनका संबंध अधिकतर काष्ठ निर्मित स्थापत्यसे है। उस युगके जो चैत्य और विहार लेणों बच गई है। उनके नकशे भी काष्ठसे बने आरामों तथा प्रासादोंसे लिए गए है। जिन देवमंदिरोंकी कल्पना मध्यकालमें हुई उनका इस युगमें पता न था। जो परिभाषाएँ अपने युगमें पूरी सार्थक थीं, बादमें चलकर जब वास्तुकलामें पत्थर और ईंटोंका प्रयोग होने लगा वह अपने अर्थ खोने लगीं, और गुप्त युगमें उन नई परिभाषाओंका जन्म हुआ जिनका तत्कालीन स्थापत्यसे काफी संबंध था। इन परिभाषाओंका कालान्तरमें संग्रह कर लिया गया होगा और इस तरह वास्तुशास्त्रका जन्म हुआ।

अब प्रश्न उठता है कि क्या गुप्त युगके पहले भी लिखित रूपमें वास्तुशास्त्र था अथवा नहीं। तत्कालीन साहित्यमें वास्तु संबंधी शब्दोंका खुलकर प्रयोग होनेसे तो ऐसा पता चलता है कि कुछ ग्रंथ जिनका अब पता नहीं है, ऐसे रहे होंगे जिनमें तत्कालीन वास्तु और उसके अवयवोंका वर्णन रहा होगा। ऐसा लगता है कि ३-४ सदीमें मंदिरोंकी बनावटमें कुछ खोजबीन आरंभ हो गई थी। कमसे कम रायपसेणिय सूत्रसे पता चलता है कि यान-विमानकी जो राजमहल अथवा देवमंदिरका ही प्रतीक था बनावट कुछ अधिक अलंकृत होती। इसके स्तंभोंकी सजावट लीलामयी शालभंजिका तथा ईहामृग, वृषभ, गंधर्व, मकर, विहग, व्यालक किन्नर, शरभ, कुंजर, वनलता तथा पद्मलता इत्यादि अभिप्रायोंका प्रयोग हुआ है। स्तम्भकी वज्रवेदिका पर विद्याधर युगल उत्कीर्ण होते थे, तथा उनकी सज्जा घंटियोंके जालसे होती थी। यान-विमानके तीर और सीढ़ियाँ होती थी, जिनके अवयवो यथा णेमा, स्तम्भ फलक;—सूची, संधि तथा अवलंबन बाहुका उल्लेख है। यान-विमानके तीन तरफ तोरण होते थे जिनकी ऊपरी शलाका, स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त, वर्धमान भद्रासन, कलश, मत्स्य और कलशसे सजा होती थी। तोरण स्तंभमें निशीदिकाएँ होती

थीं, जिनमें नागदंतोसे किंकिणी घंटाजाड़ तथा चित्रविचित्र सूत्रमालाएँ लटकी होती थी। कुछ निशीदिकाओंमें शालभंजिकाएँ बनी होती थीं। द्वार, तोरण, स्तम्भ तथा प्राकारकी बनावटमें जाल कटक, प्रासादावतंसक, शिखर, जालिका, तिलक, अर्धचन्द्र, पद्महस्तक, तुरग, मकर, किंपुरुष, गंधर्व, वृषभ, मिथुन, संघाट, इत्यादिका भी स्थान होता था।

पर गुप्त युगमें वास्तुकलाने एक दूसरा ही रूप ग्रहण किया। उस युगके साहित्यमें वास्तुविद्या संबंधी शब्दोंका खुलकर प्रयोग हुआ जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है, कि गुप्त युगमें वास्तुशास्त्रका प्रणयन हो चुका था। तथा कमसे कम नागरिक वास्तुकला अपनी काफी परिष्कृत रूपमें प्रकट हो चुकी थी। इस युगमें देवमंदिरोंका सीधासाधा आकार हमारे सामने आ चुका था जिसमें स्थापत्य, मूर्ति तथा अभिप्रायका एक अपूर्व संतुलन था। पर जैसे जैसे मंदिरोंकी बनावट पेचीदा होती गई, वैसे ही वैसे स्थपतियों और सूत्रधारोंको स्थापत्यके बहुतसे प्रश्नों पर विचार करना पड़ा, जिसके फलस्वरुप गणित तथा ज्यामितिक आधारों पर भारी भारी प्रस्तर शिलाओंको लगानेके तरकीबोंका समाधान हुआ। वास्तुशास्त्रके विकासके साथ ही साथ उसके पारिभाषिक शब्दोंका भी क्रमशः विकास हुआ और मंदिरके अवयवों और अलंकारोंके लिये भी शब्द स्थिर हुए। वराहमिहिरने बृहत्संहिता ५६/१५ में लिखा है।

शेषं माङ्गल्यविहगैः श्रीवृक्षैः स्वस्तिकैर्घटैः
मिथुनैः पत्रवल्लीभि प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥१५॥

इसके पहले श्लोकमें द्वारके दोनों द्वारशाखामें द्वारपालोंका उल्लेख है। माङ्गल्यविहग, श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, कुंभ, मिथुन (स्त्री–पुरुष युग्म), पत्रवल्ली और प्रमथ तो गुप्त युगके वास्तु–अलंकारकी विशेषता है हीं, और इस युगके मध्यप्रदेशके गुप्त मंदिरोंमें पाए जाते हैं। इन अलंकारोंका प्रयोग कुषाण युगमें भी होने लगा था, पर इनका परिष्कृत प्रयोग गुप्त युगमें ही हुआ।

अब एक प्रश्न उठता है कि गुप्तकालके मंदिरों पर बनी हुई गंगा यमुनाकी मूर्तियोंका जिसका कालिदासने **यथार्ते च गंगे यमुने तदानी स चामरे देवमसेविषाताम्।'** कुमारसंभव, ७–४२ में उल्लेख किया है। बृहत् संहिताने क्यों छोड़ दिया है ? इसका कारण यही हो सकता है कि, तबतक गंगा यमुनाकी मूर्तियोंका तत्कालीन वास्तुमें सम्मत प्रयोग न रहा हो। पर चन्द्रगुप्त द्वितीयके समयमें श्यामिलक द्वारा विरचित पादताडितकम् (डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल डॉ.मोतीचन्द्र, चतुर्भाणी, पृ. २१२) से तो पता चलता है कि

गुप्त युगमें गंगा–यमुना संज्ञक मंदिर बनने लगे थे। इलोराके कैलासके एक भागमें ऐसाही मंदिर है। पादताडितकम् में (पृ. १७१–७२)वेश के महलोंके वर्णनमें एक परिभाषिक शब्दोंकी लंबी तालिका यह बतलाती है कि, इस युगमें भी नागरिक वास्तुशास्त्रकी परिभाषा काफी प्रचलित हो चुकी थी—विट कहता है–

"मैं वेशमें पहुँच गया। अहा, वेशकी वैसी अपूर्व शोभा है। यहाँ अलग अलग बने हुए वप्र (मकानकी कुर्सीका ऊँचा चेजा), नेमि (दीवारोंकी नींव) साल (परकोटा), हर्म्य (ऊपरी तलके कमरे), गोपानसी (खिड़कीकी चोटी), वलभीपुट (मंडपिका और उसकी उभरी छत), अट्टालक (अटारी), अवलोकन (गोख), प्रतोली (पौर), तथा विटंक (पक्षियोंके लिए छतरी) तथा प्रासादों से भरे हुए चौड़े चौक वाले तथा कक्ष्या विभाग में बंटे हुए, सुनिर्मित, जलपूर्ण परिखाओं से युक्त, छिड़काव से सुशोभित, नलकी फूंक से साफ किए हुए (सुषिर फूत्कृत), उत्कोटितलिप्त (टपरियाका पलस्तर किए हुए), लिखित (चित्रकारी किए हुए), स्थूल और सुक्ष्म नकाशियों से सजाए हुए (सूक्ष्म विविक्ता रूपशत निबद्धानि). बंध–संधि, द्वार, गवाक्ष वितार्दि (वेदिकाका चबुतरा), संजवन (चतुःशाल घरका बडा चौक) तथा वीथी और निर्यूहों (निकली हुई वेदिकाओं वाले छज्जो) से संयुक्त थे...."।

इस तालिका में शिखर शब्द उल्लेखनीय है। लगता है गुप्त युगमें किसी न किसी रूपमें शिखर प्रचलित हो चुका था, पर इसका पूर्ण विकास मध्यकाल ही में हुआ। इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि साहित्य में बिखरे हुए वास्तुशास्त्रकी परिभाषाऐं इकट्ठा की जायँ क्यों कि साहित्यकारों द्वारा इन शब्दोंकी परिभाषाएं निखरी हुई होती हैं तथा स्वकालीन वास्तुका जीवित चित्र खींच देती हैं। ऐसे जीवित चित्र हमें वास्तुविद्या संबंधी ग्रंथोंमें भी नहीं मिलते क्यों कि उनमें शास्त्रीय पक्ष पर ज्यादा ध्यान दिया गया है और व्यावहारिक पक्ष पर कम। इस दिशामें डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का प्रयत्न स्तुत्य था; पर अब वे नहीं रहे। इस लिये यह आवश्यक है कि संस्कृत–प्राकृत–अपभ्रंश और प्रादेशिक भाषाओंके साहित्यकी पूरी तरह से खोज बीन करके वास्तुविद्या संबंधी शब्द इकट्ठे किये जायं। इससे दो लाभ होंगे। पहला तो यह कि वास्तुशास्त्रमें वर्णित पारिभाषिक शब्दोंकी टीकाके रूपमें ये काम देंगे और दुसरी और वे हमें यह भी बताऐंगे कि उन शब्दों के प्रयोग के अर्थ एकसे रहे हैं अथवा बदले भी हैं।

प्राचीन शिल्पशास्त्रोंका अध्ययन करना उतना आसन नहीं है जितना कि समझ लिया जाता है क्योंकि न केवल शिल्प संबंधी ग्रंथोंकी भाषा ही दुरूह है परंपरा नष्ट हो जानेसे उनका ठीक ठीक अर्थ भी नहीं लगता। उन पर टीकाएं भी उपलब्ध नहीं हैं, जिससे उनके समझने में कुछ सहारा मिल सके। उदाहरणार्थ डॉ० आचार्य "मानसार" को वास्तुविद्याका आदिम स्रोत मानते

है और उनका विश्वास है कि जो कुछ भी सामग्री उसमें सुरक्षित है, वह प्राचीन और विश्वसनीय है । पर दूसरा मत है कि मानसारकी सामग्रीका संग्रह बहुत बाद में दक्षिण भारत में हुआ और इसमें भी अधिक सामग्री केवल शास्त्रीय है जिसका वास्तविकता से संबंध नहीं है । वास्तव में वास्तु-विद्याकी खोज परख से यह पता चल जाता है, कि उत्तर और दक्षिण भारत में वास्तुकी परिवृद्धि अपने ढंगसे हुई क्यों कि इनके विकास में बहुत कुछ समानताएं भी हैं । अब समय आ गया है कि उत्तरी और दक्षिणी शैलियोंका संश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए यह दिखलानेका प्रयत्न किया जाय कि किन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उत्तर और दक्षिण भारत के वास्तु में अंतर आया तथा भाषाओंकी भिन्नता होते हुए दोनो की परिभाषाओं में कितनी समानता है ।

पर जिस तरह के अध्ययनकी ओर मैंने इशारा किया है वह तक संभव नहीं जब तक श्री सोमपुराजी ऐसे विद्वान जिनका परंपरासे सीधा संबंध रहा है इस कामको अपने हाथमें न लें क्योंकि विश्वविद्यालयों से निकले विद्यार्थी जिन्होंने प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र लिया है न तो वे संस्कृत जानते हैं न उन्हें परंपरागत वास्तुकलाका ही ज्ञान होता है । श्री० सोमपुराजी द्वारा "क्षीरार्णव" के अध्ययनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है । इस ग्रंथकी भी भाषा समझकर उसका ठीक ठीक अर्थ करना तथा तत्कालीन मंदिरोंके अवयवोंसे उस परिभाषाकी तुलना करना उन्हींका काम है । ग्रंथके संपादनमें पग पग पर उनकी अध्ययनशीलताका पता लगता है । अनेक स्थलों पर रेखा चित्र तथा नकशोंने तो सोने में सुहागेका काम किया हैं । ऐसे अपरिचित कामको हाथमें लेनेमें विद्वान लेखकको किन किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा होगा वे ही जानते हैं । पर वे इस कहावतके कायल है । प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति । अंतमें श्री० सोमपुराजी का ध्यान एक बातकी ओर दिलाना चाहता हूं । ग्रंथोंमें अनेक परिभाषाऐं आई है । उनका बहुधा आपसमें सामंजस्य नही मिलता । प्राचीन मंदिरोंके अवयवोंके निश्चित परिभाषाओं के लिये यह आवश्यक है कि शब्दों में एकरूपता लाई जाय । मेरा यह भी सुझाव है कि भारतीय वास्तुकोशका संकलनका भी आरंभ कर दिया जाय । ऐसे कोशके लिए वास्तुशास्त्रके ज्ञाताओं, पुरातत्वज्ञविदों तथा धर्म और समाज शास्त्रोंका सहयोग आवश्यक है । सुना है कि बनारसकी अमेरिकन एकेडेमी इस ओर प्रयत्नशील है । विद्वानों को चाहिए कि इस कार्यमें एकेडेमी का हाथ बटावें ।

प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम,
बंबई-१ ता. ३-४-६७

मोतीचंद्र

आमुख लेखक—माननीय श्री कनैयालाल मा० मुनशीजी

उत्तर प्रदेशके भूतपूर्व-गवर्नर, गुजरातके ज्योतिर्धर, गुजराती साहित्यमें अस्मिता प्रकटकर्ता

भाइ श्री प्रभाशंकर–ओघडभाइ सोमपुरा अपने भारतके एक सुप्रसिद्ध स्थपति और शिल्पके ज्ञाता है । स्थापत्य और शिल्पके बडे जानकारी सोमपुरा परिवारके वंशानुवंश वारसामें मीली है । पुराण प्रथित भृगु ऋषिके भानजा और प्रभासके पुत्र देवोंका स्थपति श्रीविश्वकर्मा ज्यों भारतके आद्य विख्यात स्थपति थे । यह सोमपुरा परिवार के मूलपुरुष गिना जाता है । और सोमपुरा वंशके उत्पत्ति क्षेत्र प्रभासपाटन गिना जाता है । यह वंशके महापुरुषोने गुजरात, राजस्थान, मेवाडमें मंदिरोका शिल्प स्थापत्यके निर्माणमें महत्वपूर्ण हीस्सा दीया है ।

भाइ श्री प्रभाशंकरजी सोमपुरा भगवान श्री सोमनाथके नवनिर्मित महाप्रासादके प्रमुख स्थपति है । स्थापत्यके शास्त्रीय और क्रियात्मक उभय ज्ञान श्री सोमपुराजीके खुनमें है । "दीपार्णव" नामक मंदिर स्थापत्यके स्पर्शित महाग्रंथ उन्होंने गुजरातके चरणमें अर्पीत कीया है । यह प्रकारके ग्रंथ गुजराती भाषामें प्रथम होनेसे श्री सोमपुराजीकी यह सिद्धि विरल है ।

"क्षीरार्णव" के लेखन–संपादन और प्रकाशन द्वारा भाई श्री सोमपुराजी अपने भारतीय स्थापत्य साहित्यका एक अमुल्य ग्रंथ देश समक्ष प्रस्तुत करते है । यह ग्रंथ मूल स्वरुपमें बहुत विशाल होगा । परन्तु उनके सिर्फ बावीश प्रकरणो वर्तमानमें उपलब्ध हुये है । उन पर भाइ श्री सोमपुराजी मूलपाठ–सहित, हीन्दी–गुजरातीमें "सुप्रभा" नामक विवरणके साथ प्रकाशित कर रहा है । प्रचलित अभिप्रायानुसार यह ग्रंथके प्रणेता श्री विश्वकर्मा था । कालक्रमें यह ग्रंथकी कितने खंडो नष्ट हुआ है । परन्तु ज्यों बावीश प्रकरणो भाई श्री सोमपुराजी सविवरण प्रस्तुत करते है । इस परसे मालुम पडता है । की मूल ग्रंथ भव्य महाप्रासादो के निर्माणमें स्थापत्यके विविध दृष्टिकोणसे शास्त्रीय शैली प्रस्तुत करते है ।

यह अद्‌भूत ग्रंथमें मूल श्लोकका हीन्दी–गुजराती विवरण है । और वास्तुशास्त्रके विशाल साहित्यमेंसे उल्लेखनीय अवतरण देवो अनेक सुंदर आकृतियो और आलेखनो सहित भाइ श्री सोमपुराजी प्रतिपादत विषयको एसे विशदतासे पेश कीया है । की सामान्य वाचकगण भी सरलतासे समज सके ।

"दीपार्णव" और "क्षीरार्णव" जेसे ग्रंथ भारतीय स्थापत्यके गौरव सम है । वास्तुशास्त्रके यह परंपरागत ज्ञानके विशाल वर्गके लिये ज्यों रीतसे विद्वान् श्री सोमपुराजीये सुलभ कर दिया है । इस लिये धन्यवाद—

भारतीय विद्याभवन
मुंबई–७ ता. २३–५–६७

कनैयालाल मा० मुनशी

विद्या कला और सरस्वती त्रिवेणीका उपासक और लक्ष्मी तथा सरस्वतीका जहाँ सदावास है ऐसे उद्योगपति श्रीमान् श्री श्रीगोपालजी नेवटियाजीका

पुरोवाचन

'क्षीरार्णव' के प्रकाशनके संबंधमें श्रद्धेय श्री प्रभाशंकरजीने मुझे भी कुछ लिखकर भेजनेके लिये अनुरोध किया है। मैं इस विषयका कोई ज्ञाता नहीं। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि श्री प्रभाशंकरजी प्राचीन भारतीय स्थापत्यके बेजोड़ विद्वान है। प्राचीन ग्रंथोंके अध्ययनके द्वारा ही नहीं, किन्तु भारतके प्रायः सभी प्राचीन मंदिरों और प्रासादोंको देखकर तथा अनेक निर्माण-कार्य-संपादन कर आपने जो ज्ञान प्राप्त किया है, यह अद्वितीय है।

बंबईके निकट कल्याणमें अभी पिछले वर्ष एक नया मंदिर निर्माण हुआ है, और इस कार्यका संपादन श्री प्रभाशंकरजीके द्वारा हुआ। इस विषयमें मेरा श्री प्रभाशंकरजी से निरंतर सम्पर्क रहा और इस बुद्धिमता-विवेकशिलता, सर्वाधिक निस्पृहता और निर्लोभताके साथ वह कार्य आपने संपादन किया उससे हम सब बहुत ही प्रभावित हुवे है।

श्री प्रभाशंकरजीने प्राचीन स्थापत्य संबंधी अनेक ग्रंथोंका प्रकाशन किया है, और उसी श्रेणीका "क्षीरार्णव" भी एक है। इस ज्ञानको छपी हुई पुस्तकके रुपमें प्रस्तुत करनेका प्रशंसनीय कार्य श्री प्रभाशंकरजीने किया है। आजके प्रगतिशील जगतमें यह ज्ञान बहुत पीछे रह जाता है, फिर भी जब कभी इस ज्ञानके आधार पर निर्माण-कार्य सम्पन्न होता है, तो उसके सजीव रुपमें इस प्राचीन स्थापत्यका महत्व प्रदर्शित होता है।

कतिपय वर्ष पहले मैं सोमनाथ मंदिरके दर्शनके लिये गया था और तभी से मेरा श्री सोमपुराजी से सम्पर्क बढता गया। सोमनाथ मंदिरके नव-निर्माण से लेकर आधुनिक जमानेमें बहुतसे मंदिरोंके निर्माण इत्यादिका कार्य प्राचीन पद्धतिके अनुसार श्री सोमपुराजीने सम्पन्न किया है। ऐसा मालुम होता है कि इस प्राचीन कालका कोई एक पुरुष जीन्दा रह गया है। और अगले जमानेकी सेवा कर रहा है। उनके द्वारा प्रस्तुत स्थापत्य भले ही प्राचीन कहा जाय लेकिन आज वह कितना अपूर्व है। कितना बहुमूल्य है, वह देखनेवाले ही जान सकते है। मुझे इसका अनुभव हुआ है, इसलिये मुझे ऐसा लिखनेका अधिकार है।

मैं श्री सोमपुराजीके दीर्घायुकी कामना करता हूँ। और भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि उनके हाथोंसे और भी निर्माण-कार्य सम्पन्न हो, उन्हे कीर्ति मिले और वे अजर अमर हो।

रत्नाकर-बंबई ता. २०-७-६७ —श्री गोपाल नेवटिया

श्री विश्वकर्मा प्रणित क्षीरार्णव वास्तुशास्त्र ग्रंथकी विषयानुक्रमणिका

क्रमांक अध्याय	विषय अध्याय ९९ (क्रमांक अ० १)	पत्र संख्या
१—९९	**क्षीरार्णव वृक्षार्णवकी ग्रंथ रचना**	१
	प्रासाद पुरुषाङ्ग कल्पना १ प्रासादकी चौद जाती ३	३
	वास्तुद्रव्य और उनका फल नारद विश्वकर्मा संवाद प्रश्न	४
	वास्तुगणितका २१ अंङ्ग	५ से २७
	अधिक गुण और अल्प दोषवाला वास्तु निर्दोष समझना	२६–२७
	आलेखन अष्टआय (६) नाडीचक्र (२०)	
२—१००—जगति लक्षण अध्याय (क्रमांक अ० २)		२८
	जगति विस्तारमान–भ्रमणि–उदयमान सहस्त्रलिङ्ग–६४ योगिनी और जिनायतको जगति विशेष	२८ से ३३
	जगती उदयमें थर विभाग–आगे पगथि	३४
	प्रतिहार और बलाणक मंडप–कक्षासन वेदिका देववाहनका मंडप	३७–४०
	आलेखनो–पंचायतन (३०) ५२–२४ जीनायतन (३१–३२)	
	जगतीउदय (३५) प्रतोल्या स्वरुप (३६) कक्षासन विभाग (३८)	
	पीठ युक्त प्रतोल्या (३९)	
३—१०१—अध्याय (क्रमांक अ० ३) कूर्मशिला निवेशनम्		४१
	पाषाणकी कूर्मशिलाका मान प्रमाण आकृति (४३) नौशिलाका नाम	४५
	हेम सुवर्णका कूर्मप्रमाण–शिला स्थापनकी विधिक्रम देव शिल्पिपूजन	४७
	आलेखन उमा महेश युग्म (५६) पंचमुख विश्वकर्मा (४४) वृषभहस्ति–३२ (४८)	
४—१०२—अध्याय (क्रमांक अ० ४) भिट्टमान		४९
	भिट्टमान प्रमाण और उनका त्रय भिट्ट विभाग और खरशिला यु०	५०–५१
	आलेखन–भिट्टत्रय–महापीठ (५०) प्रनाल मकरमुख (५१)	
५—१०३—अध्याय (क्रमांक अ० ५) पीठमान प्रमाण		
	१ पीठमान प्रमाण २ मंडोवरदयसे पीठमान–आया हुवा पीठ मानसे आधा या तृतीय भाग पीठ नीयोजन स्थान मानसे करना	५३–५५
	आलेखन–महापीठ–कामदपीठ और कर्णपीठ (५३) पीठ बाह्य प्रनाल चंदनाथ (५५)	५५
६—१०४—अध्याय क्रमांक अ १ (प्रासादोदयमान प्रमाण) उभणी सांधार		५६
	प्रासादके छाद्य नीचे दो जंघा	५८
	(३) और पचास हस्तके प्रासादको बार जंघा करना	
	(४) सांधार निरंधार प्रासादके भित्तिमान	५९
	आलेखन सांधार प्रासादका महा मंडोवर (५७) वृषभयुग्म (६०)	

७—१०५—अध्याय (क्रमांक अ० ७) द्वारमान ६१

नागरादि द्वारमान प्रमाण—ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठमान–आलेखन–
कल्याण प्रतोल्या–तोरण (६२) सप्तशाखा द्वार और अर्धचंद्र (६६) ६२–६४

८—१०६—अध्याय (क्रमांक अ० ८) पीठ थर विभाग ६५–७३

कामदपीठ विभाग ३३ और १८ दो प्रकार महापीठ विभाग ८५
और ९० भागका दो प्रकार;-जाडम्बा कणि ग्रासपट्टी–कामदापीठ
गज, अश्व, नर-पीठका आंतरविभाग ६५ से ७३
आलेखन–जांडबा–कणिका–ग्रासपट्टी–गज अश्व–नरपीठका प्रत्येकका
आंतर विभाग–महापीठ-कामदपीठ और कर्णपीठ (६५–७३)

९—१०७—अध्याय (क्रमांक अ० ९) मंडोवर थर विभाग ७४–८७

(१) नागरादि मंडोवर १४४ भागका (२) उसकी पर त्रय
भूमि उदयका विभागका महामंडोवर भाग २४९ ७५–७७
(३) मंडोवर २०६ विभागका उनका प्रत्येक थरका आंतर
विभाग आलेखन साथ ७९–८६
आलेखन–सांधार निरंधारका तलदर्शन (७५) छ प्रकारके मंडोवर–
स्तंभ समन्वय साथे (७६) द्वय जंघायुक्त अलंकृत महामंडोवर
(७८) जंघामें देवस्वरूपादि (८२) सोमनाथका उद्गम–और
भरणी स्वरुपादि ८१–८२

१०—१०८—अध्याय (क्रमांक अ० १०) मेरु मंडोवर ८८–१००

१०६ विभागका मंडोवर पर (त्रीश हाथका प्रासादको त्रय भूमिका
विभाग १६० + १२१ + ९६=३७७) विभाग पांत्रिश हाथका ८९ से
प्रासादके चार जंघा भूमि करना (चालिश हाथके पांच जंघा–९२
भूमि करना प्रत्येक छाद्य नीचे दो दो जंघा और भूमि–९३ करना
१ से १२ जंधा ५० हाथके प्रासादको करना बार जंधाका
नामकरण कहा है (९१–९६) ९५–९६
सांधार–प्रासादका मंडोवर साथ अंदरके स्तंभ छोडका समन्वय ९९
छजा परका प्रहारका १९ आंतर विभाग (श्लोक ६-८) ९२
आलेखन दश दीग्पाल (८९–९०) दशावतार विष्णु (९१) प्रहार
(१९), चार भूमि जंघाका मंडोवर (९४) सोमनाथका पुराना
मंडोवर (९५) सोमनाथ महाप्रासाद और द्वारिकाका तलदर्शन
(९७–९८) सांधार–निरंधार प्रासादका मंडोवरके साथ स्तंभका
छोडका समन्वय (९९) १००

११—१०९-अध्याय (क्रमांक अ० ११) गर्भगृहोदय-और द्वार शाखा विभाग १०१

गर्भगृहका पांच स्वरुप (१०१) स्तंभ छोड उदय विभाग १०२

प्रनाळ विचार (१०३) त्रिपंच-सप्त-नवशाखा तल विभाग १०४ से ८
उदंम्बर और अर्धचंद्र-शंखोद्वार शाखामें परिवार-देवोंका रुप करना १०९ से ११
आलेखन— गर्भगृहका आंतर और बाह्य उपांगो चार प्रकार-१०१
स्तंभ छोड विभाग (१०२) त्रि-पंच-सप्त नवशाखाका तलदर्शन (१०५)
त्रिशाखा द्वार-उदंम्बर अर्धचंद्र पंचखाखाका अलंकृत द्वार उदम्बर अर्धचंद्र (१०८)
सप्त-नवशाखाका तलदर्शन और अर्धचंद्र १०९–११
द्वारशाखाका रुपवाला ठेका और उतरंङ्ग बिभाग ११३

१२—११०—अध्याय (क्रमांक अ० १२) **प्रतिमा-पीठ लिङ्गमान** १५१
द्वारोदयका विभागसे पीठ और उर्ध्व प्रतिमाका तीन प्रकारका
मान और शयन प्रतिमा विस्तार प्रमाण द्वार मानसे–राजलिङ्ग ११५–१८
द्वार विस्तारसे चतुर्मुख प्रतिमा प्रमाण ११९
आसनस्थ-उर्ध्वस्थ प्रतिमामान टीप्पणमें गृहयोग्य पूजा प्रतिमामान ११९–२०
देवपीठ सिंहासनोदय थर विभाग (आकृति १२२) १२१–२२
आलेखन—वराह–और ललाट तिलक शिवका स्वरुप विरालिका युक्त १७–१८

१३—१११—अध्याय (क्रमांक अ० १३) **देवता दृष्टिपद स्थापन** १२३
गर्भगृहना द्वारोदयका ३२ विभाग देवताद्रष्टि स्थापन द्रष्टिवेध १२३-२५
गर्भगृहार्धमें २८ विभागमें देवस्थापन १२६
टीप्पणमें द्रष्टि और देव स्थापन विभागके बारेमें पृथक पृथक
ग्रंथका मतमतांतर (१२४ से १३६) देव द्रष्टि और पद स्थापन
विभाग दर्शक पृथक पृथक ग्रंथोका मत मतांतरका कोष्टक १३५–२६
आलेखन-दशावतार विष्णुका १० स्वरुप (१२७-१३० अग्निदेव-१२९

१४—११२—अध्याय (क्रमांक अ० १४) **शिखर-भद्र नासक सरवेध** १३७–४२
त्रि पंच सप्त नव नासक १३७-४० शिखरोदय त्रण प्रमाण १४०
शिखरकी मूल रेखाका प्रमाणसे स्कंध प्रमाण और उनका उपांङ्ग विभाग १४०–४१
सरवेधका महादोष १९१–९२ आलेखन-नासक १३९

१५—११३—अध्याय (क्रमांक अ० १५) **शिखराधिकार** १४३–७१
शिखरोंका विविध आकार अेकी तल पर होता है—निरंधार
और सांधार प्रासादमें शिखरकी मूल पायचा कहाँ मिलाना १४५
शिखरको विस्तारसे उदयका तीन प्रकार एको परि दुसरा उरु-
शृंङ्गका उदयका विभाग प्रमाण १४६
शिखरका पायचासे स्कंधका प्रमाण शिखरकी मूलका विस्तारसे
चतुर्गुण सूत्रवृतमें सवाया शिखरकी रेखा आँकना १४७
शिखरका मूलमें दश भाग और स्कंध पर नव भागका उपांग
करना स्कंध पर आमने सामने प्रतिरथके कौनके बराबर आमल
सारा विस्तार करना १४८–१४९

सांधार प्रासादके वालंजर (१५०) स्कंधहीन और स्कंधवेधदोष १५१
छायोर्ध्वसे शिखर स्कंधका २१ विभागमें शुकनासका पंचविध प्रमाण १५२
कोकिला-लक्षण-(प्रासादपुत्र) १५४ आमलसारा विभाग १५५-५६
शिखरका स्कंधके कोण पर तापस-या शिव या जिन मूर्ति रखना १५७-५९
ध्वजादंडका शिखरमें निश्चित स्थान, ध्वजाधर स्तंभवेधका प्रमाण
ध्वजादंडके साथ स्तंभीका ध्वजावतीका प्रमाण और आकृति
कलश (ईडा) प्रमाण प्रासादसे $\frac{1}{6}$ रखना उनका विभाग (९×६) १६१-६२
प्रासाद पुरुषका प्रमाण-आकृति-धृत कलश साथ आमलसारमें स्थापनविधि १६३
ध्वजादंडका मान प्रमाण और दैर्ध्य प्रमाणका पृथक पृथक मान,
पर्व=अर्थात् गाला और ग्रंथी=कांकणी सम विषम रखनेका विधान
शिवशक्तिका दंड पर्व; ध्वजदंडकी मर्कटि-पाटलीका प्रमाण,
श्रेष्ठ दंडकाष्ट, पताका प्रमाण, ध्वजहीन शिखर रखनेका दोष १६४-से १७२
यजमान-स्वामि-प्रासाद पूर्ण हुये स्थपतिसे करनेकी प्रार्थनाशुभाशिष १७२-१७३

१— आलेखन श्रृंगोर्ध्वश्रृंग उरुश्रृंगोर्ध्व उरुश्रृंग रखनेका विभाग १४४
२ आमलसारा विभाग ३ (१४८) १४८ वृत ४ सांधार-निरंधार
प्रासादका मूल शिखरका उपांग वालंजर-१५१ ६ रेखा-१
स्कंधान्त-२ घंटान्त-३ शिखान्त (१५२) ७×१४ विभाग आमलसारा
१५५ ध्वजाधर-स्तंभिका-ध्वजादंड-पताका पाटली (१५८) ७ कलश
विभाग ९×६ और १५×१० सुवर्णका प्रासाद पुरुष (१६४) सारा शिखर
विभागे ध्वजाधारका स्थान के साथ ध्वजदंड पाटली पताका (१६५)
११ छायोर्ध्व शिखरकी रुपवाली जंघा; भद्रके अलंकृतगवाक्ष १६७

१६—११४—अध्याय (क्रमांक अ० १६) अथ रेखा विचार १७४-८१
पंचखंडसे उन्नतिश खंड तकका रेखाका १५ भेद (१७४) चारसो
पेंतीस कलाभेदो
शीखरका पायचा और स्कंधका फालना विभाग आमलसारा प्रमाण १७५-७६
अजितादि २५ रेखाका नाम-आकार-और खंड पंच-सप्तनव
नासक विभाग-सरतर-वारिमार्ग आलेखन नासक विभाग १७७-८१

१७—११५—अध्याय (क्रमांक अ० १७) स्तंभ (मान प्रमाण और) लक्षणाधिकार
प्रासाद माने स्तंभमान-दुसरा पंचविध प्रमाण-तीसरा सभा-मंडपका मान ८२-१८३
पांच प्रकारका स्तंभोंका तलदर्शन और नामकरण १८५-८७
स्तंभोंका घाट-घटपल्लवयुक्त देवाङ्गना और इलिका तोरणायुक्त-मदलयुक्त। १८६
प्राग्रिव या नृत्यमंडपका पीठ बंधका तीन प्रकार और आकृति। १८८-८९
तीन, पाँच या सात नव भूमि उदय मंडप चतुर्मुख प्रासादके
चारों ओर मंडपों करना। १८९

चतुर्मुख महाप्रासादों जो देशमें न हो वहाँ सूर्य विना दिन
और चंद्र विना रात्री समान जानना । १८९
मंडपकी जंघा–या वैदीकादिमें–शीवका पंच स्वरूप–लास्य तांडव करना । वैताल: विविध वार्जित्र युक्त नारद स्तुबरु सिद्धि–बुद्धि सहीतका नृत्य गणेश ऋषि–मुनीयों–गोपीयों युक्त कृष्ण–स्त्री पुरुषके युग्म स्वरुपोंमें नृत्य करते इन्द्रादि, दिग्पालों, सूर्यादि ग्रहो, बारा राशि, २७ नक्षत्र, आठ आय, आठ व्यय, नव तारा, सात स्वर–छ राग, छत्रीश रागिनीयाँ, बारह मेघ–यक्ष, गंधर्व, विद्याधर, नाग कीन्नर आदि अनेक देव–देवाङ्गनाओं, इलिकातोरण, गज, सिंह, विरालिका साथ करना । १९१–१९७

आलेखन—घटपल्लवयुक्त स्तंभ–मदल–मकरयुक्त तोरण १८४–९६–९८ मकर तोरण तीन प्रकार–१ तीलक, २ हींडोलक, ३ गवाक्षक १९६–९७
स्तंभोंका पंच तलस्वरूप (१८५) मंडपके पीठके तीन प्रकार १८९
रुपस्तंभों तोरण और द्वार चोकी चतुष्किका १९०
कर्णाटकी देवाङ्गना १८७ शिवस्वरूप चार (१८९) रामपंचायतत १९२
पंचमुख हनुमंत–पंचमुख गणेश १९३ । आदित्य–सूर्य १२ स्वरूप नवग्रह १९५

११६ अध्याय (क्रमांक अ० १८) मंडपाधिकार १९८–२३७

मंडप क्या क्या हेतुके लीये करना ? १९८ १९८
प्रासादके प्रमाणसे १ सम २ सवाया ३ डेढा ४ पोनेदो गुने ५ दोगुने ६ सवादो गुने ७ ढाई गुने एसे सात प्रकार मंडप हस्त मानसे करना । १९८–१९९
शिखरका शुकनास से मंडपोर्ध्वे घंटाका समन्वय २००
सांधार निरंधार प्रासादसे मंडपका उदयका तीन प्रमाण १ उत्तरङ्गोदय २ छज्जोदय ३ भरणी उदय २००–२०२
वितान–घुमट छतका मुख्य तीन भेद १ समतल २ उदितानी ३ क्षिप्तानुक्षिप्त वितानका घाटका ६६ विभागे थरो २०३–२०१
(१) पुष्पकादि २७ मंडपों १२ से ६६ स्तंभ प्रमाण २०९–२१२
(२) सुभद्रादि प्राग्रिव बारा मंडप । ४ से २८ स्तंभ प्रमाण २१३
(३) मेरवादि २५ मंडप ६६ से ११२ स्तंभ प्रमाण, दो से पाँच भूमि उदय २१४–१९
(४) आठ गुढ मंडपके नाम और स्वरूप (५) शिवनादि मेघनादि महामंडप २२१
गर्भगृह मंडप और चतुष्किका भूमितल उत्तरोत्तर निम्न रखना २२५
पंचविध बलाणक नाम स्वरुप स्थान और प्रमाण उत्तरङ्ग
जगतिके आगे मंडप या चोकि, विषय पाट छाद्य कहा मिलाना २२६–३०
संवरणाधिकार–अङ्ग विभाग घंटा-कूट संख्यामान कोष्टक (२६३) २३१–३७
सांधार निरंधार प्रासादके मंडपका कक्षासन युक्त स्तंभादि उदयके ३ मान २०८

आलेखन—चतुष्किका छत (२०३) क्षिप्तानुक्षिप्त छत (२०६) कोल
गजतालुयुक्त वितान गुम्बज मंडप तलदर्शन (२०४) २०६-७
१ पुष्पकादि १ से २७ मंडपका तल २०९। २ प्राग्रिव द्वादश मंडप तल २१३
३ मेरवादि मंडप नाम स्तंभ संख्या कोष्टक तथा ६ से ३६ स्तंभ मंडप रचना २१७
४ गूढ मंडप अष्टका तलदर्शनशिवनाद मेघनादक मंडप तल २२०-२४
१ लक्ष्मीनारायण-योगेश्वर विष्णु योगेश्वर शिव तोरण २२५
२ शिव-विष्णु ब्रह्मा-त्रिमूर्ति तोरण २२७
नृत्य शिव परिकर तोरण (२२९) सप्त मातृकाएँ २३२ संवरणा २३२-३६

१९ **११७ अध्याय (क्रमांक अ० १९) सांधार भ्रम निरुपणाध्याय २३८-२४७**
एक, दो, तीन भ्रम उत्पन्नका प्रासाद प्रमाण १० से २५
हाथका प्रासाद को एक भ्रम करना भ्रम और मितिप्रमाण २७ हाथके
प्रासादको दो भ्रम, ज्येष्ठ, मध्यम, कनिष्ठमान भ्रम और
मितिप्रमाण तीन भ्रमका मान उनका भ्रम और भितिप्रमाण। २३८-२४३
भ्रमयुक्त प्रासादमें शिवादि देव गणेश लकुलिश-सूर्यादि नवग्रह
नारदादि रूपि पांडवो, युधिष्ठिर, भैरव, ब्रह्माके प्रासादमें
वशिष्टादि ऋषिका स्वरूप करना। २४३-२४७

आलेखन—सांधार प्रासाद तल एक भ्रम (एक मुख) तल (२३८) द्वय भ्रम
त्रयमुख (२३९) द्वय भ्रम चातुर्मुख (२४०) त्रय भ्रम चातुर्मुख २४२
ब्रह्मा महीषासूर मर्दिनी-सूर्य-विष्णु श्रुतदेवी शारदा सरस्वतींका बार स्वरूप २४२-४५
यम, भैरव, क्षेत्रपाल, शिव उमा स्वरूप ललाट उर्ध्व तिलक २४६
शिव तांडव नृत्य स्वरूप। २४७

२० **११८ अध्याय (क्रमांक अ० २०) सांधार चातुर्मुख प्रासाद लक्षण २४८-२७७**
नारदजीका प्रश्न चतुर्मुख जीन भवनका श्लोक ३ से १० अस्पष्ट
अठाराइ तल विभाग पर २६९ श्रृंगका मानतुङ्ग प्रासाद २५०
दशाइ तल पर मातङ्ग प्रासाद २५२
पीठ और मंडोवर विभाग ४८॥ का एक जंघाका कनिष्ठ मान
पीठ और मंडोवर विभाग ५३॥ का दो जंघाका मध्यमान
पीठ और मंडोवर विभाग ७० का तीन जंघाका ज्येष्ठमान २५३-२५५
जगतिका दीर्घ व्यासका पद-कोठा परसे जिनायतनकी संकलन
जगतीका २८ × २५ खंड पदसे ८४ जीनायतनका जिणमाला २५५-२५८
द्वारमानसे चातुर्मुख प्रतिभामान और दृष्टिमान-दृष्टिवेध दोष २५९-६२

आलेखन—१ मानतुङ्गशिखर २ मंडोवर कनिष्ठमान ४८॥ भाग ३ मध्यमान
५३॥ भाग (४) जेष्ठमान मंडोवर द्वयजंघा भाग ७० (५)
८४ जीनायतन जिणमाला तल (६) जीन प्रतिमा विभाग (७)
जीन प्रतिमा परिकर विभाग (८) समवसरण (९) अष्टापद।

२१ ११९ अध्याय (क्रमांक अ० २१) केशरादि वैराज्यकुल प्रासाद २६४

अठाई-दशाई तल विभागोंका २५ प्रासादोंका नाम २६५

अठ्ठाई तलविभक्तिका ११ शिखर। २६७

दशाई तल विभागके १४ चौदा शिखर। २७१

श्रृङ्ग श्रीवत्स मिश्रक रुचक-तिलक २७५

आलेखन केसरी श्रृंग श्रीवत्स तिलक मंजरी कूट २६५

केसरी श्रृंग सर्वतोभद्र नंदन नंदशाली नंदीश मंदिर २६७–६८

वैराज्यकूल अठाई केसरी प्रा० तथा सर्वतोभद्र प्रा० २६७

वैराज्यकूल अठाई मंदिर प्रा० तथा श्रीवत्स प्रा० २६९

वैराज्यकूल दशाई नंदन प्रा० २७२ पृथ्वीजय प्रा० २७२-७३

वैराज्यकूल दशाई विमान प्रा० २७४ वज्रक प्रा० २७४-७६

२२ १२०—अध्याय चातुर्मुख महाप्रासाद स्वरुपम् २७८

क्षेत्रके पद विभाग-कोठा करके देवकुलिकाओंकी रचना करना २७८–७९

बेतालीशाई तल विभक्ति पर **चंद्रशाल** प्रासाद श्रमयुक्त शिखर २८०

चतुर्मुख प्रासादने चारों ओर मंडपो–उनका तलविभाग पीठ २८२

चोबिस और बावन जिनायतनके **चंद्रचक्र** नाम २८३

जगती पद-खंड विभाग करके ८४ चौराशि जिनायतन महाधर साथ करना मंडपो मेघनाद करके नालिमंडप और २८४

आगे सिंहद्वार चतुर्मुख-**मानतुङ्ग** प्रासाद २८५

मध्यका चोमुख प्रासादको चारो ओर एक मंडप गवाक्षुकासे छाद्य हो और नागर मंडोवर–मूल चोमुखको करके चारों ओर अस्सी ८० स्तंभो प्रदक्षणमें करके मध्यकी पंक्ति चोविश चैत्यकी और चारो कोण पर तेरा तेरा चैत्य करके पूरे बावन हों कोनेके अंतरसे चारों और छः महाधर करना यह रचनाको **ताराउली** नाम समझना २८६

भद्रका कोठाका तीन मुखभद्रको रम्य ऐसो सुभद्रा नामकी वेदिका करनेसे उनका नाम **किरणाउली** समझना २८८

बावन जिनायतनमें दो मंडप आगे वेदिकाके आगे पगथी पंक्ति है। बहोतेर जीनायत बाह्य हो वेदिका युक्त मध्ये मंडप हो आगे नालिमंडप वेदिकावाला १५ भागका कर्ण २५ भद्र हो एसे स्वरुप लक्षणवाला **सौभाग्यिनी** नाम समझना २८९

ब्रह्मस्थानका पच्चीश खंडमें चतुर्मुख प्रासाद अंङ्गोपाङ्गोवाला करना उसके सौ खंड-कोष्ठाको मध्यमें चारो ओर मेघनाद द्वीभूमि मंडपो करना २९०

बहोतेर जीनायत नालि मंडपयुक्त करना उनमें मेरुकी रचना २९१ से

करना २८५ खंड-कोष्ठमें चार खंड मुखाग्रे बाह्य वेदिका

युक्त करना एसा चातुर्मुख धार भूमि उदयका करना आगे नाली मंडप दो तीन भूमि उदयका वेदिका साथ करना—सर्व अग्रे पगथीकी पंक्ति करना २९२
चातुर्मुख प्रासादको एकसे नव जंघा करना चारो ओर मिश्रमेघ ओर सिंहनाद मंडपो करना २९३
आठसे पंदरा हाथके प्रासादके भ्रममें दो भूमि योजना करनी एक भूमिसे बारह भूमि तक जंघा करना २९४
भीट्ट १४ भाग पीठ ४७ भागका उर्ध्वे प्रथम भूमि मंडोवर भरणी तक ४५॥

२४ दुसरी भूमि छज्जा २९	... ...	२९
१९ तीसरी भूमि भरणी तक २४	... ...	२४
१८ चोथी भूमि छज्जा तक २६	... ...	२६
		१२४॥

जंघामें लोकपाल दीगपाल देवाङ्गनाओका स्वरुप लास्य तांडवादि नृत्य ताल सह वादित्र साथ करते है देवो आयुध वाहन साथ नृत्य करते है जैसेके उत्सव हो रहा हो, छ और आठ हाथवाला देव स्वरुपो इंद्र रंभाके साथ अग्नीदेव उर्वसी साथ यम तिलोत्त्वना साथ क्षेत्रपाल शची, वरुण, रंभा, वायुदेव मंजुघोषा, ईश मेनका साथ करना। प्रासादके इशान कोणसे मेनकादि देवाङ्गनाका स्वरुप करना २९७ से ३००
१. मेनका २. लीलावली ३. विधिच्चिता ४. सुंदरी ५. शुभांगीनी ६. हंसाउली ७. सर्वकला ८. कर्पूरमंजरी ९. पद्मिनी १०. गूढ शब्दा (पद्मनेत्री) ११. चित्रिणी १२. चित्रवल्लभा पुत्रवल्लभा १३. गौरी १४. गांधारी १५. देवशाखा १६. मरिचिका १७. चंद्रावली १८ चंद्ररेखा १९. सुगंधा २०. शत्रुमर्दिनी २१. मानवी २२. मानहेसा २३. स्वभावा २४. भावमुद्रिका २५. मृगाक्षी २६. उर्वशी २७. रंम्भा (उत्तान) २८. भुजघोषा २९. जया ३०. विजया (मोहिनी) ३१. चंद्रवक्रा (तिलोत्तमा) ३२. कामरुप (श्लोक ११३ से १३४) ३०१ से ३१२
यह बत्तीस देवाङ्गनाओंके नाम स्वरुप लक्षण, उनकी द्रष्टि निम्न रखके नृत्य करती करना। कई देवाङ्गनाका स्वरुप एकसे अधिक कोन कोनका करना। ३०३ देवाङ्गना दीगपाल यक्ष गंधर्व सूर्यादि नवग्रहो चतुर्मुख प्रासादमें जंघामें वितानमें (गुंम्बजमें) वेदिकामें करना ३१३
देवाङ्गनाओंका स्थान स्वर्ग है। दुसरी धौतवनमें, तीसरा महीतलके चातुर्मुख प्रासादमें स्थूल देहे वसेली है श्लोक १२३ पत्र ३०४
दो छज्जा और चार जंघाका मंडोवर ३१६
कवली मान प्रमाण १ चित्रा २ विचित्रा ३ अभया ४ रुपचित्रा ३१६
सांधार निरंधार प्रासादके भितिमान ३१७

चतुर्मुख प्रासादका शिखरमें चारों ओर सुंदर शुकनास दो तीन भूमि पर करना एक दो असे बार भूमि तक जंघाका क्रमयोगसे करना । ३१८
गर्भगृहका अर्धमें षडांश ज्येष्ठ, सातमेंशे मध्य-दशांश कनिष्ठमान? चतुर्मुख प्रासादके त्रयखंडमें एक खंड भ्रमका-मंडपो त्रण खंडपदका या क्वचित नीकलता करना दो मंडपके बीच एक पदका अंतर रखना मंडपके द्वी भूमिमें तीन ओर वेदिका करना उससे आगे रंगमंडप डेढ भूमि उदय करना आगे पांच पदका बलाणक मंडप करना-उसके नाली मंडपना अग्र भागमें द्वयभूमिमें वेदिका करना एसे चारों ओर करना । ३१८-३१९
निर्गमवाला नालिमंडपके भद्रमें तीन ओर तीन द्वार करना । चातुर्मुख प्रासादकी प्रदक्षणामें ९६ देवकुलीका चार मूल और आठ महाधर-मीलके एकत्र १०८ जीनायतन हुअे । ३२०
दुसरा प्रकार नालि मंडप छोडकर मेघनाथ मंडप आगे एक पद छोडके दुसरा मंडप और उससे आगे एक पद छोडके तीसरा सभ्रम मंडप बनाना उसमें समवसरणकी रचना करना-उसमें मूलनायकसे छोटी प्रतिमाको पधराना । मंडपका अंतर सुधीमें भूमियुक्त मंडप करना महाधर प्रासादके सन्मुख समवसरणकी रचना करना एसी चारो ओर बुद्धिमान शिल्पीसे करना मंडपोकी चारो ओर १०८ जीनायतन दुसरा महाधरके मध्य समवसरण ऐसो दो महाधरके बीच समवसरण ते मान युक्तिसे दोष रहित करना प्रदक्षणाकी पीछली पंक्तिमें महाधरकी दुसरी पंक्ति करना एसे जीनायतनका भ्रममें १०८की संख्या करना ।
आलेखन—चातुर्मुख चंदशाल प्रासादके शिखर २८१
चंदशाल प्रा. आगे चारो और ९६×९६ स्तंभका मंडप तलदर्शन २८७
मानतुंग प्रा० आगे २८ विभागके १०४ स्तंभोका मंडपका तलदर्शन २८४
चातुर्मुख १३×४ = बावन जिनायतनका तलदर्शन २८७
किरणाउलि-पंदरा भाग, ९६ स्तंभका मंडप २८८
भीट और ४७ उदयभाग महापीठ २९६
देवाङ्गना ३२ मेनकादिसे कामरुप आदि ३२+८=४० देवाङ्गनाओ स्वरुप ३०४-१३
द्वय छाद्य और चार जंधायुक्त मंडोवर ३१५
१०८ देवकुलिकाका महा चातुर्मुख प्रासाद तलदर्शन ३२१

इति सविस्तर अनुक्रमणिका

देव स्तुति और ग्रंथ संपादक परिचय

गणाधिपं नमस्कृत्यं देवीं सरस्वतीं तथा
ब्रह्मा विष्णु महेशादि सूर्य दिनकरं सदा ॥१॥
शिल्पशास्त्र प्रकृत्तरा विश्वकर्मा महामुनिम् ।
मनसा वचसा नत्वा ग्रन्थारम्भं करोमहम् ॥२॥

गणोंके अधिपति श्री गणेश, सरस्वती ब्रह्मा, विष्णु महेश और सूर्यको नमस्कार करके शिल्पशास्त्रोंको उत्कृष्ठ करनेवाले महामुनि श्री विश्वकर्माको मन वचनसे वंदन करके मैं प्रभाशङ्कर इस ग्रंथ पर सुप्रभा नाम्नी भाषा टीकाको प्रारम्भ करता हुँ ।

वंशेस्मिन् रामजी शिल्पि ख्यातोऽय वास्तुकर्मणि ।
तस्मिन्नैवान्वये जातः प्रभाशङ्कर पञ्चमः ॥३॥
जगत् विख्यात विश्वकर्मा नारद संवाद रुप ।
क्षीरार्णव ग्रंथ नामाऽयं प्राणकृत शिवः ॥
सुप्रभा नाम्नी टीकायां ग्रंथेऽस्मिन हि करोति सः ॥४॥

भारद्वाज गोत्रमें श्री रामजीभा जैसे वास्तुकर्ममें विख्यात स्थपति पूर्वकालमें हो गये इसी कुलमें श्री ओघडभाइके कनिष्ठ पुत्र प्रभाशङ्कर स्थपति पांचवी पीढीमें हुए । जगत विख्यात विश्वकर्मा और नारदजीका संवाद रुप क्षीरार्णव नामक शिल्पशास्त्र पर सुप्रभा नाम्नी भाषा टीका ऐसे विख्यात कुलके स्थपति श्री प्रभाशङ्करने लिखी है ।

॥ ग्रन्थ संपादकको अभिनन्दन पत्रिका ॥

आदि देव महादेव कृपापात्रो महातनुः ।
ओघडजी महाप्राज्ञ शिल्पशास्त्र विशारदः ॥५॥
कैलासस्य महामेरो जीर्णोद्धार कारकः ।
प्रभाशङ्कर नामायं मान्य केषां न कारक ? ॥६॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्य सत्यधर्म प्रवर्तकः ।
वृक्षार्णव शिव प्रोक्ते क्षीरार्णव यतनो हरिः ॥७॥
ग्रन्थानां शिल्पशास्त्रस्य पुनरुद्धार कारकः ।
आदि देव नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं विशारद ॥८॥

आदिदेव श्री महेशको कृपापात्र महाप्राज्ञ ऐसे श्री ओघडभाइके सुत महाप्राज्ञ शिल्पशास्त्र विशारद श्री प्रभाशंकरभाई सोमनाथजी महामेरु कैलासके जीर्णोद्धारकारक हैं । श्री प्रभाशङ्करजी संसारमें कीसके मान्य नहीं है । अपि तु सबके है । यह सत्य है और बारबार सत्य है कि शिवजी द्वारा रचित वृक्षार्णव और हरि रचित "क्षीरार्णव" सत्यधर्मके प्रवर्तक है । श्री प्रभाशंकरभाई शिल्पशास्त्रके ग्रन्थोके पुनरोद्धारक है । हे ! आदि देव ! आपको नमस्कार हो और हे ! शिल्प विशारद ! आपको भी नमस्कार है ।

शुभेच्छक स्नेहाधिन **मनसुखलालजी सोमपुरा ।**

श्री गणेशाय नमः श्री सरस्वत्यै नमः श्री विश्वकर्मणे नमः

श्री विश्वकर्मा विरचित

॥ क्षीरार्णव ॥

वास्तुशास्त्रम्

KSHIRARNAVA

—सुप्रभानाम्नी भाषाटीका—

(अध्याय० ९९) (क्रमांक अ० १)

श्री विश्वकर्मोवाच—

वृक्षार्णवं शिव. प्रोक्तं क्षीरार्णवं स्ततो हरिः
हरिहरोक्तं तं श्रेष्ठं ग्रंथाकारे प्रवर्तते ॥ १ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. શિવજીએ વૃક્ષાર્ણવ કહેલું. અને વિષ્ણુએ ક્ષીરાર્ણવ કહેલું તે શિવ અને વિષ્ણુના મુખથી વહેલું તે ઉત્તમ ગ્રંથના આકારે જગતમાં પ્રવર્ત્યું. ૧.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं । शिवजीने वृक्षाणवि कहा था और विष्णुने क्षीरार्णव कहा था । शिव और विष्णुके मुखसे निकला हुआ वह शास्त्र ग्रंथ के रूपमें जगतमें प्रचलित हुआ ।

प्रासादो देवरूपः स्यात् पादौ पाद शिलास्तथा
गर्भश्चैवोदरं ज्ञेयं जंघा पादोर्ध्व मुच्यते ॥ २ ॥

स्तंभाश्च जानवो ज्ञेया घंटा जिह्वा प्रकीर्तिता
दीपः प्राण रूपो ज्ञेया ह्यपाने जल निर्गतः ॥ ३ ॥

ब्रह्म स्थानं यदेतच्च तन्नाभिः परिकीर्तिता
हृदयं पीठिका ज्ञेया प्रतिमा पुरुषः स्मृतः ॥ ४ ॥

પ્રાસાદની રચનાને દેવ શરીર રૂપ કલ્પ્યું છે. પાયાની શિલા પગ રૂપે, ગર્ભગૃહ = ઉદર = પેટ રૂપે, પાયા પરની જગતી જાંઘ રૂપે, થાંભલા ઢીંચણ, ઘંટા જીભ રૂપે, દીપક–દીવો પ્રાણ રૂપે, ગુદા રૂપે પ્રનાલ = પરનાળ, દેવનું બ્રહ્મસ્થાન નાભિ, પીઠિકા રૂપે હૃદય, અને પ્રતિમા એ પુરુષ રૂપે જાણવું. ૨–૩–૪.

प्रासादकी रचना को देव शरीररूप माना गया है । नींवकी शिलाको पाँव के रूपमें, गर्भगृहको उदर के रूपमें, नींवकी भूमिको जंघाके रूपमें, स्तंभ को

जानुके रूपमें, घंटाको जिह्वाके रूपमें, दीपकको प्राणके रूपमें, प्रनाल को गुदाके रूपमें, देवके ब्रह्मस्थाको नाभि पीठिकाको हृदयके रूपमें और प्रतिमाको पुरुषके रूपमें जानना। २–३–४

पादचारस्त्वहंकारो ज्योतिस्तच्चक्षुरुच्यते
तदूर्ध्वं प्रकृतिस्तस्य प्रतिमात्मा स्मृतौ बुधैः ॥५॥
तलकुंभादधोद्वारं तस्य प्रजननं स्मृतम्
शुकनासा भवेन्नासा गवाक्षः कर्णउच्यते ॥६॥
कायापाली स्मृतः स्कंधे ग्रीवा चामलसारिका
कलशस्तु शिरोज्ञेयो मज्जादित्पर संयुतं ॥७॥

પગનો સંચાર અહંકાર, દીપનો પ્રકાશ ચક્ષુ રૂપે, ઉપરનો ભાગ તેની પ્રકૃતિ, પ્રતિમા આત્મા રૂપે બુદ્ધિમાને જાણવાં. દ્વારના કુંભીના તળથી નીચેનો ભાગ તે લિંગરૂપે જાણવો. શિખરનો શુકનાસ એ નાસિકારૂપ, ગવાક્ષ ઝરુખા કાનરૂપ, શિખરનો સ્કંધ તે ખભો અને આમલસારાનું ગળુ તે ગળુ કંઠ રૂપ, આમલસારાને કળશ તે મસ્તક રૂપે જાણવું. ચામડી અને તેની નીચેનો ભાગ તે ચુનાનું પ્લાસ્ટર જાણવો.

पद संचारको अहंकारके रूपमें, दीपकके प्रकाशको चक्षुके रूपमें उर्ध्वभागको उसकी प्रकृतिके रूपमें, प्रतिमाको आत्माके रूपमें बुद्धिमानोंको समझना चाहिये। द्वारके कुंभीके तलसे निम्न भागको लिङ्गके रूपमें जानना। शिखरके शुकनासको नासिकारूप, झरोंखों को कानरूप, शिखर के स्कंधको खंभा, और आमलसारा के कंठको कंठरूप, आमलसाके कलशको मस्तकरूप जानना। और उसके निम्न भाग को, जो खडीके प्लास्टर का है, चमडी समझनी। ५–६–७

मेदश्च वसुधा विद्यात् प्रलेपो मांसमुच्यते
अस्थिनो च शिलास्तस्य स्नायुकीलादयः स्मृताः ॥८॥
चक्षुषि शिखरा स्तस्य ध्वजाकेश प्रकीर्तिताः
एव पुरुषरूपं तु ध्यायेच्च मनसा सुधीः ॥९॥

પૃથ્વી મેદ રૂપે, માંસ ચુનાનો લેપ, હાડકાંઓ શિલારૂપે, ખીલા અને પાઉ–કુકરા તે સ્નાયુરૂપે ચક્ષુરૂપ શૃંગ–શિખરીઓ, ધ્વજા કેશરૂપે, એ રીતે પ્રાસાદના સર્વ અંગોનું પુરુષરૂપે મનથી ધ્યાન કરવું. ૮–૯

पृथ्वीका मेद के रूपमें, खडीके लेपका माँसके रूपमें, शिलाओंका हड्डीयों

के रूपमें, कीले, पांउ और कुकरों का स्नायुके रूपमें, शृंगका चक्षुके रूपमें, शिखरकी धजाओं का केशके रूपमें--अिस तरह प्रासादके सर्व अंगों का पुरुषरूपसे मनसे ध्यान करना। ८–९

नागरा द्राविडाश्चैव लतिनाश्च विमानकाः
मिश्रकाश्च वराटाश्च सांधारा भूमिजा स्तथा ॥१०॥
विमान नागरच्छंदा विमान पुष्पकाथवा
वल्लभा फांसनाकारा सिंहावलोका रथरूहा ॥११॥

પ્રાસાદની જાતિ છંદ ૧ નાગરાદિ ૨ દ્રાવિડાદિ ૩ લતિનાદિ ૪ વિમાનાદિ ૫ મિશ્રકાદિ ૬ વરાટાદિ ૭ સાંધારાદિ ૮ ભૂમિજાદિ ૯ વિમાન નાગરાદિ ૧૦ વિમાન પુષ્પકાદિ ૧૧ વલ્લભાદિ ૧૨ ફાસનાકારાદિ ૧૩ સિંહાવલોકનાદિ ૧૪ રથારૂહાદિ એમ પ્રાસાદની ચૌદ જાતિઓ જાણવી. ૧૦–૧૧

प्रासादकी च्छंद जाति १ नगरादि २ द्राविडादि ३ लतिनादि ४ विमानादि ५ मिश्रकादि ६ वराटादि ७ सांधारादि ८ भूमिजादि ९ विमान नागरादि १० विमान पुष्पाकादि ११ वल्लभादि १२ फासनाकारादि १३ सिंहावलोकनादि १४ रथारूहादि इसी तरह प्रासाद की चौदह जातियाँ जानने योग्य हैं। १०–११

एते चतुर्दश विख्याताः प्रासादजातयः स्मृताः
मृत्साकाष्टेष्टकाशैल धातु रत्न भवाः सुधीः ॥१२॥
कुर्यात् स्वशक्ति प्रासादश्चातुर्वर्गफलं भवेत्
पांसुनादि सुरागारे क्रीड्या विहितश्रितः ॥१३॥

દેવ મંદિરો માટીના. કાષ્ટ લાકડાનાં, ઈંટના, પાષાણનાં, ધાતુ રત્નાદિ વાસ્તુ દ્રવ્યાદિના, પ્રાસાદો પોતાની શક્તિ અનુસાર કરાવવાથી ચાર વર્ગ (ધર્મ અર્થ કામ અને અંતે મોક્ષ) ના ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે. માટી આદિના દેવમંદિરોમાં લક્ષ્મી ક્રીડા કરે છે.[1] ૧૨–૧૩

---

(૧) ક્ષીરાર્ણવ ગ્રંથની પ્રતો ગુજરાત સૌરાષ્ટ્રમાં ઘણી અશુદ્ધ અને અસ્ત–વ્યસ્ત સ્થિતિની, વિષયક્રમના અભાવવાળી, એક વિષય ફરી ફરી આવે, એક વિષય અધ્યાહાર રાખી બીજો વિષય આવે, તેવી પ્રતો ઘણી જોવામાં આવી છે. તેમાંથી બને તેટલો ક્રમ ગોઠવીને જુની પ્રતોના ક્રમને લક્ષ્યમાં રાખીને આ ગ્રંથ ક્રમબદ્ધ લખવા પ્રયાસ કરેલ છે. સૌરાષ્ટ્ર ગુજરાતની પ્રતોમાં પ્રાસાદને દેવ મનુષ્ય સ્વરૂપની કલ્પના અને ગણિત વિષય અમોને દેખવામાં આવતો નથી. કુર્મશિલાના ૧૦૧ અધ્યાયથી પ્રારંભ થાય છે. ગણિત વિષય અમોને રોયલ એશિયાટીક સોસાયટીની લાયબ્રેરીના ચોપડામાંથી જે પ્રાપ્ત છે તેમાં કેટલુંક અધ્યાહાર અને સંક્ષિપ્તમાં હોવાથી અમોએ તેની પૂર્તિ અનુવાદમાં કરી બને તેટલી અપૂર્ણતા ટાળવા પ્રયત્ન કરેલ છે.

मिट्टीके, ईंटके, पाषाणके, धातुके, रत्नादिके—इन वास्तु द्रव्यादिके देवमंदिर अपनी शक्तिके अनुसार बनवानेसे चार वर्ग (धर्म अर्थ काम और अंतमें मोक्ष) के फलकी प्राप्ति होती है। मिट्टी आदिके देवमंदिरोंमें लक्ष्मी क्रीडा करती है।[1] १२-१३

श्री नारदोवाच—

येनेदं सप्त लोकां तं त्र्यैलोक्यं सचराचरम्
तस्मै ईशाय नित्याय नमः श्री विश्वकर्मयो ॥ १ ॥
अव्यक्त व्यक्तता नित्यं येन विश्वंचराचरम्
तस्मै ईशाय नित्याय नमः श्री विश्वकर्मणे ॥ २ ॥
वास्तु कर्म लक्षणेन प्रासाद विधि युक्तितः
गणित ज्योतिषाचारं कथय मम प्रभो ॥ ३ ॥

શ્રી નારદજી કહે છે. જે સપ્તલોકના અંતે ત્રૈલોકમાં સચરાચર છે એની રચના કરવા વાળા એવા શ્રી વિશ્વકર્માને નિત્ય મારા નમસ્કાર હો. અવ્યક્ત જાણી ન શકાય અને વ્યક્ત જાણી શકાય એવા જે વિશ્વને વિષે સચરાચર છે તેની રચના કરવાવાળા નિત્ય ઈશ્વર શ્રી વિશ્વકર્માને મારા નમસ્કાર હો હે પ્રભુ! લક્ષણયુક્ત વાસ્તુકર્મ કે જે પ્રાસાદની વિધિ ગણિત અને જ્યોતિષના આચાર હે પ્રભુ! મને કહો. ૧-૨-૩

श्री नारदजी कहते हैं—जो सप्तलोकके अंतमें त्र्यैलोकमें सचराचर है उसकी रचना करनेवाले श्री विश्वकर्माको नित्य मेरा नमस्कार हो। अव्यक्त और

તે વાંચકવૃંદ દરગુજર કરે. આનંદની વાત એ છે કે પૂરા એકવીશ અંગો આ ગ્રંથમાં આપેલા છે. મહર્ષિ નારદમુનિ અને વિશ્વકર્માના સંવાદ રૂપ આ ગ્રંથ છે.

(१) गुजरात, सौराष्ट्रमें क्षीरार्णव ग्रंथकी हस्त प्रतें बहुत अशुद्ध, अस्त व्यस्त, विषय के अनुक्रमके अभाववालीं, विषयके पुनरावर्तनवालीं, एक विषयको छोडकर दूसरे विषय की चर्चावालीं, देखनेमें आयी हैं। उनमेंसे जितना होसके उतना क्रम मिलाकर पुरानी प्रतोंके क्रमको लक्ष्यमें लेकर यह ग्रंथ क्रमबद्ध लिखनेका प्रयास किया है। सौराष्ट्र गुजरातकी प्रतोंमें प्रासाद के देव मनुष्य स्वरूपकी कल्पना और गणित विषय बहुत करके देखनेको मिलता नहीं है। कुर्मशिला के १०१ अध्यायसे प्रारंभ होता है। गणित विषय हमें रोयल एशियाटीक सोसायटीकी लाईब्रेरी की पुस्तकोंमें से जो यत्किंचित् प्राप्त हुआ, उसमें कुछ अध्याहार और संक्षिप्तमें होनेसे हमने उसकी पूर्ति अनुवादमें करके जितनी हो सके उतनी अपूर्णता दूर करनेका प्रयत्न किया है, सो वाचकवृंद हमें क्षमा करें। यह आनंदकी बात है कि पूरे इक्किस अंग इस ग्रंथमें समाविष्ट हैं। महर्षि नारद मुनि और विश्वकर्माके संवादके रूपमें यह ग्रंथ प्रस्तुत है।

व्यक्त ऐसे विश्वमें जो सचराचर है उसकी रचना करनेवाले नित्य ईश्वर श्री विश्वकर्माको मेरा नमस्कार हो ।

हे प्रभु, लक्षणयुक्त वास्तुकर्म, प्रासादकी विधि, गणित और ज्योतिषके आचारको मुझे बताओ । १–२–३.

श्री विश्वकर्माउवाच—

(१) आय– शृणुवत्स महाप्राज्ञ यत्त्वं परिपृच्छसि
इदानीं तं कथयिष्यामि गणित वास्तु कर्मके ॥ ४ ॥
आयत्वं च पृथुत्वेन गुणयेदायकर्माणि
अष्टभिर्हरेत्भागं यत्शेषं आयादिशेत् ॥ ५ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. હે મહાગુણવાન વત્સ ! તમે જ્યારે પૂછો છો ત્યારે હું તમને હમણાં વાસ્તુકર્મનું ગણિત કહું છું. ક્ષેત્રના લંબાઈ અને પહોળાઈના અંકોને ગુણીને આઠે ભાગતાં જે શેષ રહે તે તેટલામો આય જાણવો. ૪–૫

श्री विश्वकर्मा कहते हैं—हे महागुणवान वत्स ! जब आप पूछते हो तो मैं अभी तुम्हें वास्तु कर्मका गणित कहता हूँ । क्षेत्रकी लंबाई और चौडाईके अंकोंको गुनकर आठसे विभाजित कर जो शेष रहे उतनी संख्याका आय समझना । ४–५

आयानां विषमेशुभे ध्वजः सिंहो वृषोगजः
अधमानो खरध्वांक्षः धूमः श्वानः सुखावह ॥ ६ ॥

તે આઠ આયોમાં જે વિષમ અંક વધે તે ૧ ધ્વજ ૩ સિંહ ૫ વૃષ ૭ ગજ એમ ચાર આય તે શુભ જાણવા અને બેકીસમ આયોમાં ૨ ધૂમ ૪ શ્વાન ૬ ખર ૮ ધ્વાંક્ષ એ અધમ છે પણ તેના સ્થાને સુખને દેનાર જાણવા.[२] ૬

उन आठ आयोंमें जो विषम अंक शेष रहे तो १ ध्वज ३ सिंह ५ वृष ७ गज इन चार आयोंको शुभ समझना और सम आयोंमें २ धूंम ४ श्वान ६ खर ८ ध्वांक्ष अधम हैं लेकिन वे अपने स्थान पर सुखकर समझना ।[२] ६

(૨) સ્થાનના આયનું સર્વ શિલ્પગ્રંથોમાં કહ્યું છે. પરંતુ દીપાર્ણવ જેવા ગ્રંથમાં મનુષ્યનો આય કાઢવાનું કહીને ઘરનો આય અને ઘરધણીના આયના પરસ્પર ભક્ષક ભાવ તજવાનું કહ્યું છે.

(२) स्थानके आयका सर्व शिल्पग्रंथोंमें उल्लेख है । लेकिन दीपार्णव जैसे ग्रंथमें मनुष्यका आय निकालनेके लिये कहकर घरका आय और घरके मालिकके आयके परस्पर भक्षक भावको तजनेके लिये कहा गया है ।

(२) नक्षत्र— आयामे यदि क्षेत्रंतु विस्तरं गुणयेदथ
सप्त विंशत्याहरेत्भागं शेषं स्यात् फलं निश्चयः ॥ ७ ॥
फलेचाष्ट गुणे तस्मिन् सप्ताविंशति भाजिते
यत्छेत्रं लभते तत्र नक्षत्रं तद्गृहेषुच ॥ ८ ॥

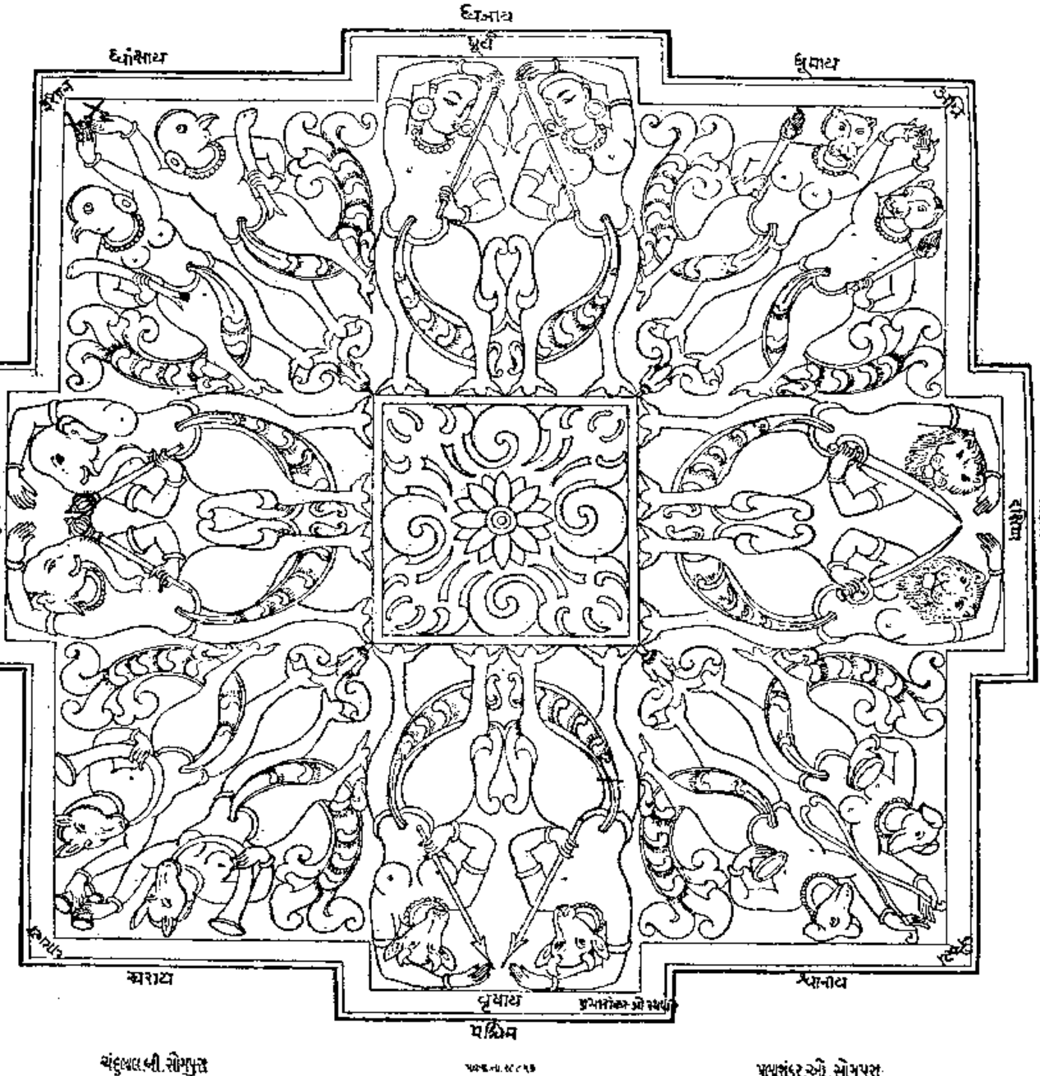

चंदुलाल.बी.सोमपुरा प्रभाशंकर.ओ.सोमपुरा

अष्ट आयका स्वरूप

ક્ષેત્રની લંબાઈ અને પહોળાને ગુણીને સત્તાવીશે ભાગતા જે શેષ રહે તે નિશ્ચયથી ફળ જાણવું (તે નક્ષત્રની મૂળ રાશ) તે ફળને આઠ ગુણા કરી સત્તાવીશે ભાગવાથી જે શેષ રહે તે વાસ્તુના નક્ષત્રનો અંક જાણવો.

क्षेत्रकी लम्बाई चौडाईको गुनकर सत्ताईशसे विभाजित करते जो शेष रहे उसे निश्चयसे फल जानना (उस नक्षत्रकी मूल राश) उस फलको आठ गुने कर सत्ताईशसे विभाजित करनेसे जो शेष रहे उसे वास्तुके नक्षत्रका आंक समझना। ७–८.

समचोरस ओर छ आंगुळ सुधीका कमीजास्तीका देवगण नक्षत्रो ओर शुभ आय मीलानेका कोष्टक अंक गज ओर आंगुळका है।

लंबाई चौडाई	देवगणा नक्षत्रो	लंबाई चौडाई	देवगणा नक्षत्रो	लंबाई चौडाई	देवगणा नक्षत्रो
१–१ × ०–२१	स्वाति	● १–१३×१–१३	अनुराधा	● २–१५×२–१५	रेवती
● १–१ × १–१	मृगशीर्ष	१–१५×१–२१	रेवती	२–१५×२–२१	रेवती
१–१ × १–५	श्रवण	१–१९×२–१	पुष्य	२–१७×२–११	पुष्य
१–१ × १–७	अनुराधा	१–१९×१–२३	श्रवण	२–१९×३–१	मृगशीर्ष
———		● १–२१×१–२१	रेवती	२–१९×२–२३	हस्त
		१–२१×२–३	रेवती	२–२१×२–२३	स्वाति
● १-३ { १–१, १–३, १–५, १–७, १–९ }	रेवती	२–१×२–५	हस्त	———	
		———		● २–२३×२–२३	अनुराधा
———		● २–५×२–५	पुष्य	३–१×३–५	हस्त
● १–५ × १–५	मृगशीर्ष	● २–७×२–७	पुष्य	३–१×३–९	रेवती
१–५ × १–९	स्वाति	२–७×२–११	हस्त	३–३×३–७	स्वाती
१-७ × १–११	हस्त	२–१३×२–१७	श्रवण	३–३×३–९	रेवती
१–११×१–१७	मृगशीर्ष	२–१५×२–९	रेवती	३–५×३–९	रेवती
१–१३×१–१५	स्वाति	———			
१–१३×१–१७	हस्त				
———					

उपर प्रमाणे देवगणा नक्षत्रो और शुभ आय मीलानेके लीये बडा क्षेत्र-गणीत मिलाना हो तो २–६ (ग. आ.) के ४–१२ (ग. आ.) के ६–१८ (ग. आ.) के नवगज उपरोक्त अंकमें मिलानेसे उपर लिखा वोहि देवगणा नक्षत्रो आयगा यह सरल रीत है।

धारेला देव तथा मनुष्य गणका नक्षत्रो लानेके लीये क्षेत्रकी दोनु ओर आंगुलका अंक लानेका कोष्टक

चंद्र	पूर्व			दक्षिण		पश्चिम		उत्तर		पूर्व		दक्षिण		पश्चिम		उत्तर		
बधेला अंक	मृगशीर्ष	पुनर्वसु	पुष्य	हस्त	स्वाति	अनुराधा	श्रवण	अश्विनी	रेवती	रोहिणी	आर्द्रा	पू. फाल्गुन	उ. फाल्गुन	पू. षाढा	उ. षाढा	भरणी	पू. भाद्रपद	उ. भाद्रपद
१	४	११	१	५	१२	१९	२३	१७	२७	१४	२१	२५	१५	१६	६	७	२०	१०
२	२	१९	१४	१६	६	२३	२५	२२	२७	७	२४	२६	२१	८	३	१७	१०	५
३	—	—	—	—	४-२२ १३	—	—	—	२७-९ १८	—	७-१६ २५	—	२३-५ १४	—	२-११ २०	—	—	—
४	१	२३	७	८	३	२५	२६	११	२७	१७	१२	१३	२४	४	१५	२२	५	१६
५	१७	१३	११	१	२४	२०	१०	२५	२७	१९	१५	५	३	१४	१२	२३	४	२
६	—	—	—	—	२-२० ११	—	—	—	२७-१८ ९	—	८-१७ २६	—	७-१६ २५	—	१-१० १९	—	—	—
७	१६	१७	४	२०	२१	२२	११	१४	२७	२	३	१९	६	१०	२४	१	२६	१३
८	१४	२५	१७	४	१५	२६	१३	१९	२७	२२	६	२०	१२	२	२१	१	१६	८
९	—	—	—	—	—	—	—	—	३-६-१२ १८-२१-२७	—	—	—	—	—	—	—	—	—
१०	२२	२०	१९	१४	१२	१०	५	२६	२७	२३	२१	१६	१५	७	६	२५	२	१
११	२०	१	५	२९	६	१४	७	४	२७	१६	२४	१७	२१	२५	३	८	१९	२३

१२	—	—	—	—	१-१० १९	—	—	—	९-१८ २७	—	१३-४ २२	—	८-१७ २६	—	५-१४ २३	—	—	—
१३	१९	५	१५	१७	३	१६	८	२०	२७	२६	१२	४	१४	२२	१५	१३	१४	७
१४	८	२२	२	१०	२४	११	१९	७	२७	१	१५	२३	३	५	१२	१४	१३	२०
१५	—	—	—	—	८-१७ २६	—	—	—	२७-९ १८	—	५-१४ २३	—	१-१९ १०	—	१३-४ २२	—	—	—
१६	७	२७	२२	२	२१	१३	२०	२३	२७	११	३	१०	६	१	२४	१९	८	४
१७	५	७	८	१३	१५	१७	२२	१	२७	४	६	११	१२	२०	२१	२	२५	२६
१८	—	—	—	—	—	—	—	—	२७-३-६-९ १५-१८-२१-२४	—	—	—	—	—	—	—	—	—
१९	१३	२	१०	२३	१३	१	१४	८	२७	५	२१	७	१५	२५	६	१६	११	१९
२०	११	१०	२३	७	६	५	१६	१३	३७	२५	२४	८	२१	१७	३	२६	१	१४
२१	—	—	—	—	२५-७ १६	—	—	—	२७-७ १८	—	१९-१ १०	—	२०-२ १	—	१७-८ २६	—	—	—
२२	१०	१४	१६	२६	३	७	१७	२	२७	८	१२	२२	२४	१३	१५	४	२३	२५
२३	२६	४	२०	१९	२४	२	१	१६	२७	१०	१५	१४	३	२३	१२	५	२२	११
२४	—	—	—	—	५-१० २३	—	—	—	९-१८ २७	—	२-११ २०	—	४-१३ २२	—	७-१६ २५	—	—	—
२५	२५	८	१३	११	२१	४	२	५	२७	२०	३	१	६	१९	२४	१०	१७	२२
२६	२३	१६	२६	२२	१५	८	४	१०	२७	१३	६	२	११	१९	२१	२०	७	१७
२७	—	—	—	—	—	—	—	—	१ थी २७ का सर्व अंको	—	—	—	—	—	—	—	—	—

आगळना १ से २७ अंको एक पक्ष और उपरका छुटा छुटा अंको लंबाई चौडाईकी दुसरी पक्षका समजना.

(३) व्यय— नक्षत्रं वसुभिर्भक्तं यत्तच्छेषं व्ययो भवेत्
समोव्ययः पिशाचश्च राक्षसश्च व्ययोऽधिकः ॥
व्ययो न्यूनो नरोत्कक्षो—धनधान्यकरः स्मृतः ॥ ९ ॥

નક્ષત્રના અંકને આઠે ભાગતાં જે શેષ રહે તે વ્યય જાણવો. આયનો અંક અને વ્યયનો અંક એક સરખો આવે તો પિશાચ જાણવો. જો વ્યયતો અંક અધિક આવે તો રાક્ષસ જાણવું અને જો વ્યયનો અંક આય કરતાં ઓછો આવે તો શ્રેષ્ઠ અને ધનધાન્યને દેનાર જાણવો. ૯

नक्षत्रके अंकका आठसे विभाजित करनेमें जो शेष रहे उसे व्यय समझना। आयका अंक और व्ययका अंक समान हो तो पिशाच जानना। जो व्ययका अंक अधिक आवे तो राक्षस समझना और जो व्ययका अंक आयसे कम आवे तो श्रेष्ठ और धन धान्यको देखनेवाला समझना। ९.

(४) अंशक— मूलराशौ व्ययं क्षिप्यं गृहनामाक्षराणिच
त्रिभिरेवं हरेद्भागो यच्छेषं तदंशकः ॥ १० ॥
इंद्रो यमश्च राजानां अंशक स्त्रिभिरेवच
प्रमाणं त्रिविधोत्कतव्या ज्येष्ठ मध्यम कन्यसाः ॥ ११ ॥

નક્ષત્રની મૂળરાશિનો અંક, વ્યયનો અંક, અને ઘરના નામાક્ષરનો અંક, એ ત્રણેનો સરવાળો કરી તેને ત્રણે ભાગતાં શેષ રહે તે ૧ ઇંદ્ર ૨ યમ ૩ રાજાંશ એમ અનુક્રમે ત્રણ અંશક જાણવા. એ ત્રણ પ્રમાણની જ્યેષ્ઠ મધ્યમને કનિષ્ઠ ત્રણ વિધિ છે.[3] (ત્રણ અંશકનાં સ્થાન નીચે ફૂટનોટમાં આપેલા છે.)

नक्षत्रकी मूल राशीका अंक, व्ययका अंक, और घरके नामाक्षरका अंक, इन तीनोंको मिलाकर उसे तीनसे विभाजित करते जो शेष रहे वह १ इन्द्र २ यम ३ राजांश इसी तरह अनुक्रमसे तीन अंशक जानना। इन तीन प्रमाण की ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ—तीन विधियाँ हैं। (तीन अंशकके स्थान नीचे फूटनोटमें दिये हैं)।[3]

(૩) (૧) ઇન્દ્રાંશક—પ્રાસાદ, પ્રતિમા, લિંગ, પીઠ, મંડપ, વેદી કુંડ, વિપ્રગૃહ ધ્વજાદંડ, પતાકા, ગાન શાળા, અલંકાર, અને વસ્ત્રના સ્થાને ઇન્દ્રાંશક આપવો.
(૨) યમાંશક—નાગદેવને ભૈરવ, નવગ્રહ, સપ્તમાતૃકા, દુર્ગા એ બધા પ્રાસાદો, વેપારીની દુકાન, મદ્ય માંસની દુકાને, સર્વ અસ્ત્રોને એ સર્વ સ્થાને યમાંશક આપવો તે શુભ છે.
(૩) ગજાંશક—રાજ સિંહાસન, પલંગ, પાલખી, રાજગૃહ, અશ્વગજશાળા, નગર ગ્રામની રચનામાં અને સાધારણ ઘરોને વિષે ગજાંશક આપવો તે શુભ છે.

(५) तारा— गणयेत्स्वामि नक्षत्रं यावद्दक्षं गृहस्य च
नवभिश्च हरेत्भागं शेषे ताराः प्रकीर्तिताः ॥ १२ ॥
ताराः षड् शुभा श्चेकाद्वि चतुः षड्चाष्टनवके
त्रि पंच सप्तभिः श्रै एभि तारा विवर्जिता ॥ १३ ॥

ઘરધણીના નામના નક્ષત્રથી ઘરના નક્ષત્ર સુધી ગણુતો જે અંક આવે તેને નવે ભાગતાં જે શેષ રહે તેટલામી તારા જાણુવી. છતારા શુભ જાણુવી. પહેલી બીજી ચોથી છઠ્ઠી આઠમી અને નવમી તારા શુભ છે. અને ત્રીજી પાંચમી સાતમી એ ત્રણ તારા નેષ્ઠ છે તે તજવી.[४] ૧૨–૧૩

गृहपतिके नामके नक्षत्रसे घरके नक्षत्र तक गिनते जो अंक आवे उसे नौसे विभाजित करते जो शेष रहे इतनी संख्याकी तारा जानना। छः ताराको शुभ समझना। ये प्रथम, दूसरी, चौथी, षष्ठी, और अष्टमी, नवमी शुभ जानना। तीसरी, पाँचवीं और सातवीं ये तीन तारा नेष्ठ हैं—इन्हें छोडना चाहिये। १२–१३[४]

(६) गण— पुनर्वस्वश्विनी पुष्य मृगश्रवण रेवती
स्वाति हस्तानुराधा च एते देवगणाः स्मृताः ॥ १४ ॥
भरणी रोहिणी चार्द्रा पूर्वाणां तृतीयं तथा
उत्तरात्रितयं चैव नवैते मानुषागणाः ॥ १५ ॥
विशाखा कृतिकाश्लेषा मघा च शततारका
चित्रा ज्येष्ठा धनिष्ठा च मूलमे ते च राक्षसाः ॥ १६ ॥

(३) (१) इन्द्रांशक–प्रासाद, प्रतिमा, लिङ्ग, पीठ, मंडप, वेदी, कुण्ड, विप्रगृह, ध्वजादण्ड पताका, गानशाला, अलंकार और वस्त्रके स्थानपर इन्द्रांशक देना।

(२) यमांशक–नागदेवको भैख, नौग्रह, सप्त मातृका, दुर्गा ये सब प्रसादों व्यापारीकी दुकान, मद्य माँसकी दुकानको, सर्व अस्त्रोंको–इन सर्व स्थानोंको यमांशक देना शुभ है।

(३) गजांशक–राज सिंहासन, पर्यंक, पालखी, राजगृह, अश्वगज शाला, नगर ग्रामकी रचनामें और सामान्य घरोंके लिये गजांशक देना शुभ है।

(४) તારાનાં નામો–૧ શાંતા ૨ મનોહરા, ૩ ક્રૂરા ૪ વિજયા ૫ કલોદ્ભવા ૬ પદ્મિની ૭ રાક્ષસી ૮ વીરા ૯ આનંદા એ નવ તારાઓમાં ૩ ક્રૂરા ૫ કલોદ્ભવા ૭ રાક્ષસી એ ત્રણ તારા અશુભ કહી છે.

(४) ताराके नाम–१ शांता २ मनोहरा ३ क्रूरा ४ विजया ५ कलोद्भवा ६ पद्मिनी ७ राक्षसी ८ वीरा ९ आनंदा इन नौ ताराओंमें ३ क्रूरा ५ कलोद्भवा ७ राक्षसी तीन ताराओंको अशुभ कहा गया है।

દેવગણનાં નક્ષત્રો–પુનર્વસુ, અશ્વિની; પુષ્પ, મૃગશીર્ષ, શ્રવણ, રેવતી, સ્વાતિ હસ્ત અને અનુરાધા એટલા નવ નક્ષત્રો દેવગણના જાણવા–ભરણી, રોહીણી, આર્દ્રા. ત્રણે પૂર્વા. ત્રણ ઉત્તરા એ નવ નક્ષત્રો મનુષ્યગણનાં છે. રાક્ષસગણનાં નક્ષત્રો–વિશાખા, કૃતિકા, અશ્લેષા, મઘા, શતભિખા, ચિત્રા, જ્યેષ્ઠા, ધનિષ્ઠા, અને મૂળ એટલા નવ નક્ષત્રો રાક્ષસ ગણનાં જાણવાં.

देवगणके नक्षत्र—पुनर्वसु, अश्विनी, पुण्य, मृगशीर्ष, श्रवण, रेवती, स्वाति हस्त और अनुराधा ये नौ नक्षत्र देवगणके हैं ।

मनुष्य गणके नक्षत्र—भरणी, रोहीणी, आर्द्रा, तीन पूर्वा और तीन उत्तरा ये नौ नक्षत्र मनुष्यगणके हैं । राक्षसगणके नक्षत्र–विशाखा, कृतिका, अश्लेषा, मघा, शतभिखा, चित्रा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, और मूल–ये नौ नक्षत्र राक्षसगणके हैं ।

स्वगणे चोत्तमा प्रीति–र्मध्यमा देव मानुषे
कलहो देव दैत्यानां मृत्युर्मानव राक्षसै ॥ १७ ॥

ઘર અને ઘરધણીના નક્ષત્રનો જો એક જ ગણ હોય તો ઉત્તમ પ્રીતિ દાયક જાણવું. જો એકનો દેવગણ અને બીજાનો મનુષ્યગણ હોય તો મધ્યમ જાણવું. અને જો એકનો દેવગણ અને બીજાનો રાક્ષસગણ હોય તો હંમેશાં ક્લેશ કરાવે. જો એકનો મનુષ્ય ગણ અને બીજાનો રાક્ષસગણ હોય તો મૃત્યુ કરાવે.[૫] ૧૭

घर और घरके मालिकके नक्षत्रका जो एक ही गण हो तो उत्तम प्रीतिदायक जानना । जो एकका देवगुण और दूसरेका राक्षसगण हो तो हमेशां क्लेश कारक बना रहे । जो एकका मनुष्यगण और दूसरेका राक्षसगण हो तो मृत्यु करनेवाला बने । १७[५].

(७) चंद्र— कृतिकादि सप्तसप्त पूर्वादितः प्रदक्षिणे
अष्टा विंशति ऋक्षाणि ततः चंद्र मुदीरयेत् ॥ १८ ॥
अग्रतो हरते आयु पृष्ठतो हरते धनं
वाम दक्षिण तो चंद्रो धनधान्य करस्मृताः ॥ १९ ॥

---

(૫) ગણના સંબંધમાં મનુષ્યના કે દેવના જન્મ નક્ષત્ર ના ગણ પરથી કહેલું છે. પરંતુ સામાન્ય રીતે દેવનો દેવગણ અને મનુષ્યનો મનુષ્યગણ અને યવનમ્લેચ્છનો રાક્ષસગણ આમ માનવાની શિલ્પીઓની પ્રથા છે.

(५) गणके बारेमें मनुष्यके या देवके जन्म नक्षत्रके गणके उपरसे कहा गया है । लेकिन सामान्यतः देवका देवगण और मनुष्यका मनुष्यगण और यवन म्लेच्छका राक्षसगण माननेकी शिल्पीओंकी प्रणालिका है ।

प्रासादे राजवेश्मसु चंद्रोदद्याच्चसन्मुखः
अन्येषां च न दातव्यं श्रीमंतादि गृहेषुच ॥ २० ॥

કૃતિકાથી સાત નક્ષત્રો પૂર્વમાં મઘાથી સાત નક્ષત્રો દક્ષિણમાં અનુરાધાથી સાત નક્ષત્રો અને સાભિજિત સહિત સાત નક્ષત્રો પશ્ચિમમાં અને ધનિષ્ઠાથી સાત નક્ષત્રો ઉત્તરમાં એમ સાત સાત નક્ષત્રો ચારે દિશાઓમાં પ્રદક્ષિણાએ જાણવા. એટલે જે નક્ષત્ર જે દિશાનું હોય ત્યાં તેનો ચંદ્રમા જાણવો. ઘરને સન્મુખ ચંદ્રમા હોય તો આયુષ્ય હરે. પાછળ ચંદ્રમા હોય તો લક્ષ્મીનો નાશ થાય. ડાબી જમણી તરફ ચંદ્રમા હોય તો ધન અને ધાન્યની વૃદ્ધિ થાય. પ્રાસાદ અને રાજભવનને વિષે ચંદ્રમા સન્મુખ દેવો (ડાબી જમણી તરફ પણ આપી શકાય) બાકી બીજા વર્ણને કે શ્રીમંતના ઘરને પણ સન્મુખ ચંદ્રમા ન દેવો. ૧૮–૧૯–૨૦ [૬]

कृतिकासे सात नक्षत्र पूर्वमें, मघासे सात नक्षत्र दक्षिणमें, अनुराधासे सात नक्षत्रों और साभिजित सहित सात तक्षत्रों पश्चिममें और धनिष्ठासे सात नक्षत्रों उत्तरमें, इसी तरह सात सात नक्षत्रों चारों दिशाओंमें प्रदक्षिणासे जानना। अर्थात् जो नक्षत्र जिस दिशाका हो वहाँ उसका चँद्रमा जानना। घरके सन्मुख चँद्रमा हो तो आयुष्य हरता है। पीछे चँद्रमा हो तो लक्ष्मीका नाश होता है। बायीं और दायीं तरफ चँद्रमा हो तो धन धान्यकी घृद्धि होती है। प्रासाद और राजभवन आदि के लिये चँद्रमा सन्मुख देना। (बायीं–दायीं तरफ भी देते हैं।) इसके अलावा दूसरे वर्णको या श्रीमंत के घरको भी सन्मुख चँद्रमा नहीं देना। १८–१९–२०[६]

८राशि गृहक्षेत्रेच यद्दृक्षं षष्टिभिर्गुणितं तथा
पंचत्रिंशच्छतै भंक्त्वाच्छेषं भुक्ति रजादयः ॥ २१ ॥
अश्विन्यादित्रयं मेषः सिंहः प्रोक्तो मघात्रयं
मूलादि त्रितयं चापः शेषेषु नवराशयः ॥ २२ ॥

વાસ્તુઃ ઘરના ક્ષેત્રનું જે નક્ષત્ર આવ્યું હોય તેને સાઠે ગુણીને એકસો

(૬) ચંદ્રમાને મેળવવા વિષયમાં સૂત્રધાર રાજસિંહ વિરચિત "वास्तुराज" અ૦ ૭માં કહ્યું છે કે पार्श्वा दक्षिण वामेषु भवनाग्रे देव भूपयो । દેવને રાજ ભવનને સન્મુખ અને ડાબી જમણી તરફ ચંદ્રમા આપવો.

(६) चँद्रमाको मिलानेके विषयमें सूत्रधार राजसिंह विरचित 'वास्तुराज' अ० ७ में कहा गया है कि **पार्श्वे दक्षिण वामेषु भवनाग्रे देवभूपयो**। देव और राजभवनको सन्मुख और बायीं दायीं तरफ चँद्रमा देना।

गृहस्वामी के नाम परसे और गृहका नक्षत्र परसे राशि जाननेका कोष्टक

गृहस्वामीका नामाक्षर	ड ह	द च झ थ	न य	अ ल इ	म ट	भ ध फ ढ	ब व उ	प ठ ण	ख ज	क छ घ	र त	ग श
बार राशि	क की घ	मीन १२	वृश्चिक ८	मेष १	सिंह ५	धन ९	वृष २	कन्या ६	मकर १०	मिथुन ३	तुला ७	कुंभ ११
नक्षत्र	—	—	—	कृतिका ३	उ. फाल्गुन १२	उ. षाषा २१	—	—	—	—	—	—
	अश्लेषा ९	रेवती २७	जेष्ठा १८	भरणी २	पू. फाल्गुन ११	पू. षाढा २०	मृगशिर्ष ५	चित्रा १४	धनिष्ठा २३	पुनर्वसु ७	विशाख १६	पू. भाद्र २५
	पुष्य ८	उ भाद्र २६	अनुराधा १७	अश्वीनी १	मघा १०	मूल १९	रोहिणी ४	हस्त १३	श्रवण २२	आर्द्रा ६	स्वाति १५	शतभिष २४
जाति	ब्राह्मण जाति			क्षत्रिय जाति			वैश्य जाति			शुद्र जाति		

પાંત્રીશે ભાગવા જે શેષ રહે તે ચાલુ મેષાદિ ભુક્ત રાશિ જાણવી. (લબ્ધી આવે તે ગત રાશિ જાણવી.) અશ્વિની ભરણીને કૃતિકા એ ત્રણ નક્ષત્રોની મેષ રાશિ, મઘા, પૂ. ફાલ્ગુની, ઉ. ફાલ્ગુની એ પણ નક્ષત્રોની સિંહ રાશિ જાણવી. મૂળ, પૂ.ષાઢા એ ત્રણ નક્ષત્રોની ધન રાશિ જાણવી. બાકી બબ્બે નક્ષત્રોની એકેક રાશિ એમ નવ રાશિ જાણવી. ૨૧–૨૨

वास्तु—घरके क्षेत्रका जो नक्षत्र आया हो उसे साठसे गुनकर एक सौ पैंतीससे विभाजन करते जो शेष रहे वह चालु मेषादि भुक्त राशि जानना। (लब्धी आवे, वह गत राशि है।) अश्विनी, भरणी, और कृतिका—ये तीन नक्षत्रोंकी मेष राशि—मघा, पू—फाल्गुनी, उ—फाल्गुनी ये तीन नक्षत्रोंकी सिंह राशि जानना। इसके अतिरिक्त दो दो नक्षत्रोंकी एक राशि इस तरह नौ राशि समझना। २२ ८ इति राशि.

कर्कमीन वृश्चिकते विप्र मेष सिंह धन ते क्षत्रिय
वृषकन्या मकर ते वैश्य मिथुन तुला कुंभ ते शुद्रक
गृहस्वामी समोच्च जात्या न जात्या गृहस्योच्च च ॥ २३ ॥

કર્ક મીન અને વૃશ્ચિક રાશિની બ્રાહ્મણ જાતિ, મેષ સિંહ અને ધનની ક્ષત્રિય જાતિ, વૃષ કન્યાને મકરની વૈશ્ય જાતિ, મિથુન તુલાને કુંભની શુદ્ર જાતિ જાણવી. ઘરની રાશિની જાતિ એક હોય અગર ઘરધણીની રાશિની જાતિ એક હોય અગર ઘરધણીની રાશિ ઉચ્ચ જાતિ હોય તો શ્રેષ્ઠ જાણવું. પરંતુ જો ઘરની રાશિથી ઘરધણીની રાશિની ઉચ્ચ જાતિ હોય તો તે કનિષ્ઠ જાણી તેવું ન કરવું. ૨૩

घरकी राशिकी जातिसे गृहपतिकी जाति समान हो अगर गृहपतिकी राशिकी उच्च जाति हो तो श्रेष्ठ समझना। लेकिन जो घरकी राशिसे गृहपति की जाति उच्च हो तो उसे कनिष्ठ जान कर वैसा नहीं करना। २३[७] इति राशि अङ्क ॥ ८ ॥

९ राशि मैत्री सप्तमे चोत्तमा प्रीतिः षडष्टे मरणं ध्रुवं।
(षडाष्टक) नवपंचमिते क्लेशः पुष्टि र्द्वदश चतुर्थके ॥ २४ ॥
तृतीयैएकादशमैत्री द्वितीये द्वादशे रिपुः।
एवं च षड्विधोक्तव्यं शेषेषु प्रीतिरुत्तमा ॥ २५ ॥

(७) भाषा छंद—

कर्कमीन वृश्चिक ते विप्र, मेष सिंह धन ते क्षत्रिय
वृषकन्या मकर ते वैश्य, मिथुन तुला ते कुंभ क्षुद्रक ॥
गृह अने स्वामि समानजात अथवा स्वामि उच्च जात
शुभ फलदाता कहिये एह धन धान्यनी वृद्धि करेह ॥

भवन ओर भवनपतिकी राशि परसे

		अ ब ई	ख व उ	क छ घ	ङ ह
भवनका नक्षत्रो	राशि	मेष १	वृषभ २	मिथुन ३	कर्क ४
अश्विनी १ भरणी २ कृतिका ३	मेष १	इष्ट	दरिद्र	श्रेष्ट	श्रेष्ट
रोहीणी ४ मृगशिर्ष ५	वृषभ २	दरिद्र	इष्ट	दरिद्र	श्रेष्ट
आर्द्रा ६ पुनर्वसु ७	मिथुन ३	श्रेष्ट	दरिद्र	इष्ट	दरिद्र
पुष्य ८ अश्लेषा ९	कर्क ४	श्रेष्ट	श्रेष्ट	दरिद्र	इष्ट
मघा १० पू. फा. ११ उ. फा. १२	सिंह ५	क्लेश	श्रेष्ट	श्रेष्ट	दरिद्र
हस्त १३ चित्रा १४	कन्या ६	मरण	क्लेश	श्रेष्ट	श्रेष्ट
स्वाति १५ विशाखा १६	तुला ७	प्रीति	मरण	क्लेश	श्रेष्ट
अनुराधा १७ जेष्ठा १८	वृश्चिक ८	मरण	प्रीति	मरण	क्लेश
मूल १९ पू. षाढा २० उ. षाढा २१	धन ९	क्लेश	मरण	प्रीति	मरण
श्रवण २२ धनिष्ठा २३	मकर १०	श्रेष्ट	क्लेश	मरण	प्रीति
शतभिषा २४ पू. भाद्रा २५	कुंभ ११	श्रेष्ट	श्रेष्ट	क्लेश	मरण
उ. भाद्रपद २६ रेवती २७	मीन १२	दरिद्र	श्रेष्ट	श्रेष्ट	क्लेश

इष्ट अनिष्ट खडाष्टक दर्शक कोष्टक

म ट	प ठ ण	र त	न य	भ ध फ ढ	ज ख	ग म	द च झ घ
सिंह ५	कन्या ६	तुला ७	वृश्चिक ८	धन ९	मकर १०	कुंभ ११	मीन १२
क्लेश	मरण	प्रीति	मरण	क्लेश	श्रेष्ट	श्रेष्ट	दरिद्र
श्रेष्ट	क्लेश	मरण	प्रीति	मरण	क्लेश	श्रेष्ट	श्रेष्ट
श्रेष्ट	श्रेष्ट	क्लेश	मरण	प्रीति	मरण	क्लेश	श्रेष्ट
दरिद्र	श्रेष्ट	श्रेष्ट	क्लेश	मरण	प्रीति	मरण	क्लेश
इष्ट	दरिद्र	श्रेष्ट	श्रेष्ट	क्लेश	मरण	प्रीति	मरण
दरिद्र	इष्ट	दरिद्र	श्रेष्ट	श्रेष्ट	क्लेश	मरण	प्रीति
श्रेष्ट	दरिद्र	इष्ट	दरिद्र	श्रेष्ट	श्रेष्ट	क्लेश	मरण
श्रेष्ट	श्रेष्ट	दरिद्र	इष्ट	दरिद्र	श्रेष्ट	श्रेष्ट	क्लेश
क्लेश	श्रेष्ट	श्रेष्ट	दरिद्र	इष्ट	दरिद्र	श्रेष्ट	श्रेष्ट
मरण	क्लेश	श्रेष्ट	श्रेष्ट	दरिद्र	इष्ट	दरिद्र	श्रेष्ट
प्रीति	मरण	क्लेश	श्रेष्ट	श्रेष्ट	दरिद्र	इष्ट	दरिद्र
मरण	प्रीति	मरण	क्लेश	श्रेष्ट	श्रेष्ट	दरिद्र	इष्ट

આગળ કહ્યું તેમ અશ્વિનીથી ત્રણ નક્ષત્રની મેષ રાશિ મઘાથી ત્રણ નક્ષત્રની સિંહ રાશિ મૂળથી ત્રણ નક્ષત્રની ધનરાશિ જાણવી. બાકી બબ્બે નક્ષત્રોની એકેક રાશિ જાણવી.

ઘરની રાશિથી ઘરના સ્વામીની રાશિ ગણતાં જો સાતમી આવે તો પ્રીતિ કરાવે. છઠ્ઠી કે આઠમી આવે તો મૃત્યુ કરાવે નવમી કે પાંચમી આવે તો કલેશ કરાવે. બીજી કે બારમી આવે તો શત્રુતા કરાવે. ચોથી કે દસમી આવે તો પુષ્ટિ કરાવે. ત્રીજા કે અગ્યારમી આવે તો મૈત્રી ભાવ જાણવો એ રીતે ખડાષ્ટક કહ્યું. બાકી પ્રીતિ કર્તા છે. ૨૪–૨૫

पूर्वोक्तिके अनुसार अश्विनीसे तीन नक्षत्रकी मेष राशि मघासे तीन नक्षत्रकी सिंह राशि मूलसे तीन नक्षत्रकी धन राशि समझना। इसके अलावा दो दो नक्षत्रोंकी एक एक राशि जानना।

रोहिणी–मृगशीर्ष	आर्द्रा पुनर्वसु	पुष्य अश्लेषा	हस्त चित्रा	स्वाति विशाखा
वृष	मिथुन	कर्क	कन्या	तुला

अनुराधा ज्येष्ठा	श्रवण धनिष्ठा	शतभिषा–पू. भाद्रपद	उ. भाद्रपद रेवती
वृश्चिक	मकर	कुंभ	मीन

घरकी राशिसे घरके स्वामिकी राशि गिनते जो सातवीं आवे तो प्रीति कारक है। छट्टी या आठवीं आवे तो मृत्युकारक बने। नौवीं या पाँचवीं आवे तो क्लेश कारक बने। दूसरी या बारहवीं आवे तो शत्रुता करानेवाली बने। चौथी या दसवीं आवे तो पुष्टिकारक बने। तीसरी या ग्यारहवीं राशि आवे तो मैत्री भाव जानना। इसी तरह षडाष्टक कहा गया है। इसके सिवा प्रीतिकर्ता है। २४–२५

१० गृह मैत्री–मेष वृश्चिकयो र्भौमः शुक्रो वृष तुलाधिपः।
कन्या मिथुनयोः सौम्यः कर्कस्य चँद्रमा स्मृतः॥ २६॥
सूर्यक्षेत्रे भवेत्सिंह धनमीने सुरोरगुरुः।
मकरकुंभे शनि श्चैवं एते क्षेत्र गृहाधिपाः॥ २७॥
आत्मक्षेत्रे न पीडयंते स्वस्थाने क्षेत्रपालकाः।
विषम स्थाने प्रपीडयेत् इति च गृहेमाः स्मृताः॥ २८॥

બારે રાશિના સ્વામિ કહે છે. મેષ અને વૃશ્ચિકનો સ્વામિ મંગળ તુલા અને વૃષનો શુક્ર, કન્યાનો મિથુનનો બુધ, કર્કનો સ્વામિ સોમ સિંહનો સૂર્ય, ધન અને મિનનો ગુરુ, મકર અને કુંભ રાશિનો સ્વામિ શનિ જાણવો. આ સાત ગ્રહોને બાર રાશિ ક્ષેત્રના અધિપતિ જાણવા. તે પોત પોતાની રાશિમાં

સ્વસ્થ રહી પીડા ન કરે પોતાના આપ્તજન (મિત્ર)ના ક્ષેત્રસ્થાનમાં હોય તો પણ પીડા ન કરે પણ શત્રુસ્થાન વિષમસ્થાનમાં પીડા કરે તેથી શત્રુ મિત્રભાવ જોવો. ૨૬–૨૭–૨૮

बारह राशिके स्वामिके बारेमें कहा जाता है । मेष और वृश्चिकका स्वामि मंगल, तुला, और वृषका शुक्र, कन्या और मिथुनका बुध, कर्कका स्वामि सोम, सिंहका सूर्य धन और मिनका गुरु, मकर और कुंभ राशिका स्वामि शनि समझना । इन सातों ग्रहोंको बारह राशि क्षेत्रके अधिपति समझना । वे अपनी राशिमें स्वस्थ रहकर पीडा न करें। अपने आप्तजन (मित्र) के क्षेत्रस्थानमें हो तो भी पीडा न करें लेकिन शत्रुस्थान–विषम स्थानमें पीडा करें इसी लिये शत्रुमित्र भाव देखना । २६–२७–२८

राशिका स्वामी और मित्र शत्रु या समभाव देखनेका कोष्टक

राशि	स्वारी	मित्रभाव	शत्रुभाव	समभाव
सिंह	सूर्य	चंद्र–गुरु मंगळ	शुक्र शनी	बुध
कर्क	चन्द्र	सूर्य बुध	—	गुरु शुक्र मंगळ शनी
मेष वृश्चिक	मंगक	सूर्य–चंद्र गुरु	बुध	शुक्र शनी
मिथुन कन्या	बुध	सूर्य शुक्र	चंद्र	मंगळ गुरु शनी
धन मीन	गुरु	सूर्य चंद्र मंगल	बुध–शुक्र	शनी
वृषभ तुला	शुक्र	बुध–शनी	सूर्य मंगळ	चंद्र गुरु
मकर कुंभ	शनी	बुध शुक्र	सूर्य चंद्र मंलग	गुरु

रवि रक्तानुगोमैत्री गुरुचंद्रादितः शुभाः ।
शेषा तृतीयाणा एमिर्युक्तानां शस्यते ॥ २९ ॥
रविमंदे सदा वैर कुंजमंदे तथैव च
गुरुश्च शुक्रयो वैरं वैरंच बुध चँद्रयोः ॥ ३० ॥

રવિને મંગળ તથા ગુરુ અને ચંદ્રને મૈત્રી બાકી ત્રણ ગૃહો સાથે પણ મૈત્રી. રવિ અને શનિને વેર. મંગળ અને શનિને વેર, ગુરુ ને બુધ તથા શુક્રને વેર, બુધને સોમ શત્રુ (સૂર્યને શુક્ર શનિને વેર) ચંદ્ર ને મંગળ બુધને વેર. શુક્રને સૂર્ય ચંદ્રને વેર. શનિને ચંદ્ર મંગળને રવિ સાથે વેર. ૨૯–૩૦

रवि और मंगल तथा गुरु और चँद्रको मैत्री, अन्य तीन ग्रहों के साथ भी मैत्री, रवि और शनिनो वैर, मंगल और शनिको वैर, गुरु और बुध को तथा शुक्रको वैर, बुध और सोम शत्रु (सूर्यको शुक्र, शनिसे वैर) चँद्र और मंगल, बुधको वैर, शुक्र और सूर्य चँद्रको वैर–शनिको चँद्रसे, मंगलको रविसे वैर। २९–३० इति गृहमैत्री अङ्ग ॥ १० ॥

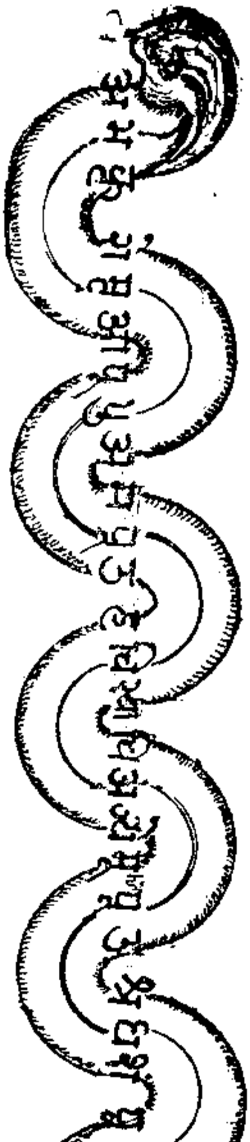

त्रयनाड्यात्मकं चक्रं सर्पाकार स्वरूपकम्
नव भागांकितं कुर्यादश्विन्यादि त्रिकं लिखेत् ॥३१॥
एक नाडी स्थितं तस्मिनृक्षं चेद् वरकन्ययोः
तेन मरणं विजानियादंशतश्चे स्थितं त्यजेत् ॥ ३२ ॥
स्वामि सेवक मित्राणां गृहाणां गृहस्वामिनां
राज्ञा तथा पौराणां च नाडीवेधः सुखावहः ॥ ३३ ॥

ત્રણ નાડીની રેખાવાળું સર્પાકાર રૂપ નવ ભાગની વાંકી આકૃતિવાળું એક ચક્ર કરવું તે વાંકના એકેક ભાગમાં અનુક્રમે અશ્વિન્યાદિ ત્રણ ત્રણ નક્ષત્રોનું જોડકું સિદ્ધિ પંક્તિમાં વેધવું. તે રીતે નવસર્પાંગ ભાગમાં સત્તાવીશ નક્ષત્રો લખવા આ સર્પાકાર ચક્રમાં વર અને કન્યાનું નક્ષત્ર એક નાડીમાં આવે તો મૃત્યુ થાય. તેથી નક્ષત્ર અંશ તજવા સ્વામિ સેવક, ઘર અને ઘરધણી, રાજા અને નગર, આ જો એક નાડીમાં વેધ થાય તો સુખદાયક જાણવું.૩૧–૩૨–૩૩

तीन नाडियोंकी रेखावाला सर्पाकार रूप नौ भागकी वक्र आकृतिवाला एक चक्र बनाना। उस वक्राकृतिके एक एक भागमें अनुक्रमसे अश्विन्यादि तीन तीन नक्षत्रोंके युगलको सीधी पंक्तिमें वेधना (लिखना) इस तरह नौ सर्पांग भागमें सत्ताबीस नक्षत्रों लिखना। इस सर्पाकार चक्रमें वर और कन्याका नक्षत्र एक नाडीमें आवे तो मृत्यु होती है। इसी लिये नक्षत्र अंशको तजना। स्वामि सेवक, घर और मालिक राजा और नगर–एक नाडीमें उसका वेध हो तो सुखदायक समझना। ३१–३२–३३ इति नाडीवेध अङ्क ॥ ११ ॥

१२. अधिपति—गेहस्योदयकं क्षेत्रफलेन गुणयेद्बुधः
अष्टभिस्तु हरेच्छेषं शुभः सोऽधिपतिः समः ॥ ३४ ॥
विकृतः कर्णकश्चैवं धूमदो वितथस्वरः
बिडालो दुन्दुभिश्चैव दान्तः कान्तोऽधिनायकः ॥ ३५ ॥

બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ ઘરની ઉભણીના અંકને ક્ષેત્રફળે ગુણતાં જે અંક આવે તેને આઠે ભાગતાં જે શેષ રહે તે અધિપતિ જાણવો. તેમાં સમ–બેકી અધિપતિ શુભ જાણવો. અને એકી અંકનો અધિપતિ નેષ્ટ જાણવો. ૧ વિકૃત ૨ કર્ણક ૩ ધૂમ્રક ૪ વિતથસ્વર ૫ બિડાલ ૬ દુન્દુભિ ૭ દાંત અને ૮ કાંત એ આઠ અધિપતિનાં નામ જાણવાં. ૩૪–૩૫

बुद्धिमान शिल्पीको घरके उदयके अंकको क्षेत्रफलसे गुनते जो अंक आवे उसे आठसे भागते जो शेष रहे उसे अधिपति जानना चाहिये। उसमें सम अधिपति शुभ जानना। और विषम अंकके अधिपतिको नेष्ट समझना। १. विकृत २ कर्णक ३ धूम्रन ४ वितथस्वर ५ बिडाल ६ दुन्दुभि ७ दांत और ८ कान्त, ये आठ अधिपतिके नाम हैं। ३४–३५.

मतांन्तर— यदायव्यय संयोगे यदैक्यं वसुभिर्भजेत्
शेष स्त्वधिपतिः केचिन्विषमः स भयावहः ॥ ३६ ॥

અધિપતિનું ગણિત કરવાનો બીજો મત આય અને વ્યયના અંકનો સરવાળો કરી તેને આઠે ભાગતાં શેષ રહે તે અધિપતિ જાણવો. (અધિપતિમાં વિષમ એકી અંક હોય તે ભય ઉત્પન્ન કરે બેકી સમ શુભ જાણવો.) ૩૬

अधिपतिका गणित करनेका दूसरा मत–आय और व्ययके अंकका मिलान कर उसे आटसे विभाजित करते जो शेष रहे उसे अधिपति समझना। अधिपतिका विषम अंक भय उत्पन्न करे। सम अंक शुभ समझना। ३६

इत्याधिपति अङ्क बारहवाँ ॥ १२ ॥

१३ १४ १५
लग्न तिथी वार—आयर्क्षव्यय तारांशाधिपात् क्षेत्रफले क्षिपेत्
अर्के भक्ते भवेल्लग्न मथ लग्नेष्ट संगुणे ॥ ३७ ॥
हते शरकैः शेषन्तु तिथिर्नाम समं फलम्
तिथौ नवघ्ने वारः स्यान्र्काद्योमुनिभिर्हृते ॥ ३८ ॥

ઘરનું ગણિત કરતાં આવેલ આય, નક્ષત્ર, વ્યય, તારા, અંશક અને અધિપતિના અંકોમાં ક્ષેત્રફળના અંકના સરવાળાને બારે ભાગતાં જે શેષ રહે તે લગ્ન જાણવું. લગ્નના અંકને આઠે ગુણીને પંદરે ભાગતાં શેષ રહે તે તિથિ વાર જાણવી તેનું ફળ નામ પ્રમાણે છે. તિથિને નવે ગુણીને સાતે ભાગતાં શેષ રહે તે વાર જાણવો. ૩૭–૩૮

घरका गणित करते आये हुए आय, नक्षत्र, व्यय, तारा, अंशक और अधिपतिके अंकोंमें क्षेत्रफलका अंक मिलाकर बारहसे विभाजित करते जो शेष रहे उसे लग्न समझना । लग्नके अंकको आठसे गुनकर पंद्रहसे विभाजित करते जो शेष रहे उसे तिथि जानना । उसका फल नामके अनुसार है । तिथिको नौसे गुनकर सातसे विभाजित करते जो शेष रहे उसे 'वार' समझना । ३७–३८

लग्नफल–वृषभ सिंह वृश्चिक कुंभ लग्न उत्तम फलवाले, मिथुन कन्या, धन मिन लग्न मध्यम फलवाले, मेष कर्क तुला मकर लग्न कनिष्ठ फलवावे हैं । उसमें कनिष्ठ फलवाले लाग्नको तज देना ।

तिथिफल–षष्ठमी, एकादशी, एका, नंदातिथि–ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ, दूज, सप्तमी, द्वादशी, भद्रातिथि–क्षत्रियके लिये श्रेष्ठ, तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी–वैश्यके लिये श्रेष्ठ, चतुर्थी, नौवीं, और चतुर्दशी–रिक्ता तिथि–शूद्रके लिये श्रेष्ठ, दशवीं और पूर्णिमा देवमंदिरोंके लिये श्रेष्ठ उससे उलटी तिथियाँ नेष्ट जानना ।

वारफल–ध्वजाय हो तो रविवार श्रेष्ठ, वृषाय हो तो सोमवार श्रेष्ठ, धूम्राय हो तो मंगलवार श्रेष्ठ, खर और श्वानाय हो तो बुध, गजाय हो तो गुरुवार श्रेष्ठ, ध्वांजाय हो तो शुक्रवार श्रेष्ठ, सिंहाय हो तो शनिवार श्रेष्ठ समझना । इससे उलटा तजना ।

वार प्राकारांतर—क्षेत्रंरुद्रगुणं कृत्वा सप्तमिर्भागमाहरेत्
शेषंरव्यादयोवारा रवि भौमौ विवर्जितौ ॥ ३९ ॥

ક્ષેત્રફળને અગ્યારે ગુણીને સાતે ભાગતાં જે શેષ રહે તે અનુક્રમે રવિ આદિ સાત વારો જાણવા. તેમાં રવિ અને મંગળવાર તજવા. ૩૯

क्षेत्रफलको ग्यारहसे गुनकर सातसे भागते जो शेष रहे उसे अनुक्रमसे रवि आदि सातवार जानना । उसमें रवि और भोम वारको तजना । ३९.

१६. अथोत्पत्ति—नवघ्नं गृह नक्षत्रं रुद्रसंख्या समन्वितम्
पंचमिस्तु हरेद्भागं शेषमुत्पत्तिः पंचधा ॥ ४० ॥

પ્રાસાદ કે ઘરના નક્ષત્રને નવગણું કરવાથી જે અંક આવે તેમાં ૧૧ ઉમેરી સરવાળો કરતાં જે સંખ્યા થાય તેને પાંચે ભાગતાં જે શેષ રહે તે પાંચ પ્રકારની ઉત્પત્તિ જાણવી. ૪૦

૧ વધે તો ઘણું દાન ૨ વધે તો સુખપ્રાપ્તિ ૩ વધે તો સ્ત્રી પ્રાપ્તિ ૪ વધે તો ધનપ્રાપ્તિ અને ૫ વધે તો પુત્રપ્રાપ્તિ થાય.

प्रासाद या घरके नक्षत्रको नौसे गुनकर जो एक आवे उसमें ग्यारह मिलाकर जो संख्या हो उसे पाँचसे विभाजित करते जो शेष रहे उसे पाँच प्रकारकी नक्षत्रकी उत्पत्ति समझना । १ शेष होनो बहुत दान २ शेष हो तो सुख प्राप्ति ३ शेष हो तो स्त्री प्राप्ति ४ शेष हो तो धन प्राप्ति और ५ शेष हो तो पुत्र प्राप्ति होती है । ४० इति उत्पत्ति अङ्क ॥१६॥

(१७) अथोधिपतिवर्गवैर

नामाक्षर	वर्ग	नामाक्षर	वर्ग
अ–इ–उ–ए का	(१) गरुडवर्ग	त–थ–द–ध–न का	(५) सर्पवर्ग
क–ख–ग–घ–ङ का	(२) बिडालवर्ग	प–फ–ब–भ–म का	(६) मूषकवर्ग
च–छ–ज–झ–ञ का	(३) सिंहवर्ग	य–र–ल–व का	(७) मृगवर्ग
ट–ठ–ड–ढ–ण का	(४) श्वानवर्ग	श–ष–स–ह का	(८) मेषवर्ग

गृह और गृहपतिके नामाक्षरपरसे वर्ग निकालना ।

सूपर्ण ओतुः सिंहः श्वा सुसर्पाखु मृग मीढकाः
वर्णाधिपाः क्रमा द्दष्टौ भक्ष्यो यः पंचमो मतः ॥ ४१ ॥

૧ ગરુડ ૨ બિડાલ ૩ સિંહ ૪ શ્વાન ૫ સર્પ ૬ ઉંદર ૭ મૃગ ૮ મેષ આ આઠે અનુક્રમે તે તે વર્ણના અધિપપતિ છે. એ અધિપતિના વર્ગમાં દરેકનો તેનાથી પાંચમો ભક્ષક છે, માટે તે તજવો. ૧ ગરુડને ૫ સર્પને વેર ૩ સિંહ અને ૭ મૃગને વેર, ૨ બિડાલને મુષકને વેર, ૪ શ્વાન અને ૮ મેષને વેર ૪૧.

१ गरुड २ बिडल ३ सिंह ४ श्वान ५ सूर्य ६ मूषक ७ मृग ८ मेष ये आठों अनुक्रमसे अपने अपने वर्गके अधिपति हैं । ये अधिपतिके वर्ग में प्रत्येकका उससे पाँचवाँ भक्षक है । अिसीलिये त्याज्य है । गरुडको ५ सर्प से वैर ३ सिंह और मृगको वैर २ बिडाल और मूषकको वैर ४ श्वान और ८ मेषको वैर ४१ इति अधिपति वर्ग अङ्क ॥१७॥

१८. योनिवैर—अश्वोऽश्विनी शतभयी भरिणी मौष्टमयोगजिः
कृत्तिका पुष्ययोच्छागो रोहिणी मृगयो रहिः ॥४२॥
श्वाच मूलार्दयोर्योनिः सर्पादित्यो बिडालकः
पूर्वाफा मघयोशखु रुफोत्तर ययो स्तुगौः ॥४३॥
हस्त स्वात्योस्तु महिषी व्याघ्रश्चित्रा विशाखयोः
ज्येष्ठानुराधयो रेणः पुषाढा श्रवणे कपिः ॥४४॥

अश्विनी और शतभिया की अश्वयोनि । भरणी और रेवतीकी गजयोनि ॥
कृत्तिका और पुष्यकी अजयोनि । रोहिणी और मृगशीर्षकी सर्पयोनि ॥
मूल और आर्द्राकी श्वानयोनि । आश्लेषा और पुनर्वसुकी बिडालयोनि ॥
पूर्वाफाल्गुनी और मघाकी मूषकयोनि । उ. भाद्रपद और उ. फाल्गुनीकी गौयोनि ॥
स्वाति और हस्तकी महिषी योनि । चित्रा और विशाखाकी व्याघ योनि ॥
ज्येष्ठा और अनुराधाकी मेंढायोनि । पू. षाढा और श्रवणकी कपियोनि ॥
उ. षाढा और अभिजितकी नकुलयोनि । पू. भाद्रपद और धनिष्ठाकी सिंहयोनि ॥
४२-४३-४४

उषाढाभिजितोर्बभ्रुः सिंहेः सिहेः पूभाधनिष्ठयोः
मेषमर्कटयोर्वैरंगो व्याघ्रं गज सिंहयोः ॥४५॥
श्वानैणं सर्पनकुलं बिडालोन्दुरके महत् ।
महिषाश्वमिति त्याज्यं मृत्युः स्त्री मसु वेऽस्मसु ॥४६॥

मेष योनीको मर्कट योनिसे वैर । गौ योनि और व्याघ्र योनिको वैर ॥
गज योनि और सिंह योनिको वैर । श्वान योनि और वानर योनिको वैर ॥
सर्प योनि और नकुल योनिको वैर । बिडाल योनि और मूषक योनिको वैर ॥
महिष योनि और अश्व योनिको वैर.

नक्षत्र और योनिका उपरके अनुसार परस्पर वैर है। जिससे स्त्री और पुरुष गृह और गृहपतिके नक्षत्रोंकी योनियोंका परस्पर वैर तज देना। नहि तो मृत्यु होती है। ४५-४६ इति योनि वैर अङ्ग ॥१८॥

१९. अथ नक्षत्र वैर—वैरंचोत्तरफाल्गुन्यश्वि युगले श्वाति भरण्योर्द्वयो ।
रोहिण्युत्तर षाढ्योः श्रुति पुनर्वस्वो विरोध स्तथा ॥
चित्रा हस्तभयोश्च पुष्यफणिनो ज्येष्ठा विशाखद्वयोः
प्रासादे भवनासने च शयने नक्षत्र वैरं त्यजेत् ॥४७॥

उत्तरा फाल्गुनी और अश्विनीको वैर । रोहिणी और उत्तराषाढाकी वैर ॥
चित्रा और हस्तको वैर । स्वाति और भरणीको वैर ॥
श्रवण और पुनर्वसुको वैर । पुष्य और अश्लेषाको वैर ॥

नक्षत्रों के वैर इस तरह हैं । अिसीलिये प्रासादमें, गृहमें, आसन और शैयामें घर और घरके मालिकके परस्पर वैरको तजना । ४७ इति नक्षत्रवैर अङ्ग ॥१९॥

अथायुष्यत्था[२१] विनाश—गुणयेदष्टभिः[२७] क्षेत्रफलं षष्टिविभाजितम्
लब्धं दसगुणं जीवंच्छेषं भूत समाहृतम् ॥४८॥
पृथि व्यापस्तया तेजोवायुराकाशमेव च
पँचतत्त्वानि जानीयादंतकाले प्रभेदने ॥४९॥

ક્ષેત્રફળને આઠે ગુણી સાઠે ભાગ દેતાં જે અંક આવે તેને દશે ગુણતાં જે અંક આવે ત્યાં સુધી તે વાસ્તુનું આયુષ્ય જાણવું. (તેટલો સમય તે સ્થિર રહે) સાઠનો ભાગ દેતાં જે શેષ રહે તેને પાંચે ભાગ દેવા એટલે તત્ત્વ આવશે એ. એ વિનાશના તત્ત્વના નામ જાણવા. ૧ વધે તો પૃથ્વી ૨ વધે તો જળ તત્ત્વ ૩ વધે તો તેજ અગ્નિ તત્ત્વ ૪ વધે તો વાયુ તત્ત્વ ૫ વધે તો આકાશ તત્ત્વ વિનાશ જાણવું. એ પાંચેય તત્ત્વોથી વાસ્તુના અંત કાળનો ભેદ જાણવો. (૮) ૪૮–૪૯

[८]क्षेत्रफलको आठसे गुनकर साठकी संख्यासे भागते जो अंक आवे उसको दससे गुनते जो अंक आवे वहाँ तक उस वास्तुका आयुष्य जानना । (उतना समय वह स्थित रहे ।) साठकी संख्यासे भागते जो शेष रहे उसे पाँचकी संख्यासे भागना । अिससे तत्त्व निकलेगा । इसे विनाश के तत्त्वका नाम जानना । १ शेष रहे तो पृथ्वी तत्त्व २ शेष रहे तो जल तत्त्व ३ शेष रहे तो तेज तत्त्व (अग्नि) ४ शेष रहे तो वायु तत्त्व ५ शेष रहे तो आकाश तत्त्व विनाशका जानना । इन पाँचों तत्त्वोंसे वास्तुके अंतकालका भेद जानना । ४८–४९

[८]सच्छिल्पतंत्र નામના ગ્રંથમાં વાસ્તુ દ્રવ્યના અધિકાર પ્રમાણે તેનું આયુષ્ય બતાવેલ છે. ઉપર કહ્યું તેમ ક્ષેત્રફળને આઠગણું કરી સાઠે ભાગતાં જે આવે તે જ ફળ થયું તે કાંકરી અને માટીના વાસ્તુનું સ્થિર આયુષ્ય જાણવું. તે ફળને દશ ગણું કરવાથી ઈંટ અને માટીને ચુનાથી બનેલ વાસ્તુનું આયુષ્ય જાણવું. તે ફળને નેવું ગણું કરવાથી પત્થર અને સીસાથી બનેલ વાસ્તુનું આયુષ્ય જાણવું. તે ફળને એક સો સિત્તેર ગણું કરવાથી ધાતુથી બનેલ વાસ્તુનું આયુષ્ય જાણવું.

[८]सच्छिल्पतंत्र नामके ग्रंथमें वास्तुद्रव्यके अधिकार अनुसार उसकी आयु बतायी है । क्षेत्रफलको आठ गुनाकर आठसे भागते जो शेष आवे वह ही फल हुआ । इसे कँकरी और

द्वि भिः श्रेष्ठं त्रिभि श्रेष्ठं पँचभिश्चोत्तमोत्तमम्
सप्तभिः सर्वकल्याणम् नवभिः सर्व संपदः ॥५०॥

પ્રાસાદ કે ઘરનું આય નક્ષત્રાદિ ગણિત કરવામાં ઓછામાં ઓછાં બે અંગ મેળવવાં અગર ત્રણ અંગ મેળવે તો શ્રેષ્ઠ, પાંચ અંગ મેળવાય તો સર્વથી ઉત્તમ જાણવું અને જો સાત અંગ મેળવાય તો સર્વ કલ્યાણ કારક જાણવું અને નવ અંગ મેળવાય તો સર્વ સંપત્તિની પ્રાપ્તિ થાય. ૫૦

प्रासाद या घरके आय, नक्षत्रादिके गणित करते समय कमसे कम दो अङ्ग मिलाना या तो तीन अङ्ग मिलाये जाय तो श्रेष्ठ, पाँच अङ्ग मिलाये जाय तो सर्वसे उत्तम समझना । और जो सात अङ्ग मिलाये जाय तो सर्वकल्याण कारक जानना । और नौ अङ्ग मिलाये जाय तो सर्वसंपत्तिकी प्राप्ति होती है । ५०

आयऋक्ष चँद्रगण व्यय तारांशक राशयः ।
राशिमैत्री ग्रहमैत्री नाडीवेध अधिपतिः ॥५१॥
लग्नतिथिवारोत्पत्ति अधिपति वर्ग वैरंक्रू
योनि वैरं ऋक्ष बैरं स्थितिर्नाशेक विंशतिः ॥५२॥

પ્રાસાદ કે ગૃહાદિ વાસ્તુકાર્યમાં ૧ આય ૨ નક્ષત્ર ૩ ચંદ્ર ૪ ગણ ૫ વ્યય ૬ તારા ૭ અંશક ૮ રાશિ ૯ રાશિમૈત્રી ૧૦ ગ્રહમૈત્રી ૧૧ નાડીવેધ ૧૨ અધિપતિ ૧૩ લગ્ન ૧૪ તિથિ ૧૫ વાર ૧૬ ઉત્પત્તિ ૧૭ અધિપતિ વર્ગ વૈર ૧૮ યોનિ વૈર ૧૯ નક્ષત્ર વૈર ૨૦ સ્થિતિ અને ૨૧ નાશ એ રીતે એક વીશ અંગો કહ્યો. ૫૧-૫૨

प्रासाद या गृहादिके वास्तुकार्यमें १ आय २ नक्षत्र ३ चंद्र ४ गण ५ व्यय ६ तारा ७ अंशक ८ राशि ९ राशि मैत्री १० ग्रहमैत्री ११ नाडी वेध १२ अधिपति १३ लग्न १४ तिथि १५ वार १६ उत्पत्ति १७ अधिपति वर्ग वैर १८ योनि वैर १९ नक्षत्र वैर २० स्थिति और २१ नाश इस तरह अिकीस अंङ्ग कहे । ५१-५२

गुणाश्च बहुवो यत्र दोष मेको भवेद्यदि
गुणाधिक्यं चाल्पदोषं कर्तव्यं नात्र संशयः ॥५३॥

मिट्टीके और खडुके वास्तुका स्थिर आयुष्य जानना । उस फलको दस गुना करनेसे इंट मिट्टी और खड्डीसे बने हुए वास्तुका आयुष्य जानना । उस फलको निन्यानवे गुना करनेसे पत्थर और सीसे से बने हुए वास्तुका आयुष्य जानना । उस फलको एक सौ सत्तर गुना करनेसे धातुसे बने हुए वास्तुका आयुष्य जानना ।

જે વાસ્તુમાં ઘણા ગુણો હોય અને કોઈ એકાદ દોષ હોય તો પણ તે અગર ઘણા ગુણો હોય અને અલ્પદોષ હોય તોપણ તેવાં કાર્ય નિર્દોષ જાણવાં. તેમાં કદિ પણ શંકા ન રાખવી જેમ અગ્નિમાં જળનાં થોડાં બિંદુ અસર કરતાં નથી તેમ તે જાણવું. ૫૩

जिस वास्तुमें बहुत गुण हों और किंचित् एक दोष हो तो भी या बहुत गुण होने पर भी अल्प दोष होता भी तो वैसे कार्यको निर्दोष समझना। अिसमें कभी संशय नहीं करना। जिस तरह अग्निमें जलके थोडे बिन्दु असर नहीं करते हैं अिस तरह समझना। ५३

इति श्री विश्वकर्मा कृते क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां आयव्ययादि गणिताधिकारे नवनति तमोऽध्याय ॥ ९९ ॥ (क्रमांक अ. १)

इति श्री शिल्प विशारद स्थपति प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा अनुवादित **विश्वकर्मा और** नारदजीके संवादरुप क्षीरार्णव वास्तुशास्त्रका आयव्ययादि गणिताधिकार निन्यानवे ॥९९॥ अध्याय पर सुप्रभा नाम्नी भाषा टीका ॥९९॥ (क्रमांक अ० १)

ઈતિ શ્રી શિલ્પ વિશારદ સ્થાપિત પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા અનુવાદિત વિશ્વકર્મા અને નારદજીના સંવાદરૂપ ક્ષીરાર્ણવ વાસ્તુ શાસ્ત્રના આયવ્યયાદિ ગણિતાધિકાર ૯૯ મા અધ્યાય પર સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકા. ૯૯

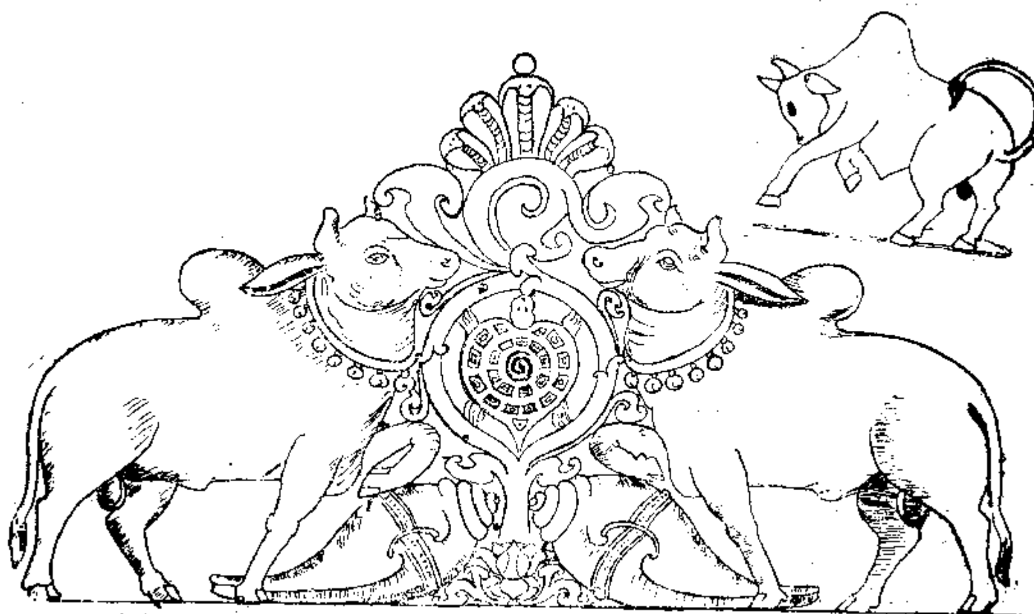

नंदी युग्मका टेकरा

जगती लक्षणम्

क्षीरार्णव अ० १००—क्रमांक अ० २

श्री विश्वकर्मा उवाच—

अथात: संप्रवक्ष्यामि जगती लक्षणं रिपि
प्रासादो लिङ्गमित्युक्तं जगती पीट भेवच ॥ १ ॥
सा चा मुढ दिशा भागा मनोज्ञा सर्वत: प्लवा
प्रतिहारी देवकुलं विभागा नामत: परे ॥ २ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે કે હે ઋષિરાજ, હવે હું તમને પ્રાસાદની જગતીનાં લક્ષણ કહું છું. પ્રાસાદ શિવલિંગ રૂપ છે. અને જગતી પીઠ જળાધારી રૂપ જાણવી. તે દિગ્મૂઢ ન હોય તેવી દિશાવિભાગમાં અને મનને આનંદ આપનારી અને ઉપરથી સર્વ તરફ પાણીના ઢાળવાળી તેવી જગતી શુભ જાણો. તેમાં દેવના પ્રતિહારો અને દેવકુળનાં સ્વરૂપો કરવાં. તેના વિભાગ પરથી (૬૪) નામો કહ્યાં છે. ૧–૨

श्री विश्वकर्मा कहते हैं—हे ऋषिराज, अब मैं आपको जगतीके लक्षण बताता हूँ। प्रासाद शिवलिङ्ग स्वरूप है। और जगती पीठ–जलाधारी रूप है। वह दिङ्मूढ न हो वैसी दिशाके विभागमें और मनोरंजनी और उपरसे सर्व बाजुमें जलके ढालवाली जगतीको शुभ समझना। उसमें देवके प्रतिहारों और देवकुलके स्वरूपकरना। उसके विभाग परसे (६४) नाम कहे हैं। १–२.

[1]प्रासादस्यानुमानेन जगति विस्तरो भवेत्
प्रथमा षद्गुणा प्रोक्ता द्वितीयां च चतुर्गुणा ॥ ३ ॥
तृतीया द्विगुणाख्याता पँचगुणा थवा भवेत्
प्रथमा कनिष्ठा प्रोक्ता द्वितीया चैव मध्यमा ॥ ४ ॥
तृतीया ज्येष्ठ मित्युक्ता चतुर्थां सर्वगा भवेत्
ज्ञातव्या क्रमयोगेन सर्वशिल्पि विशारद: ॥ ५ ॥

---

(१) इससे मिलते जुलते पाठ ज्ञानरत्न कोशके प्राचीन शिल्प ग्रंथमें दिये हुए हैं। जगतीका अर्थ सामान्यतया प्रासादकी चारों ओरका ओटा, दूसरे अर्थमें प्रासादकी सीमा–मर्यादा अर्थात् इतने विस्तारमें उस प्रासादका दुर्ग ऐसा किया जाता है। ऐसा द्राविड शिल्पमें विशेष है। सांधार प्रासादमें सीमा मर्यादा, दुर्ग–किला ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है। निरेधार प्रासादके

પ્રાસાદના વિસ્તાર માનથી જગતીનું વિસ્તાર માન કહે છે. પહેલી છ ગણી જગતી કનિષ્ઠ માનને કહી છે. બીજી ચારગણી મધ્યમાનને કહી છે. અને ત્રીજી બમણી જગતી પહોળી રાખવાનું જ્યેષ્ઠ માનને કહ્યું છે. અને ચોથું પ્રાસાદથી પાંચ ગણી જગતી પહોળી રાખવાનું સર્વને કહ્યું છે. એ રીતના ક્રમયોગથી સર્વ શિલ્પના જ્ઞાતા વિશારદે જાણવું. ૩–૪–૫

प्रासादके विस्तारमानसे जगतीका विस्तारमान कहा जाता है। प्रथमा छः गुनी जगती कनिष्ठमानको कही है। दूसरी चार गुनी मध्यमानकी कही है। और तीसरी दूगुनी जगती चौडी रखनेका ज्येष्ठ मानको कहा है। और चौथी प्रासादसे पाँच गुनी जगती चौडी रखनेके लिये सर्वको कहा है। इस प्रकारके क्रम योगसे सर्व शिल्पके ज्ञाता विशारदोंको समझना। ३–४–५

भ्रमणी कन्यसे चैका मध्यमे भ्रमणी द्वयम्
ज्येष्ठया त्रय भ्रमण्या च शाला त्रिशालिका ॥ ६ ॥
भ्रमणी त्रिभागोत्सेधे यावत् मूल प्रासादकम्
तथैवानुक्रमैर्वृद्धि भ्रमेण्यो परिज्ञायते ॥ ७ ॥

કનિષ્ઠ માનને એક ભ્રમણી કરવી. મધ્યમાનને બે ભ્રમણી (નીચે ઉપર બે ટપ્પે બે ભ્રમ પ્રદક્ષિણા) કરવી અને જ્યેષ્ઠ માનને ત્રણ ભ્રમણી (ત્રણ ટપ્પે પ્રદક્ષિણા) કરવી. આગળ શાલા કે ત્રિશાલ કરવી. ભ્રમણીના ટપ્પાની ઊંચાઈ–મૂળ પ્રાસાદથી ત્રણ ભાગ કરીને રાખવી તેવા ક્રમ અને યોગથી તેની ઉપર કરતાં નીચેની વૃદ્ધિ રાખવી. ૬–૭

कनिष्ठमानको एक भ्रमण करना। मध्यमानको दो भ्रमणी (नीचे उपर दो टप्पेमें दो भ्रम प्रदक्षिणाएं) करना। और ज्येष्ठमानको तीन भ्रमणी (तीन टप्पों में प्रदक्षिणाएं करना। आगे शाला या त्रिशाला करना। भ्रमणीके टप्पेकी ऊँचाई

मंदिरोंको चारों ओरका ओटा यह अर्थ बराबर लगता है। उसके उदयमें घाट हो और निरंधार प्रासादोंमें दुर्गके आगे प्रवेश द्वार उसके पर गोपुरम् और प्रतोली ऐसा द्रविड मंदिरोंमें वर्तमानमें देखा जाता है।

(૧) આને મળતા પાઠો જ્ઞાનરત્નકોશના પ્રાચીન શિલ્પગ્રંથમાં આપેલ છે. જગતી એટલે સામાન્ય રીતે પ્રાસાદની ફરતો ઓટલો. બીજા અર્થમાં પ્રાસાદની સીમા મર્યાદા એટલે તેટલા વિસ્તારમાં તે પ્રાસાદનો ગઢ કે કિલ્લો કરવામાં આવે છે, આવું દ્રવિડ શિલ્પમાં વિશેષ છે. સાંધાર પ્રાસાદમાં સીમા મર્યાદા દુર્ગ કિલ્લો એમ મારો નમ્ર અભિપ્રાય છે નિરંધાર પ્રાસાદનાં મંદિરોને ફરતો ઓટલો અર્થ વધુ બંધ બેસે છે. તેના ઉદયમાં ઘાટ થાય અને સાંધાર પ્રાસાદોમાં પ્રાસાદની સીમા મર્યાદાના દુર્ગને આગળ દરવાજો તેના પર ગોપુરમ્ પ્રતોલી આવું દ્રાવિડ મંદિરોમાં હાલમાં જોવામાં આવે છે.

मूल प्रासादसे तीन भागकी करके रखना। वैसे क्रम और योगसे उसकी उपरसे अधिक नीचेकी घृद्धि करना। ६-७.

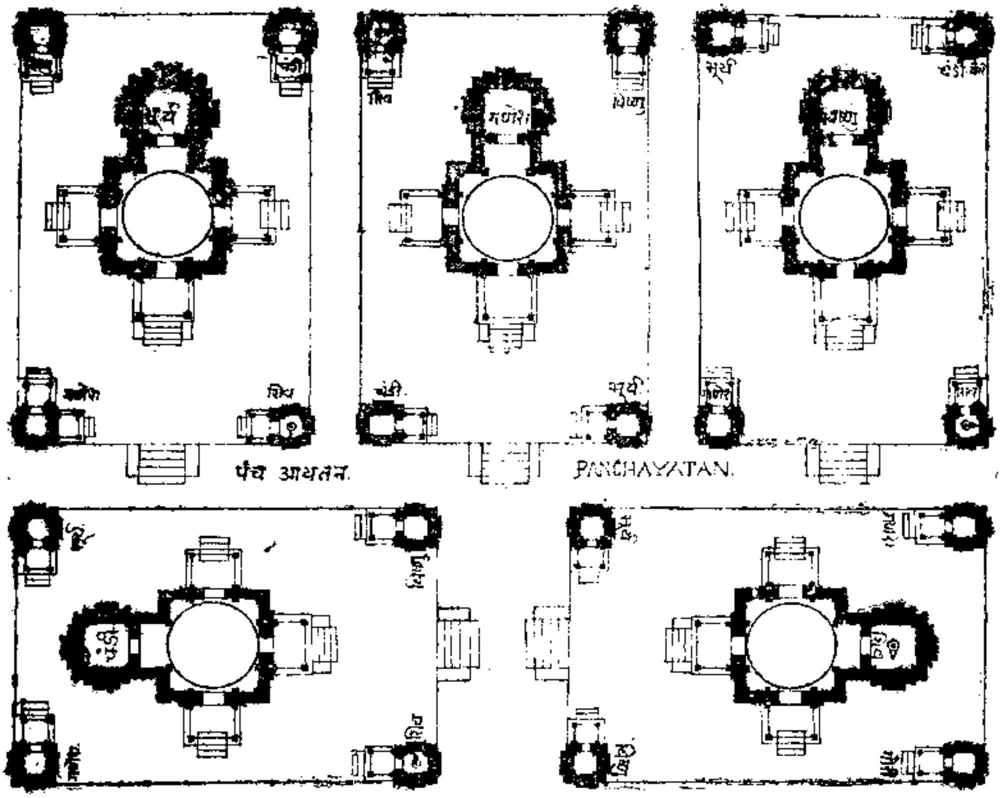

पंचदेवोका पंचायतन-जगती

[२]करद्वादशेऽर्धांशं शालात्र्यंशं द्वाविंशके
द्वात्रिंशतिश्चतुर्थांशं सा भूतांशं शताधिके ॥ ८ ॥
एव मन्यश्चंकर्तव्यो जगतीनां समुच्छ्रयं ॥ ९ ॥

(२) जगतीकी ऊँचाईका दूसरा मान भी अन्य ग्रंथोंमें कहा गया है। १ हाथके प्रासादको १ हाथ तक जगती करना, दो हाथके प्रासादको डेढ़ हाथ ऊँची जगती करना। तीन हाथके प्रासादको दो हाथकी चार हाथके प्रासादको ढाई हाथकी–पाँचसे बारह हाथके प्रासादको जगतीकी ऊँचाई प्रासादके अर्ध भागकी करना। तेरहसे चौबीस हाथके प्रासादको प्रासादके तीसरे भाग पर जगती ऊँची करना। पच्चीससे पचास हाथके प्रासादको जगतीकी ऊँचाई प्रासादके चौथे भाग पर ऊँची करना। इस तरह दूसरा मान कहा है। जगतीको सन्मुख ज्यादा रखनेके लिये कहा है क्यों कि आगे देखना हो तो महोत्सव हो सके।

(२) જગતીની ઊંચાઇનું બીજું માન અન્ય ગ્રંથોમાં કહે છે. એક હાથના પ્રાસાદને ૧ હાથ સુધી જગતી કરવી, બે હાથના ને દોઢ હાથ ઊંચી જગતી કરવી ત્રણ હાથના ને

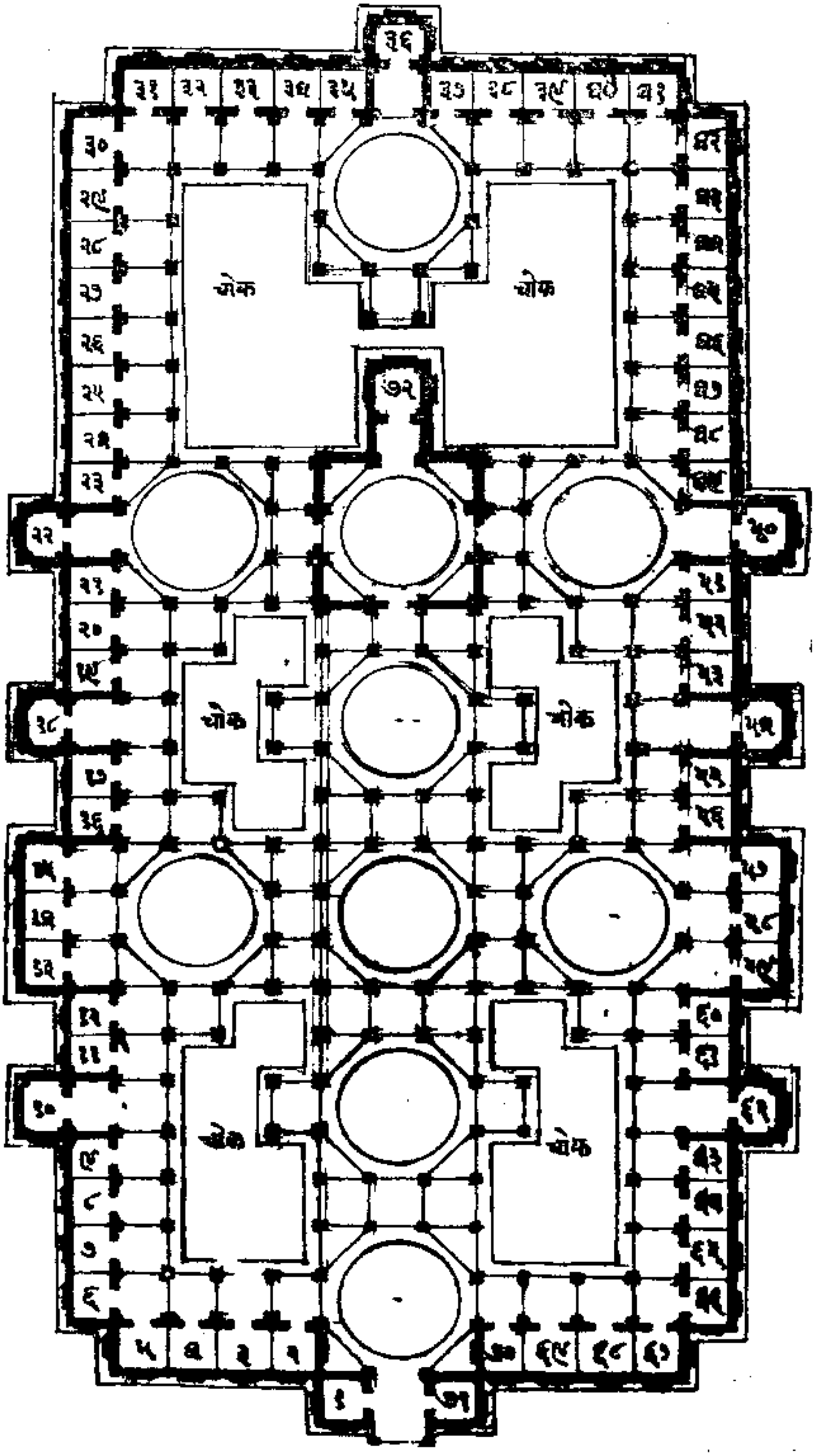

बावन जिनायतन की जगती

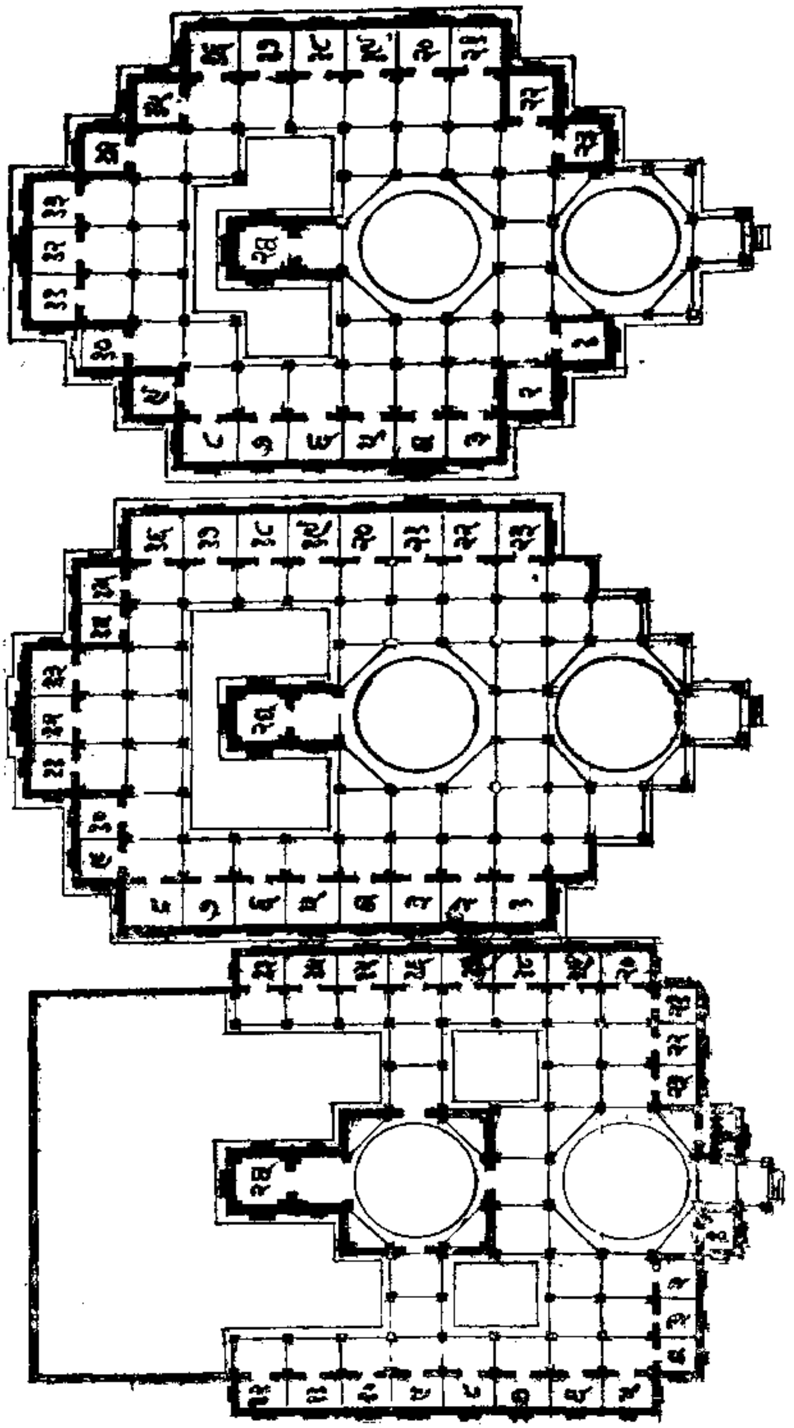

तीन प्रकारके वाविका जिनालयका क्रम और उसकी कसौटी

એક થી બાર હાથ સુધીના પ્રાસાદની જગતી પ્રત્યેક ગજે અર્ધા અર્ધા ગજની ઊંચી કરવી. તેર થી બાવીશ હાથના પ્રાસાદને ગજના ત્રીજા ભાગની (આઠ આઠ આંગળની વૃદ્ધિથી ઊંચી કરવી. તેત્રીશથી પચાસ હાથના પ્રાસાદની જગતી પ્રાસાદના પ્રત્યેક ગજે ગજના પાંચમા ભાગની (ચાર આંગળ અને ૬॥ દોરા) ની વૃદ્ધિથી ઊંચી કરતા જવું. એ રીતે જગતીની ઊંચાઈનું માન જાણી કરવું. ૮–૯

एकसे बारह हाथ तकके प्रासादकी जगतीको प्रत्येक गज पर आधे गजकी ऊँची करना। तेरहसे बाईश हाथके प्रासादकी जगतीको गजके तीसरे भागकी (आठ आठ अँगुलकी वृद्धि से) करना। तेईशसे बत्तीस हाथके प्रासादकी जगतीको गजके चौथे भागकी (छः छः अंगुलकी वृद्धि से) ऊँची करना। तेतीस से पचास हाथके प्रासादकी जगतको–प्रासादके प्रत्येक गज पर गजके पाँचवें भागकी (चार अंगुल–६½ धागेकी वृद्धिसे) ऊँची करते जाना। इस प्रकार जगतीकी ऊँचाईका मान जान लेना। ८–९

[२]रससप्तगुणा ख्याता युक्तिपर्याय संस्थिता
योगिन्योत्रिपुरुषे च सहस्रायतनो शिव ॥ ८ ॥

બે હાથની, ચાર હાથના ને અઢી હાથની, પાંચથી બાર હાથનાનો જગતીની ઊંચાઈ પ્રાસાદના અર્ધ ભાગે કરવી. તેરથી ચોવીશ હાથના પ્રાસાદના ત્રીજે ભાગે જગતી ઊંચી કરવી. પચ્ચીશથી પચાસ હાથના પ્રાસાદને જગતીની ઊંચાઈ પ્રાસાદના ચોથે ભાગે કરવી. આમ બીજું માન કહેલ છે. જગતી સન્મુખ વધુ નીકળતી રાખવાનું કહ્યું છે. આગળ જગ્યા હોય તો મહોત્સવો થાય.

(२) जगतीके विस्तारके लिये तो श्लोक ६ में कहा गया है। इसके अनुसार मुख्य मंदिरकी चारों ओर सहस्रलिङ्ग का आयतन, चौबीस अवतारके चारों ओर मंदिर, ब्रह्माके चार रूपके चारों ओरके मंदिर, शिवके ग्यारह रूद्रके मंदिर, चौसठ योनियोंकी ६४ देव कुलिकायें, जिन–तीर्थंकरकी फिरती चौबीस बावन, बहोंतर या एकसौ आठ जिनायतन देवकुलिकाओं, गणपतिके ३२ स्वरूपकी देवकुलिकायें, इस तरह अन्य देव–देवियोंके विशेष पर्याय रूपोंकी चारों ओर देव कुलिकाओंसे युक्त प्रासाद और पंचायतन करनेका हो तब वह छः सात गुने से भी विशेष विस्तारमें लेना पड़ता है, उससे कम भी हो सकता है।

(૩) જગતીના માટેનો શ્લોક ૮ માં કહ્યા પ્રમાણે મુખ્ય મંદિર ફરતું સહસ્ત્રલિંગનું આયતાન, ચોવીશ અવતારનાં ફરતાં મંદિરો બ્રહ્માનાં ચાર રૂપનાં ફરતાં મંદિરો શિવના એકાદશ રૂદ્રનાં મંદિરો, ચોસઠ યોગિનીઓની દેવ કુલિકાઓ, જિન તીર્થંકરના ફરતી ૨૪ ૫૨–૭૨ કે ૧૦૮ જિનાયતન દેવકુલિકાઓ, ગણપતિના બત્રીશ સ્વરૂપની દેવકુલિકાઓ એ રીતે અન્ય દેવદેવીઓના વિશેષ પર્યાય રૂપોની ફરતી દેવકુલીકાઓ યુક્ત પ્રાસાદ કરવાનો કે પંચાયત મંદિર હોય ત્યારે તે ૭ સાત ગણાથી પણ વિશેષ વિસ્તારમાં લેવું પડે છે. તેથી ઓછું પણ થાય.

પરિવાર સાથેનાં મંદિરોને એટલે ચોસઠ યોગિનીઓ, વિષ્ણુના ચોવીશ અવતારના આયતનો કે શિવના સહસ્રાયતનની દેરીઓ (કે જિન તીર્થંકરોના ૨૪–૫૨–૭૨–૮૪ કે ૧૦૮ જિનાયતનો) ના પંચાટાતન મંદિરો સારું તેના પ્રમાણથી યુક્તિથી તેનો વિસ્તાર છ સાત ગણો જગતીનો રાખવો. ૮

परिवारके साथके मंदिरोंको चौसठ योगिनीयों, विष्णुके चौबीस अवतारके आयतनों या शिवकी सहस्रायतनी देरियाँ (जिन–तीर्थंकरोंके २४–५२–७२–८४ या १०८ जिनायतनों) के लिये उसके प्रमाणकी युक्तिसे उसका विस्तार छः सात गुना रखना । ८

एतत्तो जगत्योदयं (संगृह्य) सप्तसार्धं विभाजते
भागार्धखुरकं ज्ञेयं पादोनं जाड्य कुंभकम् ॥१०॥
भागार्धकर्णकं कुर्यात् पादोनं सरपत्रिका
भागार्धं खुरकं कार्यं सार्धं भागं तु कुंभकम् ॥११॥
पादोनं भाग मुत्सेधं कलशं कुर्याद्विचक्षण:
भागार्धन्नातरंपत्रं पादोनं कपोतिका ॥१२॥
पुष्पकंठच भागैकं निर्गमं भाग द्वयम्
एतत् कथितं सर्वं जगतीनां समुछ्रिया ॥१३॥

જગતીના આવેલા ઉદય માનમાં સાડાસાત ભાગ કરવા. તેમાં અર્ધા ભાગનો ખરો, પોણા ભાગનો જાડંબો, અર્ધા ભાગની કણી, પોણા ભાગની છજીઆસ પટ્ટી તે ઉપર અરધા ભાગનો ખુરો, દોઢ ભાગનો કુંભો, પોણા ભાગનો કળશો, અર્ધા ભાગની અંધારી, પોણા ભાગની કેવાળ અને એક ભાગનો પુષ્પ કંઠ ગલતો (પહોળી અંધારી સાથે) કરી તેનો નીકાળો (અંધારીથી ખરા સુધીનો) બે ભાગનો રાખવો. આ જગતીની ઊંચાઈના ભાગ કહ્યા.

जगतीके आये हुए उदयमानमें साडेसात भाग करना । उसमें आधे भागका खरा, पौने भागका जाडंबा, आधे भागकी कणी, पौने भागकी छर्जीग्रासपट्टी उसके उपर आधे भागका खुरा, डेढ़ भागका कुंभा, पौने भागका कलश, आधे भागकी अंधारी, पौने भागकी केवाल, और एक भागका पुष्पकंठ गलता (चौडी अंधारीके साथ) कर उसका नीकाला (अंधारीसे खरे तकका) दो भागका रखना । इस तरह जगतीकी ऊँचाईके भाग कहें । १०–११–१२–१३

देव्यासुदिक्पालाश्च यथा स्थानंप्रकल्पयेत्
प्रासाद पश्चिमे भद्रे जगत्यां त्रय कुमारिका ॥१४॥

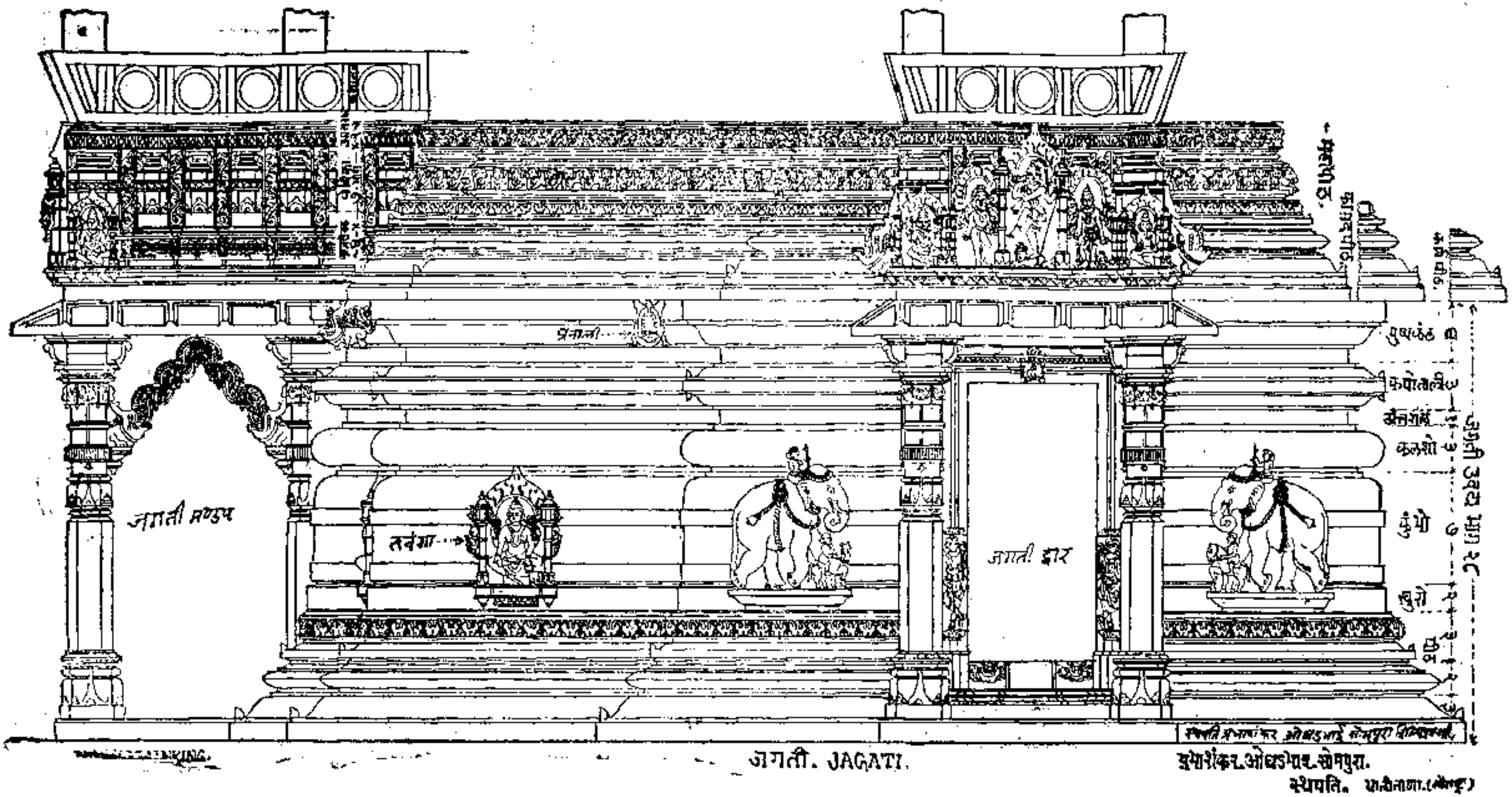

जगती पीठ स्तर विभाग–प्रवेश चोकी कक्षासन–महापीठ

દેવ પ્રાસાદની જગતીમાં–ઉદયમાં યથાસ્થાને દિશા પ્રમાણે દિક્પાલોના સ્વરૂપો વગેરેનાં સ્વરૂપો કરવાં. પ્રાસાદની પાછળ જગતીના ભદ્રમાં ત્રણ કુમારિકાઓ નાં પ્રાતઃ મધ્યાહ્ન ને સંધ્યાનાં સ્વરૂપો કરવાં ૧૪

देव प्रासादकी जगतीके उदयमें यथास्थान पर दिशाके अनुसार दिग्पालोंके स्वरूप वगैरह देवोंके स्वरूप करना। प्रासादके पीछे जगतीके भद्रमें तीन कुमारिकाओंका (प्रातः मध्याह्न और संध्याके) स्वरूप करना। १४

प्रासाद विस्तरं तुल्यं प्रासादार्द्ध प्रमाणत:
पादेनं वाथ कर्तव्यं सोपाना याम किर्त्तित: ॥१५॥
शुंडिकासन विज्ञेया तत्पदे गंड विस्तरम्
द्वितीयं तत्समं ज्ञेयं शुंडिकोऽभय: स्थिता ॥१६॥

प्रतोल्या स्वरूप

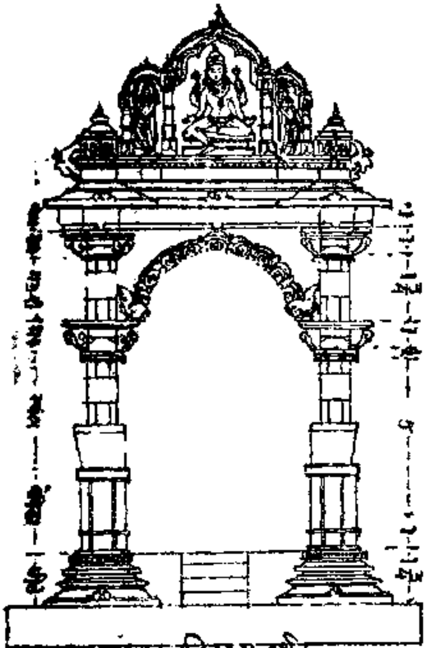

चित्ररूप दर्शन

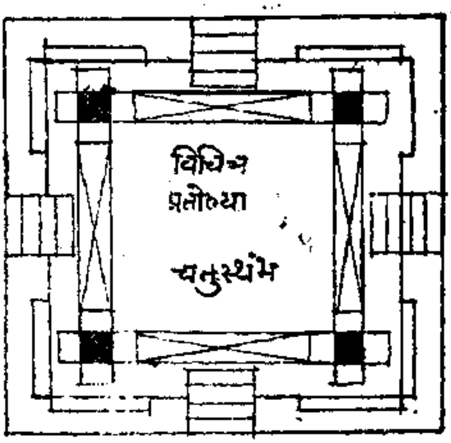

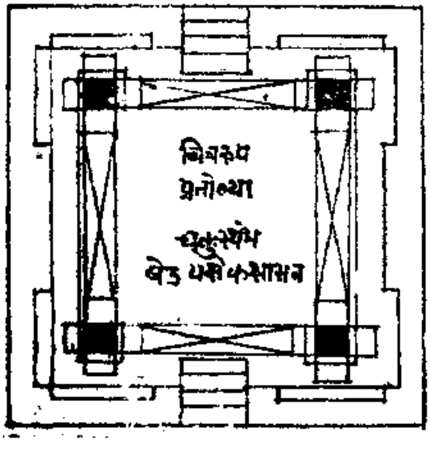

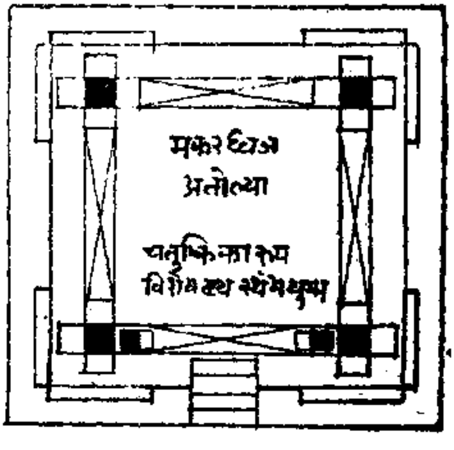

P.O.S.

भद्रनिर्गम तुल्यं तु जगती गंड निर्गमा
द्वितीयं तत्समं कार्यं प्रतिहारास्तदग्रत ॥१७॥
मूल नायक यन्मानं तन्मानात्पादवर्जितं
तत्समं प्रतिहारा द्वारेच वामदक्षिणे ॥१८॥

પ્રાસાદ જેટલો કે તેથી અર્ધ કે પોણા ભાગના પહોળા આગળ પગથિયાં કરવાં. બે બાજુ હાથીની સુંઢની આકૃતિના ચોથા ભાગે ગંડસ્થળ હાથણીઓ પહોળો રાખવો. બીજો તેના જેટલો બે બાજુ હાથણીઓ કરવી. ભદ્રના નીકાળા બરાબર જગતીના ગંડસ્થળનો નીકાળો રાખવો. બીજો પણ તેટલો જ કરવો. અને તેનાથી આગળ નિકળતા પ્રતિહારોનાં સ્વરૂપો કરવાં મૂળ નાયકમૂળ મંદિરમાં પધરાવેલ દેવના માનથી તેનાથી પોણા કે તેટલા પ્રતિહારનાં સ્વરૂપો ડાબી જમણી તરફ કરવાં. ૧૫–૧૬–૧૭–૧૮

प्रासादके बराबर या उससे आधे या पौने भागके चौडे पगथिये आगेके भागमें करना। दोनों तरफ हाथीकी सुंढकी आकृति, चौथे भागपर गंडस्थल विशाल रखना। दूसरा भी उसके बराबर, दोनों तरफ हाथिने करना। भद्रके नीकालेके बराबर जगतीके गंडस्थलका नीकाला रखना। दूसरा भी उतना ही करना। और उसमेंसे आगे निकलते प्रतिहारोंके स्वरूप करना। मूल नायक–मूल मंदिरमें पधराये हुए देवके मानसे उससे पौने या उसके बराबर प्रतिहारके स्वरूप बायीं दायीं ओर करना। १५–१६–१७–१८

बलाणक जगत्योर्द्धे ग्रस्त वामन नामत:
जगत्योपरिमत्तवारण सन्मुखो वामदक्षिणे ॥१९॥

જગતીની ઉપર આગળ નીકળતું અગર જગતીના ઉદયમાં સમાય તેટલી ઊંચાઇના મંડપને તે પર વામન નામનું બલાણક કહ્યું છે. જગતીની ઉપર (બલાણક કરતાં બાકી રહે ત્યાં) સન્મુખ અને ડાબી જમણી તરફ મત્તવારણ કક્ષાસનો કરવાં.

जगतीके उपर आगे निकलता अगर जगतीके उदयमें समा सके [१६]इतनी ऊँचाई के मंडपको उसके पर 'वामन' नामक बलाणक कहा है। जगतीके उपर (बलाकण करते बाकी रहे वहाँ) सन्मुख और बायीं–दायीं तरफ मत्तवारण कक्षासनों करना। ९९

राजसेनश्चतुर्भागे भारपुत्तलिकायुत:
वेदिका रुपसंघाटै: सप्तभाग समुच्छ्रितै ॥२०॥
द्विपदचासनपदं कूटागारै: समन्वितम्
लिलासनं सुखार्थे च कक्षासन करोन्नतम् ॥२१॥

જગતી ઉપર મત્તવારણ કરવાના ભાગ કહે છે. રાજસેનક ચાર ભાગનું કરવું. તેમાં ભાર પુત્તલીકાના લામસા સાથે તે કરવું. સાત ભાગ ઊંચી વેદિકા દેવગંધર્વાદિ સ્વરૂપ અને વેણી રાશિયાના ઘાટવાળી કરવી. તે પર બે ભાગ જાડો ચપટ થરનો આસન પટ્ટ કરવો. તેમાં આગળના ભાગમાં કૂટ—ગ્રાસમુખ અને દોઢીયા વગેરે ઘાટવાળા સુંદર બનાવવા તેના પર સુખથી તકીયાની જેમ બેસવાને કક્ષાસન એક હાથ ઊંચું કરવું. ૨૦–૨૧

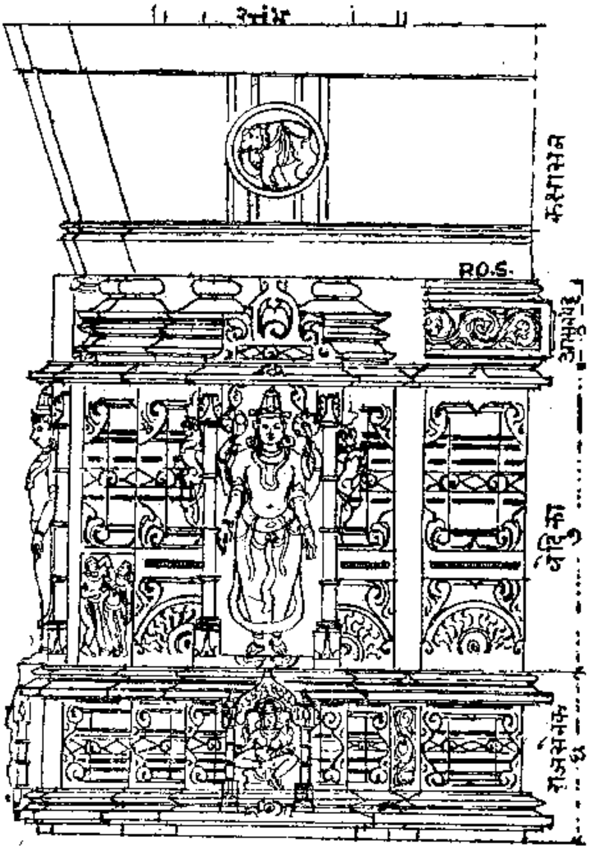

राजसेवक, वेदिका, आसनपट्ट, कक्षासन

जगतीके उपर मत्तवारण करनेके भाग कहते हैं। राजसेनक चार भागका करना। उसमें भारपुत्तलिकाका लामसाके साथ वह करना। सात भाग ऊँची वेदिका देव गंधर्वादि स्वरूप (और बेनी राशियाके) घाटवाली करना। उसके पर दो भाग मोटा सपाट थरका आसनपट करना। उसमें आगे के भागमें कूट ग्रासमुख और दोढिया वगैरह घाटवाला सुंदर बनाना। उसके पर सुखसेम सनदकी तरह बैठनेके लिये कक्षासन एक हाथका ऊँचा करना। २०–२१

मंडपाग्रे शृंडिकाग्रे च प्रतोल्याग्रे तथैव च।
तोरणं त्रिविधं ज्ञेयं ज्येष्ट मध्य कनिष्ठकम् ॥२२॥
स्तंभगर्भे भितिगर्भे तन्मध्ये च विचक्षण:
तोरण स्योभय स्तंभे ब्रह्मगर्भेतु संस्थितौ ॥२३॥

મંડપની આગળ પગથિયાં, હાથણીનો આગળ પ્રતોલ્યા કરવી. તે તોરણ ત્રણ પ્રકારના જ્યેષ્ઠ મધ્યમ અને કનિષ્ઠ એ ત્રણ માનના તોરણ કરવા. ચોકીના સ્થંભના ગર્ભ ૨ પ્રાસાદની ભિંતના ગર્ભ ૩ તે બે વચ્ચે એટલે ચોકી થાંભલા

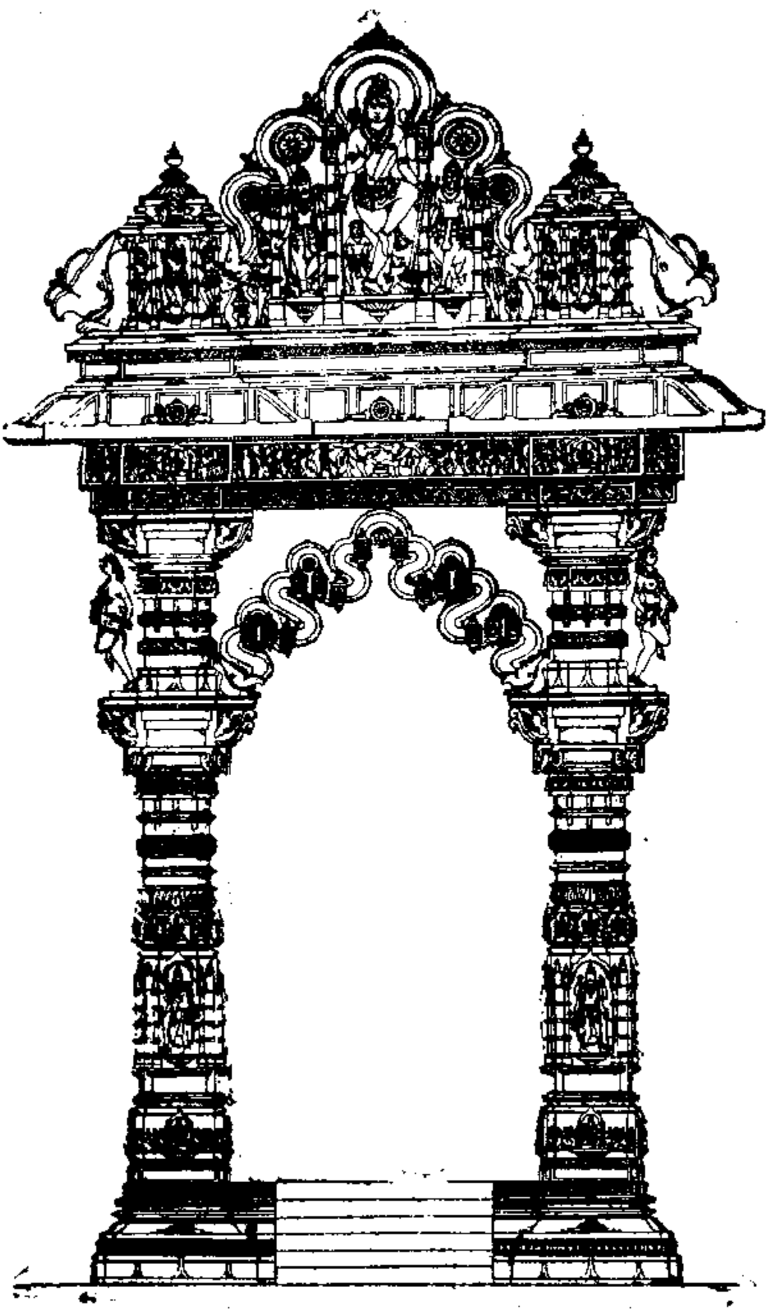

पीठयुक्त रूपस्तम्भ–इलिका तोरण–प्रवेश प्रतोल्या

ભિંતની વચ્ચે એમ ત્રણ પ્રકારે મધ્યનો ઊભો બ્રહ્મગર્ભ સાચવીને તેની બે બાજુ તોરણના સ્થંભો ઊભા કરવા. ૨૨–૨૩

मंडपके आगे पगथिये, हाथिनके आगे प्रतोल्या करना। उसमें तोरण तीन प्रकारके ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ मानके करना। १ चौकीके स्तंभ के गर्भ २ प्रासादकी दिवारके गर्भ ३ उन दोनोंके बिच अर्थात् चौकी, स्तंभ और दिवारके बिच गर्भ ये तीन प्रकारसे मध्यके खडे ब्रह्म गर्भको सम्हालकर उसकी दोनों तरफ तोरणके स्तंभ करना। २२–२३

व्योमो वृषभः सिंहश्च गरुडो हंस एव च
एकादि सप्तांतर चतुष्किका कर्त्तु फलप्रदा ॥२४॥

વિમાન નંદી સિંહ ગરુડ કે હંસ આદિ દેવ વાહનોનું સ્થાન એક થી સાત પદના અંતરે ચતુષ્કિા કરીને કરવું કે મંડપ કરવાથી કર્તાને ફળ મળે છે. ૨૪

विमान, नंदी, सिंह, गरुड, या हंस आदि देव वाहनोंका स्थान एक से सात पदके अंतरसे चतुष्किका करके करना जिससे मंडप करनेसे कर्ताको फल मिलता है। २४

प्रतोली चाग्रत कार्या कपाटपुट संयुता
द्रढार्गला च कर्तव्या कथ्यतेऽश्चोच्छ्रयः ॥२५॥

પ્રતોલ્યાની આગળ ગઢ–દુર્ગના મજબુત આગળિયાવાળા કમાડની જોડ કરવાનું કહ્યું છે. ૨૫

प्रतोल्याके आगे दूर्गके मजबूत आधारवाले किवाड़की जोड करनेके लिये कहा है। २५

इति श्री विश्वकर्मा कृते क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां जगती लक्षणाधिकारे शत तमोऽध्याय ॥ १०० ॥ (क्रमांक अ० २)

ઈતિ શ્રી શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ પ્રભાકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા અનુવાદિત શ્રી વિશ્વકર્મા અને નારદજીના સંવાદરૂપ ક્ષીરાર્ણવ વાસ્તુશાસ્ત્રના જગતી લક્ષણા ધિકારના ૧૦૦ મા અધ્યાય પર સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકા. (૧૦૦)

इति श्री शिल्पविशारद स्थपति प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा अनुवादित श्री विश्वकर्मा और नारदके संवादरूप क्षीरार्णव वास्तुशास्त्रके प्रासाद जगती लक्षणा-धिकारके १०० वें अध्याय पर सुप्रभा नामकी भाषा टीका। १००. (क्रमांक अ० २)

॥ अथ कूर्मशिलानिवेशनम् ॥

क्षीरार्णव अ० १०१—क्रमांक अ० ३

श्री विश्वकर्मा उवाच—

एक हस्ते तु प्रासादे शिला वेदोंङ्गुला भवेत ।
द्वयंरंगुला भवेद्वृद्धि यावत्दशहस्तकं ॥ १ ॥
दशोर्ध विंशपर्यत. हस्ते हस्तैक मंगुलं ।
अर्धांगुलं भवेद्वृद्धि यावत्हस्त शतार्द्धकं ॥ २ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા નારદજીને કહે છે. પ્રાસાદની કૂર્મશિલાનું માન કહું છું. એક હાથના પ્રાસાદને ચાર આંગળની કૂર્મશિલા કરવી. એથી દસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે બબ્બે આંગળની વૃદ્ધિ કરવી દસ થી વીસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે એકેક આંગળી વૃદ્ધિ કરવી. એક વીસથી પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે અર્ધા અર્ધા આંગળની વૃદ્ધિ પાષાણની કૂર્મશિલાની કરવી.[1] ૧–૨

श्री विश्वकर्मा नारदजीको कहते हैं। कूर्मशिलाका मान कहते हैं। एक हाथके प्रासादको चार अँगुलकी कूर्मशिला करना। दोसे दस हाथके प्रासादको प्रत्येक हाथपर दो दो अँगुलकी वृद्धि करना। दससे बीस हाथके प्रासादको प्रत्येक हाथपर एक एक अँगुलकी वृद्धि करना। इकीससे पचास हाथके प्रासादको प्रत्येक हाथपर आधे आधे अँगुलकी वृद्धि पाषाणकी कूर्मशिलाकी करना।[1] १–२.

तृतीयांशे कृते पिंड स्तदोर्ध्वक्षोभमामकं ।
पुष्परम्य यदाकारं शिलामध्येमलंकृतम् ॥ ३ ॥
लहेरं च मच्छ मंडूकं मकरे ग्रासमेवं च ।
शंख सर्प घटयुक्तं कूर्ममध्येमलकृतम् ॥ ४ ॥

આવેલ કૂર્મશિલાના માનથી (સમ ચોરસ કરવી.) કહેલા માનથી ત્રીજે ભાગે જાડી કરવી. તેના ઉપરના ભાગમાં પુષ્પના આકાર રમ્ય એવી આકૃતિ નવ ખાનાં પાડીને અલંકૃત કરવી. કોતરવી. તે નવ ખાનામાં ૧ જળની લહેર ૨

---

૧. પ્રાસાદના પ્રત્યેક પ્રમાણોમાં જ્યાં જ્યાં હાથ કહેલાં છે ત્યાં એનો ગજ અથવા ૨૪ આંગળ સમજવો. હાથ = ગજ = ૨૪ આંગળ.

(१) प्रासादके प्रत्येक प्रमाणमें जहाँ जहाँ हाथ कहे हैं, वहाँ हाथका अर्थ गज या २४ अँगुल समजना। हाथ = गज = २४ अँगुल।

માછલી ૩. દેડકો ૪, મગર ૫. ગ્રાસ ૬. શંખ ૭. સર્પ ૮. કુંભ અને મધ્યમાં કૂર્મ કોતરવા (જળચરાદિ જીવો અને શુભ ચિહ્નો કોતરવાં)[२] ૩–૪

आये हुए कूर्मशिलाके मानसे (समचोरस करना) कहे हुए मानसे तीसरे भागकी मोटी करना। उसमें उपरके भागमें पुष्पके आकारमें रम्य ऐसी आकृति नौ खाने बनाकर अलंकृत कर कोतरना। उन नौ खानोंमें १ जलकी लहर २ मछली ३ मेडक ४ मगर ५ ग्रास ६ शंख ७ सर्प ८ कुंभ और मध्यमें कूर्म कोतरना (जलचरादि जीवों और शुभ चिह्नोंको कोतरना।)[२] ३–४.

---

૨. અ શ્રી વિશ્વકર્માએ પાષાણની કૂર્મ શિલામાં લહેર, મચ્છ મંડૂક આદિ આઠ આકૃતિ કોતરવાનું કહ્યું છે. પરંતુ તે સ્વાભાવિક રીતે પૂર્વાદિ દિશાના ક્રમે કોતરાવી જોઇએ. તેમ શિલ્પિઓનો કેટલોક વર્ગ માને છે. પરંતુ સૂત્રધાર વીરપાલ વિરચિત બેડાયા '**પ્રાસાદ તિલક**' નામના ગ્રંથમાં આ આકૃતિઓ અગ્નિકોણના ક્રમથી દિશા વિદિશામાં નામ કહીને સ્પષ્ટ આપેલ છે. આ મતે પણ કેટલાક શિલ્પીઓ તેમ કરે છે. વૃદ્ધોની એક પરંપરા એમ માને છે કે ગમે તે દિશા હોય પણ જ્યાં દ્વાર હોય તેજ પૂર્વ માનીને દ્વારની તરફ લહેર આવવી જોઈએ. તેથી યજમાનનું કલ્યાણ થાય અને લીલા લ્હેર થાય. વૃદ્ધોની આ માન્યતાને અનુવાદક આપે છે.

(બ) કૂર્મ શિલાનું જે માન કહ્યું હોય તે પ્રમાણની સમચોરસ અને ૧/૩ ભાગની જાડાઈની શિલા મધ્યની કરવી. પરંતુ નંદા ભદ્રાદિ અષ્ટ શિલાઓનું માન કે માપ આપેલું નથી પરંતુ પરંપરાથી તેનું માન કૂર્મશિલા જેટલી લાંબી અને લંબાઈમાં અર્ધ પહોળી અને પહોળાઈમાં અર્ધ જાડી અગર મધ્યની કૂર્મ શિલા જેટલી જાડી અષ્ટ શિલાઓ દિશા અને વિદિશામાં સ્થાપન કરવી અષ્ટ શિલાના માન માપની એ પ્રથા છે. જ્યાં માન માપ કહ્યાં ન હોય ત્યાં તે સંબંધમાં ખોટા વાદ વિવાદમાં ઉતરવું નહિ. વૃદ્ધોની પરંપરાને અનુસરવું.

(२) "अ" श्री विश्वकर्माने पाषाणकी कूर्मशिलामें लहर–मच्छ–मंडूक आदि आठ आकृतियाँ कोतरनेके लिये कहा है, लेकिन वह स्वाभाविकतासे पूर्वादि दिशाके क्रमसे कोतरनी चाहिये, ऐसा शिल्पीओंमें से कोई वर्ग मानता है। परंतु सूत्रधार वीरपाल विरचित **बेडाया 'प्रासाद तिलक'** नामके ग्रंथमें ये आकृतियाँ अग्निकोण के क्रमसे दिशा विदिशामें नाम कह कर स्पष्ट बतायी गयी हैं। इस मतके अनुसार भी कई शिल्पीयों करते हैं। वृद्धोंकी परंपरा का मत है कि कोई भी दिशा हो लेकिन जहाँ द्वार हो वही पूर्व मानी गयी है। द्वारकी तरफ लहर आनी चाहिये। इससे यजमानका कल्याण होता है और आनंद मंगल होता है। वृद्धोंकी इस मान्यताको अनुवादक मान देता है।

(ब) कूर्मशिलाका जो मान कहा हो उसके प्रमाणकी समचोरस और १/३ तीसरे भागके मोटेपनकी शिला मध्यकी करना। परंतु नंदा भद्रादि अष्ट शिलाओंका मान या माप नहीं दिया है, तो भी परंपरासे उसका मान कूर्मशिलके बराबर लम्बी और लम्बाईमें आधी चौडी और चौडाईमें आधी मोटी अगर मध्यकी कूर्मशिलाके बराबर मोटी अष्ट शिलाओंको दिशा और विदिशामें स्थापन करनेके लिये कहते हैं। अष्ट शिलाके मान मापकी यह प्रथा है।

कूर्म शिला तथा अष्ट शिला

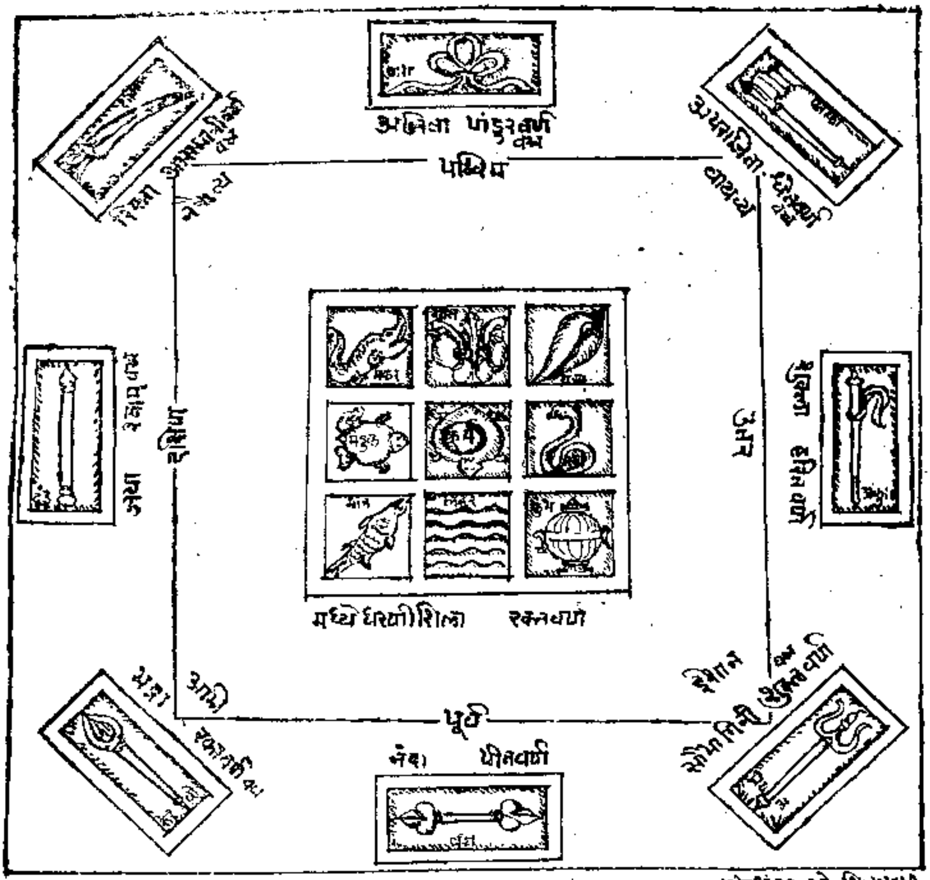

प्रभाशंकर ओ. शिल्पशास्त्री

कूर्मशिला तथा अष्टशिला चिन्ह और वस्त्रवर्ण

(क) મધ્યની કૂર્મશિલા અને અષ્ટ શિલાના માપથી તેનાથી પહોળી તેની ઢંક શિલાઓ કરવી. મૂળ શિલાઓ પર થોડી જગ્યા રાખીને સંપૂટની જેમ રાખીને ઢંક શિલા મૂકવી. મધ્યની કૂર્મશિલા પર ચાંદીનો કૂર્મ મૂકાય છે. તેનું માપ અન્ય ગ્રંથોમાં આપેલ છે. એક ગજે અર્ધા આંગળનું માન કહ્યું છે. મધ્યની કૂર્મશિલા મૂકી ચાંદીનો કૂર્મ સ્થાપન કરી તે પર નાભિનું ભૂંગળું–પાઈપ ઊભો કરવામાં આવે છે. આ નાભિ ઉપર મુખ્ય પ્રભુ બિરાજમાન થાય તેના નીચે સુધી લંબાવાય છે.

जहाँ मान माप न बताये हो वहाँ उसके संबंधमें व्यर्थ वाद–विवादोंमें उतरना नहीं। परंतु वृद्धोंकी परंपराको मानना।

(क) मध्यकी कूर्मशिला और अष्टशिलाके मापसे उससे चौडी उसकी ढंक शिलायें बनाना। मूल शिलाओंके उपर थोडी जगह रखकर संपुटकी तरह रखकर ढंक शिलाको रखना। मध्यकी कूर्मशिलाके उपर चाँदीका कूर्म रखा जाता है। उसका माप अन्य ग्रंथमें दिया है।

કૂર્મશિલામાન ગજ	આં
૧	૪
૨	૬
૩	૮
૪	૧૦
૫	૧૨
૬	૧૪
૭	૧૬
૮	૧૮
૯	૨૦
૧૦	૨૨
૨૦	૩૨
૩૦	૩૭
૪૦	૪૨
૫૦	૪૭

पंचमुख–दशभूज महाविश्वकर्मा उर्ध्वे तोरण पक्षे विरालिका युक्त परिकर
नीम्न–जय–मय–त्वष्टा और अपराजित

(ड) કૂર્મશિલા ગર્ભગૃહના મધ્યમાં પધરાવવાનું સાધારણ રીતે કહ્યું છે. પરંતુ **શ્રીરાણવિ** ગ્રંથમાં શ્રી વિશ્વકર્માએ કૂર્મશિલા માટે કહ્યું છે કે अर्ध पादे त्रिभागे वा शिलाचैव **प्रतिष्ठयेत्** ॥ ગર્ભગૃહના અર્ધમાં કે ગર્ભગૃહના ચોથા ભાગ કે ત્રીજા ભાગે પણ કૂર્મશિલા **પ્રતિષ્ઠિત** કરવી. આમ કહેવાનો હેતુ છે. શિવલિંગ હોય તો મધ્યમાં પધરાવે ત્યાં કૂર્મશિલા **મધ્યમાં પધરાવી** વિષ્ણુ આદિ દેવોના સ્થાપના વિભાગ કહ્યા છે ત્યાં તેની નીચે કૂર્મશિલા **પધરાવવી તે યોગ્ય છે**. કૂર્મ શિલા પરની નાભિ બ્રહ્મરંધ્ર દેવ પ્રતિમા નીચે બરાબર આવી શકે.

एक गज पर **आधे अँगुलका** मान कहा है। मध्यकी कूर्मशिला रखकर चाँदीके **कूर्मको** स्थापित कर उसके पर नाभिका भुंगला–पाईप खडा किया जाता है। और **नाभिके ऊपर** मुख्य प्रभु बिराजमान हो **वहाँ** नीचे तक लंबाया जाता है।

(ड) सामान्थतया कूर्मशिलाको गर्भगृहके मध्यमें पधरानेके लिये कहा गया है। **परंतु** **क्षीपार्णव** ग्रंथमें श्री विश्वकर्माने कूर्मशिलाके लिये कहा है कि **अर्धपादे त्रिभागेवा शिलाचैव प्रतिष्ठयेत्**।' गर्भगृहके आधे भागमें या चौथे भागमें या तीसरे भागमें भी **कूर्मशिलाका** प्रतिष्ठित करना। इस कथनका तात्पर्य यह है कि **शिवलिङ्ग** हो तो मध्यमें पधरावें **वहाँ**

नंदा भद्रा जयारिक्ता अजिता वा पराजिता ।
शुक्ला सौभागिनी चैव धरणी नवमी शिला ॥५॥

(इ) અષ્ટશિલાઓ દિશા વિદિશામાં સ્થાપન કરવાની પ્રથા છે. પરંતુ અન્ય ગ્રંથોમાં પાંચ શિલાઓનું પણ કહ્યું છે. મધ્યની એક અને ચાર કોણમાં ફરતી એમ પાંચ આવાં પ્રમાણો છે. કેટલાક ગ્રંથોમાં નવ શિલા સ્થાપનકરવાની પ્રથા વર્તમાન કાળમાં શિલ્પીમાં છે.

(फ) કોઈ જોખમી કામમાં પાયો ધસી પડે તેવા ભયસ્થાનોમાં અષ્ટ શિલા પધરાવવાનું અશક્ય બને છે. ત્યારે ત્યાં દોષ ન માનવો જોઈએ જરૂરી મુહુર્ત કરવું.

(ज) પંચશિલા કે અષ્ટશિલામાં કોતરવાના ચિન્હો વિશે એક એવો મત છે કે પ્રત્યેક દિશા વિદિશાના દિક્પાલોનું એક આયુધનું ચિન્હ કોતરાય છે. विश्वकर्म प्रकाश ગ્રંથમાં કૂર્મશિલાસ્થાપન વિધાનમાં કહે છે.

स्वस्वासु वाहनाद्यंकै धातुजैस्ताषपात्रगै
मुक्तं दाष विधि नाद्यै न्यसे द्रर्भे सुरालये ॥

(च) જે દેવનું મંદિર હોય તેના વાહન આયુધ શિલાઓમાં અંકિત કરવા શિલાઓની નીચે ધાતુપાત્ર સર્વૌષધિ સપ્ત ધાન્યાદિ પાત્રોમાં ભરી મૂકવા. શિલાઓને દિક્પાલના વર્ણ વસ્ત્રો લપેટી નીચે કળશ, શેવાળ, કોડી, સપ્ત ધાન્ય, ચણોઠી, ગંગાજળ, પંચરત્નની પોટલી, વગેરે કળશમાં મૂકી પધરાવે છે. તે નીચે ચાંદી કે ત્રાંબાના નાગ અને કાચબો પણ પધરાવવાની પ્રથા શિલ્પીઓમાં છે.

कूर्मशिलाको मध्यमें पधराना। विष्णु आदि देवोंके स्थापना विभाग कहे हैं। वहाँ उसके नीचे कूर्मशिलाको पधराना योग्य है। कूर्मशिलाके उपरकी नाभि ब्रह्मरंध्र देव प्रतिमाके नीचे बराबर आ सके।

(इ) अष्ट शिलाओंको दिशा विदिशाओंमें स्थापन करनेकी प्रथा है। परंतु अन्य ग्रंथोंमें पाँच शिलाओंका भी कहा है। मध्यकी एक और चार कोनेमें फिरती इस तरह पाँच ऐसे प्रमाण हैं। अन्य ग्रंथोंमें नौ शिलाओंका प्रतिस्थापन करनेकी प्रथा वर्तमानकालमें शिल्पियोंमें है।

(फ) किसी जोखमी काममें नींव टूट पडे वैसे भयस्थानमें अष्ट शिलाओंको पधराना, अशक्य बनता है तब वहाँ दोष नहीं मानना चाहिये। आवश्यक मुहूर्त कर लेना।

(ज) पंच शिला या अष्ट शिलामें कोतरनेके चिह्नोंके बारेमें एक ऐसा मत है कि प्रत्येक दिशा विदिशाके दिग्पालोंके एक आयुधका चिह्न किया जाता है। 'विश्वकर्मा प्रकाश' ग्रंथमें कूर्मशिला स्थापन विधानमें कहा है—

स्वासु वाहनाद्यैकं धातुजैस्ताष पात्रगै
मुक्तं दाष विधिनाद्यै न्यसे द्रर्भे सुरालय ॥

(च) जिस देवका मंदिर हो उसके वाहन, आयुध शिलाओंमें अंकित करना। शिलाओंके नीचे धातुपात्र सर्वौषधि सप्तधान्यादि पात्रोंमें भरकर रखना। शिलाओंको दिग्पालके वर्णके वस्त्रों लपेटकर नीचे कलश, सेवाल, कोडी, सप्त, धान्य, गंगाजल, पंचरत्नकी गठ्ठी वगैरह कलशमें रखकर पधराते हैं। उसके नीचे चाँदी या ताम्रके नाग और कूर्मको भी पधरानेकी प्रथा शिल्पियोंमें है।

ઉમા મહેશ યુગ્મ તોરણ વિરાલિકાયુક્ત પરિકર

મધ્યની કૂર્મશિલાઓની ફરતી આઠ શિલાઓનાં નામ કહે છે. ૧ નંદા ૨ ભદ્રા ૩ જયા ૪ રીક્તા અજિતા ૬ અપરાજિતા ૭ શુકલા અને ૮ સૌભાગિની એ આઠ શિલાઓ પૂર્વાદિ પ્રદક્ષિણાએ સ્થાપના કરવી અને મધ્યની નવમી ' ધરણી ' શીલા સ્થાપન કરવી. ૫

मध्यकी कूर्मशिलाओंके फिरती आठ शिलाओंके नाम कहते हैं। १ नंदा २ भद्रा ३ जया ४ रिक्ता ५ अजिता ६ अपराजिता ७ शुक्ला और ८ सौभागिनी–ये आठ शिलाओंको पूर्वादि प्रदक्षिणासे स्थापन करना। और मध्यकी नौवीं 'धरणी' शिलाको भी स्थापन करना। ५.

मध्ये कूर्मप्रदातव्यं रत्नालंकारसंयुतं।
हेमरुप्यमयः कार्यो द्रढरुपमयो भवेत् ॥६॥
तं शिलायां पंचमांशेन कर्तव्यकूर्ममुत्तमम्।
सकलालंकार संयुक्ता दिव्य पुष्पेन पूजिताम् ॥७॥
वस्त्र वैडूर्य संयुक्तं इंद्रनीकमणी स्तथा।
पुष्परांग च गोमेद प्रवाल परिवेष्टितं ॥८॥

પૂર્વાદિ દિશા વિદિશાઓમાં અષ્ટ શિલા પધરાવી તેમાં મધ્યમાં નવમી ધરણી નામે શિલા કૂર્મશિલા સ્થાપન કરવી. કૂર્મશિલા રત્ન અલંકારો સહિત સોના અને રૂપા સહિત દૃઢ રૂપે સ્થાપન કરવો.[3] તે કૂર્મને રત્ન અલંકારો સહિત સર્વ પ્રકારના દિવ્ય પુષ્પાદિ સામગ્રીથી પૂજન કરવું. ઉત્તમ વસ્ત્રો, વૈડૂર્ય ઇન્દ્રનીલ મણી પદ્મરાગ ગોમેદ અને પ્રવાલાદિ રત્નોથી પરિવેષ્ટિત કરી સ્થાપના કરવી. ૬–૭–૮

૩. કૂર્મશિલા પર ચાંદીનો કૂર્મ કરવાનું પ્રમાણ અહીં શિલાના પાંચમા ભાગે કહ્યું છે. પરંતુ સૂત્ર સંતાન અપરાજિત સૂત્ર ૧૫૩ માં ધાતુના કૂર્મનું અને પાષાણનાકૂર્મ શિલાનાં પ્રમાણો ૨૫૯૮ કહ્યાં છે. ઉપર કહ્યો તે ગજે અર્ધ આંગળનો ચાંદીનો કૂર્મશિલા પર વિધિથી પધરાવવો.

पूर्वादि दिशा विदिशाओंमें अष्ट शिलाओंको पधराना । उसमें मध्यमें नौवीं धरणी नामकी शिला–कूर्मशिलाको स्थापन करना । कूर्मशिला रत्नालंकारोंके सहित सोना और रुपाके सहित दृढरूपसे स्थापन करना । कूर्मशिलाका पाँचवे भागका चाँदीका उत्तम कूर्म बनाके स्थापन करना ।[३] उस कूर्मको रत्न अलंकारोंके सहित सर्व प्रकारके दिव्य पुष्पादि सामग्रीसे पूजन करना । उत्तम वस्त्रों, वैडूर्य, इन्द्रनील मणी, पद्मराग, गोमेद और प्रवालादि रत्नोंसे परिवेष्ठित कर स्थापना करना । ६–७–८.

[४]नंदापूर्वे प्रदातव्यम् शिलाशेषप्रदक्षिणे ।
धरणीं मध्ये च संस्थाप्यं यथाकर्म प्रयत्नतः ॥९॥

પ્રથમ પૂર્વમા નંદા શિલાને પધરાવવી. બાકીની સાત શિલાઓ પ્રદક્ષિણાએ પધરાવવી. મધ્યની કૂર્મશિલા ધરણી શિલાને યથાયોગ્ય કર્મના પ્રયત્ને કરીને મધ્યમાં સ્થાપના કરવી. ૯

प्रथम पूर्वमें नंदा शिला को पधराना । बाकी सात शिलाओंको प्रदक्षिणासे पधराना । मध्यकी कूर्म धरणी शिलाको यथायोग्य कर्मके प्रयत्नसे मध्यमें स्थापन करना । ९.

दिग्पालं बलिंदद्यात् दिव्यवस्त्रं च शिल्पिने ।
नारिकेल फलं दद्यात् ब्रह्मभोजं च दक्षिणा ॥१०॥

કૂર્મશિલા સ્થાપન કરતાં દિગ્પાલાદિને બલી આપવા શિલ્પીઓને દિવ્ય વસ્ત્રાભૂષણો દેવા. બ્રહ્મભોજ જમાડી દક્ષિણા અને નાળિયેર–શ્રીફળાદિ આપી સંતુષ્ઠ કરવા. ૧૦

कूर्मशिलाका स्थापन करते दिग्पालादिको बलि देना । शिल्पियोंको दिव्य वस्त्राभूषण देना । ब्रह्मभोज कराकर दक्षिणा और श्रीफलादि देकर संतुष्ट करना । १०.

इतिश्री विश्वकर्माकृते क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां कूर्मशिला निवेशने शताग्रे प्रथमोऽध्याय ॥१०१॥ (क्रमांक अ० ३)

(३) कूर्मशिलाके पर चाँदीका कूर्म बनानेका प्रमाण यहाँ शिलाके पाँचवे भागमें कहा है, लेकिन सूत्रसंतान अपराजित सूत्र १५३ में धातुके कूर्म और पाषणके कूर्मके प्रमाण पृथक् पृथक् स्पष्ट कहे हैं । उपर बताये हुए गर्जे आधा आँगुलका चाँदीके कूर्मको मध्यकी कूर्मशिला पर विधिसे पधराना ।

४. કૂર્મશિલા અને અષ્ટશિલામાં અંકિત કરવાનાં ચિહ્નો બાબત ગ્રંથોમાં સ્વસ્તિક આદિ ચિહ્નો કરવાનું કહે છે.

ઉત્તર ભારતના ગ્રંથોમાં નવ શિલા અને પંચ શિલાઓ પણ પધરાવવાનું કહ્યું છે. ઘર કાર્યમાં પંચશિલા યોગ્ય છે. પ્રાસાદમાં નવ શિલાનું પ્રમાણ ઠીક લાગે છે.

ઇતિશ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવે શ્રીનારદમુનિએ પૂછેલા કૂર્મશિલા નિવેશનનો શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી ગુર્જર ભાનુવાદની સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકા સાથેનો એકસો એકમો અધ્યાય. ૧૦૧

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव नारद मुनिके संवादरूप कूर्मशिला निवेशन शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा रचित सुप्रभा नामकी भाषा टीकाका १०१ अध्याय ॥१०१॥ (क्रमांक अ० ३)

कुतूहल

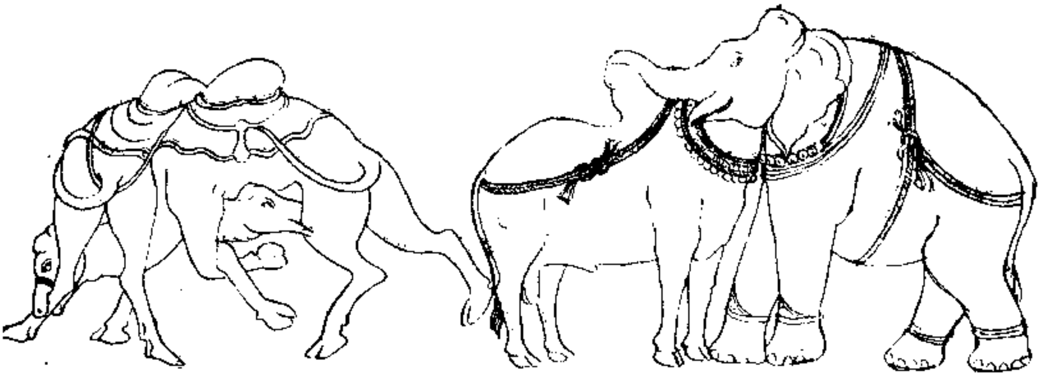

दो सांढ युद्ध   वृषभ और हस्तियुद्ध एकमें दूसरे का मुख प्रदर्शित होता है।

મધ્યની કૂર્મશિલા પર નાભિનું ભૂંગળું ઊભું કરવાનું નાગરાદિ શિલ્પમાં સ્પષ્ટ નથી. પરંતુ શિલ્પીઓ નાભિ ઊભી કરવાની પ્રથાને અનુસરે છે. દ્રવિડ ગ્રંથમાં આ વિષયમાં સ્પષ્ટ કહે છે કે નાભિ ઊભી કરવી. श्री विश्वकर्मा प्रकाश અને अग्नि पुराण માં પણ નાભિ વિશેનો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ છે.

(४) कूर्मशिला और अष्टशिलामें अंकित किये जानेवाले चिह्नोंके बारेमें अन्य ग्रंथोंमें स्वस्तिक आदि चिह्नों बनानेके लिये कहा है।

उत्तर भारतके ग्रंथोंमें नौ शिला और पाँच शिलाओंको भी प्रमाण ठीक है।

मध्यकी कूर्मशिलाके पर नाभिकी नाली खडी करनेकी प्रथाको अनुसरते हैं। द्राविड ग्रंथोंमें इस विषयमें स्पष्ट कहते हैं कि नाभी खड़ी करना। श्री विश्वकर्मा प्रकाश और अग्निपुराणमें भी नाभिके बारेमें स्पष्ट उल्लेख है। नागरादि शिल्प ग्रंथोंमें नाली खड़ी करनेका स्पष्ट कहा नहृ है।

अथ भिट्टमान

क्षीरार्णव अ० १०२—क्रमांक अ० ४

श्री विश्वकर्मा उवाच—

एक हस्ते तु प्रासादे भिट्ट वेदाङ्गुलं भवेत् ।
हस्तादि पँच पर्यंत वृद्धिरेकैक मंगुलम् ॥ १ ॥
पादोनमंगुलावृद्धि यावत्दशहस्तकम् ।
शतार्द्ध हस्तमानेन करवृध्यार्द्धांगुलम् ॥ २ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. એક હાથના પ્રાસાદને ચાર આંગળ ઊંચું (જાડું) ભિટ્ટ કરવું. બેથી પાંચ હાથનાને પ્રત્યેક હાથે એકેક આંગળ અને છથી દસ આંગળનાને પોણા પોણા આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. અગ્યારથી પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે અર્ધા અર્ધા આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. ૧–૨.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं—एक हाथके प्रासादको चार अँगुल ऊचा (मोटा) भिट्ट करना। दोसे पाँच हाथके प्रासाद को प्रत्येक हाथ पर एक एक अँगुल और छः से दस हाथके प्रासादको पौने पौने अँगुलकी वृद्धि करना। ग्यारहसे पचास हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक हाथपर आधे आधे अँगुलकी वृद्धि करना। १–२.

एवं त्रिपुष्पकं चैव हस्वा चतुर्थांशकृत् ।
तृतीया च तदुर्धेन कर्तव्यं तद्विचक्षणे ॥ ३ ॥
प्रथमं निर्गमं कार्यं चतुर्थांशेन महामुनि ।
द्वितीया तृतीयांशेन तृतीयं च तदूर्ध्वत् ॥ ४ ॥

એ ભિટ્ટ પુષ્પ સમાન ઉપરાપર ત્રણ કરવા. પોતપોતાનાથી ચોથા અંશ જાડાઈમાં ઓછા રાખતા જવું એવું વિચક્ષણ બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ કરવું. હે મહામુનિ નારદજી ! પહેલા ભિટ્ટનો નીકાળો તેની ઊંચાઈના ચોથા ભાગ રાખવો એ રીતે બીજા અને ત્રીજા ભિટ્ટનો નીકાળો રાખવો. તે ત્રીજા ભિટ્ટ ઉપર પીઠ કરવું. ૩–૪.

यह भिट्ट पुष्पसमान उपरपर तीन करना। अपने अपने से चौथे अंश के मोटेपनमें कम रखते जाना। ऐसा विचक्षण बुद्धिमान शिल्पीको करना चाहिये। हे महामुनि नारदजी ! पहले भिट्टका नीकाला उसकी ऊँचाई के चौथे भागमें रखना। इस तरह दूसरे और तीसरे भिट्टका नीकाला रखना। तीसरे भिट्टके ऊपर पीठ बनाना। ३–४.

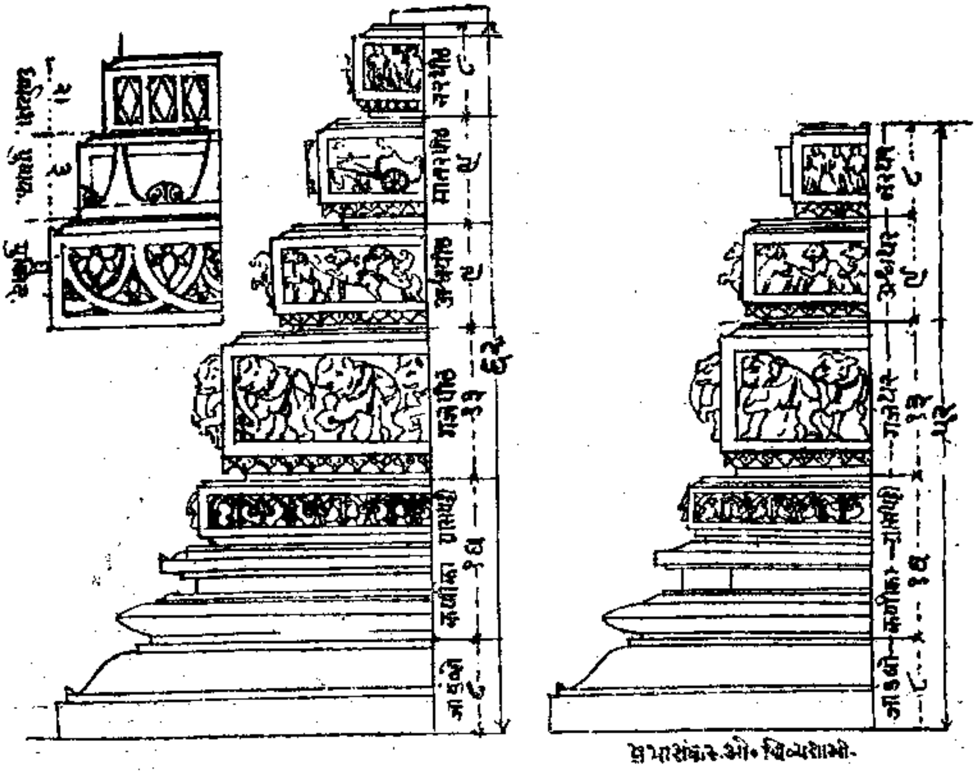

भिट्ट और महापीठ

प्रथमं भिट्टस्यार्धेन पिंडवर्णशिलोत्तमा ।
तत्समपिंड चार्धेन षरशिलापिंडमेव च ॥५॥
*(विशेष प्रतिक्षाणाग्रे दन्यतेन महामुनि ।)
सुदृढ सजलं चूर्ण मुद्गरैश्चापि हन्यते ॥६॥
पुनर्जल मुद्गर च यदा द्रव्याधिकं ततः ।
तस्य मुर्ध्ने च प्रासादं कर्तव्यं च महामुने ॥७॥

ભિટ્ટની નીચેની વર્ણશિલા અને ખર શિલાનું પ્રમાણ અને તેની સુદૃઢતા કહે છે. પહેલા ભિટ્ટની દોઢી વર્ણશિલા,ની જાડાઈ રાખવી વર્ણશિલાની જાડાઈના અર્ધની ખરશિલાની જાડાઈ રાખવી. હે મહામુનિ ! વિશેષે કરીને પ્રત્યેક થરો મુદ્દર-મોઘરીના પ્રહારથી દઢ કરવી. ફરી પાણીથી ને મુદ્દરથી બીજા થરને પણ દઢ કરવો. હે મહામુનિ ! તે ઉપર પ્રાસાદની રચના કરવી.

* पाठांतर च वप्रसामदायर महामुनि

भिट्टकी नीचेकी वर्णशिलाका प्रमाण और उसकी सुदृता कहते हैं। पहले भिट्टसे डेढ गुना वर्णशिलाका मोटापन रखना। उस वर्णशिलाके मोटेपन के अर्ध भागका खरशिलाका मोटापन रखना। हे महामुनि, विशेषकर प्रत्येक स्तरों को मुद्गरके प्रहारसे दृढ करना। संपूर्ण खडीवाले पानीसे रसबस कर मुद्गरसे पीट कर उन शिलाओं को दृढ करना। हे महामुनि! उसके ऊपर प्रासाद की रचना करना।

इति श्री विश्वकर्मा कृते क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां भिट्ट मानाधिकारे नाम शताग्रे द्वितियोऽध्याय ॥१०२॥ (क्रमांक अ. ४)

ઈતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદમુનિએ પૂછેલ ભિટ્ટ માનનો શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકા નામનો એકસો બે મો અધ્યાય,

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव नारदमुनिके संवादरुप भिट्ट मानका शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा के हिन्दी भाषानुवादकी सुप्रभा नामकी भाषा टीका नामका एकसौ दूसरा अध्याय ॥१०२॥ (क्रमांक अ० ४)

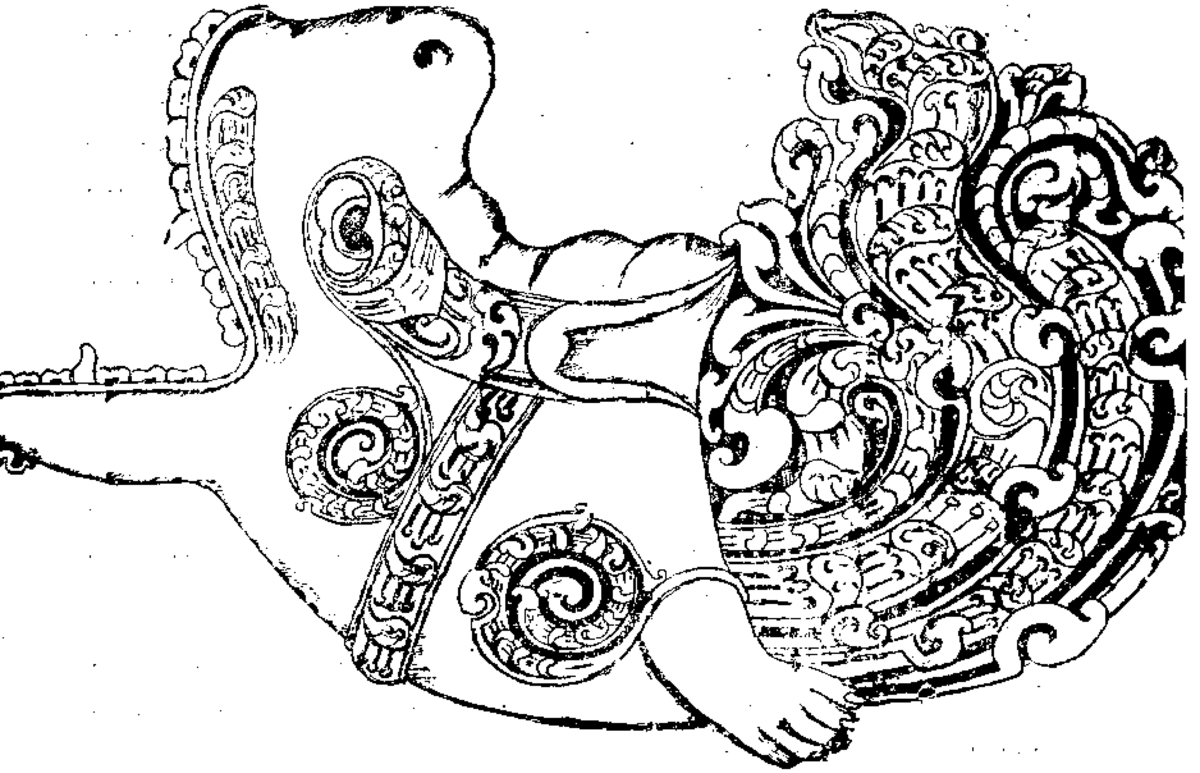

पानीका–प्रनालका मकरमुख

॥ अथ पीठमान प्रमाण ॥

क्षीरार्णव अ० १०३—क्रमांक अ० ५

श्री विश्वकर्मा उवाच—

एक हस्ते तु प्रासादे पीठंच द्वादशांगुलम् ।
हस्तादि पंचपर्यंतं हस्ते हस्ते पँचाङ्गुलम् ॥ १ ॥
पँचोर्ध्वं दशयावत् वृद्धि वेदाङ्गुलं भवेत् ।
दशोर्ध्वे विंशपर्यंतं हस्ते चैवाङ्गुलं त्रयं ॥ २ ॥
विंशोर्ध्वषटत्रिशंति कर वृध्याद्वयांगुलम् ।
अत उर्ध्वं शतार्धेन हस्ते हस्तैकमंगुलम् ॥ ३ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. એક હાથના પ્રાસાદને બાર આંગળનું ઊંચું પીઠ કરવું. બે થી પાંચ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે પાંચ પાંચ આંગળની વૃદ્ધિ કરતા જવું. છ થી દશ હાથ સુધીનાને પ્રત્યેક હાથે ચચ્ચાર આંગળની વૃદ્ધિ કરતા જવું. અગ્યારથી વીશ હાથ સુધીનાને પ્રત્યેક હાથે ત્રણ ત્રણ આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. એકવીશથી છત્રીશ હાથ સુધીનાને પ્રત્યેક હાથે બબ્બે આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. સાડત્રીસથી પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે એકેક આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. ૧–૨–૩.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं। एक हाथके प्रासादको बारह हाथकी अँगुल की ऊँची पीठ करना। दो से पाँच हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक हाथपर पाँच पाँच अँगुल की वृद्धि करते जाना। छः से दस हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक हाथ पर तीन तीन अँगुलकी वृद्धि करना। इकीससे छत्तीस हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक हाथ पर एक एक अँगुल की वृद्धि करना। १–२–३.

पंचमांशे ततोहीनं कन्यसंशुभ लक्षणम् ।
पंचमांशाधिकं चैव ज्येष्ठे तद्वविचक्षते ॥ ४ ॥

આવેલા પીઠના માનનો જો પાંચમો ભાગ ઓછો કરીએ તો શુભ એવા લક્ષણવાળું કનિષ્ઠ માન અને પાંચમો ભાગ અધિક કરીએ તો જ્યેષ્ઠ માન બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ જાણવું. ૪.

आये हुए पीठके मानका जो पाँचवाँ भाग कम करें तो शुभ ऐसे लक्षण वाला कनिष्ठ मान और पाँचवाँ भाग अधिक करें तो ज्येष्ठ मान बुद्धिमान शिल्पियों को जानना। ४.

दिव्यव्यापी महाभुक्तं प्रमाणं द्वयमेव च ।
भिट्ट त्रयेण संयुक्तं महापीठं विमानकं ॥५॥

मिश्रकपीठ कर्तव्यं द्वि भिट्टं चोर्ध्वयो भवेत् ।
भिट्टैक त्रि महायुक्ता प्रमाणं द्वयमेव च ॥६॥

પીઠમાન

ગજ	ગજ આં
૧	૦•૧૨
૨	૦•૧૭
૩	૦•૨૨
૪	૧•૩
૫	૧•૮
૬	૧•૧૨
૭	૧•૧૬
૮	૧•૨૦
૯	૨•૦
૧૦	૨•૪
૨૦	૩•૧૦
૩૦	૪•૬
૪૦	૪•૨૨
૫૦	૫•૮

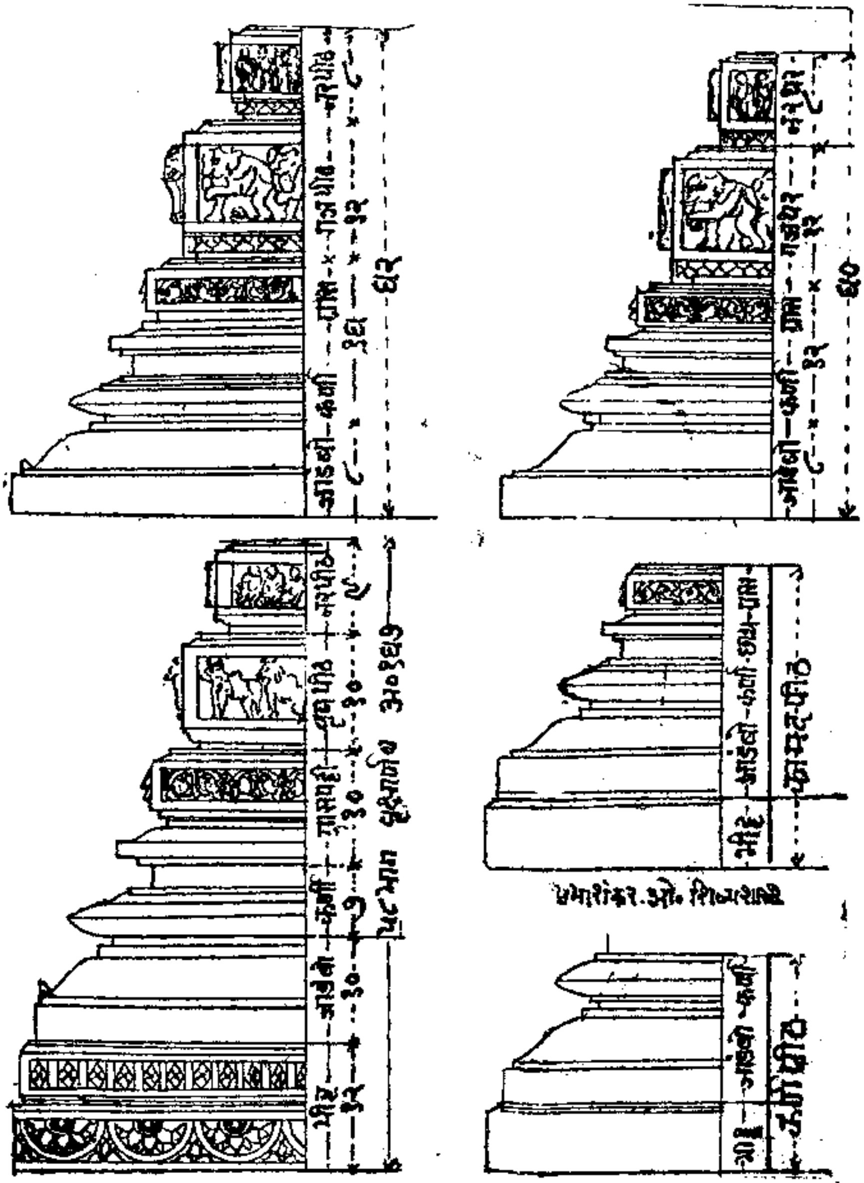

महापीठ—कामद पीठ और कर्णपीठ

एव मादि मुने कार्या पीठभेद मुनीश्वरम् ।
उदयं कथितं पूर्वे (मतो विभागं निगद्यते ।) ॥ ७॥

હે દિવ્ય બ્રહ્મમાં વ્યાપી રહેલા મહામુનિ! પીઠના બે પ્રમાણ છે. ત્રણ ભિટ્ટવાળું ઊંચું મહાપીઠ વિમાનાદિ જાતિને કરવું. બે ભિટ્ટ ઉપર પીઠ મિશ્રકાદિ જાતિને કરવું. વળી (નાગરાદિમાં એક કે ત્રણ ભિટ્ટ યુક્ત એમ બે પ્રમાણો કહ્યાં છે. એ રીતે હે મહામુનિ! મેં પીઠના ભેદ કહ્યા. પીઠનું ઉદય પ્રમાણ માન તો કહ્યું. હવે પીઠના વિભાગો આગળ કહીશ. ૫–૬–૭.

हे दिव्य ब्रह्ममें व्याप्त महामुनि! पीठके दो प्रमाण हैं। तीन भिट्टवाला ऊँचा महापीठ विमानादि जातिको करना। दो भिट्टके ऊपर पीठ मिश्रकादि जातिको करना। और (नागरादि)में एक या तीन भिट्टसे युक्त–इस तरह दो प्रमाण कहते हैं। हे महामुनि, मैंने वे पीठके भेद कहे। पीठका उदय, मान कहा अब पीठके विभाग आगे बताऊँगा। ५–६–७.

द्राविडं प्रासादो मानं वैराटं च अतः शृणु।
मंडोवरं विंशभागं षड्भागं पीठमेव च ॥८॥

દ્રાવિડાદિ અને વૈરાટાદિ પ્રાસાદનો પીઠ ઉદય હવે કહું છું. મંડોવરની ઊંચાઈના વીશ ભાગ કરી છ ભાગના પીઠનો ઉદય જાણવો. ૮.

द्राविडादि और वैराटादि प्रासादका पीठ उदय अब मैं कहता हूँ। मँडोवर की ऊँचाईके बीश भागकर छः भागके पीठका उदय जानना। ८.

अर्धभागे त्रिभागे वा पीठचैवं नियोजयेत्।
स्थानमानाश्रयं ज्ञात्वा तत्र दोषो न विद्यते ॥९॥

પીઠની ઊંચાઈના કહેલા માનથી અર્ધા કે ત્રીજા ભાગે પીઠની યોજના સ્થાન માનનો આશ્રય જાણીને કરવી. તે રીતે ઓછું કરવામાં દોષ ન જાણવો. ૯.

पीठके ऊँचाईके कहे हुए मानसे आधे या तीसरे भागमें पीठ की योजना स्थान मानका आश्रय जानकर करना। इस तरह कम करनेमें दोष न जानना। (पीठके थर विभाग १०६ अध्यायमें कहा है।)[1]

૧. આવેલા પીઠમાનથી ઓછું કરવામાં દોષ નથી. આ પ્રમાણના દાખલા ઘણા મહાપ્રસાદોમાં જોવામાં આવે છે. તારંગા દ્વારકા, શત્રુંજય મુખ્ય મંદિર વગેરે. વળી વિશાળ આયતનોની દેવ કુલીકાઓમાં પણ તે રીતે માનથી ઓછું પીઠ કરી શકાય છે. પીઠના થર વિભાગ અ૦ ૧૦૬ માં કહ્યા છે.

(१) आये हुए पीठ मानसे कम करनेमें दोष नहीं है। इस प्रमाणके दृष्टांण बहुतसे महाप्रासाधोमें देखनेमें आते हैं। तारंगा, द्वारका–शत्रुंजय मुख्य मन्दिर वगैरह विशाल और आयतनोंकी देवकुलीकाओंमें भी इस तरह मानसे कम पीठ कर सकते हैं। इसमें दोष नहीं है। पीठका थरविभाग अध्याय १०६ में सविस्तर कहा है।

इति श्री विश्वकर्मा कृते क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां पीठ मानाधिकारे शताग्रे तृतीयोऽध्याय ॥१०३॥ (क्रमांक अ० ५)

ઇતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ શ્રીનારદમુનિને પૂછેલ પીઠમાનનો શિલ્પ વિશારદ્ સ્થપિત શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ સુપ્રભા નામની રચેલી ટીકાનો એકસો ત્રીજો અધ્યાય. (૧૦૩)

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव वास्तुशास्त्र नारदजीके संवादरूप पीठ मानाधिकार शिल्प विशारद स्थपति प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा की रची हुई सुप्रभा नामकी भाषाटीका का एकसौ तीसरा अध्याय ॥१०३॥ (क्रमांक अ० ५)

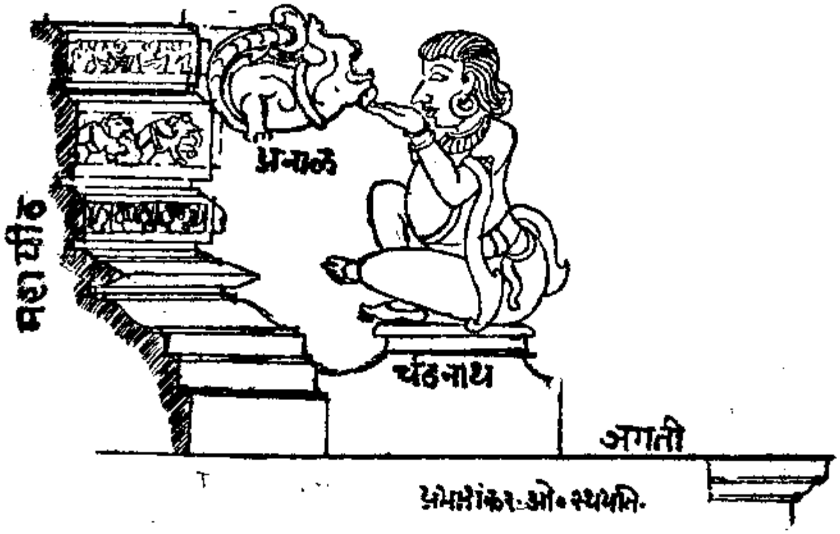

महापीठ साथप्रमाल और शिवनिर्माल्यका चंडनाथ

॥ अथ प्रासादोदयमान ॥

क्षीरार्णव अ० १०४—क्रमांक अ० ६

श्री विश्वकर्मा उवाच—

एक हस्ते तु प्रासादे त्रयस्त्रिंशद्भिरंगुलैः ।
द्विहस्ते उदयं कार्यं द्विहस्ते सप्तांगुल ॥ १ ॥
त्रि हस्तस्य यदामानं मधिकं पंचमांगुला ।
चतुर्हस्तौदयं कार्यं मेकेणाधिकमंगुलम् ॥ २ ॥
विस्तारेण समं कार्यं पंचहस्तोदय भवेत् ।
षट हस्तोदयं कार्यं न्यूनां च द्वयमंगुलम् ॥ ३ ॥
उदयं सप्त हस्तेन न्यूनं च सप्तमंगुलम् ।
अष्टहस्तोदयं कार्या षोडशांगुल हीनकम् ॥ ४ ॥
हीन एकोन त्रिंशस्यात् प्रासादे नवहस्तके ।
दश हस्तोदयं कार्यं अष्टहस्त प्रमाणकम् ॥ ५ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા પ્રાસાદના ઉદય ઉભણીનું માન કહે છે. એક હાથના પ્રાસાદને તેત્રીશ આંગળનો ઉદય કરવો, બે હાથના પ્રાસાદને બે હાથ સાત આંગળનો, ત્રણ હાથનાને ત્રણ હાથને પાંચ આંગળનો, ચાર હાથનાને ચાર હાથને એક આંગળનો અને પાંચ હાથના પ્રાસાદનો ઉદય પાંચ હાથનો એટલે વિસ્તાર પ્રમાણે સરખો ઉદય રાખવો, છ હાથનાને છ હાથમાં બે આંગળ ઓછો, સાત હાથનાને સાત હાથમાં સાત આંગળ ઓછો, આઠ હાથના પ્રાસાદને આઠ હાથમાં સોળ આંગળ ઓછા (એટલે ૭ ગજને ૮ આંગળ) નવહાથમાં ઓગણત્રીસ આંગળ ઓછી ઉભણી રાખવી. દશ હાથના પ્રાસાદની આઠ હાથની ઉભણી રાખવી.

પ્રાસાદોદયમાન

ગજ	ગજ આં.
૧—	૧•૯
૨—	૨•૭
૩—	૩•૫
૪—	૪•૧
૫—	૫•૦
૬—	૫•૨૨
૭—	૬•૧૭
૮—	૭•૮
૯—	૭•૧૯
૧૦—	૮•૦
૨૦—	૧૨•૧૨
૩૦—	૧૭•૦
૪૦—	૨૧•૨
૫૦—	૨૫•૦

श्री विश्वकर्मा प्रासादके उदयका मान कहते है। एक हाथके प्रासाद को तेत्तीस अँगुलका उदय करना। दो हाथके प्रासादको दो हाथ सात अँगुल का तीन हाथके प्रासाद को तीन हाथ और पाँच अँगुलका, चार हाथके प्रासाद को चार हाथ और एक अँगुलका और पाँच हाथके प्रासाद का उदय पाँच हाथका अर्थात् विस्तार के अनुसार समान उदय रखना। छः हाथके प्रासादको छः हाथमें दो अँगुल कम, सात हाथके प्रासाद को सात हाथमें सात अँगुल कम, आठ गजके प्रासाद को सात गज आठ अँगुल, नौ हाथ के प्रासाद को नौ हाथमें उनतीस अँगुल कम उदय रखना। दस हाथके प्रासाद को आठ हाथका उदय रखना। १—२—३—४—५.

પ્રાસાદયોમાન ગજ	આંગુલ
૧	૧•૯
૨	૨•૭
૩	૩•૫
૪	૪•૧
૫	૫•૦
૬	૫•૨૨
૭	૬•૧૭
૮	૭•૮
૯	૭•૧૯
૧૦	૮•૦
૧૫	૧૦•૬
૨૦	૧૨•૧૨
૨૫	૧૪•૧૮
૩૦	૧૭•૦
૩૫	૨૧•૬
૪૦	૨૧•૧૨
૪૫	૨૩•૧૮
૫૦	૨૫•૦

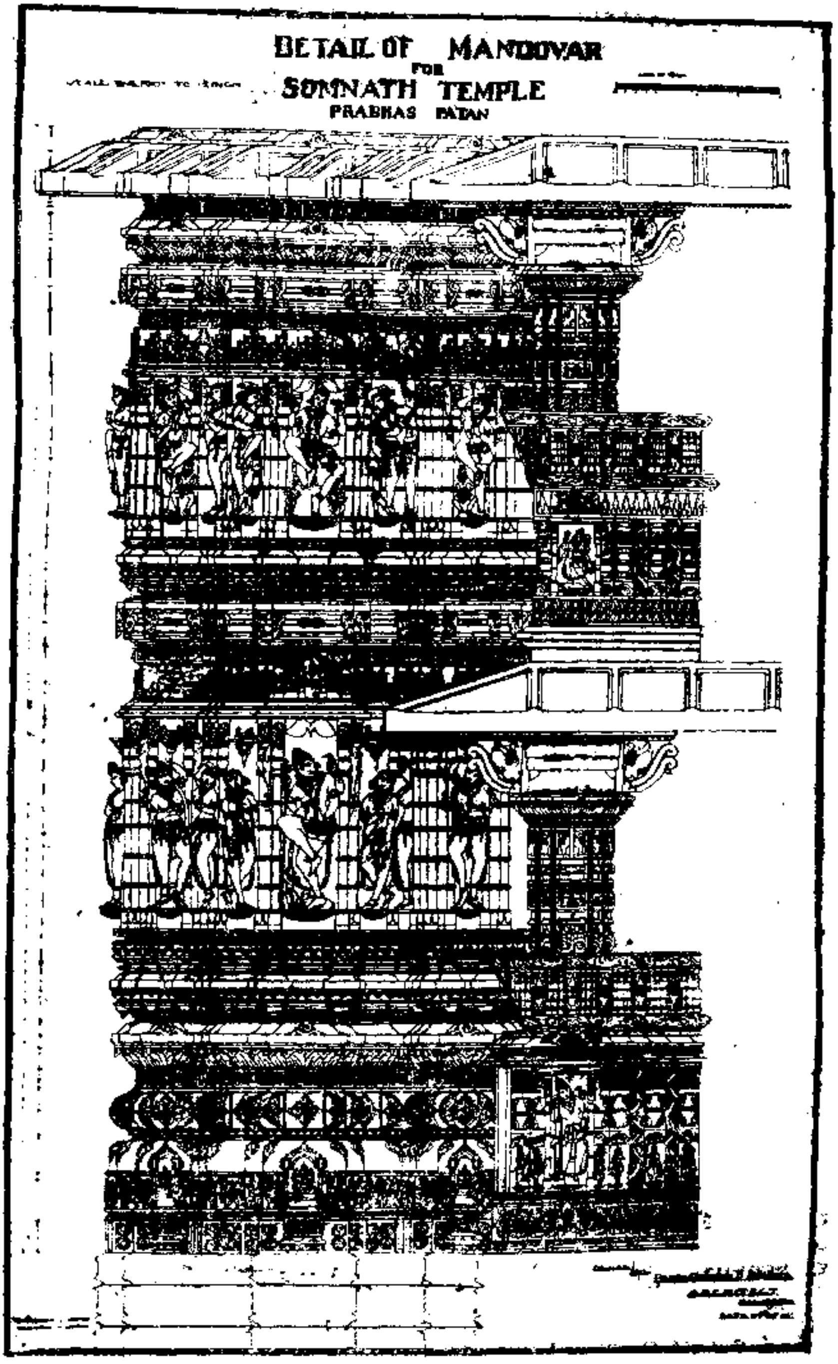

सांधार मंडोवर द्वयभूमि द्वयजंघा और एक छाद्य

सपाद दशहस्तं च प्रासादे दशपंचके ।
विंश हस्तोदय मान सार्द्धं द्वादशहस्तकम् ॥ ६ ॥
पंच विंशोदये प्राज्ञ पादोन दशपंचके ।
त्रिंश हस्ते महा प्राज्ञ उदयं च सप्तदशस्तथा ॥ ७ ॥
सपादमेक विंशत्यां पंचत्रिंश मुनिवरम् ।
व्योमवेद यदां हस्त सार्द्धस्यादेकविंशतिः ॥ ८ ॥
चतुर्विंशति पादोनं पंचचत्वार हस्तके ।
शतार्द्धोदयं मानं तु हस्ताः स्युः पंचविंशति ॥ ९ ॥

પંદર હાથના પ્રાસાદની સવા દશ હાથની ઊભણી રાખવી વીશ હાથનાને સાડા બાર હાથની પચ્ચીસ હાથનાને પોણા પંદર હાથની, ત્રીશ હાથના પ્રાસાદની સત્તર હાથની ઊભણી રાખવી. પાંત્રીશ હાથના પ્રાસાદને હે મુનિશ્વર ! સવા એકવીશ હાથની ઉભણી રાખવી. ચાલીશ હાથનાને સાડી એકવીશ હાથની, પિસ્તાળીશ હાથનાને પોણી ચોવીશ અને પચાસ હાથગજના પ્રાસાદની પચ્ચીસ હાથની ઉભણી રાખવી. ૬–૭–૮–૯.

पन्द्रह हाथके प्रासाद को सवा दस हाथका उदय रखना । वीस हाथ के प्रासादको साढे बारह हाथका, पचीस हाथके प्रासादको पौने पंद्रह हाथका, तीस हाथके प्रासादको सत्रह हाथका उदय रखना । पैंतीस हाथके प्रासादको हे मुनिश्वर सवा एकवीस हाथका उदय रखना । चालीस हाथ के प्रासाद को साढे इकीस हाथका उदय, पैंतालीश हाथके प्रासादको पौने चोवीस हाथका उदय और पचास हाथ–गजके प्रासादका पच्चीस हाथका उदय रखना । ६–७–८–९.

अस्योदये च कर्तव्या प्रथमे कूटछाद्यके ।
यावत्समोदयं प्राज्ञ तावत्मंडोवरं स्मृतम् ॥ १० ॥

એ રીતે પ્રાસાદની ઉભણી પીઠ ઉપરથી છજાના મથાળા સુધી ઉભણી ચતુર શિલ્પીઓ રાખે છે. તે ઉભણી–ઉદયમાં મંડોવરના થરો કરવા અર્થાત્ તે ઉભણીને મંડોવર કહે છે. ૧૦.

इस तरह प्रासाद का उदय पीठ परसे छजे की टोच तकका उदय चतुर शिल्पियों रखते हैं। उस उदयमें मंडोवरके स्तर करना अर्थात् उस उदय को मंडोवर कहते हैं । १०.

[1] तथाद्य छाद्यं संस्थाने द्वयोर्जंघा प्रकीर्तिता: ।
[2] भवेद्युः द्वादशजंघा यावत्शतार्द्धोदयं भवेत् ॥११॥

સાંધાર છંદના સંસ્થાનમાં શરૂમાં એક છજાને બે જંઘાનો મંડોવર કરવો. પચાસ હાથના પ્રાસાદના ઉદયમાં બાર જંઘા સુધીનો મંડોવર કરવો. ૧૧

सांधार छंदके संस्थानमें शूरूमें एक छजा और दो जंघाका मंडोवर करना। पचास हाथके प्रासादके उदयमें बारह जंघा तकका मंडोवर करना। ११.

षद्विध खुटछाद्यं च द्वयोर्भूम्यंतरे मुनी: ।
भरणीकोर्ध्वं भवेन्मंची छाद्योर्धेन मंचिका ॥१२॥
पुनः जंघा प्रदातव्या यावत् द्वादश संख्यया ।
किंचित्किंचिद्भवेन्यूनं कर्तव्यं भूमिको छ्य ।
शतार्द्धोदयमानेन महामेरु तथाधिकं ॥१३॥

છજા છ પ્રકારે થાય. બે ભૂમિના અંતરે અંતરે એક મંડોવર હે મુનિ, થાય. તેના થરવાળા મેરૂ મંડોવરમાં ભરણી ઉપર ફરી માચી આદિ થરો કરી છજાના ઉપર ફરી માચીનો થર કરી ફરી જંઘા ચડાવવી. એ રીતે બારની સંખ્યા સુધી તેમ કરતાં જવું પ્રત્યેક ભૂમિ મજલા નીચેના મજલાથી થોડી થોડી ઉભણી (બારમો અંશ) ન્યૂન કરતા જવું. પચાસ હાથ–ગજના મહામાન પ્રાસાદને મહામેરૂ કરવો. ૧૨–૧૩

छजा छः प्रकारसे होता है। दो भूमिके अंतर से एक मंडोवर हे मुनि होता है। उसके स्तरवाले मेरू मंडोवरमें भरणीके ऊपर फिर माची आदि स्तरों बना कर छजाके ऊपर फिर माचीका स्तर कर फिर जंघा चढाना। इस तरह बारहकी संख्या तक करते जाना। प्रत्येक भूमि–मजला नीचेके मजले से थोडा थोडा उदय (बारहवाँ अंश) न्यून करते जाना। पचास हाथ–गजके महामान के प्रासाद को महामेरू करना। १२–१३.

मृदिष्टकाकर्मयुक्ता भित्तिपादा प्रकल्पयेत् ।
पंचमांशऽथवा सातु षष्टांशे शैलजे भवेत् ॥ १४ ॥
दारुज सप्तमांशेन सांधारे चाष्टमांशके ।
धातुजे रत्नजेभित्तिः प्रासादे दशमांशके ॥ १५ ॥

पाठांतर–(१) तथाद्यदग्ध–तथा छंदाधसंस्थाने (२) दशजंघाभवेत्शेषं ।
(३) द्विविध शतार्द्धेच–महामान

નિરેધાર પ્રાસાદમાં માટી કે ઇંટના પ્રાસાદની ભિંત-દિવાલની જાડાઈ પ્રાસાદના ચોથા ભાગે રાખવી પાષણુના પ્રાસાદને પાંચમે કે છઠ્ઠાભાગે ભાગે ભિંતો જાડી રાખવી. કાષ્ટના કાર્યમાં સાતમા ભાગે સાંધાર મહાપ્રાસાદોમાં આઠમા ભાગે અને ધાતુ અને રત્નના પ્રાસાદને પ્રાસાદના દશમા ભાગે ભિંતની જાડાઈ દિવાલ રાખવી. ૧૪-૧૫

निरेधार प्रासादमें मिट्टी या ईंटके प्रासाद की दीवारका मोटापन प्रासाद के चौथे भागका रखना.। पाषाणके प्रासादको पाँचवे या छट्ठे भागमें दिवारें मोटी करना । काष्टके कार्यमें सातवें भागमें-सांधार महाप्रासादोंमें आठवें भागमें और धातु और रत्नके प्रासादको प्रासादके दसवें भागमें दिवारका मोटापन रखना । १४-१५.

इति श्री विश्वकर्मा कृते क्षीरार्णवे नारदपृच्छायां प्रासादोदय मानाधिको शताग्रे चतुर्थोऽध्याय ॥१०७॥ (क्रमांक अ० ६)

ઇતિશ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદ મુનીશ્વરે પૂછેલા પ્રાસાદના ઉદય માનનો શિલ્પ વિશારદ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ટીકાનો એકસો ચારમો અધ્યાય (૧૦૪)

इतिश्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव नारद मुनीश्वरके संवाद रूप प्रासादके उदय मानका शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाईकी रची हुई सुप्रभा नामकी भाषा टीकाका एकसौ चौथा अध्याय । १०४. क्रमांक अ० ६

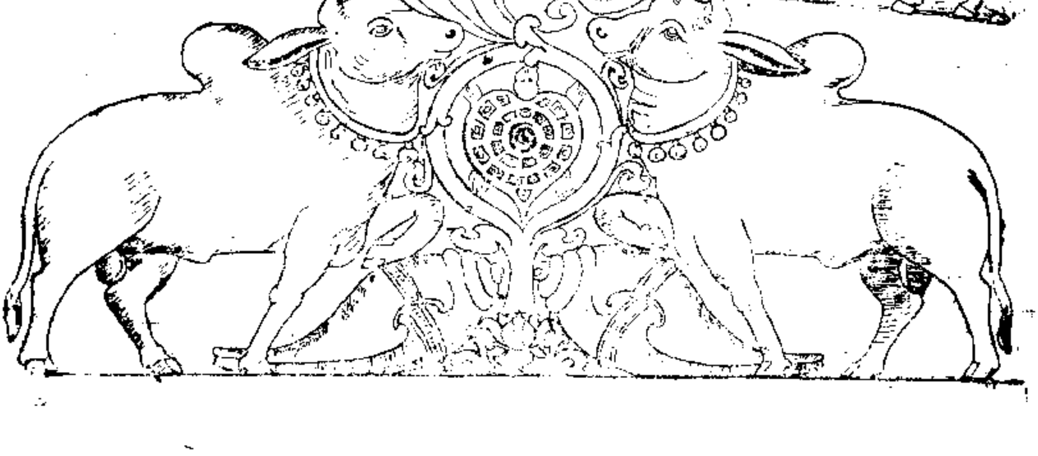

॥ अथ द्वारमान ॥

क्षीरार्णव अ० १०५—क्रमांक अ० ७

श्री विश्वकर्मा उवाच—

एक हस्ते तु प्रासादे द्वारं च षोडशांगुलम् ।
इयं वृद्धिः प्रकर्तव्या चतुर्हस्तं यदा भवेत् ॥ १ ॥
वेदांगुला भवेद्वृद्धि यविल्दशहस्तकम् ।
हस्तार्विंशति मानेन हस्ते हस्ते त्रयंगुला ॥ २ ॥
द्वयङ्गुला भवेद्यावत् प्रासादे त्रिंशहस्तके ।
अङ्गुलैक स्ततो वृद्धि यावत्पंचाश हस्तकम् ॥ ३ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. એક હાથના પ્રાસાદને સોળ આંગળ ઊંચું દ્વાર કરવું તેવી રીતે સોળ સોળ આંગુલની વૃદ્ધિચાર હાથ સુધી કરવી. પાંચથી દશ હાથના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે ચચ્ચાર આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. અગ્યારથી વીશ હાથ સુધીનાને પ્રત્યેક હાથે ત્રણ ત્રણ આંગળની વૃદ્ધિ કરતા જવી. એકવીશથી ત્રીશ હાથનાને બબ્બે આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. એકત્રીશથી પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે એકેક આંગળની વૃદ્ધિ દ્વારના ઉદય માનમાં કરવી. ૧–૨–૩.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं। एक हाथके प्रासादको सोलह अँगुल उँचा द्वार करना। इस तरह सोलह सोलह अंगुलकी वृद्धि चार हाथ तक करना। पाँचसे दस हाथके प्रासादको प्रत्येक हाथपर चार चार अँगुलकी वृद्धि करना। ग्यारहसे बीस हाथके प्रासादको प्रत्येक हाथपर तीन तीन अँगुलकी वृद्धि करते जाना। इक्कीससे तीस हाथके प्रासादको दो दो अँगुलकी वृद्धि करना। इकतीससे पचास हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक हाथपर एक एक अँगुलकी वृद्धि करके उदयमानमें करना। १–२–३.

नागरं च मिदं द्वारं उक्तं क्षीरार्णवे मुने ।
दशभांशे यदि हीनं द्वारं स्वर्गे मनोरमे ॥ ४ ॥
अधिक दशमे प्राज्ञ प्रासादे पर्वताश्रके ।
ताव क्षेत्रान्तरे प्राज्ञत्वामर्हवादि मुनीश्वरः ॥ ५ ॥

ઉપરોક્ત કહેલું દ્વારમાન નાગરાદિ જાતિ છંદના પ્રાસાદનું જાણવું હે મુનિ, આ ક્ષીરાર્ણવમાં કહ્યું છે. કહેલા માનથી જો દશમો ભાગ હીન કરવાથી

તે સ્વર્ગમાં મનોરમ એવું દ્વાર થાય અને જો પર્વતની તલાટીએ ચતુરશિલ્પીઓ કરેલા પ્રાસાદના દ્વારને દશમો ભાગ અધિક કરે તો તે શુભ જાણવું. મહર્ષિ-ઓમાં આદિ એવા હે મુનીશ્વર, એ રીતે ક્ષેત્રાન્તર (સ્થળાંતરાનુસાર) દ્વારમાન જાણવા. ૪–૫.

દ્વારમાન ગજ	ગજઆં.
૧	૦•૧૬
૨	૧•૮
૩	૨•૦
૪	૨•૧૬
૫	૨•૨૦
૬	૩•૦
૭	૩•૪
૮	૩•૮
૯	૩•૧૨
૧૦	૩•૧૬
૨૦	૪•૨૨
૩૦	૫•૧૮
૪૦	૬•૪
૫૦	૬•૧૪

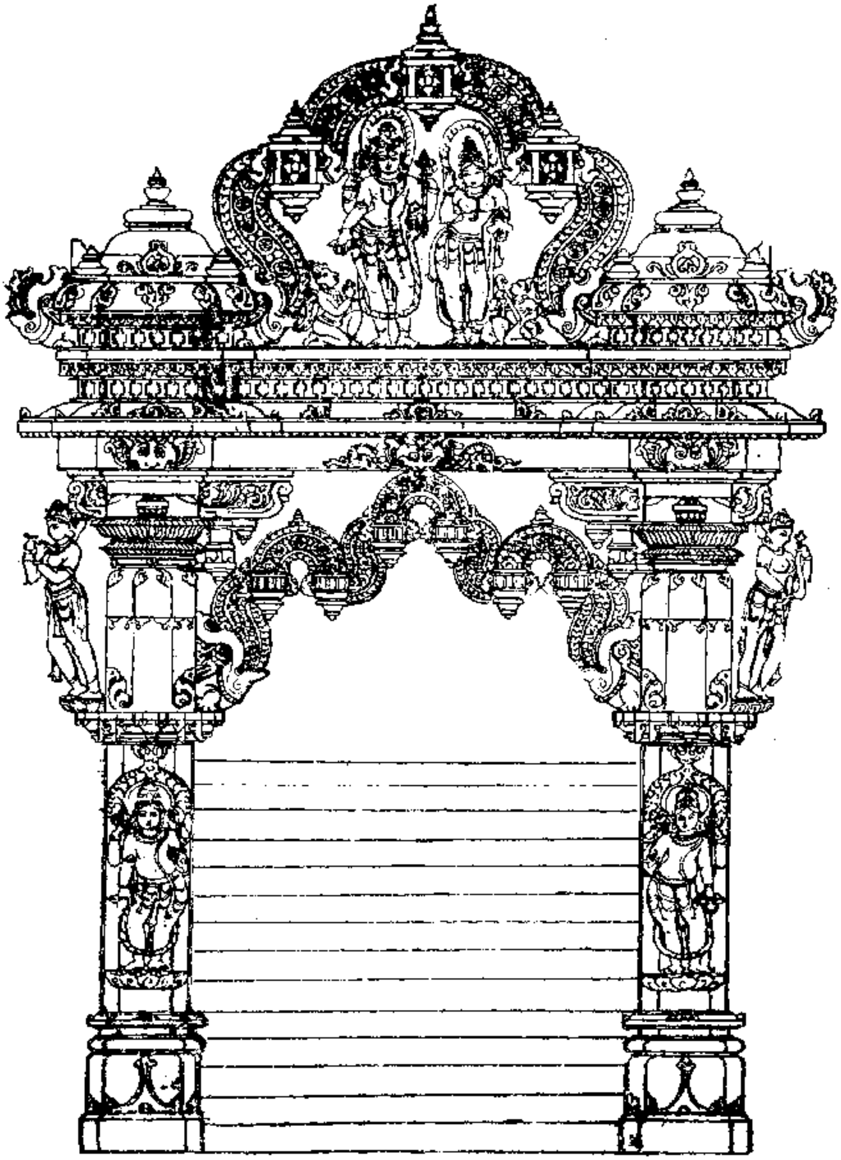

स्तंभ–भरणा–सरा–आंदोलक हींडोलक तोरण देवाङ्गनाओ ऊर्ध्वे लक्ष्मीनारायणका गेवल प्रतोल्या प्रवेश,

उपरोक्त द्वारमान नागरादि जाति छंदके प्रासादका समझना। हे मुनि, इस क्षीरार्णवमें कहे हुए मानसे जो दसवाँ भाग हीन किया जाय तो वह स्वर्गमें मनोरम असा द्वार होता है। और जो पर्वतकी तलहटीपर चतुर शिल्पीके बनाये हुए प्रासादके द्वारको दसवाँ भाग अधिक करे तो उसे शुभ जानना। महर्षीयोंमें आदि असे हे मुनीश्वर, इस तरह क्षेत्रान्तर (स्थलान्तरका सार) द्वारमान जानना। ४–५.

शिवद्वारं भवेज्ज्येष्ठं कन्यसं च जिनालये।
मध्यमं सर्वदेवानां सर्वकल्याण कारकः ॥६॥
उत्तम उदयार्द्धेन पादाधिमध्यमानक।
कन्यसं चाधिकं तत्र विस्तारे द्वारमेव च ॥७॥

શિવાલયનું દ્વાર જ્યેષ્ઠ માનનું સર્વજનોમાં આલયનું કે જીનમંદિરનું દ્વાર કનિષ્ઠ માનનું અને સર્વ દેવોને મધ્યમાનનું દ્વારમાન કરવાથી તે સર્વ કલ્યાણકર્તા જાણવું. જ્યેષ્ઠમાનનું દ્વારના ઉદયથી અર્ધ પહોળું કરવું. મધ્યમાનના દ્વારને ચોથો ભાગ વધારવો. અને કનિષ્ઠ માનનું દ્વાર તેથી પણ અધિક પહોળું રાખવું. ૬–૭.

शिवालयके द्वारको ज्येष्ठ मानका सर्वजनोंके आलयका द्वार और जीनमंदिरका द्वार कनिष्ठ मानका और सर्व देवोंको मध्य मानका द्वारमान करनेसे सर्व कल्याणकर्ता समझना। ज्येष्ठ मानका द्वारके उदयसे आधा चौड़ा करना। मध्य मानके द्वारको चौथा भाग बढ़ाना। और कनिष्ठ मानका द्वार उससे भी अधिक चौड़ा रखना। ६–७.

अज्ञात्वा च यदा ज्ञात्वा यदाद्वारं च तिष्ठतः।
नागरं सर्व देवानां सर्व देवेषु* पूजितः ॥८॥

જાણે કે અજાણે કદાચ દ્વારમાનની પહોળાઈ થઈ હોય તો પણ તે સર્વ દેવોને પૂજન યોગ્ય એવું નાગરાદિ દ્વાર માન જાણવું.

जाने या अनजानेमें कदाचित् द्वारमानकी चौडाई हुई हो तो भी उसे सर्व देवोंके लिये पूजन योग्य असा नागरादि द्वारमान समझना। ८

इतिश्री विश्वकर्माकृते क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां नागरादि प्रासाद द्वारमानाधिकारे शताग्रे पंचमोऽध्याय ॥१०५॥ (क्रमांक अ० ७)

ઇતિશ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદે પૂછેલા નાગરાદિ દ્વારમાનનો શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એક સો પાંચમો અધ્યાય. ૧૦૫. ક્રમાંક અ૦ ૭.

* पाठांतर दुर्लभ

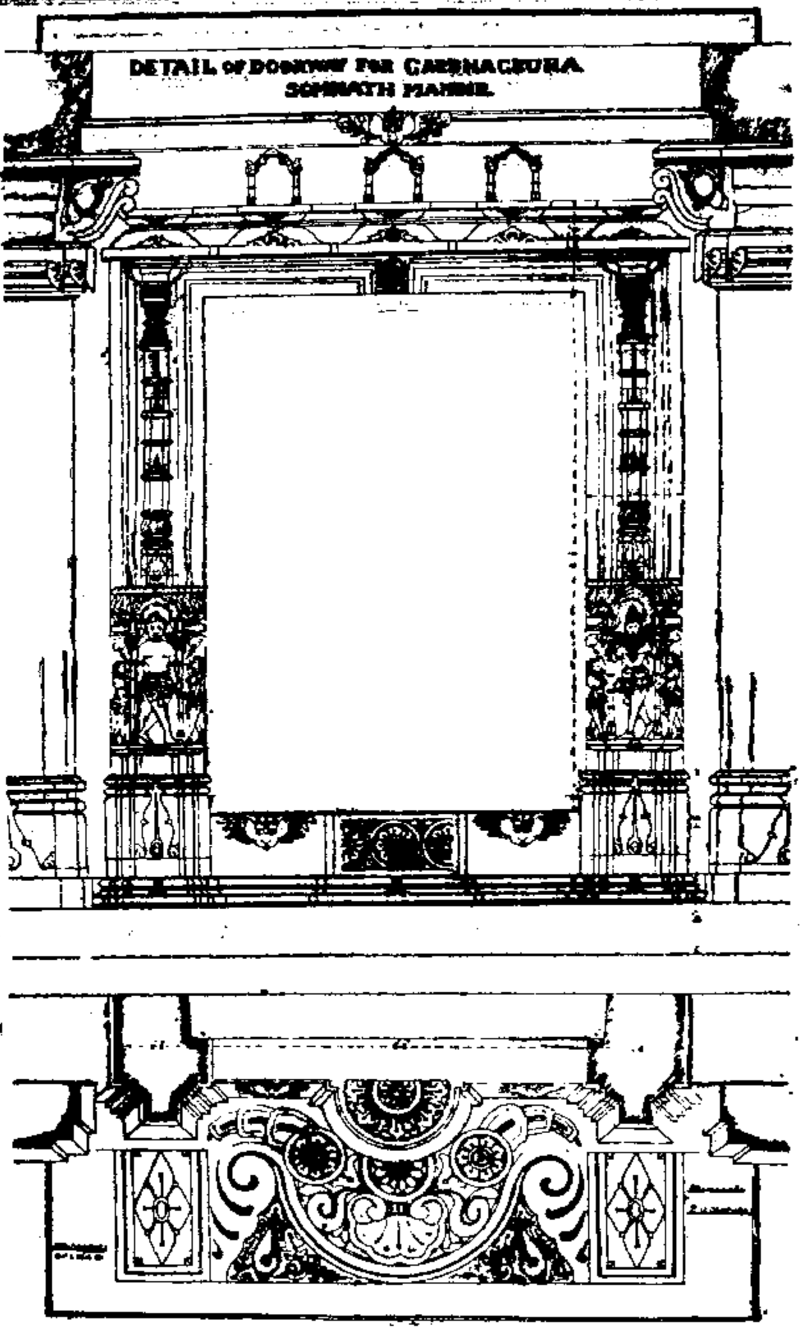

सप्त शाखाका द्वार और अर्धचँद्र

इतिश्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव नारदके संवादरूप नागरादि द्वारमानका शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुराकी रची हुई सुप्रभा नामकी भाषा टीकाका एकसौ पाँचवाँ अध्याय ।।१०५।। (क्रमांक अ० ७)

॥ अथ पीठ थर विभाग ॥

क्षीरार्णव अ० १०६–(क्रमांक अ० ८)

श्री विश्वकर्मा उवाच

पीटोदये भवेत्पूर्वं विभागं च अतः श्रुणु
द्वादश भाग जाड्यकुंभंच अर्धवार्धकारिक ॥ १ ॥
द्वयंचसार्द्ध भवेत्कर्ण भागार्धं मुखपट्टीका ।
भागमेकं भवेत्कुंभं शेषंच कंदमेवच ॥ २ ॥
भागोनं च भवेत्पीठं निर्गमं तत्प्रकीर्तिताः ।
तत्रस्कंध समकुर्यात्कर्णमाली प्रशोभिता ॥ ३ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા નારદજીને કહે છે. પીઠની ઊંચાઈનું પ્રમાણ આગળ (અ. ૧૦૩માં) કહ્યું હવે પીઠના થર વિભાગ સાંભળો પહેલા બાર ભાગનો જાડંબો તેનો અર્ધ નિકાળો જાડંબા નીચેની પટ્ટી અઢી ભાગની તે પર અરધા ભાગનો કંદ (મુખ પટ્ટી) તે ઉપરથી એક ભાગનો બીજો કંદ અને બાકી ઉપરનો કંદ પણ એક ભાગનો તેના નિકાળા પણ તેટલા જ રાખવા. સ્કંધ–ગલતો સાત ભાગનો રાખવો. એ રીતે બાર ભાગના જાડંબા પર કર્ણિકાનો શોભતો થર કરવો. ૧–૨–૩.

श्री विश्वकर्माने नारदजीको पीठकी ऊँचाईका प्रमाण अ० १०३ में कहा। अब पीठके स्तर विभागके बारेमें सुनो। प्रथम बारह भागका जाडंबा–उसका अर्ध नीकाला–जाडंबेके नीचेकी पट्टी ढाई भागकी, उसके पर आधे भागका कंद (मुख पट्टी) उसके उपरके एक भागका दूसरा कंद और बाकी उपरका कंद भी एक भागका, उसके नीकाले भी उतने ही रखना। स्कंध–गलता सात भागका रखना। इस तरह बारह भागके जाडबे पर कर्णिकाका शोभायमान स्तर करना। १–२–३.

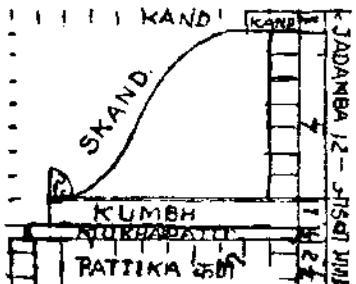

आडंबा उदय १२ भाग

नव भागंकुतं पिंड प्रवेशतत्रमेवच ।
पिंडस्य नवधाकृत्य अंतरपत्र द्विभागतः ॥ ४ ॥

चिप्पिका सार्द्धभागंच निर्गमंच त्रिभागतः ।
अधः कंध भवेभागार्द्ध कणि चत्वारि सार्द्धतः ॥ ५ ॥
षड्भागं निर्गमंतत्र कणि कूर्याद्विचक्षणं ।
तस्य पदं समकार्यं ग्रासपट्टि च छाद्यके ॥ ६ ॥

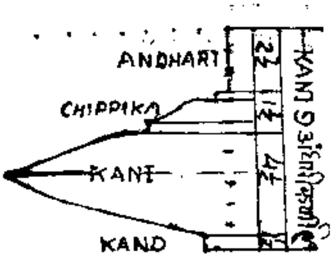

कर्णिका अंतराल भाग ९

(જાડંબા પર) કણીના થરના નવ ભાગ કરવા તેનો નીકાલો પણ તેટલો કરવો કણીની જાડાઈના નવ ભાગમાં ઉપરની અંતર પત્ર અઢી ભાગની ચિપ્પિકા દોઢ ભાગની ઊંચી અને તેનો નીકાળો ત્રણ ભાગનો રાખવો કણી સાડા ચાર ભાગની તેની નીચેનો કંદ અર્ધા ભાગનો રાખવો. કર્ણિકાનો થર છ ભાગ નીકળતો બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ રાખવો. એ રીતે કર્ણિકાના થર જેટલાજ નવ ભાગની ગ્રાસપટ્ટી નીચે છાજલી (ત્રણભાગની) કરવી. ૪–૫–૬.

जाडंबेके पर कणीसे थरके नौ भाग करना, उसके घाटकी नीर्गम भी उतनी ही करना। कणीके मोटेपनके नौ भागमें उपरकी अंतरपत्र ढाई भागकी चिप्पिका डेढ़ भागकी उँची और उसका नीकाला तीन भागका रखना। कणी साढे चार भागकी और उसकी नीचेका कंद आधे भागका रखना। कर्णीकाका थर छः भाग निकालता बुद्धिमान शिल्पीको रखना चाहिये। इस तरह कर्णीकाके थरके बराबर नौ भागकी ग्रासपट्टी की नीचे छाजली (तीन भागकी) बनाना। ४–५–६.

पिंडं कूर्यात् त्रिभागेन निर्गमं त्रिणीमेवच ।
भागार्द्ध मुखपट्टि च पादार्धं भागमेव च ॥ ७ ॥
स्कंध स्कंध भवेन्मेकं छाद्यकी तत्र सिद्ध्यति ।
उपरि ग्रासपट्टिका पद द्वादशमेवच ॥ ८ ॥
घसिका चार्द्धभागेन भागमेकं तथार्द्धकं ।
पंचभागं भवेन्ग्रासं भागैकं उदरं भवेत् ॥ ९ ॥
सार्द्ध चिप्पिका कुंभं (१) निर्गमं द्वयमेव च ।
नव भागं ग्रासपट्टी सर्वकेवलधीमताम् ॥१०॥

इति कामदपीठ १.

છાજલી કેવાળની જાડાઈ ત્રણ ભાગ અને નીકાળો પણ ત્રણ ભાગનો રાખવો. તેની મુખપટ્ટી અર્ધા ભાગની નીચે ઉપરનો કંદ ૫ા ૫ા ભાગનો અને

નીચે ઉપરના સ્કંધ–ગલતી એકેક ભાગની એ રીતે ત્રણ ભાગની છાજલી કેવાળ સિદ્ધ થઈ.

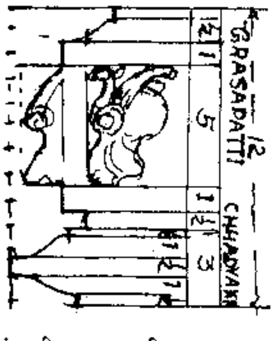

छांजली ग्रास पट्टी भाग १२

કણી ઉપરની આખી ગ્રાસ પટ્ટી બાર ભાગમાં નવભાગની ગ્રાસ પટ્ટીમાં નીચે અર્ધાભાગની ઘસી અંધારી ગ્રાસમુખ પાંચમાં ભાગમાં ગ્રાસમુખનો નીકાળો એક ભાગનો તેની નીચે ઉપની પટ્ટીકા એકેક ભાગની દોઢભાગની ચિપ્પિકા ઊંચી અને બે ભાગ નીકાળો ખરાથી રાખવો એ રીતે ત્રણ ભાગની છાજલી અને નવભાગની ગ્રાસપટ્ટી સર્વમાં કુશળ એવા બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ ગ્રાસપટ્ટી યુક્ત (કામદ) પીઠની રચના કરવી. ઇતિ કામદપીઠ ૧.

छाजली–केवालका मोटापन तीन भाग और नीकाला भी तीन भागका रखना। उसकी मुखपट्टी आधे भागकी, नीचे उपरका कंद पा पा भागका और नीचे उपरका स्कंध–गलती एक एक भागका, इस तरह तीन भागकी छाजली–केवाल सिद्ध हुई।

कणीके परकी सारी ग्रासपट्टी बारह भागमें नौ भागकी ग्रासपट्टीमें नीचे आधे भागकी घसी–अंधारी, ग्रास मुख पाँच भागमें ग्रास मुखका नीकाला एक भागका उसके नीचे उपरकी पट्टिका एक एक भागकी, डेढ भागकी चिप्पिका ऊँची और दो भाग नीकाला खरासे रखना। इस तरह तीन भागकी छाजली और नौ भागकी ग्रास पट्टी सर्वमें कुशल ऐसे बुद्धिमान शिल्पीको ग्रासपट्टीयुक्त (कामद) पीठकी रचना करना। ७–८–९–१०. इति कामदपीठ १.

सप्तभिजाडयकुंभं च षडभिस्तु कणालिका।
पंचभिग्रासपीठं च निर्गमं क्रियते बुधैः।
इमांसर्वाणिपीठं च सर्वे देवेषु निर्मिताम् ॥ ११ ॥

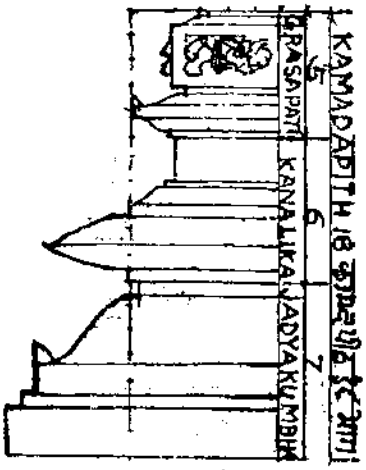

कामदपीठ–भाग १८ प्रकार (२)

હવે કામદ પીઠનો બીજો પ્રકાર કહે છે. સાત ભાગનો જાડંબો છ ભાગની કણી અને પાંચ ભાગની ગ્રાળપટ્ટી અને તેનો નીકાળો શિલ્પી એ બુદ્ધિ પૂર્વક (સ્થાન માન પ્રમાણે) રાખવો. એ રીતના વિભાગના સર્વ પીઠનું સર્વ દેવોના પ્રાસાદને નિર્માણ કરવું. ૧૧ ઇતિ કામદપીઠ ૨.

કામદપીઠ વિ.
૭ જાડંબો
૬ કણી
૫ ગ્રાસજી
૧૮

अब कामद पीठका दूसरा प्रकार कहते हैं सात भागका जाडंबा छः भागकी कणी और पाँच भागकी ग्रासपट्टी और उसका नीकाला शिल्पीको बुद्धि पूर्वक स्थान मानके अनुसार रखना। इस तरहके विभागके सर्वपीठके सर्व देवोंके प्रासादका निर्माण करना। ११. इति कामदपीठ २.

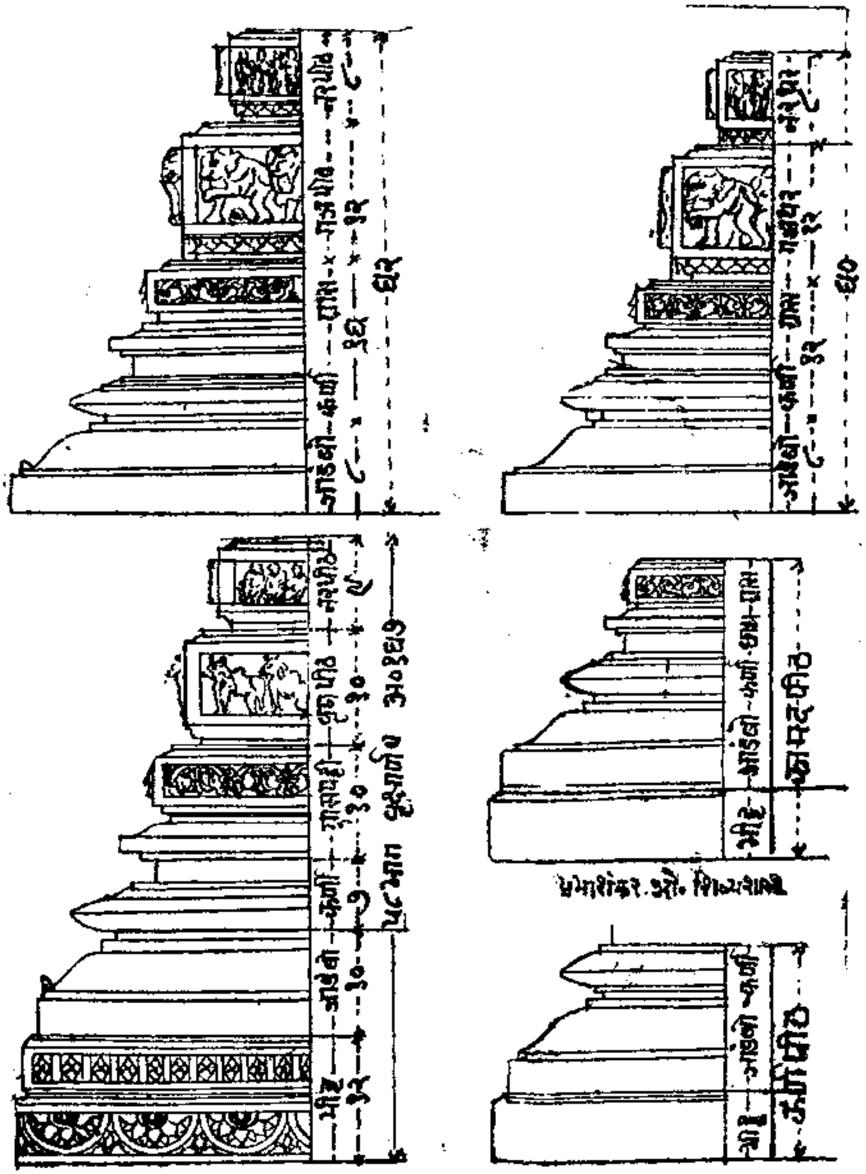

महापीठ-कामदपीठ और कर्णपीठ

नरपीठ द्वादश भागं सर्वतिमतोपरिद्वय (?)
सार्द्धमधयसंस्थाने द्विसार्द्धश्चमूर्ध्वनः ॥ १२ ॥
सप्तभागे नरंकार्यं मध्य स्थाने मुनीश्वरः ।
अधःकंदभागं च भागमेकं च पट्टिका ॥ १३ ॥
निर्गमं पद सार्द्धं च वायपट्टि च भागतः ।
तत्परि मानवाकार्या सप्तभाग समन्विता ॥ १४ ॥
इमं आद्यपीठं च सर्वतोन्तर संयुत ।
कर्तव्यं सर्व वर्णानि नित्य कल्याण कारकम् ॥ १५ ॥

नरपीठ भाग १२

(કામદ પીઠ કહ્યા પછી હવે મહાપીઠના થરો કહે છે નરપીઠ, બાર ભાગનું પીઠના સર્વથી ઉપરના ભાગમાં કરવું હે મુનીશ્વર, નીચે દોઢ ભાગનો કંદ ઉપર અઢી ભાગની ચિપ્પિકા ઉપર કરવી હે મુનીશ્વર, મધ્યમાં સાત ભાગમાં નર–મનુષ્ય દેવ રૂપો કરવાં. નીચે એક ભાગની કંદ વાય વાય પટ્ટીકા દોઢ ભાગ નીકાળો કરવી. (કુલ બાર ભાગ) એ રીતે સર્વની ઉપર નર આકૃતિ સાથેનું નરપીઠ જાણવું તે સર્વ દેવ વર્ણોને કરવાથી હંમેશાં કલ્યાણકારી જાણવું ૧૩–૧૪–૧૫.

कामदपीठके बाद अब महापीठके थरके बारेमें कहते हैं। नरपीठ बारह भागका पीठके सबसे उपरके भागमें करना। हे मुनीश्वर! नीचे डेढ भागका कंद उपर ढाई भागकी चिप्पिका करना। हे मुनीश्वर, मध्यमें सात भागमें नर–मनुष्य देवके रूप करना। नीचे एक भागकी कंद वायपट्टीका अंधारी करना। (कुल बारह भाग) डेढ भागका नीकाला करना। इस तरह सर्वके उपर नर आकृतिके साथका नरपीठ जानना। वह सर्व देववर्णोंको करनेसे हमेशां कल्याणकारी जानना। १२–१३–१४–१५.

उत्सार्य नरपीठं च वाजिपीठं निवेशितम् ।
अष्टादश भवेत्भागं कर्तव्यं शास्त्र पारगैः ॥ १६ ॥
अधः स्कंध सपादोनं सपादं पट्टिका बुधैः ।
वाजि पट्टि अधोर्ध्वे भागे निर्गमं च द्विभागत् ॥ १७ ॥
अधः सार्द्धतरपत्र उर्ध्व चिप्पिकात्रय ।
नवभागे वाजिरूप एते मश्वपीकम् ॥ १८ ॥

નરપીઠ નીચે અશ્વપીઠ અઢારભાગનું કરવાનું શિલ્પ શાસ્ત્રના પારંગતોએ કહ્યું છે. નીચે સવા ભાગનો સ્કંધ, સવા ભાગની પટ્ટી, અશ્વરૂપ નીચે

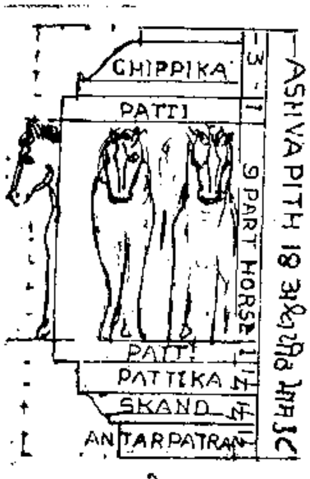

અશ્વપીઠ

ઉપર એકેક ભાગની પટ્ટી તે બે ભાગ નીકળતી કરવી. નીચે દોઢ ભાગની અંધારી અને ઉપર ત્રણ ભાગની ચિપ્પિકા કરવી. નવ ભાગમાં અશ્વનાં સ્વરૂપો જોર મરોડદાર કરવા. એ રીતે અઢાર ભાગનું અશ્વપીઠ જાણવું. ૧૬–૧૭–૧૮

...नरपीठके नीचे अश्वपीठ अठारह भागका करनेका शिल्पशास्त्रके पारंगतोंने कहा है। नीचे सवा भागका स्कंद, सवा भागकी पट्टी, अश्वरूप नीचे उपर एकएक भागकी पट्टीको दो भाग नीकलती करना, नीचे डेढ भागकी अंधारी और उपर तीन भागकी चिप्पिका करना। नौ भागमें अश्वके स्वरूप जोर मरोडदार करना। इस तरह अठारह भागका अश्वपीठ जानना १६–१७–१८.

મહાપીઠ થર વિભાગ

જાડંબો	૧૨
કણીઅંતઃ	૯
ગ્રાસપટ્ટી	૧૨
ગજપીઠ	૨૨
અશ્વપીઠ	૧૮
નરપીઠ	૧૨
કુલ ભાગ	૮૫

कुंजरं द्वाविंश भाग अधोभागं च निर्गमे।
गज चत्वारि निष्कांशं पट्टिका त्रिणिमेव च ॥ १९ ॥
पिंडं त्रिभागमुत्सेधं पदमेकं वाय पट्टिका।
(उर्ध्वे चिप्पित्रयं भागार्कोदये गजरूपकम्) ॥ २० ॥
गजपीठोपरंदद्यात नरपीठं च पूर्वत।

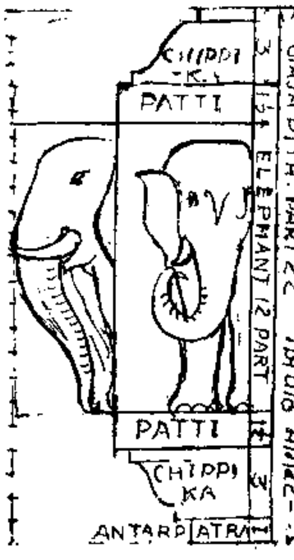

गजपीठ विभाग २२

અશ્વપીઠથી નીચેના ભાગે નીકળતું ગજપીઠ બાવીશ ભાગનું કરવું. ચાર ભાગના નીકળતા હાથીનાં સ્વરૂપો કરવાં. તેની નીચે ઉપર ૧॥ + ૧॥ ભાગની એમ ત્રણ ભાગની પટ્ટિકાઓ કરવી. નીચે ત્રણ ભાગ ઊંચી ચિપ્પિકા તે તેની એક ભાગની વાયપટ્ટિકા (અંતર પત્ર) કરવી. ઉપર ત્રણ ભાગની ચિપ્પિકા કરવી. હસ્તિનાં સ્વરૂપો બાર ભાગ ઉદય-માં કરવા. એ રીતે બાવીશ ભાગ ઉદયનું ગજપીઠ જાણવું–ગજપીઠ ઉપર સીધું આગળ કહ્યું નેવું પણ મૂકી શકાય. ૧૮–૨૦

अश्वपीठसे नीचेके भागमें नीकलता हुआ गजपीठ बाईस भागका करना। चार भागके नीकलते हाथीके स्वरूप करना। इसके नीचे उपर १½ + १½ भागकी

इस तरह तीन भागकी पट्टिकाओं करना। नीचे तीन भाग ऊंची चिप्पिका, उसके नीचे एक भागकी वायपट्टिका (अंतरपत्र) करना। उपर तीन भागकी चिप्पिका करना। हस्तिके स्वरूप बारह भाग उदयमें करना। इस तरह बाइस भाग उदयका गजपीठ जानना। गजपीठके उपर सीधे पूर्वोक्त नरपीठको भी रखा जाता है। १९–२०.

गजस्य नरमध्यायमश्वपीठं त्रयोदशं (?) ॥ २१ ॥
पक्षान्तरे गजसंस्थाने अधो वा उर्ध्वमेवच ।
तत्रांतर हयो कार्य वाजिरूपं च सप्तभिः ।
निर्गमं द्वय भागं द्वयं वयमिहोवच ॥ २२ ॥

ગજપીઠ અને નીરપીઠની મધ્યમાં અશ્વપીઠ તેર ભાગનું કરવું. પક્ષાન્તરે ગજપીઠ કોઈમાં ન પણ થાય તેના બદલે અશ્વને નર પીઠ થાય. તે અશ્વપીઠમાં અશ્વના સ્વરૂપો સાત ભાગનાં અને બે ભાગના નીકળતા કરવા ૨૧–૨૨ ઇતિ મહાપીઠ.

गजपीठ और नरपीठके मध्यमें अश्वपीठ तेरह भागका करना। पक्षान्तरसे गजपीठ किसीमें नहीं भी होता है। उसके बदले अश्व और नरपीठ होता है। उस अश्वपीठमें अश्वके स्वरूप सात भागके और दो भागके नीकलते करना २१–२२ इति महापीठ।

विश्वांश ग्रासपीठ मेकादशस्तुकर्णिका ।
चतुर्दश जाडयकुंभ नवम भागपीठकम् ॥ २३ ॥

મહાપીઠ થર વિભાગ	
જાડંબો	૧૪
કણી અંતઃ	૧૧
ગ્રાસદ્દષ્ટ	૧૩
ગજપીઠ	૨૨
અશ્વપીઠ	૧૮
નરપીઠ	૧૨
કુલ	૯૦

ગ્રાસપીઠ તેર ભાગનું કણી અગીઆર ભાગની અને જાડંબો ચૌદ ભાગનો મળી કુલ ૯૦ ભાગની મહાપીઠ જાણવું. (૧૨ નરપીઠ ૧૮ અશ્વપીઠ ૨૨ ગજપીઠ ૧૩ ગાયપટી ૧૧ કણીંકા ૧૪ જાડંબો–કુલ ૯૦ ભાગ) ૨૩.

ग्रासपीठ तेरह भागका–कणी ग्यारह भागकी और जाडंबा चौदह भागका मिलकर कुल ९० भागकी महापीठ जानना। (नरपीठ १२ अश्वपीठ १८ गजपीठ २२ ग्रासपीठ १२ कर्णिका ९१ जाडंबा १४ कुल ९० भाग)–२३.

हयव्याघ्रं धरापीठ धराधरं हयैर्युत ।
पृथ्वीपति कर्तव्यं वाजिपीठं च नान्यथा ॥ २४ ॥

પ્રાસાદમાંના સ્થાપિત દેવનું વાહન શિવને વૃષભ સૂર્યને અશ્વ બ્રહ્માને હંસ દેવીને વ્યાઘ્ર કે સિંહ તેમ પીઠમાં કરવા એ રીતે અશ્વ કે વ્યાઘ્રનાં રૂપો

પીઠમાં કરવાં રાજાને અશ્વયુક્ત પીઠ કરવું. પૃથ્વી પતિ (ચક્રવર્તી) ને અશ્વપીઠ કરવું બીજા નાના રાજાને બીજું કાંઈ ન કરવું. *

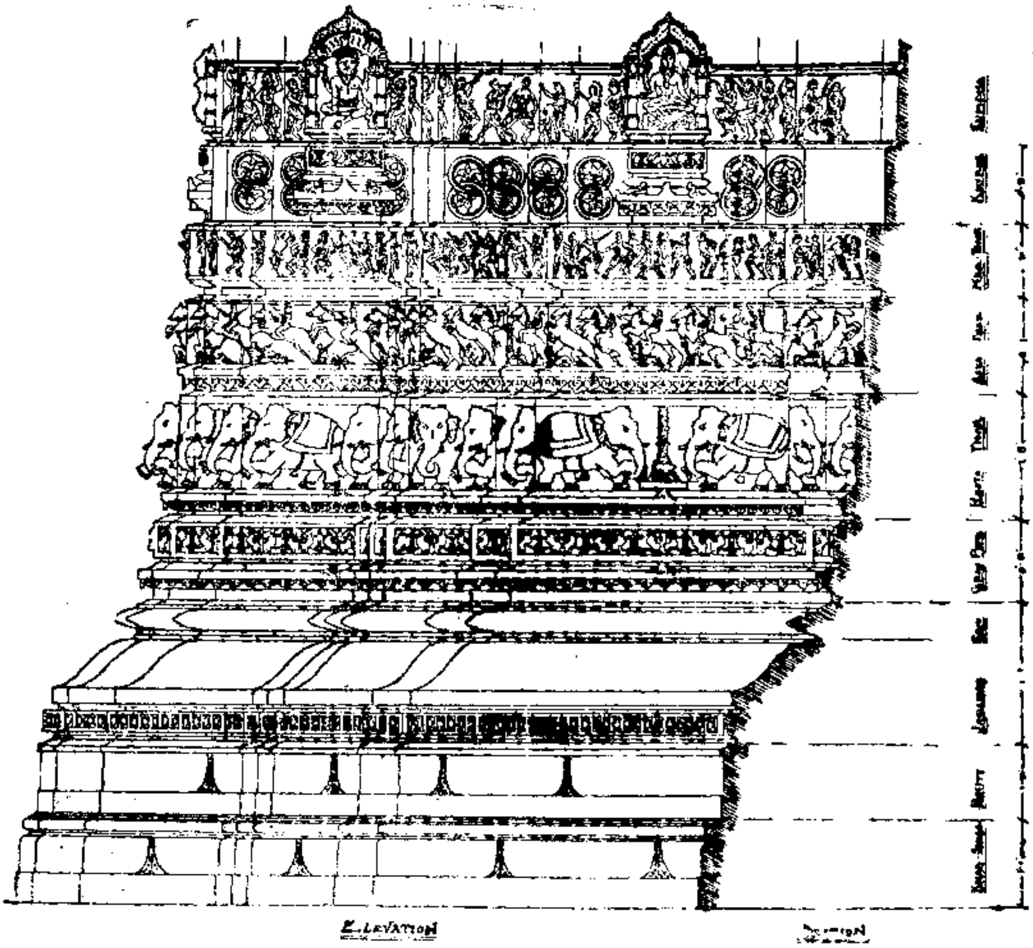

भीट्ट-गज, अश्व, नरपीठ साथका अलंकृत महापीठ

प्रासादमें स्थापित देवका वाहन, शिवको वृषभ, सूर्यको अश्व, ब्रह्माको हंस, देवीको व्याघ्र या सिंह पीठमें करना। इस तरह अश्व या व्याघ्र के रूप पीठमें करना। राजाको अश्वयुक्त पीठ करना। पृथ्वीपति (चक्रवर्ती)को अश्वपीठ करना। दूसरे छोटे छोटे राजाको दूसरा कुछ भी नहीं करना।२४ *

इति श्री विश्वकर्माकृते क्षीरार्णवे नारदपृच्छाया पीठथर विभाग नाम शताग्रे षष्ठमोऽध्याय ॥ १०६ ॥ (क्रमांक अ० ८)

* દીપાર્ણવમાં પીઠના જુદા જુદા પ્રકારો બહુ સવિસ્તર કહેલા છે. અપરાજિત સૂત્ર

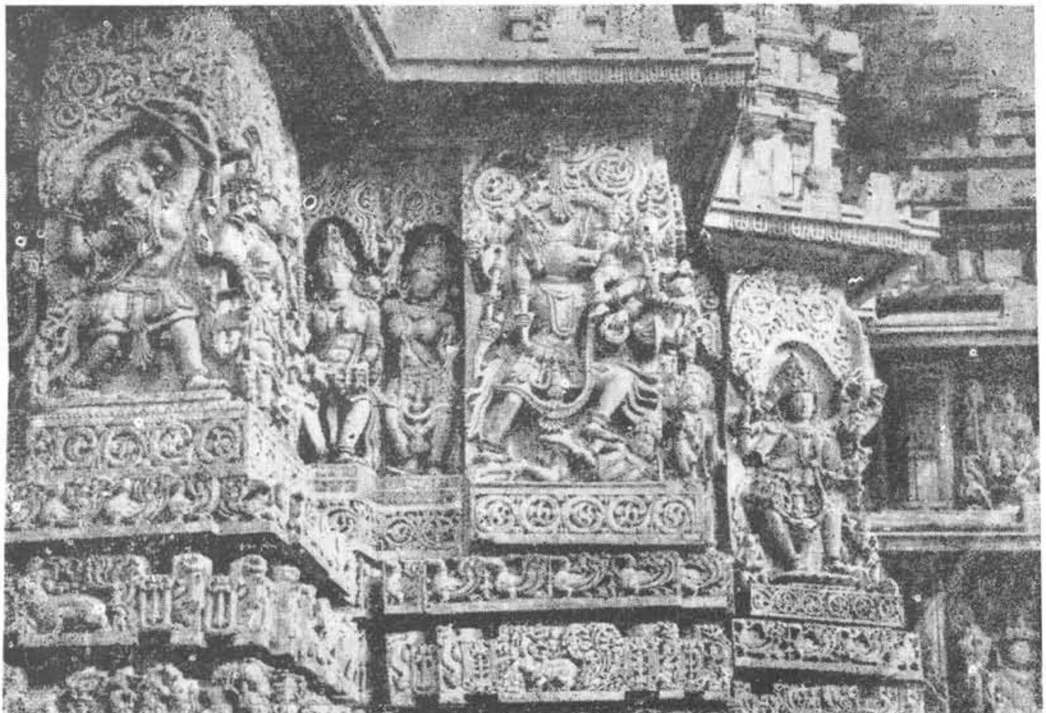

बेलुर के कलापूर्ण मंदिर के हस्त-अश्वगज सिंहयुक्त और देवस्वरुपयुक्त मंडोवर की जंघा

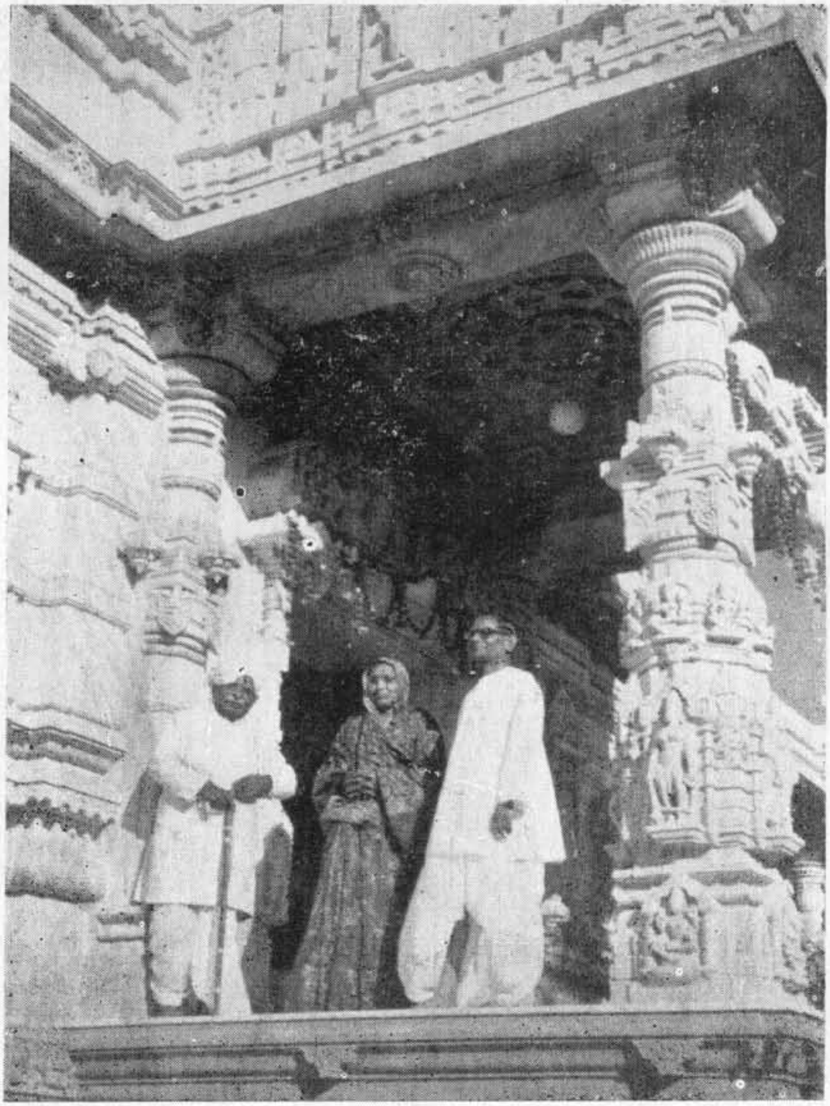

सेंच्युरी–रेयोन बीरलाजी कल्याण–मंदिरकी चतुष्किकामें मंदिर निर्माता श्री प्रभाशंकरजी
श्रीमती और श्रीमान श्रीगोपाल नेवटीयाजी

ઈતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવે શ્રીનારદ મુનિશ્વરે પૂછેલ પીઠ થર વિભાગ લક્ષણનો શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી ગુર્જર ભાષાની સુપ્રભા નામની ટીકાનો એકસો ૭ ઠ્ઠો અધ્યાય. ૧૦૬ ક્રમાંક અ૦ ૮.

इतिश्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णवमें नारदमुनिश्वरके संवादरूप पीठ थर विभाग लक्षण का शिल्पविशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा रचिता सुप्रभा नामकी भाषाटीका का १०६ वाँ अध्याय ॥ (क्रमांक अ० ८)

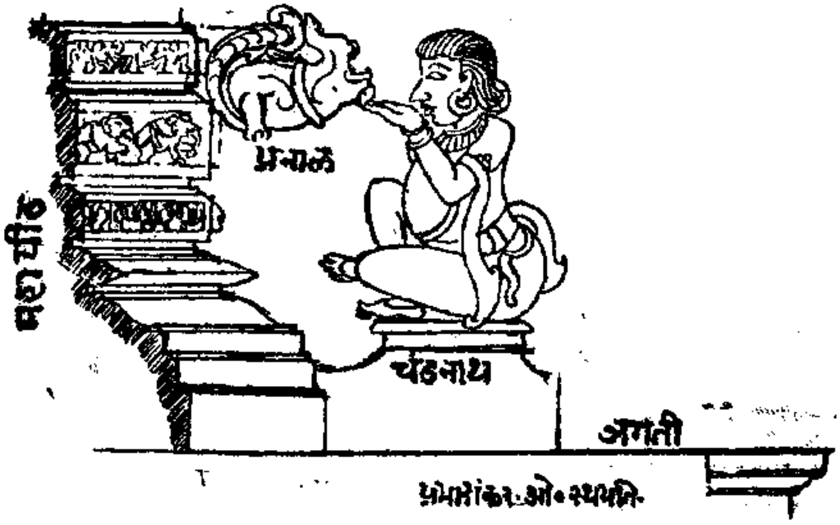

महापीठ साथप्रनाल और शिवनिर्माल्यका चंडनाथ

સંતાનતાં ફક્ત એક જ મહાપીઠ થર વિભાગનું પીઠ આપેલા છે. વૃક્ષાર્ણવમાં પીઠ જુદાં જુદાં કહ્યાં છે. પ્રાસાદના પ્રમાણથી પીઠ કરવું જોઈએ તે ખરું પરંતુ કેટલીક વખત સ્થાન માન કે દ્રવ્ય ભાવ જોઈને નાનું પ્રમાણ લેવામાં દોષ કહ્યો નથી. પીઠ માનથી અર્ધું કે ત્રીજે ભાગે કરી શકાય. બાવન જીનાલય સહસ્ત્રલિંગ કે ચોસઠ જોગણીની દેવકુલીકાની પંક્તિમાં તેમ ઓછું પીઠ કરવામાં દોષ નથી. વૃક્ષાર્ણવ અ ૧૪૭ માં प्रासादस्य षडांशेन पीठं कूर्याद्विचक्षण નું પ્રમાણ મળે છે. તે કંઈક આ મતને સમર્થન આપે છે.

(१) दीपार्णवमें पीठके भिन्न भिन्न प्रकार बहुत विस्तार से कहे गए हैं। अपराजित सूत्रसंतानमें सिर्फ एक ही महापीठके थर–विभागका आये हुए हैं। वृक्षार्णवमें पीठ अलग अलग कहे गए हैं। प्रासाद के प्रमाणसे पीठ करना चाहिए, यह ठीक है लेकिन कई बार स्थान मान या द्रव्य भाव देखकर छोटा प्रमाण लेनेमें दोष नहीं कहा है। अर्धे भागे त्रिभागे वा पीठंचैव नियोजयेत् स्थान मानाश्रयं ज्ञात्वा तत्रदोषो न दीयते।

आधे या तीसरे भागमें पीठ हो सकता है। बावन जिनालय, सकस्त्रलिंगा या चौसठ योगिनींकी देवकुलिका की पंक्तिमें कम पीठ करने में दोष नहीं है। वृक्षार्णव अ० १३७ में प्रासादस्य षडांशेन पीठं कुर्याद्विचक्षण 'का प्रमाण है। यह इस मतको कुछ समर्थन देता है।

।। अथ मंडोवर थर विभाग ।।

क्षीरार्णव अ० १०७ क्रमांक अ० ९

विश्वकर्मा उवाच –

पूर्वोदयोक्ता अतः प्रवक्ष्यामि मंडोवरम् ।
खुरकः पंच भागस्या द्विंशतिकुंभकस्तथा ।। १ ।।
कलशाऽष्टौ द्विसार्द्धं तु कर्तव्यमंतरालकम् ।
कपोतिकाष्टौ मंची स्यात् कर्तव्य नवभागिकाः ।। २ ।।
पंच त्रिंशत्पदा जंघा तिथ्यंशैरुद्गमो भवेत् ।
वसुभि भरणी कार्या शिरावटी दशांशीका ।। ३ ।।
अष्टांशोर्ध्वा कपोतालि द्विसार्द्ध मन्तरालकम् ।
छाद्यं त्रयोदशांशोच्च दश भार्गेविनिर्गमः ।। ४ ।।

इति नागरादि मंडोवर भाग ।।१४४।।

પ્રાસાદના ઉદયનું પ્રમાણ આગળ (અ૦ ૧૦૪ માં) કહ્યું હવે (તે ૧૪૪ ભાગનો નાગરાદિ) મંડોવર કહું છું. ખરો પાંચ ભાગનો, કુંભો વીસ ભાગનો, કળશો આઠ ભાગનો અંધારી અઢી ભાગની, કેવાળ આઠ ભાગનો, માચી નવ ભાગની, જંઘા પાંત્રીસ ભાગની દોઢીયાં પંદર ભાગની, ભરણી આઠ ભાગની, શિરાવટી દશ ભાગની ઉપરનો મહા કેવાળ આઠ ભાગનો, અઢી ભાગની આંતરાળ, અને છજું તેર ભાગ ઊંચું અને દશ ભાગ નીકળતું કરવું તે રીતે નાગરાદિ મંડોવર ૧૪૪ વિભાગનો જાણવો. (હવે સાંધાર પ્રાસાદને યોગ્ય બે ત્રણ ભૂમિકાનો મેરૂ મંડોવર કહે છે.) ૧ થી ૪

प्रासादके उदयका प्रमाण आगे (अ० १०४ में) कहा। अब (यह १४४ भागका नागरादि) मंडोवर कहता हूँ। खरा पाँच भागका, कुंभा वीश भागका, कलशा आठ भागका, अँधारी ढाई भागकी, केवाल आठ भागका, माची नौ भागकी, जंघा पैंतीश भागकी, दोढिया पन्द्रह भागका, भरणी आठ भागकी, शिरावटी दस भागकी, ऊपरका महा केवाल आठ भागका, ढाई भागकी अंतराल और छज्जा तेरह भागका ऊँचा और दस भाग नीकलता करना। इस तरह नागरादि मंडोवर १४४ विभागका जानना। (अब सांधार प्रासादके योग्य दोतीन भूमिका का मेरुमंडोवर कहते हैं।) १–२–३–४

इति नागरादि मंडोवर भाग ।।१४४।।

सांधार महाप्रासाद तलदर्शन

निरंधारप्रासाद तलदर्शन

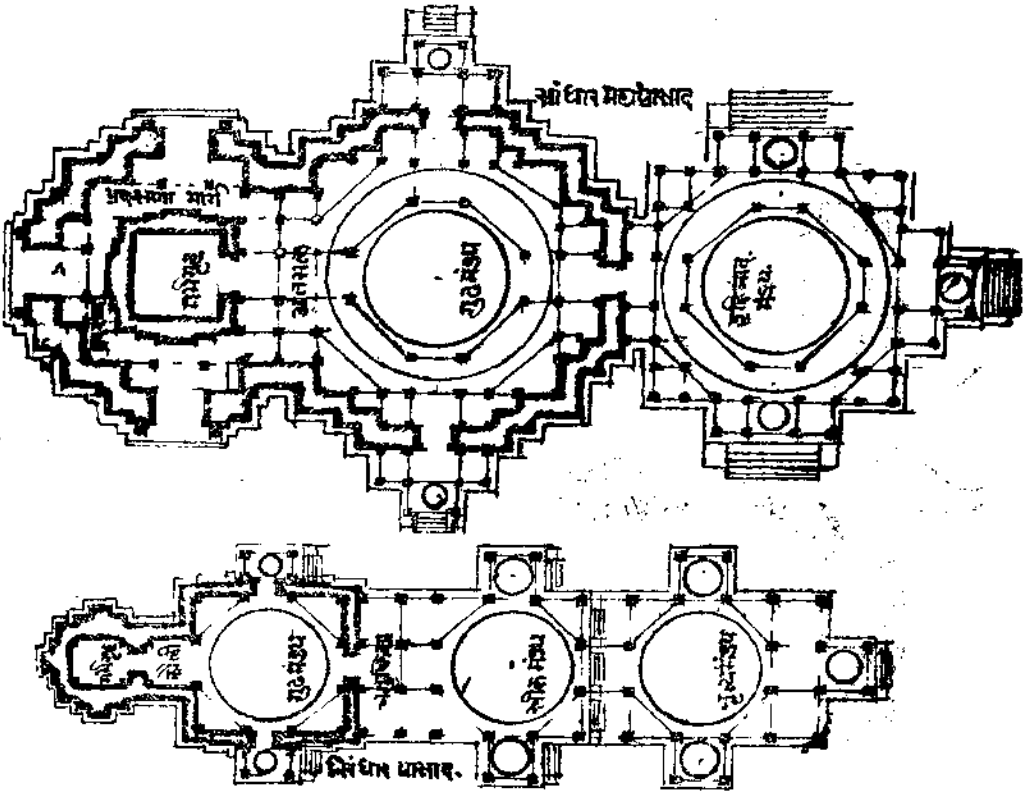

सांधार महाप्रासाद और निरंधार प्रासादका स्वरूप तलदर्शन

मेरूमंडोवरे मंची भरण्यूर्ध्वेऽष्ट भागिका ।
पंच विंशतिका जंघा उद्गमश्च त्रयोदशः ॥५॥
अष्टांशा भरणी शेषं पूर्ववत्कल्पयेत्सुधीः ।
सप्त भागा भवेन्मंची खुटछाद्यस्य मस्तके ॥६॥
षोडशांशा पुनर्जंघा भरणी सप्त भागिका ।
शिरावटी चतुर्भागा पट्टः स्यात्पंचभागिकाः ॥७॥
सूर्यांशै खूटछाद्यं च सर्वकामफलप्रदम् ।

આગળ નાગરાદિ મંડોવર ૧૪૪ ભાગનો કહ્યો. પરંતુ જો બે ત્રણ ભૂમિના મેરૂમંડોવરની રચના કરવી હોય તો આગળ કહેલા. ભરણી સુધીના નવ થરના-વિભાગ ૧૧૦॥ ઉપર બીજી ભૂમિના થરવાળા કહે છે. ભરણી ઉપર આઠ ભાગની માચી પચ્ચીસ ભાગની જંઘા, તેર ભાગનો દોઢિયો, આઠ ભાગની ભરણી અને તે ઉપર આગળ શ્લોક ત્રીજાથી કહેલા થરો ફરી ચડાવવા એટલે દશભાર શિરા વટી, આઠ ભાગના સહકેવાળ અઢી ભાગનો અંતરાળ અને તેર ભાગનું છજ્જું એમ મળી તે ૮૭॥ ભાગ થયા. એટલે ૧૧૦॥ + ૮૭॥ = ૧૯૮ ભાગ બીજી ભૂમિ સુધીની ઉભણી જાણવી.

पृथक् पृथक् मंडोवर-अन्दरका-स्तम्भ का समन्वय साथ

भीट्ट सांधार प्रसादका मंडोवर १०८ भागका मंडोवर १६९ भागका मंडोवर
मेरु मंडोवर ७ भागका मंडोवर

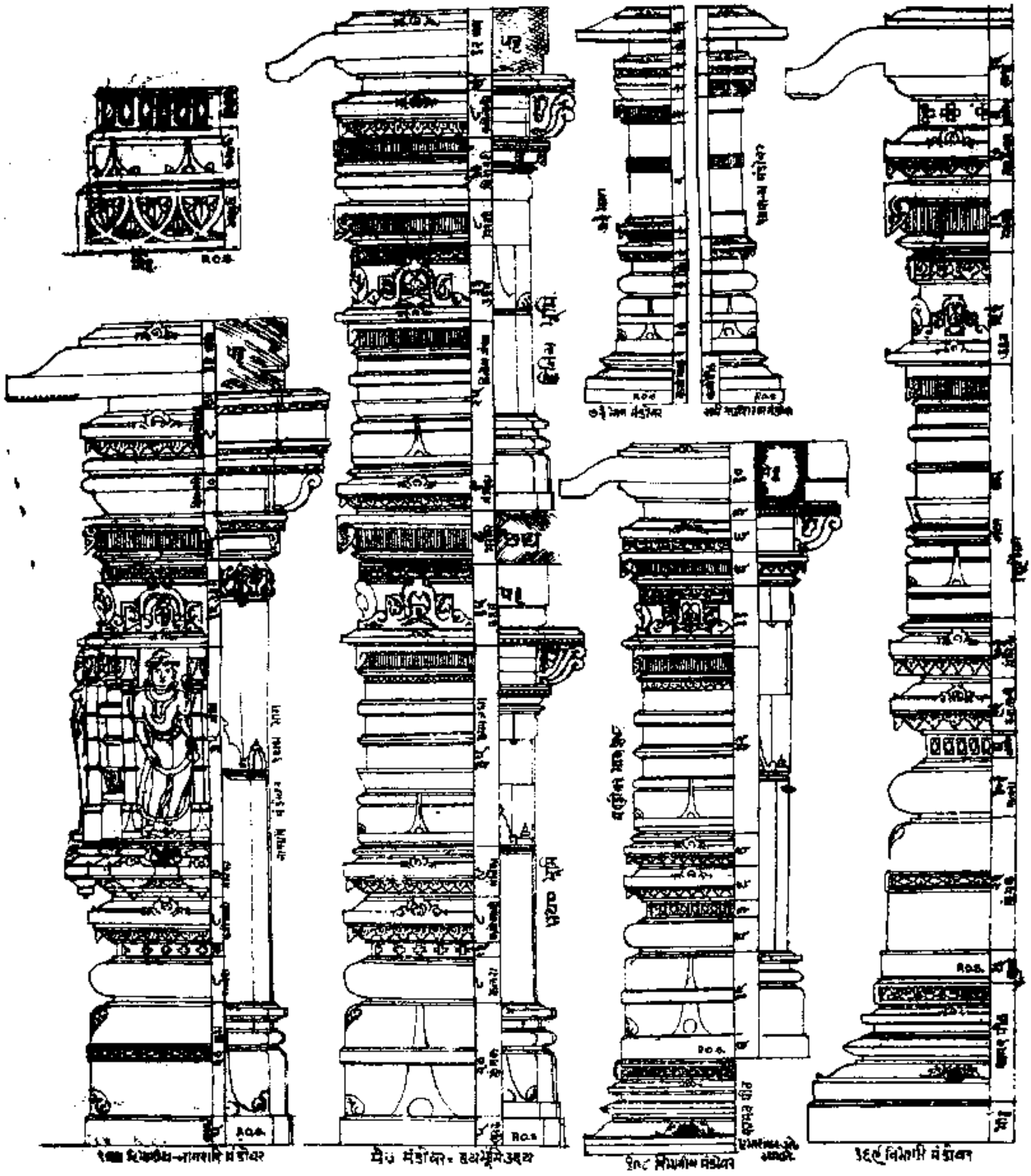

१ २ ३ घ
भीट्ट-१ १४४ भागका मंडोवर २ मेरु मंडोवर १०८ भागका मंडोवर १६९ भागका मंडोवर

હવે ત્રીજી ભૂમિના ભાગ મહામંડોવરના કહે છે. છજ્જા પર ફરી સાત ભાગની માચી, સોળ ભાગની જંઘા, સાત ભાગની ભરણી, ચાર ભાગની શિરાવટ

तथा पांच भागनो पट्ट ते उपर बार भागनुं छज्जुं करवुं. (એવો ત્રણ ભૂમિ-ઉદયનો બે છાદ્યવાળો) મહામંડોવર સર્વ કામનાને ફળદાતા જાણવો; ५–६–७

आगे नागरादि मंडोवर १४४ भागका कहा, लेकिन जो दो-तीन भूमिके मेरू मंडोवर की रचना करनी हो तो आगे कहे हुये भरणी तक के भी थरके विभाग ११०॥ ऊपर दूसरी भूमिके थरवाले कहते हैं।

ખરો	५		
કુંભો	२०		
કળશો	८		
અંતરાળ	२॥		
કેવાળ	८		
મંચિકા	९		
જંઘા	३५		
ઉદ્દગમ	१५		
ભરણી	८		
શીરાવટી	१०	११०॥	
મહાકેવાલ	८	८	મંચિકા
અંતરાળ	२॥	२५	જંઘા
છજ્જુ	१३	१३	ઉદ્દગમ
	१४४	८	ભરણી
		१०	શીરાવટી
		८	મહાકેવાળ
		२॥	અંતરાળ
		१३	છજ્જુ
		१९८	
		७	માચી
		१६	જંઘા
		७	ભરણી
		४	શીરાવટ
		५	પટ્ટ
		१२	છજ્જુ
મહામેરૂ મં०		२४९	

भरणीके पर आठ भागकी माची, पच्चीस भाग की जंघा तेरह भागका दोढिया, आठ भागकी भरणी, और उसके पर आगे श्लोक तीसरसे कहे हुए थर फिर चढ़ाना। अर्थात् दस भाग शिरावटी, आठ भागके महा-केवाल, ढाई भागका अंतराल और तेरह भागका छज्जा– ये मिलकर ८७॥ भाग हुए। इससे ११०॥ + ८७॥ = १९८ भाग हुए। दूसरी भूमि तकका उदय जानना।

अब तीसरी भूमिके भाग महामंडोवर के कहते हैं। छज्जे पर फिर सात भागकी माची, सोलह भागकी जंघा, सात भागकी भरणी, चार भागकी शिरावट तथा पाँच भागके पट्ट, उसके पर बारह भागका छज्जा करना। ऐसे (तीन भूमि उदय के दो छाद्यवाले) महा मंडोवरको सर्वकामना और फलके दाता जानना। ५–६–७.

कुंभकस्य युगांशेन स्थावराणां प्रवेशकं ॥८॥

इति मेरु मंडोवर

મંડોવરના કુંભા આદિ થરો (છજ્જા સિવાયના) ઓળંબે કરવા. તે થરોના ઘાટની ઊંડાઈ ચાર ભાગ સુધી રાખવી. ८

कुंभा आदि थर (छज्जेके सिवा) ओलंभे पर करना। उन थरोंके घाटकी गहराई चार भाग तककी रखना ८.

इति मेरु मंडोवर भाग २४९।

पुनः दघाभवेत्जंघामंन्चिका स्वमानकधाः।
खुरकं स्थरखुटछाद्य निर्गमं पीठ मध्यतः ॥९॥

ઉપર ભૂમિ કરવાને ફરી જંઘા ચડાવવાને માચીનો થર પોતાના માનથી ભાગે ચડાવવા. ખરા આદિ થરો ઓળંબે સ્થિર અને ઉપરનું છજ્જુ પીઠથી કાંઈક નીકળતું કરવું. ९.

ऊपर भूमि करनेके लिये, फिर जंघा चढाने के लिये, माचीका थर अपने मानके भागमें चढाना। खरा आदि थरोंको ओलंभेपर स्थिर रखना और ऊपरका छज्जा पीठसे कुछ निकलता करना। ९.

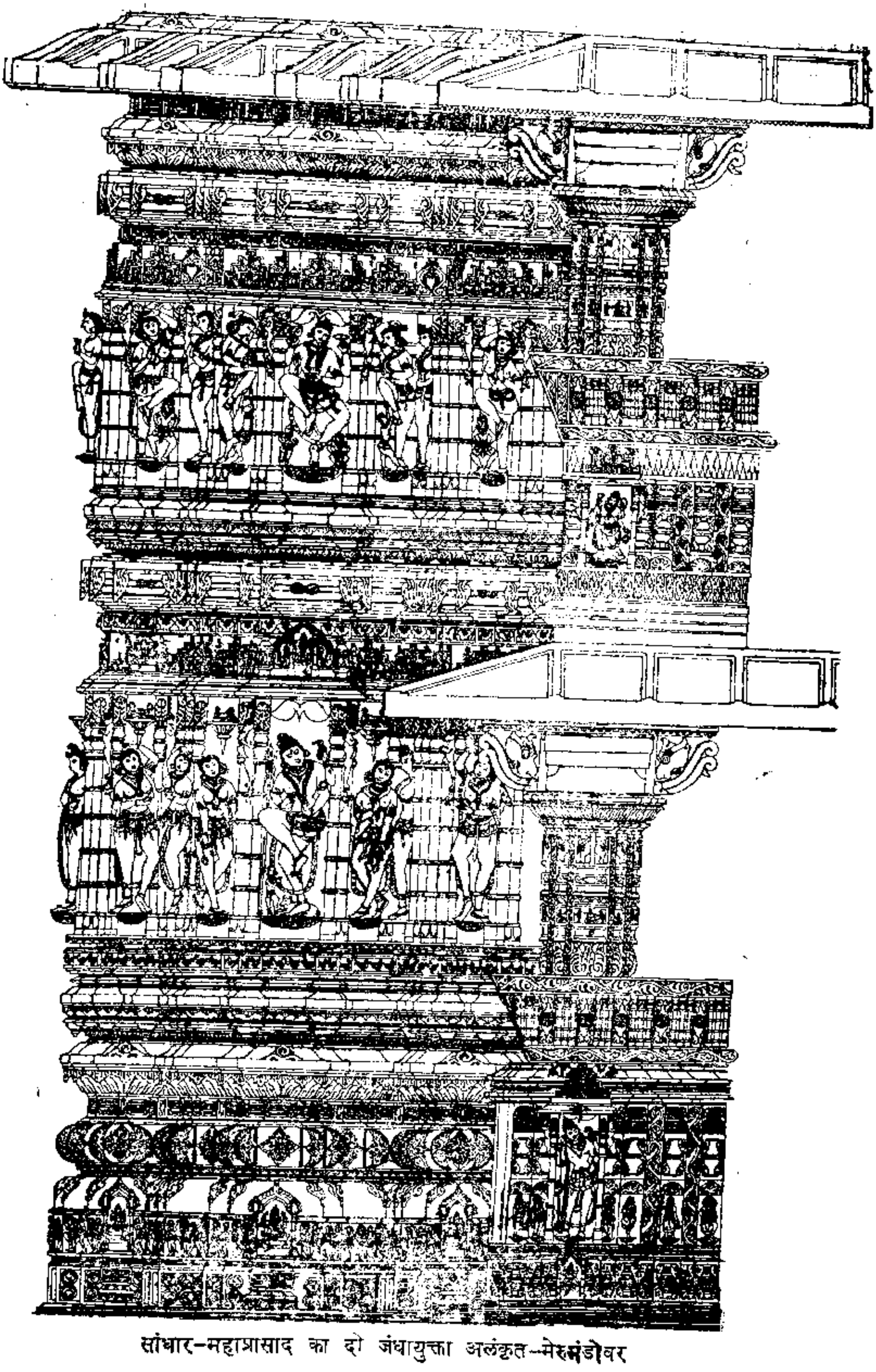

सांधार-महाप्रासाद का दो जंघायुक्ता अलंकृत-मेरुमंडोवर

अब २०६ भागका मंडोवर कहते है—

खुरक पाँच भाग
कुंभक भाग २६

खुरकं पंचभागस्यात् कुंभकं षट्विंशतिः ।
मणिबंध प्रकर्तव्या भागस्यादश पंचके ॥१०॥
त्रयोदश्यात्परे भागे विभागंच समो मुनि ।
खुरकंऽमराकारं कुंभांते पल्लवाकृति ॥११॥

હવે અન્ય મંડોવરના થરના ઘાટ સાથેનો ૨૦૬ ભાગનો કહે છે. ખરો પાંચ ભાગનો કુંભો છવ્વીસ ભાગનો તેને મણીબંધ પંદરમે ભાગે કરવા તે હે મુનિ તેર ભાગ ઉપર કરવા (?) ખરામાં ડમરૂની કે મરકત–મોતીની જાલરની આકૃતિ કરવી અને કુંભામાં ખૂણે ખૂણે પાંદડાની સુંદર આકૃતિ કરવી. ૧૦–૧૧.

अब अन्य मंडोवर के थरके घाटके साथ २०६ भागका कहते हैं। खरा पाँच भागका, कुंभा छब्बीस भागका, उसको मणिबंध पन्द्रहवें भागमें करना। हे मुनि, तेरह भाग ऊपर करना। खरेमें डमरु की या मरकत की झालर की आकृति करना। और कुंभामें ऊपर कोने कोनेमें पत्र की सुन्दर आकृति करना। १०—११.

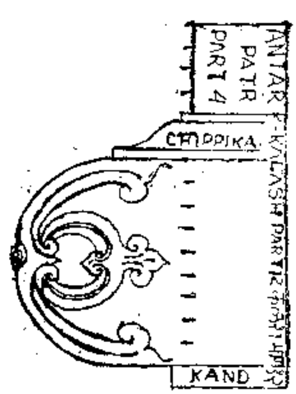

कलशा भाग १२ अंतरपत्र भाग

कलशं च द्वादश भागं अंतरपत्रंतुवेदभिः ।
भागैकं प्रतिकंदश्च अधः कंदंच भागत् ॥१२॥
द्येक भागं तु षट्कार्यं निर्गमंषट्मेवच ।
द्वादशश्च कपोताली गर्भकर्ण द्विसार्द्धकं ॥१३॥
कंदस्य भागमेकेन अधः चैतत्समं भवेत् ।
मुखपट्टि भवेद्विभिः शेषः स्कंधद्वयं भवेत् ॥१४॥

કળશો બાર ભાગનો, અંતરાળ ચાર ભાગની, કળશાને એક ભાગનો પ્રતિકંદ ઉપર કરવો અને નીચે એક ભાગનો કંદ કરવો. એક ભાગની ચિપ્પીકા ઉપર કરવી. કળશો નવ ભાગનો (કળશાને મણીબંધ મોતીની કરવી) અને કળશાનો નીકાળો છ ભાગનો (અંતરાળથી) રાખવો.

કેવાળ બાર ભાગનો તેમાં વચલી મુખપટ્ટી અઢી ભાગની, નીચે-ઉપરનો કંદ એકેક ભાગનો, મધ્યની મુખપટ્ટી પાસેના બેઉ કંદ એકેક એમ બે ભાગના અને બાકી પોણા ત્રણ પોણા ત્રણ ભાગના બે નીચે ઉપરના સ્કંધ-ગલતા કરવા એ રીતે કેવાળનો બાર ભાગનો ઘાટ જાણવો. ૧૨-૧૩-૧૪.

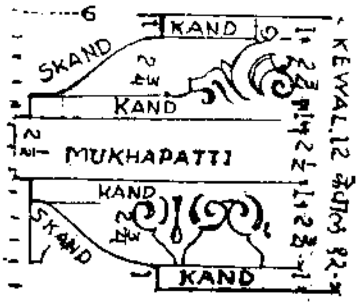

केवाल भाग १२

कलशा बारह भागका, अंतराल चार भागकी, कलशा को एक भागका प्रतिकंद ऊपर करना और नीचे एक भागका कंद करना। एक भागकी चिप्पिका ऊपर करना। कलशा नौ भागका करना। (कलशेमें मणिबंध मोतीकी करना) और कलशेका निकाला छः भागका (अंतरालसे) रखना।

केवाल बारह भागका, उसमें मध्यकी मुखपट्टी ढाई भागकी, नीचे ऊपरका कंद एक एक भागका। मध्यकी मुखपट्टी को पासके दोनों कंद एक एक भाग ऐसे दो भागके और बाकी पौने तीन भागके दो नीचे ऊपरके स्कंधगलते करना। इस तरह केवालका घाट १२ भागका समझना। १२-१३-१४.

अंतरंच द्विभार्गच (?) द्वादशमंचिकोत्तमा।
प्रवेशंच सार्द्धश्चतुर्थ स्कंध परिमस्तके ॥१५॥
कर्णं च द्वय भागानि घसिका पदपट्टिका।
तत्समं प्रतिकंधश्च पदभागं च पट्टिका ॥१६॥
कर्णं पट्टी द्वयं भाग मुखपट्टि पदं भवेत्।
अधः कंदं भवेद्भागं शेषेच स्कंध द्वयम् ॥१७॥

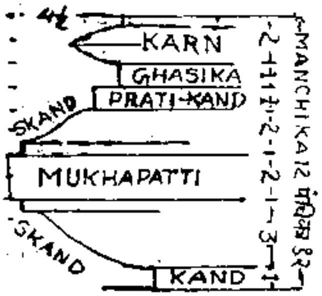

मंचिका १२ भाग

બાર ભાગની માચીના થરમાં ઉપર કણીસેથી સાડાચાર ભાગ પ્રવેશ (ઘાટની ઊંડાઈથી) નીકાળો રાખવો. કણી બે ભાગની ઘસીકા-કંદ પટ્ટી એક ભાગની તેટલો પ્રતિકંદ ઉપરનો એક ભાગનો, કર્ણપટ્ટી-મુખપટ્ટી બે ભાગની કરવી. મુખપટ્ટીની બાજુમાં કંદ અરધા અરધા ભાગના કરવા. નીચેનો કંદ એક ભાગનો બાકીના સાડાપાંચ ભાગમાં બે સ્કંધ (ગલતા) નીચે ઉપરના કરવા (નીચેનો મોટા

सोमनाथ के प्रवित्र महाप्रासाद उत्तरभद्र महापीठ कक्षासन और स्तंभ

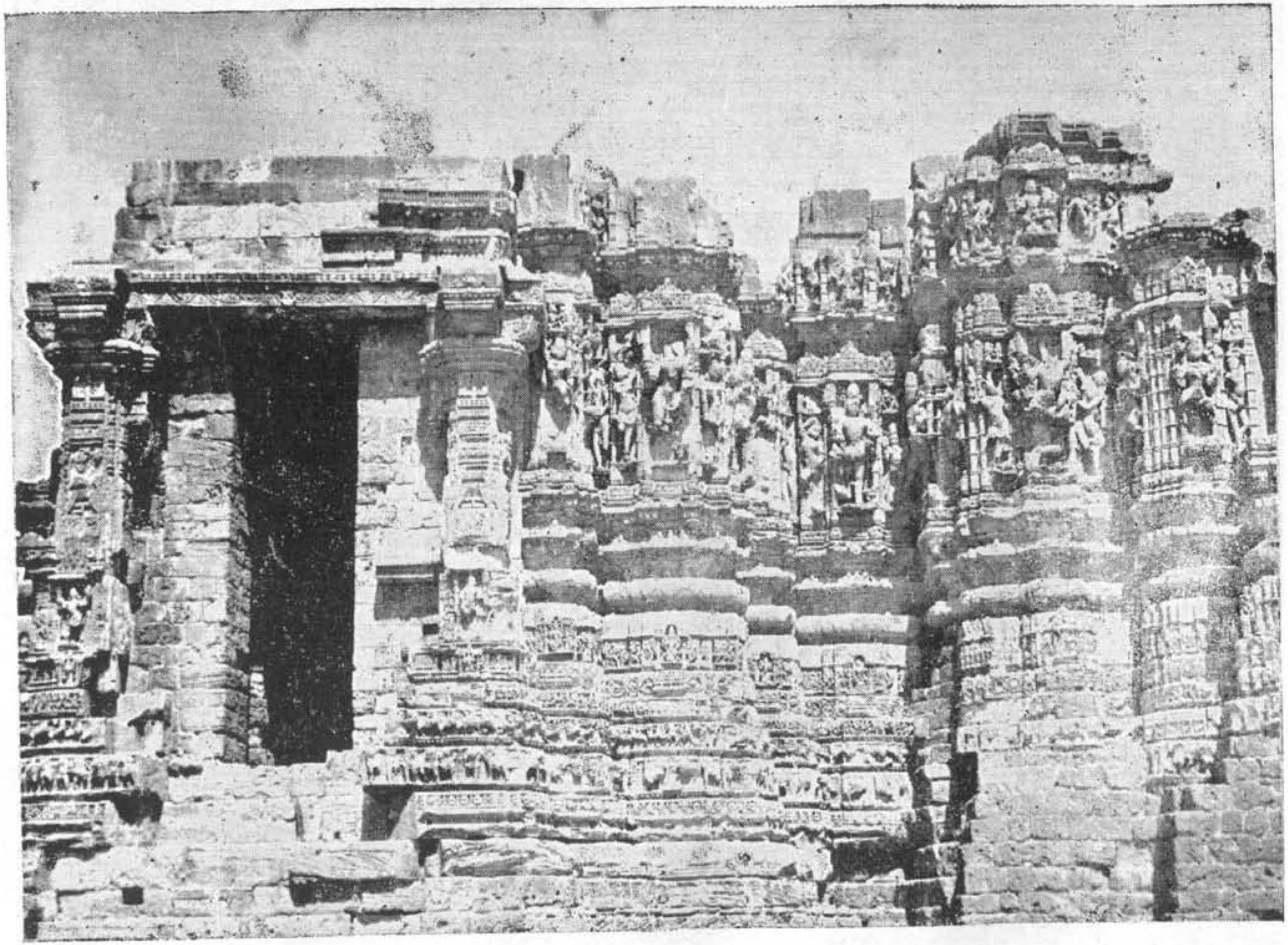

सोमनाथ के प्राचिन भव्यमहाप्रासाद के नर अश्व गज थरयुक्त महापीठ और द्वयजंघायुत मंडोवर

ઉપરનો નાનો) એ રીતે બાર ભાગના માચીના થરના ઘાટના વિભાગ જાણવા. ૧૫-૧૬-૧૭.

त्रिपुरान्तक शिव जंघामें रूप

बारह भागकी माचीके थर में ऊपर कणीसे साढे चार भाग प्रवेश (घाट की गहराई से) निकाला रखना। कणी दो भाग को, घसीका-कंदपट्टी एक भागकी, उतना प्रतिकंद उपर का एक भागका, कर्णपट्टी–मुखपट्टी दो भागकी करना। मुखपट्टी को बाजुमें कंद आधे आधे भागके करना। नीचेका कंद एक भाग का, बाकी साढे पाँच भागमें दो स्कंध (गलते) नीचे ऊपरके करना। (नीचेका मोटा, ऊपरका छोटा) इस तरह बारह भागके माचीके थरके घाट के विभाग जानना। १५–१६–१७.

पदषष्टि भवेत्जंघा लोकपालस्य निर्गत: ।
दिग्पाल भ्रमंतस्य ततः स्थाप्या प्रदक्षणे ।।१८।।

માંચીના ઉપર સાઠ ભાગની જંઘા લોકપાલાદિ રૂપથી નીકળતી કરવી. તેમાં ફરતા પ્રદક્ષિણાએ દિગ્પાલનાં સ્વરૂપો કરવાં. ૧૮.

माचीके ऊपर साठ भागकी जंघा लोकपालादि रूपसे निकलती हुई करना। उसमें फिरते प्रदक्षिणामें दिग्पाल देव स्वरूप करना। १८.

रथउपरथश्चैव कुर्यादेवाङ्गना मुने ! ।
वारिमार्गे मुनींद्रश्च जटाधारी शिवालये ।।१९।।
सप्त भागयता कुंभि अष्टमध्येच पल्लव: ।
डमरुकं नव भागं षट्त्रिशे चतुर्कर्णिका: ।।२०।।

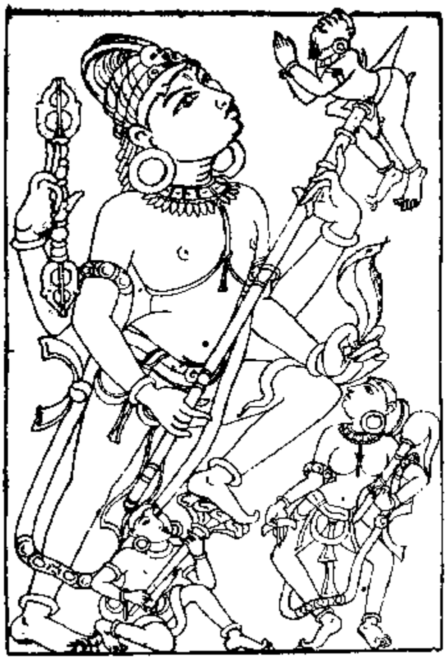

अंधकेश्वर शिव-(जंघामें)

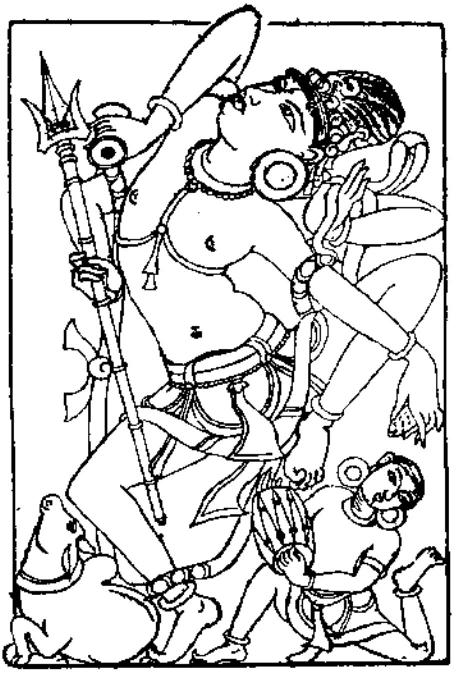

नाट्येश शिव-(जंघामें)

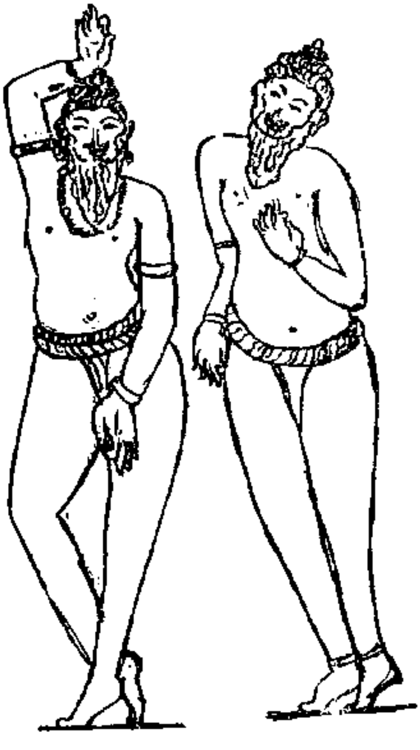

जंघाकी कुंजमें मुनी स्वरुप युग्म रुप

जंघाकी कुंजमें मुनि तापस और युग्म रुप मिथुन रुप

तथा सर्व प्रमाणंच नवधा बंधन क्रीयते मुनि !
अष्टौ अष्टौ द्वयो वाद्ये शेषंच पत्रयत्रके ॥२१॥

પ્રાસાદના રથ અને ઉપરથની જંઘામાં દેવાંગનાનાં સ્વરૂપો હે મુનિ, કરવાં. બે ખાંચાની કુંજમાં-પાણીતારમાં તાપસ મુનિઓના ઉભા તપ કરતાં સ્વરૂપો કરવાં અને શિવાલયમાં જટાધારીનાં રૂપો કરવાં. જંઘામાં પોતાના પ્રમાણથી નીચે સાત ભાગની કુંભીકાનો ઘાટ કરવો. ઉપર આઠ ભાગમાં પાલ-પલ્લવપત્રો કરવાં. તેની નીચે નવ ભાગમાં ડમરૂ-ડાકલીનો ઘાટ કરવો. ઊભી જંઘાના છત્રીશ ભાગમાં ચાર કણીબંધો કરવા તથા કામના સર્વ પ્રમાણથી હે મુનિ ! નવ બંધો એટલે જાંઘીમાં કણીપટ્ટીઓ વગેરે કરવા. રૂપની બે બાજુની થાંભલીઓ આઠ આઠ ભાગની ઊંચી વીરાલિકા બાકી પત્ર પાંદડાથી અલંકૃત (ગજસિંહથી) કરવી. એમ જંઘા સાઠ ભાગની જાણવી. ૧૯-૨૦-૨૧.

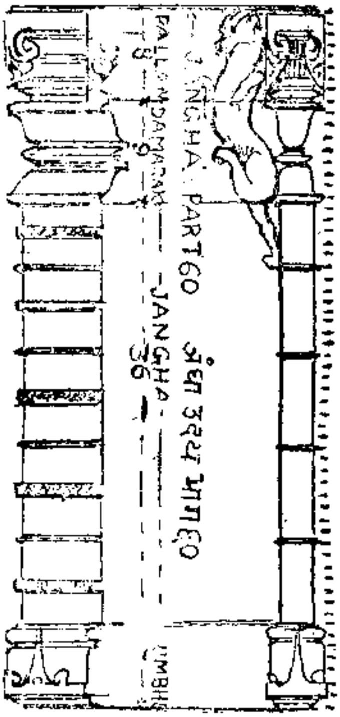

जंघा भाग ६०

हे मुनि, प्रासादके रथ और उपरथकी जंघामें देवाङ्गनाके स्वरूप करना। दो उपांङ्गकी कुंजमें-पानीतारमें तापस मुनियोंके खडे तप करते हुए स्वरूप बनाना। और शिवालयमें जटाधारीके रूप करना। जंघामें अपने प्रमाणसे सात भागकी कुंभिका घाट करना। उपर आठ भागमें पाल-पल्लवपत्र करना। उसके नीचे नौ भागमें डमरूका घाट करना। खडी जंघाके छत्तीस भागमें चार कणी बंध करना। तथा कामके सर्व प्रमाणसें हे मुनि ! नौ बंध अर्थात जांगीमें कणी पट्टियाँ वगैरह करना। रूपकी दो तरफकी स्तंभावली, आठ आठ भागकी ऊँची वीरालिका बाकी पत्रपानसे अलंकृत (गजसिंहसे) करना। जंघा ६० भागकी जानना। १९-२०-२१.

सप्तदशोद्गमं कार्यंच छाद्यकीं त्रिणिमेव च।
निर्गमे त्रिणि कर्तव्या उद्गमं च पीठोपरि ॥२२॥
मुखमुद्रं पुनः कार्यं * नवांत फासनंष्टतम्।
उपरि पंच भागस्यात्तृते च ग्रासपट्टिका ॥२३॥

* पाठान्तर-तावतः फासतिष्ठति

प्रवेशं सप्त भागानी कर्तव्यं च सदाबुधैः ।
भरणीका च द्वादशभागे चिप्पिका भागमेवच ॥२४॥
कर्णिका सार्द्धभागेन घसिका अर्धमेवच ।
उपर्युपरिकैरैः स्यात् सप्तभागं विचक्षणं ॥२५॥
कर्णपट्टी द्वयो भाग तदूर्ध्वपल्लवोर्युत ।
अशोक पल्लवाकारा कर्तव्या सर्वकामदाः ॥२६॥

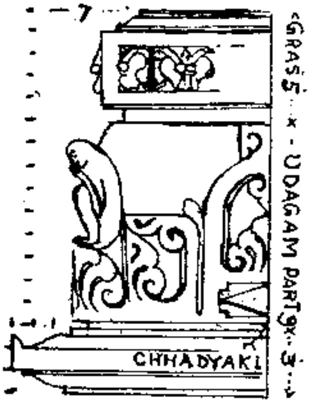

उद्गम भाग १७

જંઘા જાંઘી ઉપર દોઢીયો સત્તર ભાગનો કરવો. તેમાંથી નીચે છાજલી ત્રણ ભાગની અને ત્રણ ભાગની કળતી. તે પર નવ ભાગનો ઊંચો દોઢીયો કરવો તેમાં વચ્ચે બહાર નીકળતું મુખભદ્ર દોઢીયાનું ફાસનાકારે કરવું તે ઉપર પાંચ ભાગ ઊંચાઈની ગોળાઈમાં પટ્ટીમાં ત્રણ ભાગમાં ગ્રાસ કરવા આ બધા ઘાટની ઊંડાઈ મૂળથી સાત ભાગની બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ રાખવી (ઉદ્ગમના ખુણે ખુણે કપિ બેસાડવા) કુલ ૧૭ ભાગ દોઢીયાના જાણવા.

जंघा—जंघीके पर दोढिया सत्रह भागका करना। उसमेंसे नीचे छाजली तीन भागकी और तीन भाग निकलती—उसके पर नौ भागका ऊँचा दोढिया करना। उसमें मध्यमें बाहर निकलता मुख भद्र, दोढियेका फासना कारमें करना। उसके उपर पाँच भाग ऊँचाईके गोलाकारमें पट्टीमें तीन भागमें ग्रास करना। ये सब घाटकी गहराई मूलसे सात भागकी बुद्धिमान शिल्पीको करना। (उद्गमके कोने कोनेपर कपिको बिठाना।) कुल १७ भाग दोढियेके जानना। २२—२३.

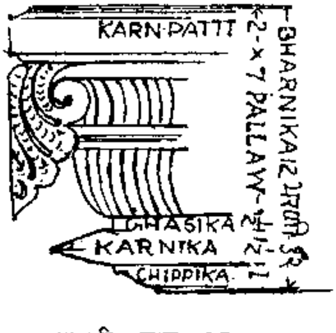

भरणी भाग १२

દોઢીયાપર ભરણી બાર ભાગની કરવી. તેમાં નીચેથી એક ભાગના કંદ સહિત ચિપ્પિકા કરવી તે પર દોઢ ભાગની કણી કરવી. અર્ધા ભાગની ઘશી કરવી તે ઉપર પરિકરના જેમ પલ્લવો સાત ભાગમાં વિચક્ષણ શિલ્પીએ નીચે કંદ અને ઉપરની પટ્ટી નીચે ચીપલી કણી સાથે) રાખવા. ઉપરની મુખપટ્ટી બે ભાગની પટ્ટી તે નીચે લટકતા અશોક પલ્લવ પત્રોના આકારના કરવા. તેવા સ્વરૂપની બાર ભાગની ભરણીથી સર્વ કામનાનું ફળ મળે છે. ૨૪—૨૫—૨૬.

दोढियेके पर भरणी बारह भागकी करना। उसमें नीचेसे एक भागके कंद सहित चिप्पिका करना। उसके पर डेढ भागकी कणी करना। आधे भागकी घसी करना। उसके उपर परिकरकी तरह पल्लवोंको सात भागमें विचक्षण शिल्पी करें (नीचे कंद और उपरकी पट्टीके नीचे चिपली कणीके साथ) रखना। उपरकी मुखपट्टी दो भागकी पट्टी उसके नीचे लटकते अशोक पल्लव-पत्रोंके आकारका करना। वैसे स्वरूपकी बारह भागकी भरणीसे सर्वकामानका फल मिलता है। २४-२५-२६.

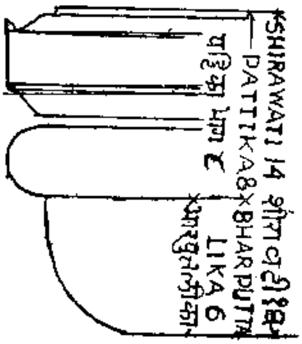

शिरावटी भाग १४

शिरावटि चतुर्दशा भागमुच्छ्रय उच्यते।
भारपुत्तलि षडांशेन तदर्धे पट्टिका स्तथा ॥२७॥

ભરણી ઉપર ચૌદ ભાગની શિરાવટી ઊંચી કહી છે. તેમાં છ ભાગની ભારપુત્તલીકા ઉપર પટ્ટીઓ વગેરે કરવી. ૨૭.

भरणीके उपर चौदह भागकी शिरावटी ऊँची कही है। उसमें छः भागकी भारपुत्तलिका और उपर पट्टियाँ वगैरह करना। २७.

सोमनाथजीका मंडोवरका उद्गम-और भरणी

तदूर्ध्वं तु कपोताली पूर्वमान प्रकल्पिता ।
चतुर्भागान्तरपत्रं च कर्तव्यं सर्व सिद्धिदा ॥२८॥

ભરણી ઉપર મહા કેવાળ આગળ કહેલા કેવાળ બાર ભાગનો તેવા ઘાટનો કરવો અને તે ઉપર ચાર ભાગનું અંતરપત્ર કરવાથી તે સર્વ સિદ્ધિને આપે છે. ૨૯.

भरणी के उपर महाकेवाल, पहले कहा अैसा केवाल के बारह भागके वैसे घाटका करना । और उसके उपर चार भागका अंतरपत्र करने से वह सर्व सिद्ध देता है । २८.

कूटछाद्योत्सेधमान स्यात्षोडश भागतः ।
भागोर्ध स्कंधपट्टिश्च स्कंधश्च त्रयभागिन ॥२९॥
भागैक मुखपट्टिश्च सप्तभागश्च छाद्यकम् ।
मुखपट्टि द्वयो सार्द्ध मणिबंध सार्धांशकम् ॥३०॥
अधः पट्टि त्रयसार्द्ध सहित मणिबंधक ।
कंदैक भाग त्रयस्कंध शेष छाद्यं स्कंधतः ॥३१॥
कूटछाद्य निर्गमोय त्रयोदशभागकम् ।
एवं मंडोवरं कथ्य सर्वार्थसिद्धि कामदं ॥३२॥

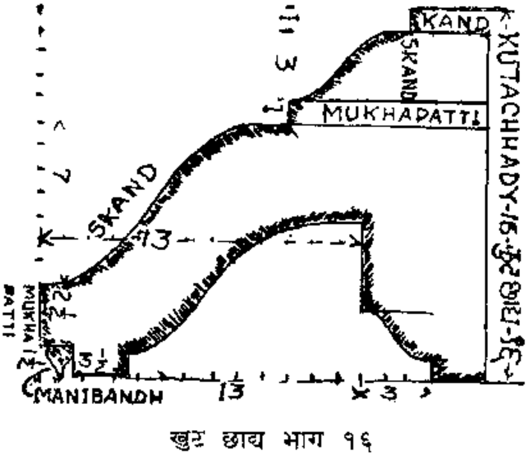

खुर छाद्य भाग १६

ઉપરનું છજું સોળ ભાગ જાડું કરવું. તેમાના ઉપરનો કંદ એક ભાગ ત્રણ ભાગ ગલતી, ગલતીની પટ્ટી એક ભાગની, છજાના ગલતાના સાત ભાગ છજાની મુખ પટ્ટી અઢી ભાગ, અને ચીપલી મણીબંધ દોઢ ભાગનો એમ મળીને સોળ ભાગના ઉદયના વિભાગ કહ્યા. હવે નીકાળામાં નીચેની પટ્ટી ચિપલીને મણીબંધ સાથે સાડા ત્રણ ભાગની રાખવી. અંધારી પરથી ગલતીનો કંદ એક ભાગ ત્રણ ભાગની ગલતી અને બાકીમાં છજાની ખોભણ સાડા પાંચ ભાગ મળી કુલ તેર ભાગના છજાના નીકાળાના જાણવા. તે રીતે હે મુનિ, (બસો છ ભાગનો) મંડોવર જાણવો. ૨૯-૩૦-૩૧-૩૨.

उपरका छज्जा सोलह भागका मोटा करना। ऊसमें ऊपरका कंद एक भाग–तीन भाग गलती, गलतीकी पट्टी एक भागकी–छज्जाके गलतेके सात भाग छज्जाकी मुखपट्टी ढाई भाग, और चीपली मणीबंध डेढ भागका, इस तरह मिलकर सोलह भागके ऊदयके विभाग बताये अब निकालेमें नीचेकी पट्टी चीपलीका मणीबंधके साथ साढ़ेतीन भागकी रखना। अंधारी परसे गलतीका कंद एक भाग–तीन भागकी गलती और बाकीमें छज्जेकी क्षोभन साढे पाँच भाग मिलकर कुल तेरह भागके छज्जेके निकालेके जानना। इस तरह हे मुनि, (दोसौ छः भागका मंडोवर जानना। २९–३०–३१.

इतिश्री विश्वकर्माकृते श्री क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां नागर मेरुमंडोवराधिकारे सताग्रे सप्तमोऽध्याय (क्रमांक अ० ९) ॥१०७॥

ઇતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ શ્રી નારદજીએ પૂછેલા નાગર મેરૂ મંડોવરાધિકાર નો શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો સાતમો અધ્યાય. ॥૧૦૭॥ ક્રમાંક અ૦ ૯.

इतिश्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव–श्री नारदजीके संवादरूप नागरमेरुमंडोवराधिकारका शिल्प विशारद स्थपति प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुराकी रचिता सुप्रभा नामकी भाषा टीकाका एकसो सातवाँ अध्याय। ॥१०७॥ (क्रमांक अ० ९)

कुतूहल

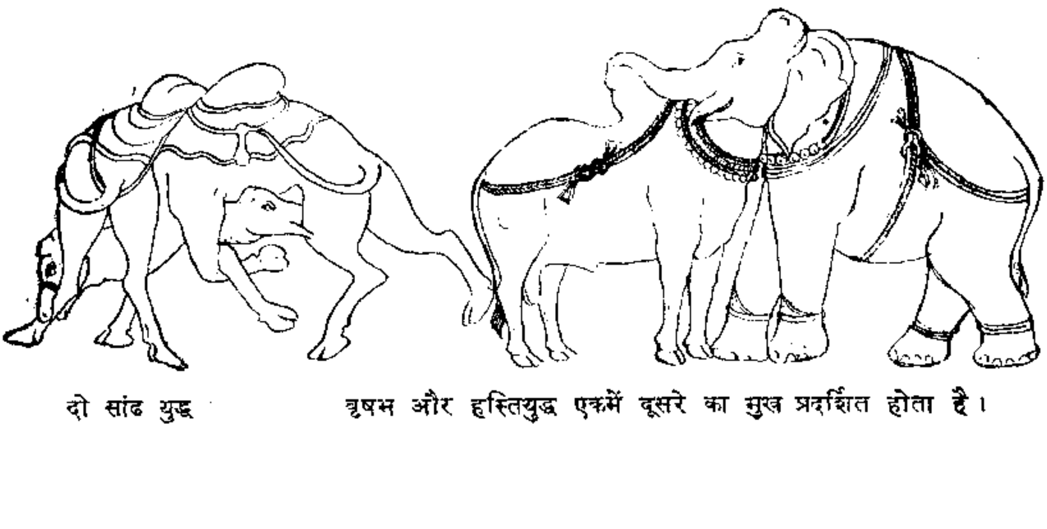

दो सांढ युद्ध — वृषभ और हस्तियुद्ध एकमें दूसरे का मुख प्रदर्शित होता है।

॥ अथ मेरु मंडोवर ॥

क्षीरार्णव अ० ॥ १०८ ॥ (क्रमांक अ० १०)

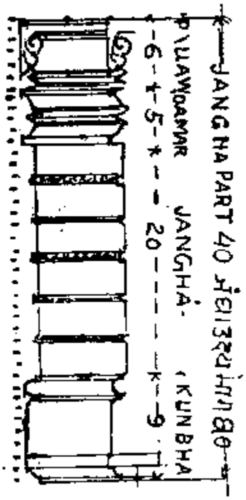

जंघा भाग ४०

५	ખરો
२६	કુંભો
१२	કળશો
४	અંતરાળ
१२	કેવાળ
१२	મચિકા
६०	જંઘા
१७	ઉદ્દગમ
१२	ભરણી
१६०	
१०	માંચી
४०	જંઘા
१५	દોઢીયો
१०	ભરણી ७५
१४	શીરાવટી
१२	કેવાળ
४	અંતરાળ
१६	છાદ્ય ४६
१२१	
२८१	

श्री विश्वकर्मा उवाच—

[1]स्तर जत्रश्रिलूव (?) नागरेमेरुमस्तके ।
[2]मेरो मंडोवरे मंची भरण्योर्ध्वेदश भागतः ॥ १ ॥
चत्वारिंश स्थिता जंघा कुंभिका नवभागतः ।
उपरे पल्लवा कार्या भाग षट् विशेष च ॥ २ ॥
डमरक पंचभागानि मध्ये त्रीणि स्वकर्णिका ।
(अर्धांशे न स्तरो पाणी (?) जंघा कूर्यात्प्रदक्षिणं) ॥ ३ ॥
दिग्पालादि संस्थाप्य शेषे देवे च मनोत्तमं ।
जलान्तर समस्थाने मुनींद्रा यदि संस्थिता ॥ ४ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. (આગળના ૧૦૭ માં અધ્યાયમાં ૨૦૬ ભાગનો જે નાગર મંડોવર કહ્યો તે પર મેરૂ મંડોવરના થર વિભાગ કહું છું.) મેરૂ મંડોવરમાં બાર ભાગની કહેલી ભરણી ઉપર માચીનો થર દસ ભાગનો કરવો. તે પર જંઘા ચાલીશ ભાગની કરવી.

તે જંઘામાં નીચે કુંભિકા નવ ભાગની ઉપર પલ્લવ = પાલ છ ભાગમાં તે નીચે ડમરૂ પાંચ ભાગમાં તેમાં વચ્ચે ત્રણ કણીઓ અને બાંધણા પટ્ટીનો ઘાટ (વળી વીશ ભાગમાં) કરવો. જંઘાની ચાલીશ ભાગની ઉંચાઈના અર્ધ ભાગમાં એટલે વીશ ભાગમાં કણી બંધ અને પટ્ટી આદિ બંધો ફરતા કરવા. જંઘામાં ફરતા દિગ્પાલ આદિ રૂપો સ્થાપન કરવા બાકીના ઉત્તમ દેવોની મૂર્તિઓ કરવી. પાણીતારમાં મુનિ તાપસની ઊભી મૂર્તિઓ કરવી. ૧–૨–૩–૪.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं (आगेके एकसौ सातवें अध्यायमें) २०६ भागका जो नागर मंडोवर कहा है उसके उपर मेरू मंडोवरके थर विभाग कहता हूँ । मेरू मंडोवरमें बारह भागकी

(१) पाठांतर–धरजवाश्रितपूर्वे—(२) अध्याय १०७ का श्लोक १० से २०६ विभागका मंडोवर कहा है उसमें भरणी तकका विभाग १६० कहा है–अब यहांसे मेरू मंडोवरका विभाग कहते हैं—

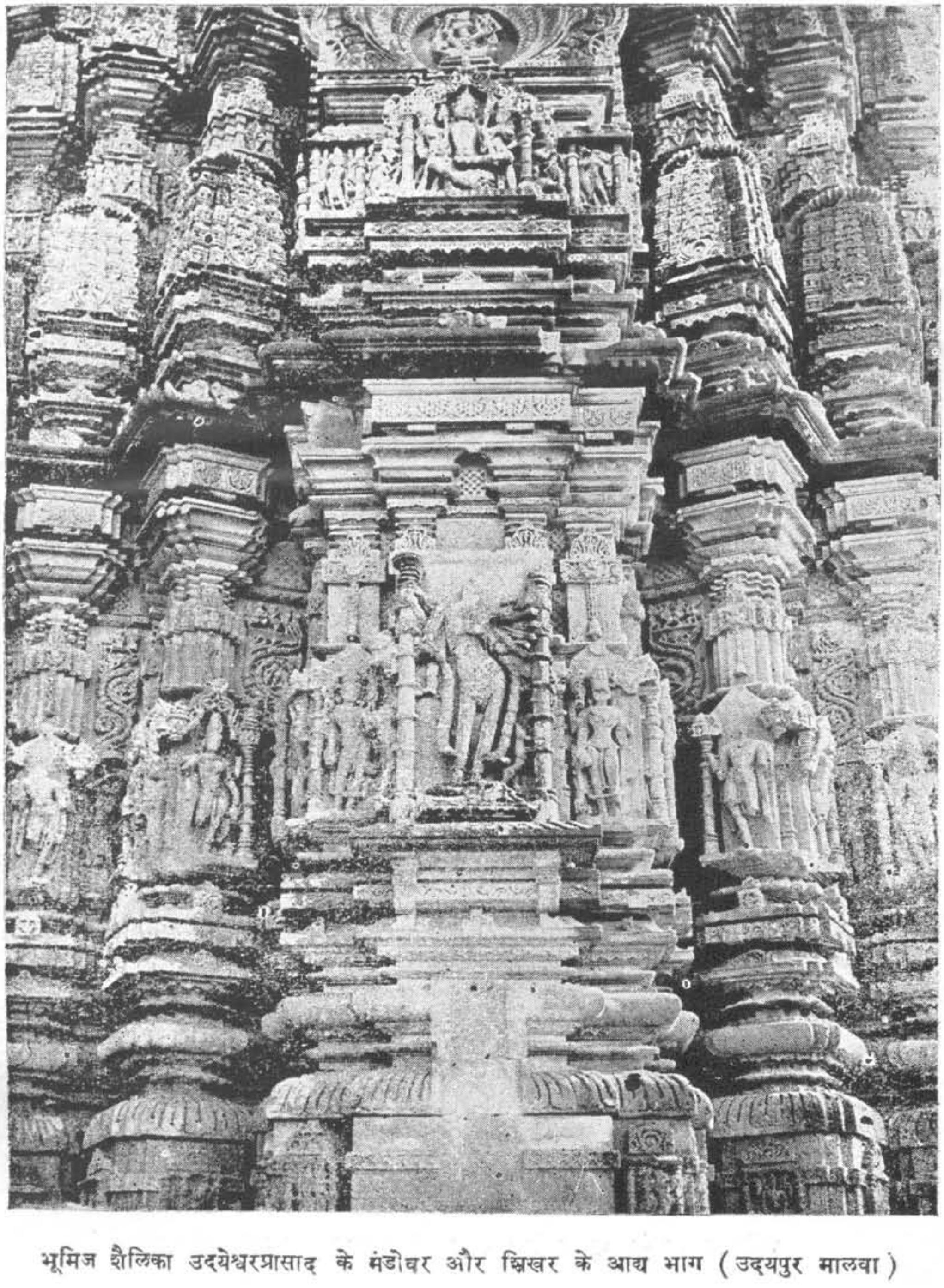

भूमिज शैलिका उदयेश्वरप्रासाद के मंडोवर और शिखर के आद्य भाग (उदयपुर मालवा)

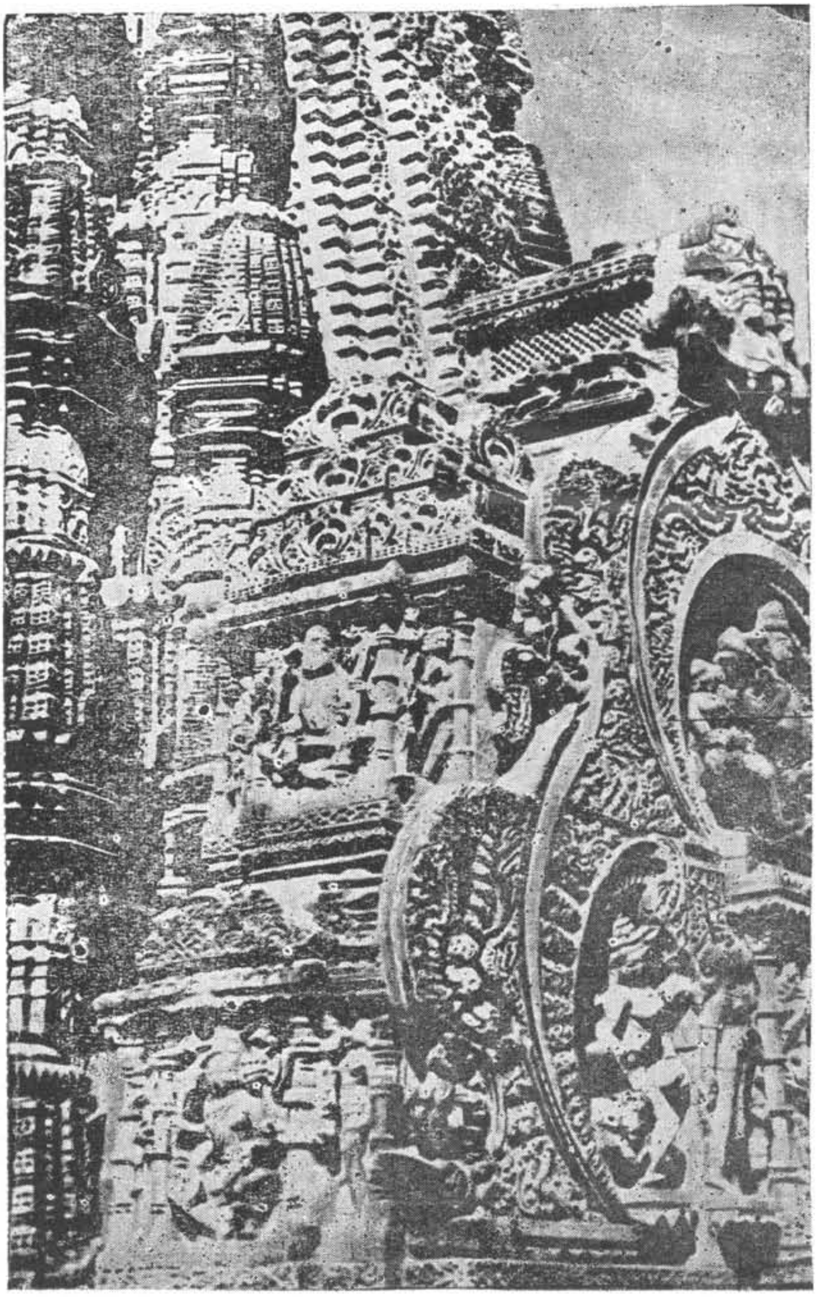

भूमिजप्रासाद के शिखर के शुरसेन (शुकनास) (उदयपुर मालवा)

कही हुअी भरणीके उपर माची का थर दस भागका करना। उसके उपर जंघा को चालीस भागकी करना। उस जंघामें नीचे कुंभीका नौ भागकी उपर पल्लव=पाल छः भागमें उसके नीचे डमरू पाँच भागमें, उसमें बीचमें तीन कणियाँ और बंधन पट्टीका घाट करना। जंघाकी चालीस भागकी ऊँचाईके अर्ध भागमें अर्थात् बीस भागमें कणी बंधको और पट्टी आदि बंधोंको फिरते करना। जंघामें फिरते दिग्पाल आदि देव रूपोंको स्थापित करना। बाकीके उत्तम देवोंकी मूर्तियाँ बनाना। पानीतारमें मुनि तापसकी खड़ी मूर्ति करना। १-२-३-४.

तस्योपरि संस्थाप्यं च पंचदशोद्गमोभवेत्।
दशांशा भरणी शेषं पूर्ववत् कलायेत्सुधी॥ ५॥

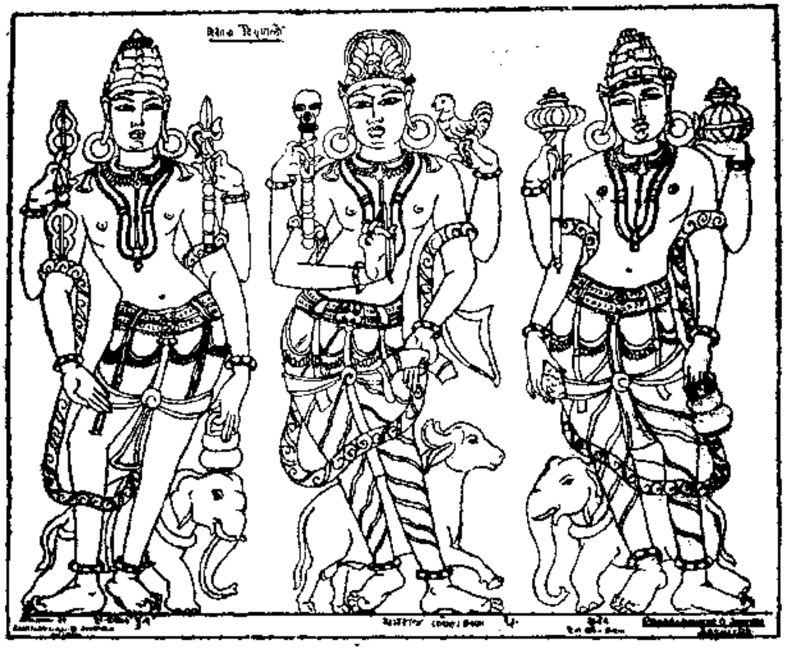

दीग्पाल--पूर्व इंद्र   दक्षिणे यम—धर्मराज   उत्तरे कुबेर—सोम

જંઘા ઉપર દોઢીયો પંદર ભાગનો, તે પર દશ ભાગની ભરણી કરવી. બાકીના ભાગો આગળ (અધ્યાય ૧૦૭માં) કહ્યા તે પ્રમાણે એટલે ૧૪ ભાગ શિરાવટી મહાકેવાળ બાર ભાગ, અંધારી ચાર ભાગ અને છજું સોળ ભાગનું કરવું તે પ્રમાણે થરવાળા કરવા. ૫.

जंघाके उपर दोढिया पन्द्रह भागका, उसके पर दस भागकी भरणी करना। बाकीके भाग आगे (अध्याय १०७ में) कहा है इस तरह अर्थात् चौदह भाग शिरावटी, महाकेवाल, बारह भाग, अंधारी चार भाग और छज्जा सोलह भागका करना। उसके अनुसार थरवाले करना। ५.

पश्चिमे वरुणदेव दीग्पाल

पातालका दीग्पाल

आकाशका ब्रह्म दीग्पाल

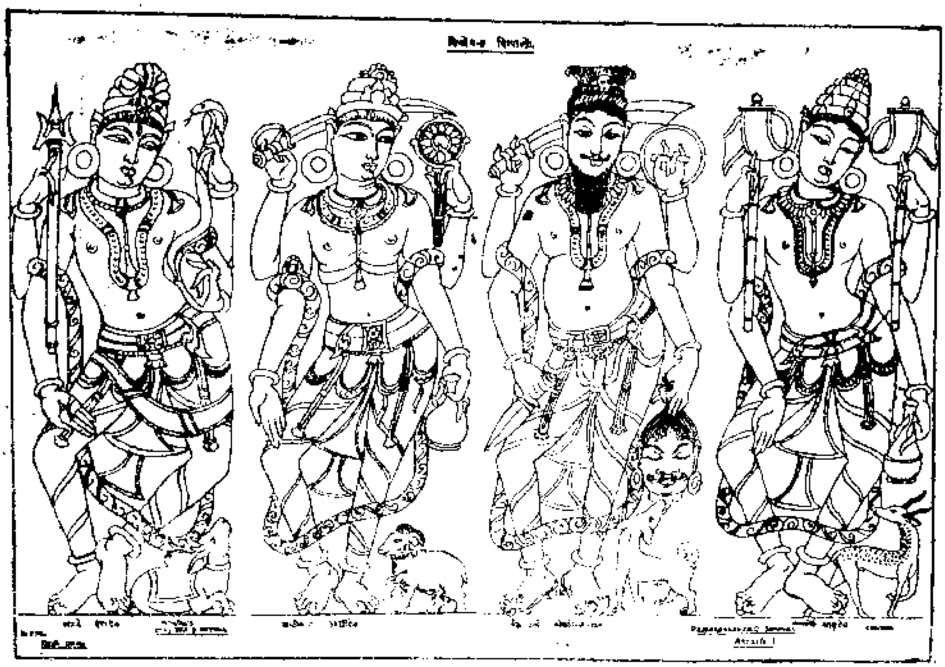

इशानकोणके ईश

अग्निकोणे–अग्नि

नैऋत्ये निरती

वायव्ये वायुदेवता

खुट छाद्योमितं स्तेषां प्रहारंच तदूर्ध्वतः। भागमेकोनविंशत्यां तद्विचारमतः शृणु ॥६॥
अधश्चेद्ंतरंकार्यं भागार्धेन समन्वितं। पट्टिका सार्द्ध भागं च कर्णिकापदमेव च ॥७॥

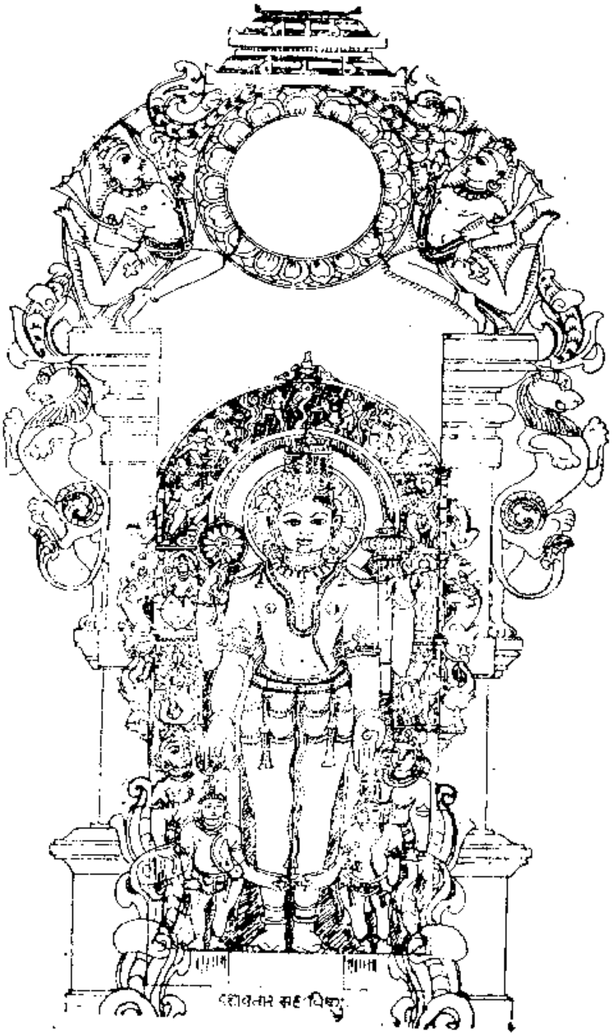

दशावतार साथ विष्णु
उपर गंधर्व–बाजुमे विरालिका

उपरि भाग चत्वारि छाद्यकि सर्वकामदः।
कर्ण भाग द्वयं कार्यं शेषकंद च कंदयो ॥८॥
(कर्णउता यदा कार्या भागप्रति श्च कर्णयो ?)।
घंटश नवमे प्रोक्त पल्लवेन समाकूले ॥९॥

दलस्यष्टमांशेन गर्भेकूर्यात भद्रकं ।
तत यदा व्यक्ते वा मंचिका सर्वकामदं ॥१०॥

મેરૂ મંડોવરના છજા ઉપર (જો શિખર કરવાનું હોય તો) પ્રહાર (પહારૂ થર) નો થર ઓગણીશ ભાગ ઉદયનો ચડાવવો. તેના વિભાગ હવે સાંભળો. નીચે અરધા ભાગની અંધારી પટ્ટીકા દોઢ ભાગની કર્ણીકા એક ભાગની તે પર સર્વ કામનાને દેનારી ચાર ભાગની છાજલી કરવી. કર્ણી બે ભાગની એક ભાગનો કંદ, કર્ણીને નાની પ્રતિકર્ણ કરવી તે પર નવ ભાગનો કુંભક પલ્લવ સાથે કરવો. (૨) ઉપાંગના દલ વિભાગના આઠમા ભાગે મધ્ય ગર્ભે ભદ્ર કરવું. જો આ પ્રહારૂ પર શિખર ન કરવું હોય અને ઉપર ભૂમિ મજલો કરવો હોય તો આ પ્રહારૂનો થર તજી દેવો અને છજા થર સર્વ કામનાને દેનારી એવી (દશ ભાગની) મંચિકાનો થર કરવો. ૬–૯

પ્રહાર	વિભાગ
०॥	અંધારી
૧॥	પટ્ટીકા
૧	કર્ણી
૪	છાદ્યકી
૨	કર્ણીકા
૧	કંદ
૯	ઘટ–કુંભો
૧૯	

मेरू मंडोवरके छज्जेके उपर (जो शिखर करना हो तो) प्रहार (पहारूथर) का थर उन्नीस भाग उदयका चढ़ाना । उसके विभाग अब सुनो । नीचे आधे भागकी अंधारी पट्टीका डेढ़ भागकी, कर्णीका एक भागकी उसके उपर सर्व कामनाको देनेवाली चार भागकी छाजली करना । कर्ण दो भागका, एक भागका कंद-कर्ण और छोटा प्रतिकर्ण करना । उसके पर नौ भागका कुंभक पल्लवके साथ करना । उपांगके दल विभागके आठवें भागमें मध्य गर्भमें भद्र करना । जो इस प्रहारुके पर शिखर न करना हो और उपर भूमि मजला करना हो तो इस प्रहारुका थर छोड़ देना और छज्जेके उपर सर्वकामनाको देनेवाली ऐसी (दस भागकी) मंचिकाका थर करना ।[२] ६–७–८–९–१०.

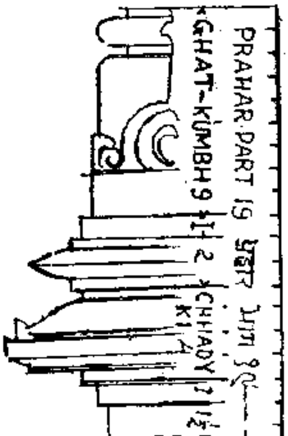

प्रहारु भाग १९

पूर्वोक्त विभागं च कर्तव्यं सर्वकामदाः ।
द्वठ त्रिशोक्त ता जंघा पूर्वोक्तंदशद्वयोङ्गम् ॥११॥
भरणी यविस्पूर्वेण कपोताली भवेत्ततः ।
पूर्वोक्तं च यथा छाद्यं भागं एवं च कार्यता ॥१२॥

२. વૃક્ષાર્ણવમાં પ્રહારના પૃથક્ પૃથક્ ઘાટના છ પ્રકાર સુંદર કહ્યા છે.

२. वृक्षार्णवमें प्रहारके पृथक पृथक घाटके छः प्रकार सुंदर कहे हैं ।

१० माची	
૩૨ જંઘા	
૧૨ ઉદ્ગમ	
૧૦ ભરણી	
૧૨ કેવાલ	
૪ અંતરાળ	
૧૬ છજ્જુ	
૯૬	

એ રીતે સર્વ કામનાને દેનારા આગળ કહેલા થર વિભાગ કરવા. બત્રીશ ભાગની (ત્રીજી) જંઘા બાર ભાગનો હોઢીયો, આગળ કહી તેટલા દશ ભાગની ભરણી, કેવાળ બાર ભાગનો અંતરાળ ચાર ભાગનો અને છજું સોળ ભાગનું કરવું. એ પ્રમાણે ત્રણ ભૂમિનો ત્રણ જંઘાયુક્ત મંડોવર ત્રીશ હાથના સાંધાર પ્રાસાદને કરવો. (પહેલી ભૂમિ ૧૬૦ ભાગ + બીજી ભૂમિ ૧૨૧ + ત્રીજી ભૂમિ ૯૬ = કુલ ૩૭૭ ભાગ). ૧૧-૧૨.

इस तरह सर्व कामनाओंके देनेवाले आगे कहे हुए थर विभाग करना। बत्तीस भागकी (तीसरी) जंघा बारह भागका डेढ़िया, आगे कही है उतने दस भागकी भरणी, केवाल बारह भागका अंतराल चार भागका और छज्जा सोलह भागका करना। इस तरह तीन भूमिका तीन जंघासे युक्त मंडोवर तीस हाथके सांधार प्रासादको करना। (पहली भूमि १६० भाग+दूसरी भूमि १२१+ तीसरी भूमि ९६ = कुल ३७७ भाग)–११–१२

सद्यते तृतीया भूमि त्रिंश हस्तं च यदा भवेत्।
पंच त्रिंशत्भवेद्हस्तं प्रासादं यदि कारयेत्॥१३॥
भूमि चत्वारि दातव्या शृणुत्वेकाग्रतो मुनेः।
कपोताली तथा छाद्यं पुनस्त्यक्ता प्रयत्नतः॥१४॥
मंचिका तत्र दातव्यं भरणीर्यावत्मस्तके।
भागहीना भवेद्जंघा भागहीना च उद्गमम्॥१५॥
स्तरशेषं भवेत्पूर्व प्रहारांत यदा भवेत्।
अष्टत्रिंशत्करे यावत्प्रासादं कारयेद्बुधः॥१६॥
सर्वलक्षण संयुक्तं पंचभूमीः प्रदीयते।
छायार्द्धं भवेत्मंची जंघा व्योम युगे भवेत्॥१७॥

હે મુની, હવે પાંત્રીશ હાથનો સાંધાર પ્રાસાદ જો હોય તો તેની ચાર ભૂમિ મજલા કરવા. તે તમો એકાગ્રતાથી સાંભળો. (પ્રત્યેક મજલાના અંતે) ઉપરની ભૂમિ ચડાવવાની હોય તો ત્યારે તે કેવાળ છાદ્યના થરો ફરી ફરી થરો પ્રયત્નથી તજી દઈને ભરણીની ઉપર માચી વગેરે (જંઘા ઉદ્ગમ ભરણી) ચડાવવા. ઉત્તરોત્તર જંઘા અને દોઢીયાના થર વિભાગ જેમ ઉપર જાય તેમ ઓછા ઓછા ભાગના કરતા જવું. ઉપરના મજલાના શેષ થર છજ્જાપર ઉપર

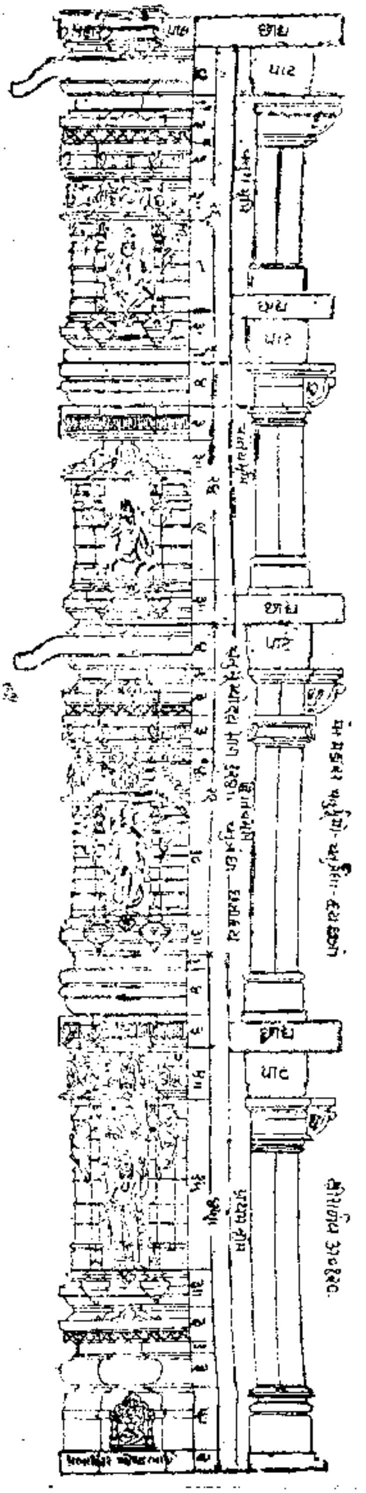

પ્રહાર (પહાડનો થર) ચડાવવો. ત્યાંથી શિખરનો પ્રારંભ કરવો. બુદ્ધિમાન શિલ્પીઓ આડત્રીશ હાથના પ્રાસાદને સર્વલક્ષણ સંયુક્ત એવી પાંચ ભૂમિકા કરવી. છજ્જા ઉપર ભૂમિ એમ ૪૦ હાથના પ્રાસાદને ચડાવતા જવું એ રીતે ચડાવતાં પહેલાં માચીનો થર ચડાવી તે પર જંઘા એમ બાર જંઘા સુધી ચડાવતાં જવું. ૧૩ થી ૧૭.

हे मुनी, अब पैंतीस हाथका सांधार प्रासाद हो तो उसे चार भूमि मजले करना, यह बात एकाग्रतासे सुनो। (प्रत्येक मजलेके अंतमें) केवाल और छाद्य चढ़ाये हो और जो उपरकी भूमि चढ़ानी हो तब उस केवाल और छाद्यके थरोंको बार बार छोड़कर भरणीके उपर माची वगैरह (जंघा उद्गम भरणी) चढाना। उत्तरोत्तर जंघा और डेढियेके थर विभाग ज्यों ज्यों उपर जाय त्यों त्यों कम भागके करते जाना। उपरके मजलेके शेष थर छज्जा पर प्रहार (पहारुका थर) का थर जढाना। (वहाँसे शिखरका प्रारंभ करना।) 'बुद्धिमान शिल्पीको अडतीस हाथके प्रासादको सर्व लक्षण संयुक्त ऐसी पाँच भूमिकाएं बनाना। छज्जेके उपर भूमिको चढानेसे पहले माचीका थर चढाकर उसके पर जंघा इस तरह बारह जंघा तक चढाते जाना। चालीस हाथ उदयका प्रासादका...... १४–१५–१६–१७.

...रंध्रते भूमिका क्रमात् ॥१८॥
कुंभिकादि प्रहारांतं विभागं तत्र निश्चलं।[२]
यदि जंघा भवेत्श्चैकं द्विदशयावत् तथा ॥१९॥

← महामंडोवर त्रय जंघा त्रयभूमिद्वय छज्जा समस्तभाग ३७७

२ सतमद्योतरं तथा १९॥ पाठान्तर

द्वयोर्जंघा विजानीयात्छाद्या...विराजिते ।
तत्रादेय विभागं च :चतुर्विंशति तत्र च ॥२०॥

सोमनाथजीका पुराणा मंडोवर

ચાલીશ હાથના ઉદયના પ્રાસાદને જંઘા.. .. ..ઉપરની ભૂમિકાઓ અનુક્રમે (૧/૧૨ હીન હીન) કરતાં જવું. કુંભાથી છજા પરના પ્રહાર સુધીના વિભાગો ચોક્કસપણે કરવા. એક જંઘાથી બાર જંઘા સુધી સાંધાર પ્રાસાદને ચડાવવી. એક છજા નીચે બે જંઘા ચડાવવી તે રીતે પ્રાસાદ વિભાગ ચોવીસ હાથ ભૂમિ સુધી જાણવો. સર્વ ભૂમિ મજલા ખૂબ ઘાટ નકશીરૂપથી અલંકૃત કરવાથી તે સર્વ કામનાને ફળ આપનાર જાણવું. ૧૮–૧૯–૨૦.

उपरकी भूमिकाएं अनुक्रमसे (१/१२ हीन हीन) करते जाना । कुंभासे छज्जेके उपरके प्रहारतकके विभागोंको निश्चित रूपसे करना । एक जंघासे बारह जंघा तक सांधार प्रासादको चढाना । एक छज्जाके नीचे दो जंघा चढाना । इस तरह प्रासाद उदय विभाग चौबीस हाथ (भूमि तक जानना) सर्व भूमि

मजले बहुत घाट मकरी और रूपसे अलंकृत करनेसे उसको सर्व कामनाओंका फलदाता समझना। १९-२०-२१.

सर्वलंकार संयुतं सर्वकामफलप्रदः।
त्रयोजंघा भवेय्यत्र द्वयो छाद्यं विराजिते ॥२२॥
तत्रोदय विभागं च चतुर्विंशति तत्र यः।
(उदयं) चतुःजंघा द्वयो छाद्यं तत्र भेद अतः शृणु ॥२३॥
प्रथमा पुत्रतीय जंघा द्वितीयं अवनी भवेत्।
उनती आसनी चैव पूर्वहीनांच भागत् ॥२४॥
(आदि मध्या वसानेन शनीज्ञान महेत्वे।)
... ...
अनुक्रमेण समायुक्ता द्वादश जंघाउत्तमा ॥२५॥
तेन (भद्रस्य (?) भूम्यं वा द्वादशंच मुनीश्वर!
जंघायां द्वादशप्रोक्त छाद्यं चाष्टमेव च।
तत्रैवमभिधासूत्र वहकर्म समाकूलं ॥२६॥

ત્રણ જાંગી અને બે છજાં તેમ તેના ભૂમિ ઉદય વિભાગ ચોવીશ હાથ સુધી જાણવા. ચાર જંઘા અને બે છજા તેનો ભેદ હવે સાંભળો. પહેલી જંઘાને પુત્રતીય. બીજીને અવની, અને ત્રીજી જંઘાને ઉનતી, ચોથી આસની, પાંચમી પૂર્વહીના, છઠ્ઠી આદિ, સાતમી મધ્યાહ્ન, આઠમી વસાન, નવમી શનિ અને દશમી જંઘાને જ્ઞાનમ્ અગિયારમી...... બારમી...... એમ અનુક્રમે ઉત્તમ બાર જંઘાના નામ તે રીતે હે મુનીવર બાર ભૂમિ પર જંઘાના નામ કહ્યાં-બાર બાર જંઘાને આઠ છજાં થાય તે રીતે જંઘાના નામાભિધાન તે સર્વ કર્મના અનુકૂળ સૂત્રથી જાણવા. ૨૨-૨૩-૨૪-૨૫-૨૬.

तीन जंघा और दो छज्जे इस तरह उनके भूमि उदय विभाग चौबीस (हाथ!) तक जानना। चार जंघायें और दो छज्जेका भेद अब सुनो। पहली जंघाको पुत्रतीय, दूसरीको अवनी, और तीसरी जंघाको इनती, चौथीको आसनी, पाँचवींको पूर्वहीना। छठ्ठीको आदि सातवींको मध्याह्न, आठवींको बसान, नौवींको शनि और दसवीं जंघाको ज्ञानम् इसी तरह अनुक्रमसे उत्तम बारह भूमिके जंघाके नाम हे मुनि, कहे। बारह जंघाको आठ छज्जे होवे इसी तरह जंघाका नामाभिधान सर्वकर्मके अनुकुल सूत्रसे जानना। २२-२३-२४-२५-२६.

प्रासादोदय भवे यत्र इदंमानं तु कथ्यते।
सप्रमे महारिषि उदयं च अतः शृणु ॥२७॥

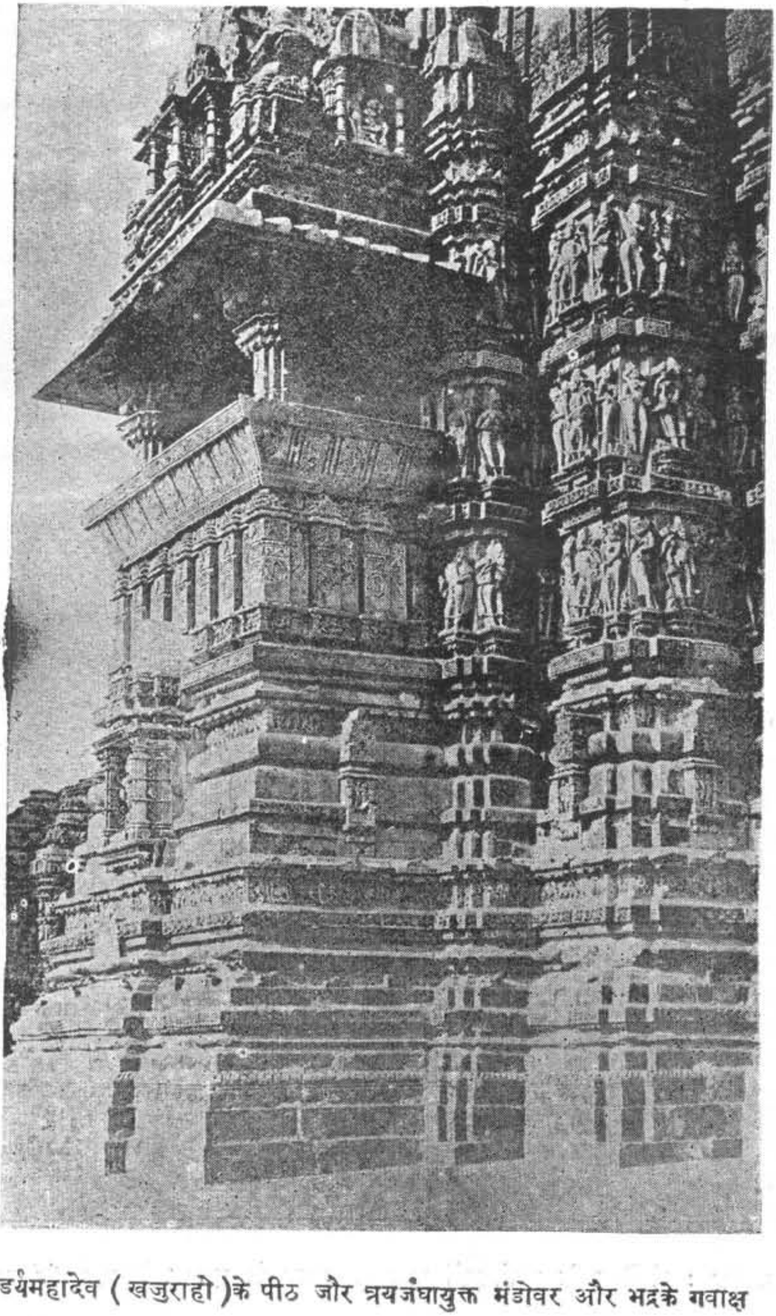

कंडर्यमहादेव (खजुराहो)के पीठ और त्रयजंघायुक्त मंडोवर और भद्रके गवाक्ष

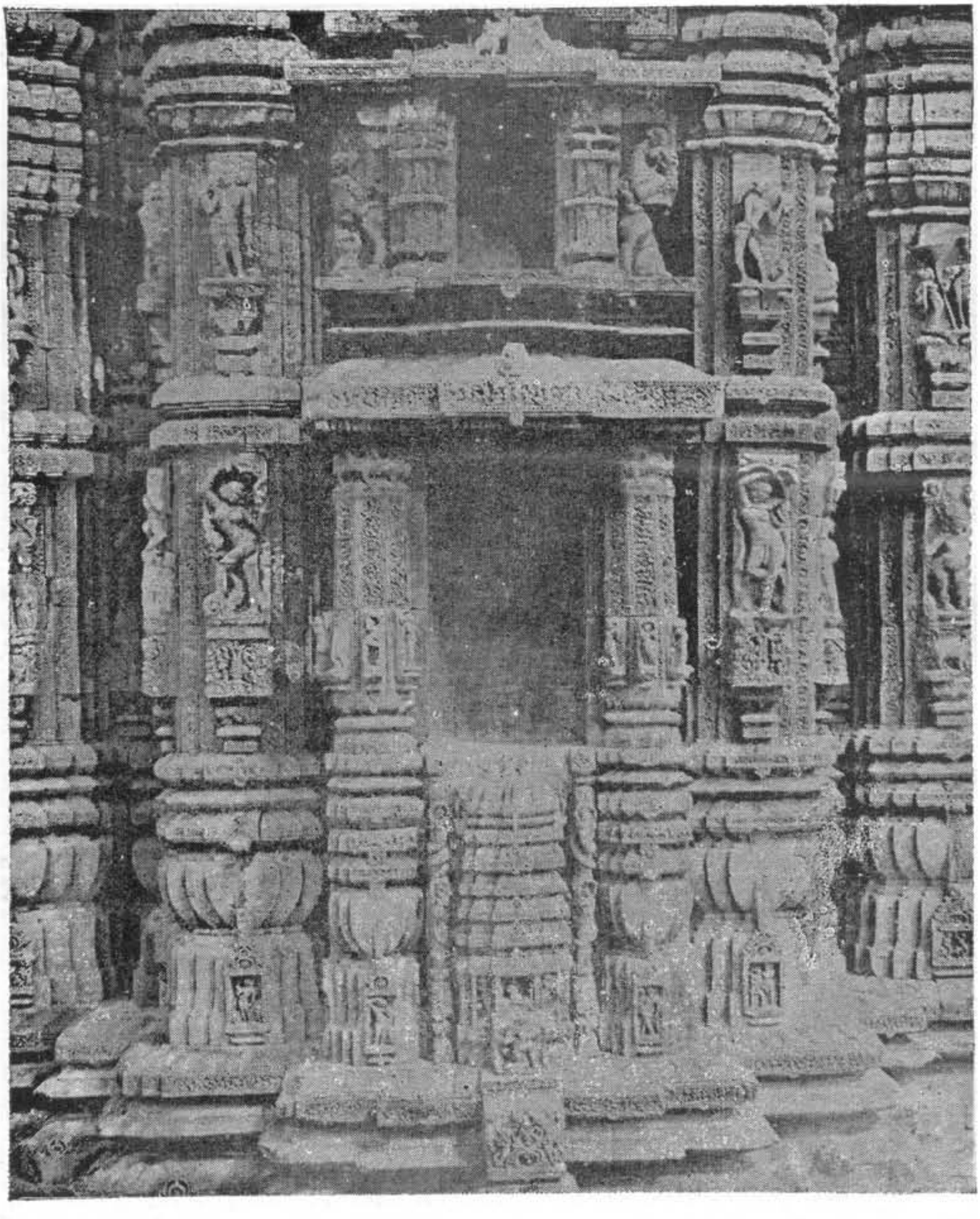

कलिङ्ग : ओरिसा के भुवनेश्वरमें राजरार्ण प्रासाद के पृष्ठभद्र के द्रश्य मंडोवर

कैलास महामेरु प्रासाद—सोमनाथ

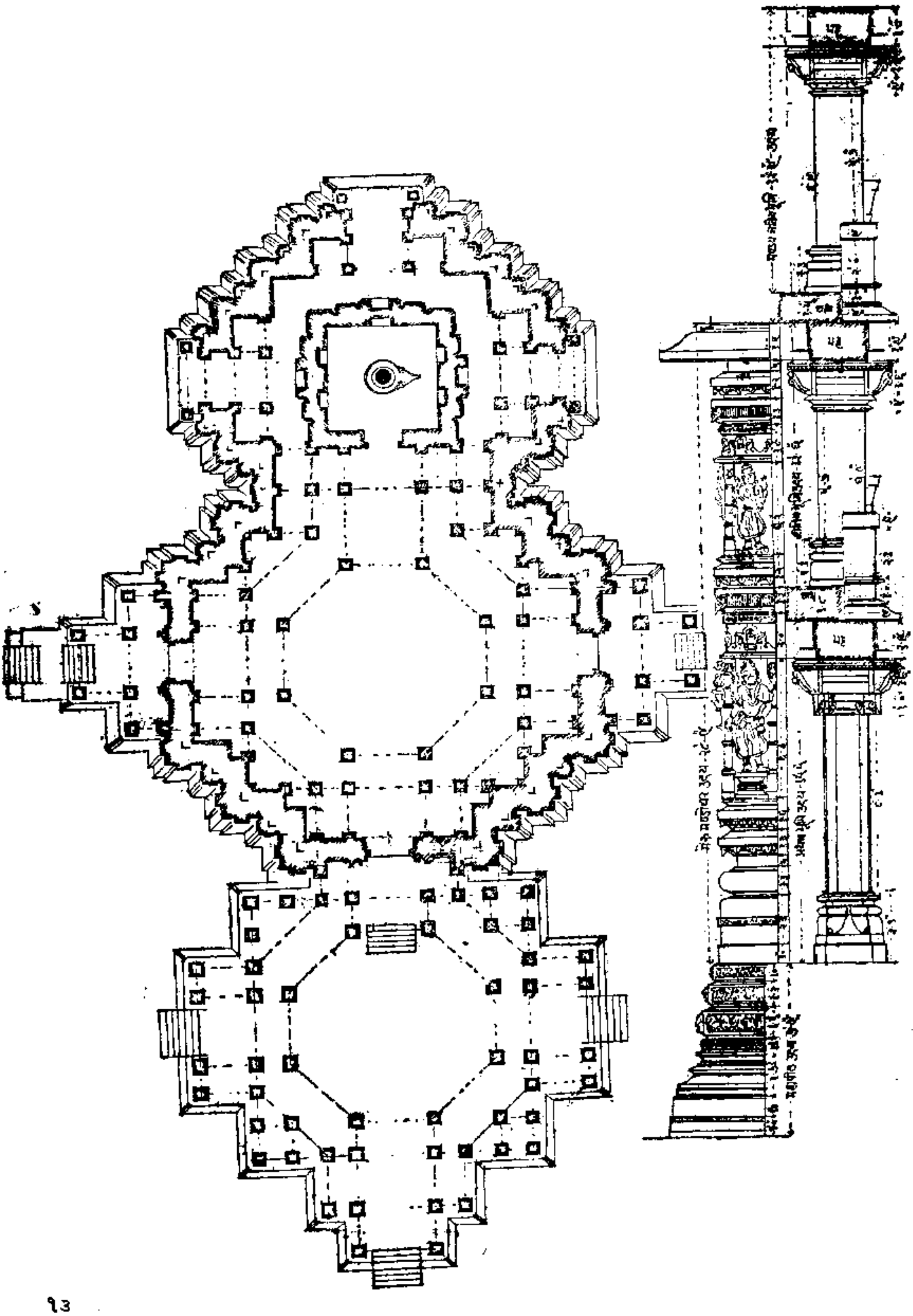

श्री द्वारिकाधिश जगत्मंदिर—द्वारका

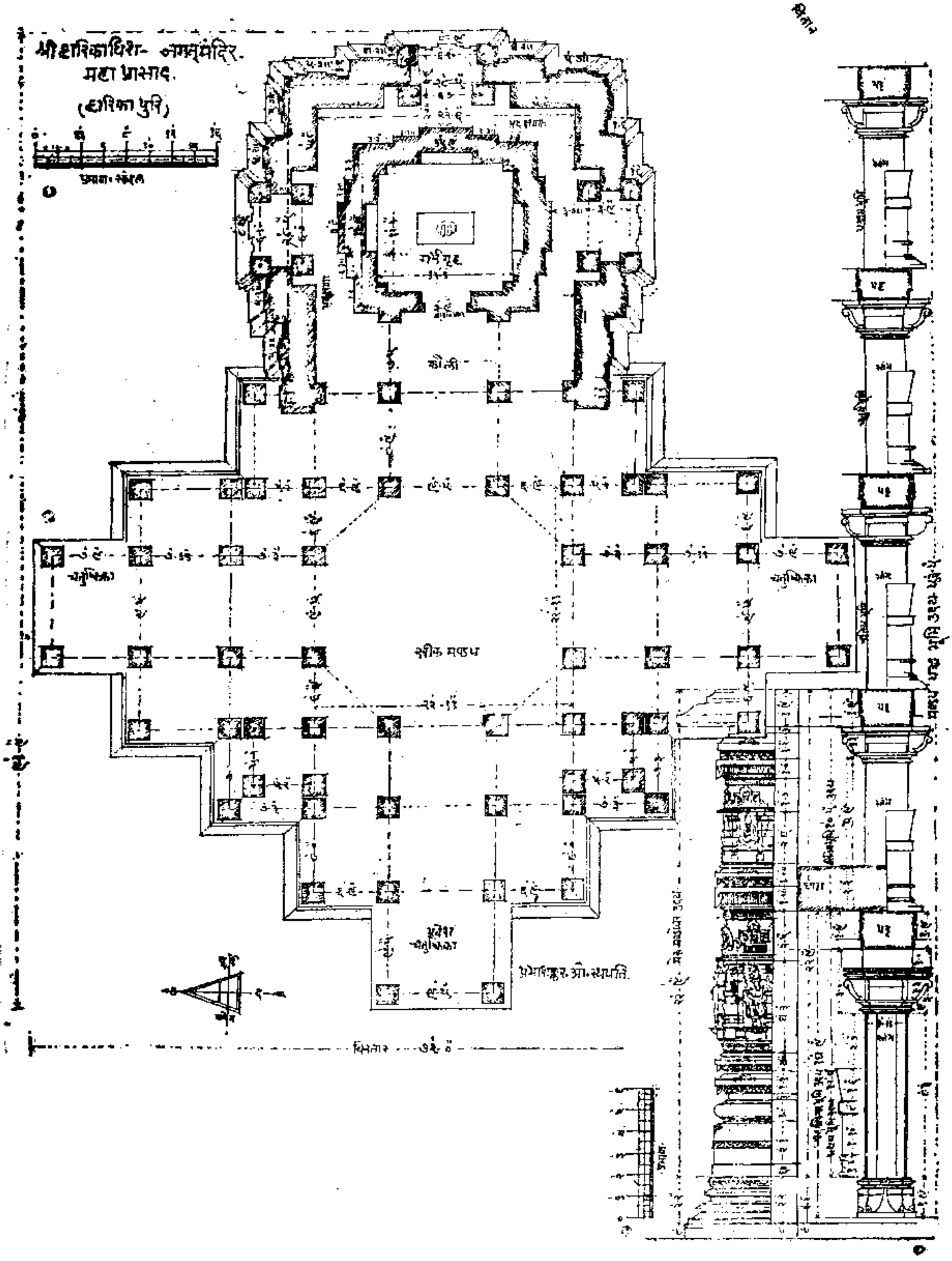

कुंभि उदंबरांते च स्तंभं शिरं च जंघयोः ।
पट्टंच उद्गमांतेन शेषं भूमि विराजिते ॥२८॥
प्रथमं खुटछाद्यं च उद्गमं छाद्यकी समम् ।
द्वितिया तृतीया भूमिपट्टवें छाद्यकी समौ[घ] ॥२९॥

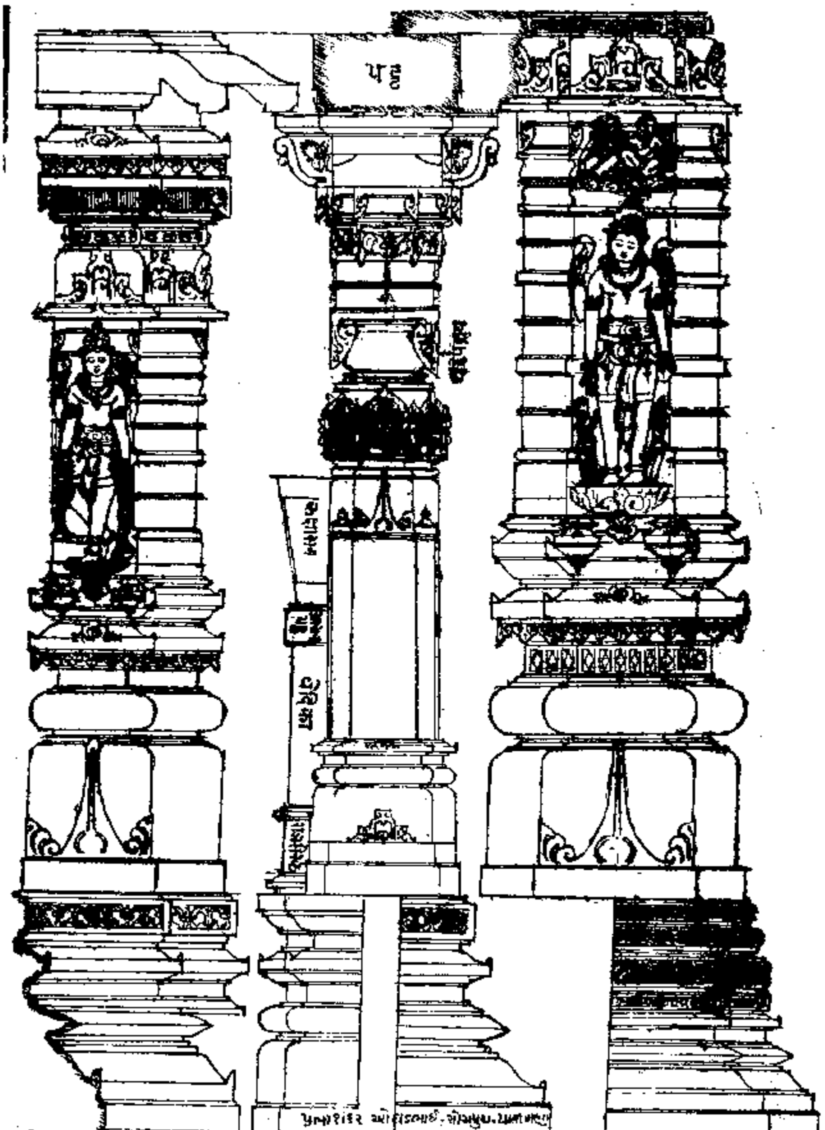

નિરંધાર પ્રાસાદના મંડોવર સાથે સ્તંભના છોડનો સમન્વય   સ્તંભના છોડ સાથે સાંધાર પ્રાસાદના મંડોવરની પરવાળ સાથે સમન્વય.

सांधार–निरंधार प्रासादका मंडोवरके साथ स्तम्भका छोडका समन्वय
नीचे–कामदपीठ–और महापीठ–खुल्ला मंडपका पीठ प्रकार

પાઠાન્તર—(ધ) પટવેપટ છાદ્યકે.   पाठांतर–(घ) पटवेपट छाद्यके (५) उन (६) मच्चोर्क.

छाद्यांत तेमादि पट्टउद्गमोदर समा ।
निर्दोषं तद्भवे वास्तु पाद पट्टंश छाद्यकेः ॥३०॥

સાંધાર પ્રાસાદના ઉદયના મેરૂ મંડોવરના થર માન અને ભૂમિ વિશે કહ્યું. સભ્રમપ્રાસાદના મંડોવરના થર સાથે અંદરના સ્તંભના છોડના ઉદય મેળ (સમન્વય) હે મહાઋષિ! હવે સાંભળો. સાંધાર પ્રાસાદની કુંભી અને ઉંબરો સમસૂત્રે અને સ્તંભ અને સરાંનો જંઘામાં સમાસ કરવો. પાટડો ઉદ્ગમ દોઢીયામાં સમાવવો. બાકી ઉપરની ભૂમિ જાણવી. પહેલા ખૂટછાદ્યને પાટ દોઢીયાની છાજલીના સમસૂત્રે રાખવા. બીજી અને ત્રીજી ભૂમિમાં પણ પાટ દોઢીયાની–છાજલીના સમસૂત્રે રાખવા. મથાળાના ઉપરના છજા બરાબર પાટ એક સૂત્રમાં રાખવો. પરંતુ વચલી ભૂમિમાં પાટડો દોઢીયાના ઉદરમાં સમાવવો. બાકી પાટ અને છજુ એક સૂત્રમાં કરવાં. તેવું વાસ્તુ નિર્દોષ જાણવું. ૨૭–૨૮–૨૯–૩૦.

सांधारप्रासादके उदयके मेरूमंडोवरके थर मान और भूमिके बारेमें कहा। सभ्रम प्रासादके मंडोवरके थरके साथ हे महाऋषि, अंदरके स्तंभके छोडके उदय समन्वयके बारेमें अब सुनो। सांधार प्रासादकी कुंभी और उंबरा समसूत्रमें और स्तंभ और सरेका जंघामें समास करना। पाट उद्गम–डेढ़ियेमें मिलाना। बाकी उपरकी भूमि जानना। पहले खूटछाद्यको पाट डेढ़ियेकी छाजलीके समसूत्रमें रखना। दूसरी और तीसरी भूमिमें भी पाट छाजलीके समसूत्रमें रखना। सिरके उपरके छज्जे बराबर पाट एक सूत्रमें रखना, परंतु विचकी भूमिमें पाट डेढ़ियेके उदरमें मिलाना। बाकी पाट और छज्जा एक सूत्रमें करना ऐसा वास्तु निर्दोष जानना। २७–२८–२९–३०.

[५]पुनः छाद्यं तथा छंदै पुनः पट्टं च तत्समं ।
[६]यथोक्तं च विद्या छाद्यै पुनः कुर्यात्पटमुत्तमं ॥३१॥

ભાવાર્થ—સાંધાર પ્રાસાદને પહેલી ભૂમિ છજા વગર છંદ પ્રમાણે અંદર છાદ્ય ઢાંકવું. ફરી જ્યારે ઉપર છજું પાટ આવે ત્યારે તે પ્રમાણે ઢાંકવું. એ રીતે છજા વગર અંદર છાદ્ય ઢાંકવું. ફરી વળી પટ પર છાદ્ય–ઢાંકણુ છાતીયા નાંખી ઢાંકવું. તે ઉત્તમ જાણવું–૩૧.

सांधार प्रासादको पहलीभूमि बिना छज्जा छंदके अनुसार छाद्य ढाँकना। फिर जब छज्जापाट आवे तब उसके अनुसार ढंकना। उस तरह छज्जे बिना छाद्य ढंकना। फिर पाटके उपर छाद्य ढँकना–यह उत्तम जानना। ३१.

इतिश्री विश्वकर्माकृते क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां मेरुमण्डोवराधिकारे शताग्रे अष्टमोऽध्याय ॥१०८॥ (क्रमांक अ० १०)

ઇતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદ મુનીશ્વરના સંવાદરૂપ મેરૂ મંડોવરાધિકારનો શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી. પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈએ રચેલ ગુર્જર ભાષાની સુપ્રભા નામની ટીકાનો એકસો આઠમો અધ્યાય–૧૦૮.

इतिश्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव–नारदमुनीश्वरके संवादरूप मेरूमंडोवराधिकारका शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाईकी रची हुई सुप्रभा नामकी भाषा टीकाका एकसो आठवाँ अध्याय। ॥१०८॥ (क्रमांक अ० १०)

॥ अथ गर्भगृहोदय – द्वारशाखा विभाग ॥

क्षीरार्णव अ० १०९—(क्रमांक अ० ११)

श्री विश्वकर्मा उवाच —

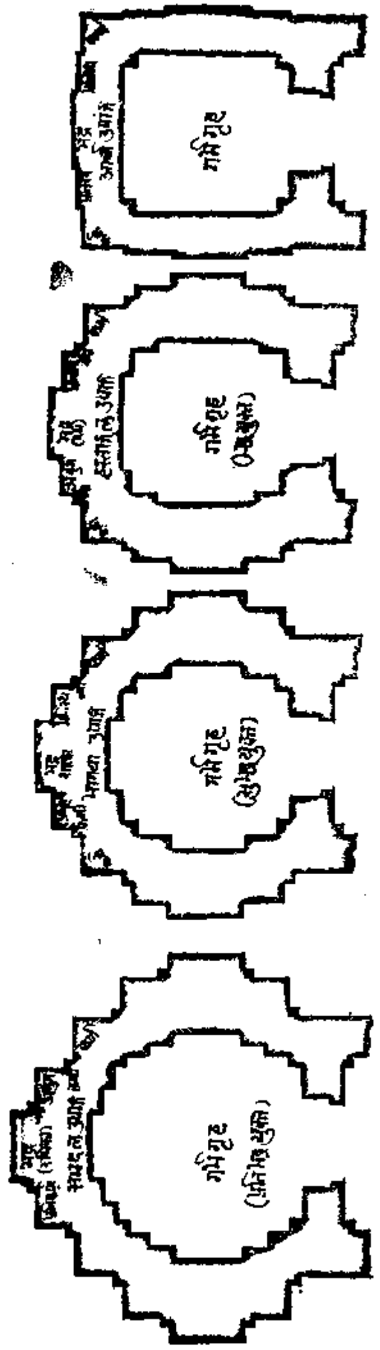

गर्भगृह समचोरस वृत अष्टाश्रादि पांच प्रकार कहा है तथा सवाया-डेढा भी कहा है ऐसे अन्य ग्रंथोंमें उनका अंदरका चार और बाह्य चार स्वरूप भी कहा है = अंदरका १ चोरस २ भद्रयुक्त ३ सुभद्र ४ प्रतिभद्रयुक्त—ऐसा चार प्रकार—बाह्य अंग निर्गमिका चार प्रकार कहा है १ आर्ची २ हस्तांगुल ३ भागवा ४ समदल उसका विवरण दीपार्णवग्रंथका पृष्ठ ५५—५६ पर दिया गया है।

तस्याग्रे प्रवक्ष्यामि प्रमाणं गर्भगृहोत्तम ।
चतुरस्रमथायतं वृतंवृत्ता याष्टकम् ॥१॥
गर्भव्यास षडांशस्य सपादो सार्द्धमेव च ।
पादार्धं तु यदा चैत्र जेष्ट मध्यकन्यस ॥२॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે– હવે આગળ હું ઉત્તમ એવા ગર્ભગૃહના પ્રમાણો કહું છું– ગર્ભગૃહ ૧ ચોરસ ૨ લંબ ચોરસ ૩ ગોળ ૪ લંબગોળ અને ૫ અષ્ટાશ્ર એમ પાંચ પ્રકારે થાય તે ઉપરાંત તેની પહોળાઈમાં (૧) છઠ્ઠો ભાગ ઉમેરીને (૨) સવાયો તથા (૩) દોઢો વધારી લાંબો કરવાથી જ્યેષ્ઠ મધ્યમ અને કનિષ્ઠ માન ગભારાનું જાણવું. ૧–૨.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं– 'अब आगे मैं उत्तम ऐसे गर्भगृहके' प्रमाण कहता हूँ। गर्भगृह चोरस, लम्बचोरस, गोल, लम्बगोल, और अष्टाश्र इस तरह पाँच प्रकारसे होता है, इसके अतिरिक्त उसकी चौडाईमें (१) छट्ठा भाग मिलाकर या (२) सवाया (३) डेढा ऐसे

पद भागको बढाके लम्बा करके ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ मान गर्भगृहका जानना । १—२.

स्ततो उदय अष्ट विभक्तं च भागमेकेन कुंभिका ।
स्तंभ च पंच सार्धेन भागार्द्ध भरणं भवेत् ॥३॥
शिरंच भागमेकेन अयं भाग प्रासादयं ।
भागयर्द्धप्रयत्नेन कर्तव्यं च तथोपरि ॥४॥
पट्टसार्द्धोदयं स्वस्थं एवं च कथितो मया ।

१	કુંભી
૫॥	સ્તંભ
૦॥	ભરણુ
૧	સરૂ
૮	
૧॥	પાટ
૯॥	

ગર્ભગૃહના ઉદયમાં (પાટ સિવાય) આઠ ભાગ કરવા. તેમાં એક ભાગની કુંભી—સાડા પાંચ ભાગનો સ્તંભ, અર્ધા ભાગનું ભરણું અને એક ભાગનું સરૂ એમ પ્રાસાદના ઉદયમાં (પાટ સિવાયના) આઠ ભાગ જાણવા. તે ઉપર દોઢ ભાગનો પાટ મેં કહ્યો છે. (એટલે કુલ સાડા નવ ભાગની ઉભણી થઈ.) ૩—૪.

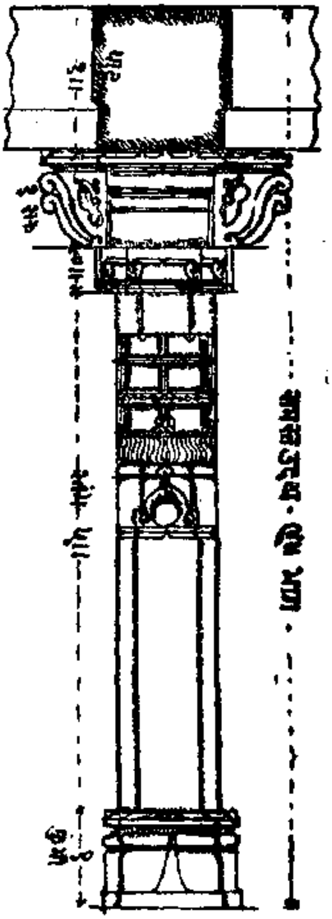

गर्भगृहोदय—स्तंभोदय भाग
८ + १॥ पाट = ९॥ भाग ।

गर्भगृहके उदयमें (पाटके सिवा) आठ भाग करना । उसमें एक भागकी कुंभी—साढ़े पाँच भागका स्तंभ और आधे भागका भरना और एक भागका सरा ऐसे प्रासादके (पाटके सिवा) ८ भाग समझना । उसके उपर डेढ भागका पाट मैंने कहा है । (इससे कुल साढ़े नौ भागका उदय हुआ ।) ३—४.

बाह्यमानं स्ततोरिपि ! पदमानमन्यथा ॥ ५ ॥
कुम्भे कुमि च ज्ञात्वा[1]वा स्तम्भेचैवोद्गमम् ।
भरणी भरणयुक्त्वा कपोताली तथा शिरः ॥ ६ ॥
[2]छाद्यं पट्टं समं दैध्य उर्ध्वं नैन कारयेत् ।
(सरसाले भवेद् वेधं अधः उर्ध्व न संशय) ।
प्रासादोदयमे यत्र—इदं मानंतु कथ्यते ॥ ७ ॥

पाठान्तर (१) कार्या (२) पट्टं तु खुट छाद्यकं ।

હે ઋષિ, નિરંધાર પ્રાસાદના બહાર મંડોવરના થરવાળા અને પદના સ્તંભના છોડનો સમન્વય કહું છું. કુંભા, બરાબર કુંભી, સ્તંભ અને દોઢીયાનો થર સમસૂત્રે ભરણી બરાબર ભરણું, કેવાળ અંતરાળ બરાબર, શરૂ અને પાટ બરાબર છજુ એમ સમસૂત્રમાં કરવું તેનાથી ઊંચું નીચું ન કરવું. ઊંચું નીચું થાય તો વેધ જાણવો. તેમાં સંશય નહિ. (સાંધાર પ્રાસાદનું પ્રમાણ અ૦ ૧૦૮ માં શ્લો. ૨૮–૩૦માં આપેલ છે.) ૫–૬–૭

हे ऋषि, निरंधार प्रासादके बाहर मंडोवरके थरवाले और अंदर पद के स्तंभके छोडका समन्वय कहता हूँ । कुंभा–बराबर कुंभी–स्तंभ और दोढियाका थर समसूत्रमें । भरणा बराबर भरणी और केवाल, अंतराल बराबर सरा और पाटके बराबर छजा इस तरह समसूत्रमें करना । उससे ऊँचा नीचा नहीं करना । ऊँचा नीचा हो तो वेध जानना, उसमें संशय नहीं । (शांधार प्रासादका प्रमाण अ० १० में श्लोक २८–३० में दिया है । ५–६–७.

प्रनाल विचार

पूर्वापरस्य प्रासादे प्रणालशुभमुत्तरे ।
दक्षोत्तर शुभं पूर्वं चतुर्जगतीं मंडपे ॥ ८ ॥

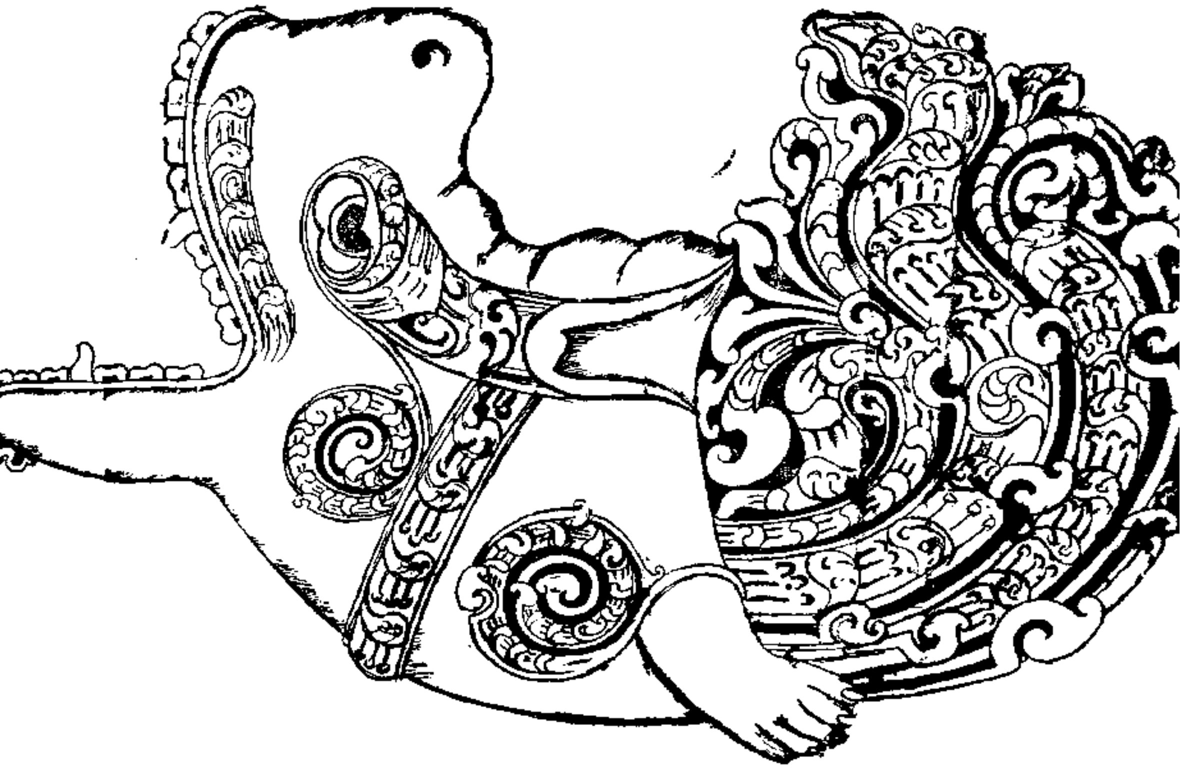

प्रनालका मकरमुख ।

પૂર્વ અને પશ્ચિમ મુખના પ્રાસાદોને પ્રનાળ ઉત્તરે મૂકવી તે શુભ છે. અને ઉત્તર દક્ષિણ મુખના પ્રાસાદોને પૂર્વમાં પરનાળ–ખાળ ગર્ભગૃહમાં મૂકવી. જગતી અને મંડપને ચારે દિશામાં પ્રનાળ મૂકી શકાય–૮.

पूर्व और पश्चिम मुखके प्रासादोंको प्रनाल उत्तरमें रखना शुभ है । और उत्तर दक्षिणके मुखके प्रासादोंको पूर्वमें परनाल–गर्भगृहमें रखना । जगती और मंडपको चारों दिशाओंमें प्रनाल रख सकते है । ८.

नवशाखा महेशस्य देवानां सप्तशाखिकम् ।
पंच शाखं सार्व भौमे त्रिशाखं मंडलेश्वरे ॥९॥

શીવ–માહેશ્વરના દેવાલયને નવ શાખા, બીજા સર્વ દેવો સપ્ત શાખા, સાર્વભૌમ–ચક્રવર્તી રાજાના રાજમહેલમાં પંચ શાખા અને માંડલીક રાજાને ત્રિશાખા કરવી–૯.

शीव–माहेश्वरके देवालयको नौ शाखा, दूसरे सर्व देवोंको सप्तशाखा, सार्वभौम–चक्रवर्ती राजाके महलमें पांच शाखा और मांडलिक राजाँको त्रिशाखा करना । ९.

अथ त्रिशाखा—

चतुर्भागाङ्कित कृत्वा त्रिशाखो वर्तयेत्तमः ।
मध्ये द्विभागिकं रूप स्तंभ भागैकनिर्गमं ॥१०॥
पत्र खल्वद्विभागं कोणीका स्तंभ मध्यतः ।
चतुर्थांश सपादेन द्वारपाल कृतोदय ॥११॥

ત્રિશાખાના જાડમાં ચાર ભાગ કરવા. તેમાં વચ્ચે બે ભાગનો રૂપ સ્તંભ પહોળો અને એક ભાગ નીકળતો કરવો. બાજુમાં એકેક ભાગની પત્ર શાખા અને ખલ્વ શાખા (સિંહ શાખા) કરવી. (મધ્ય રૂપ સ્તંભને શાખા વચ્ચે એકેક ખુણી શોભાને સારુ કરવી.) દ્વારની ઊંચાઈના ચોથા ભાગે કે તેની સવાઈનો દ્વારપાલ ઊંચો કરવો. ૧૦–૧૧.

त्रिशाखाके जाड़में चार भाग करना । उसमें बिचमें दो भागका रूपस्तंभ चौडा और एक भाग निकाला करना । बाजुमें एक एक भागकी पत्र शाखा और खल्वशाखा करना । (मध्यरूप स्तंभको शाखाके बिचमें एक एक कोना

शोभाके लिये करना ।) द्वारकी ऊँचाईके चौथे भागमें या सवाई ऊँचाईका द्वारपाल ऊँचा करना । १०-११.

अथ पंचशाखा—पंचशाखा च गंधर्वा रूपस्तंभस्तृतियकं ।
पुनः गंधर्व खल्व शाखी पचंशाखा विधीयते ॥१२॥

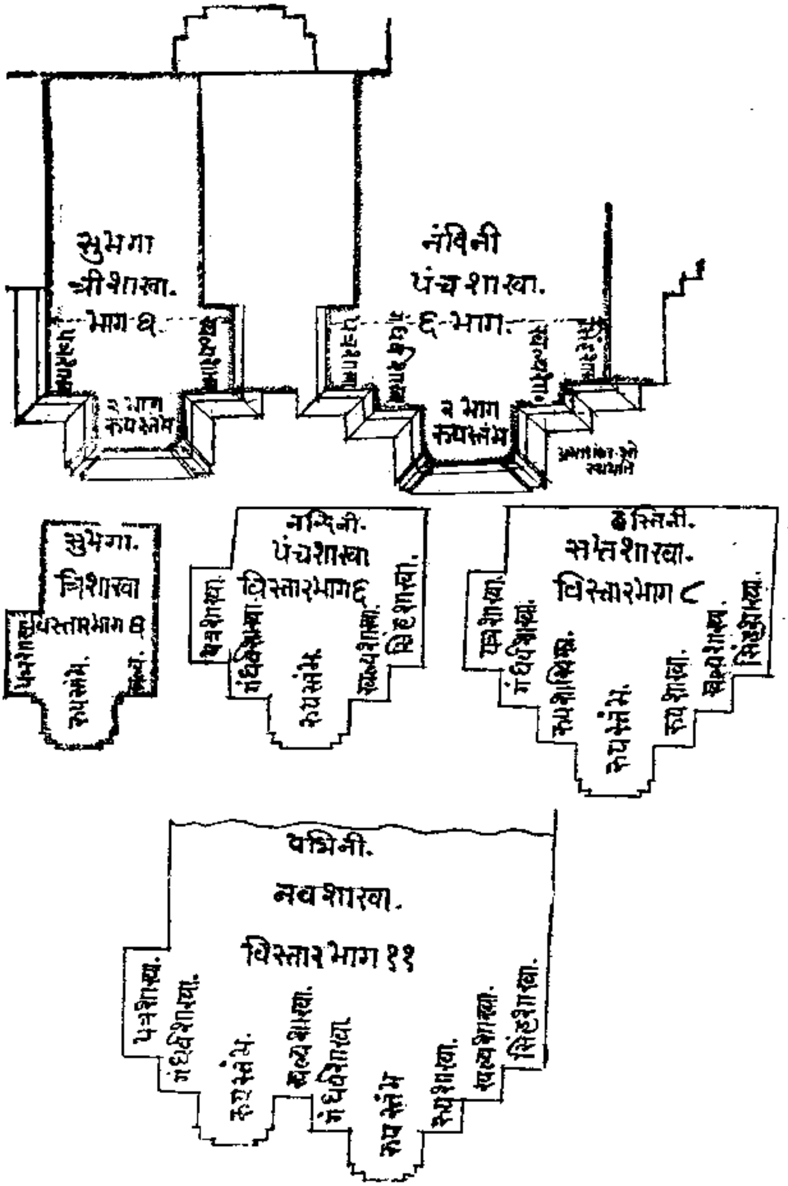

त्रि पंच सप्त नव शाखा तल विभाग और शाखाका नाम ।

પંચ શાખાની જાડાઈમાં છ ભાગ કરવા. ૧ પત્ર શાખા ૨ ગંધર્વ શાખા ૩ મધ્યમાં રૂપ સ્તંભ ૪ ફરી ગંધર્વ શાખા ૫ ખલ્વ શાખા (સિંહ શાખા) એમ પંચ શાખાનો વિધિ જાણવો. મધ્યનો રૂપસ્તંભ બે ભાગ અને બીજી શાખાઓ એકેક ભાગની જાણવી. ૧૨.

पँच शाखाके मोटेपनमें छः भाग करना । १. पत्रशाखा २ गंधर्वशाखा ३ मध्यमें रूपस्तंभ ४. फिर गंधर्व शाखा ५. खत्र शाखा (सिंह શાખા) इस तरह पँच शाखाका विधि समझना । मध्यका रूपस्तंभ दो भाग और दूसरी शाखाओं एक एक भागकी जानना । १२.

अथ सप्तशाखा—पत्रशाखा च गंधर्वा रूपशाखास्तृतियकम् ।
स्तंभ शाखो भवेन्मध्यं रूप शाखा तु पंचमी ॥१३॥
षष्टास्या खल्व शाखा च सिंहशाखा च सप्तके ।
प्रासादकर्ण संयुक्ता सिंहशाखाग्र सूत्रतः ॥१४॥

સપ્ત શાખાની જાડાઈમાં આઠ ભાગ કરવા. ૧ પત્ર શાખા ૨ ગંધર્વ શાખા ૩ રૂપ શાખા ૪ મધ્યમાં રૂપસ્તંભ (બે ભાગનો) ૫ રૂપ શાખા ૬ ખલ્વ શાખા ૭ સિંહ શાખા સાતમી જાણવી. પ્રત્યેક શાખા એકેક ભાગની અને મધ્યનો રૂપસ્તંભ બે ભાગનો જાણવો. પ્રાસાદની રેખા બરાબર સિંહ શાખા અને પત્ર શાખાનું સૂત્ર એક રાખવું. ૧૩-૧૪.

सप्तशाखाके मोटेपनमें आठ भाग करना । १ पत्रशाखा २ गंधर्व शाखा ३ रूप शाखा ४ मस्यमें रूप स्तंभ (दो भागका) ५ रूपशाखा ६ खल्वशाखा सिंह शाखा जानना । प्रत्येक शाखा एक एक भागकी और मध्यका रूपस्तंभ दो भागका जानना । प्रासादकी रेखाके बराबर सिंह शाखा और पत्रशाखाका सूत्र एक रखना । १३-१४.

अथ नवशाखा—पत्रगंधर्व संज्ञा च रूपस्तम्भस्तृतीयकम् ।
चतुर्थी खल्व शाखा च गंधर्वा चैव पंचमी ॥१५॥
रूपस्तम्भ स्तथा षष्टौ रूप शाखा ततः परा ।
पत्रशाखा च सिंहस्य मूल कर्णेन संम्मिता ॥१६॥

નવ શાખાની જાડાઈમાં અગ્યાર ભાગ કરવા તેમાં બે રૂપ સ્તંભો બબ્બે ભાગના અને બાકીની શાખાઓ એકેક ભાગની રાખવી. ૧ પત્ર શાખા ૨ ગંધર્વ શાખા ૩ રૂપસ્તંભ મધ્ય ૪ ખલ્વ શાખા ૫-ગંધર્વ શાખા ૬ બીજો રૂપસ્તંભ મધ્ય ૭ રૂપ શાખા ૮ ખલ્વ શાખા અને નવમી સિંહ શાખા જાણવી. સિંહ શાખા અને પત્ર શાખા મૂળરેખાની ફરકે સમસૂત્રે રાખવી. ૧૫-૧૬.

नौ शाखाओंके मोटेपनमें ग्यारह विभाग करना। उसमें दो रूपस्तंभो दो दो भागके—और बाकी शाखाओंको एक एक भागकी रखना। १ पत्र शाखा २ गंधर्व शाखा ३ रूपस्तंभ ४ खल्वशाखा ५ गंधर्व शाखा ६ दूसरा रूपस्तंभ मध्यका ७ रूप शाखा ८ खल्व शाखा ९ सिंह शाखा जानना। सिंह शाखा और पत्र शाखा मूलरेखाके समसूत्रमें रखना। १५–१६.

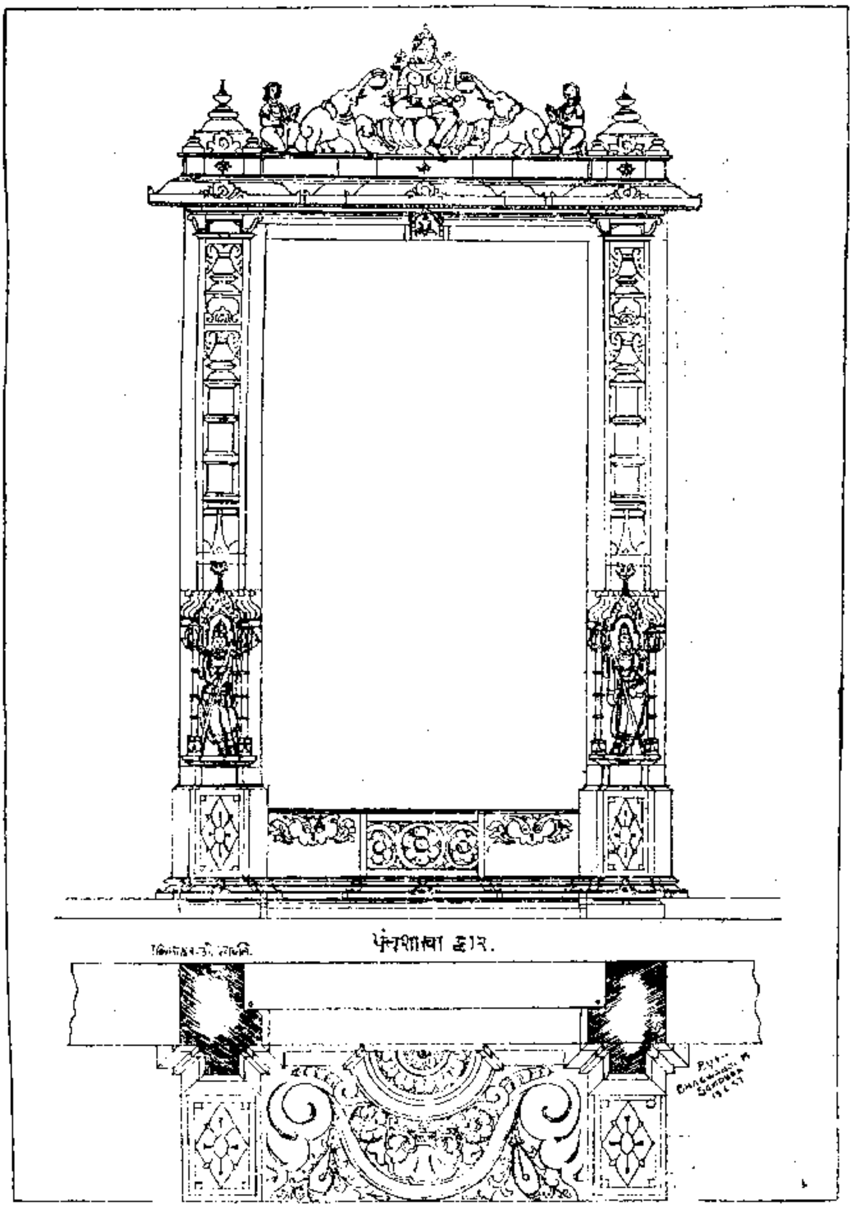

त्रिशाखाका द्वार उदम्बर और शंखोद्वार—अर्धचंद्र।

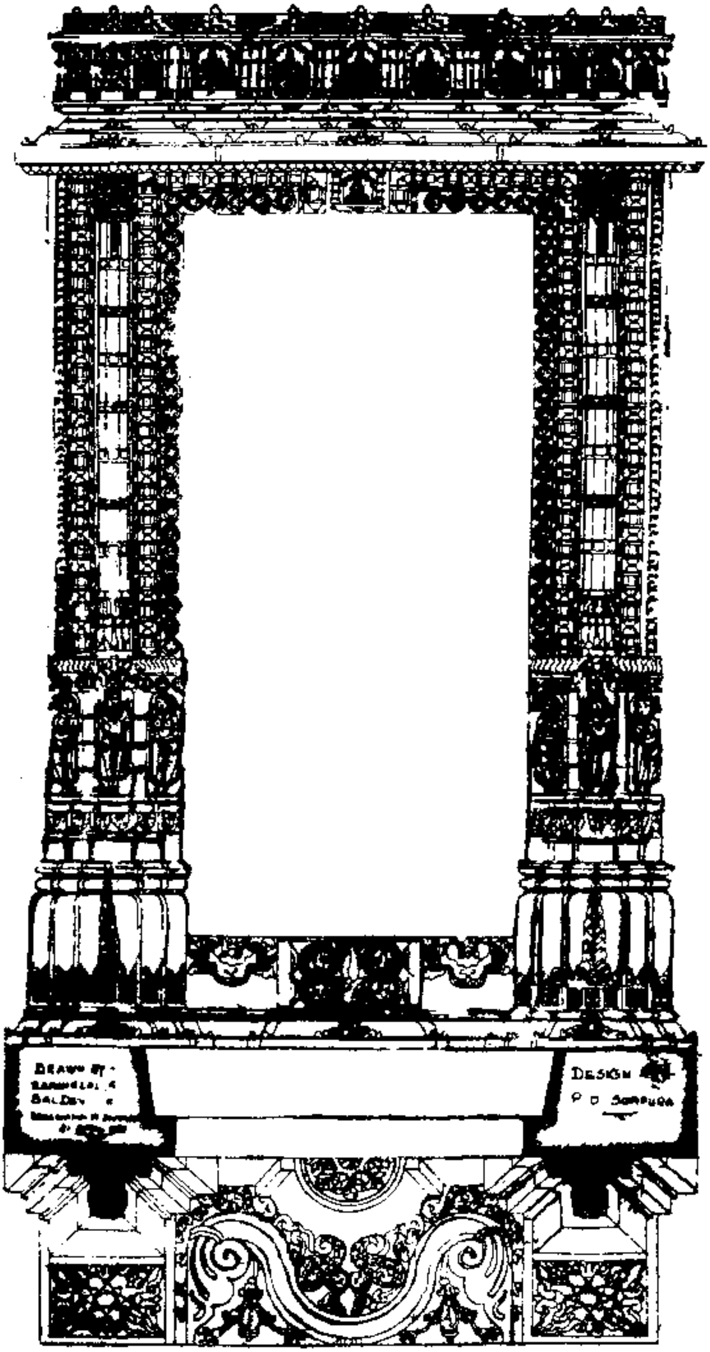

पंच शाखा युक्त अलंकृत द्वार-तथा अर्धचंद्र-उदंम्बर

सप्त शाखा विना खल्वं शाखा त्रिशाखा खल्व संयुतं ।
कर्णीकारंच शाखान्ते नव शाखा सिंहं भवेत् ॥१७॥

સપ્ત શાખાને અંતે ખલ્વ શાખા ન કરવી. ત્રિશાખા અંતે ખલ્વ શાખા યુક્ત કરવી. પંચ શાખા અને નવ શાખા એ સર્વની શાખાને અંતે સિંહ શાખા આવે તે અંતની શાખામાં કર્ણીકા--ગલતનો ઘાટ કરવો-૧૭.

सप्त शाखाके अंतमें खल्व शाखा नहीं करना । त्रिशाखा के अंतमें खल्व शाखासे युक्त करना । पँच शाखा और नौ शाखा अिन सर्व शाखाओंके अंतमें सिंह शाखा आती है । उस अंतकी शाखामें कर्णीका गलत का घाट करना । १७.

मूलकर्णस्य सूत्रेण कुम्भेनोदुम्बरं समम् ।
तदधः पंच रत्नानि स्थापयेत् शिल्पीपूजनात् ॥१८॥

પ્રાસાદની મૂળ રેખાના સમસૂત્ર બરાબર ઉંબરો નીકળતો અને કુંભીની બરાબર ઉંચાઈ એક સૂત્રમાં મુકવો શિલ્પી અને ઉદંમ્બરનું વિધિથી પૂજન કરી નીચે પંચરત્ન સ્થાપન કરવું. ૧૮. અને શિલ્પિ-સ્થપતિનું પૂજન કરવું. ૧૮.

प्रासादकी मूल रेखाकी समसूत्र बराबर उदंबर नीर्गम रखना और कुंभीकी बराबर ऊँचाई एक सूत्रमें रखना । शिल्पी और उदम्बरका विधिसे पूजन कर नीचे पंचरत्न स्थापन करना । उस समय शिल्पिका पूजन करना । १८.

द्वारविस्तार त्रिभागेन व्रतमंदारकोस्तथा ।
व्रतमंदारकं कुर्यात् मृणालपत्रसंयुतम् ॥१९॥
जाड्य कुंभ कणाली च कीर्तिवक्त्य द्वयंतथा ।
उदुम्बरस्य पार्श्वे च शाखायां स्तलरूपकम् ॥२०॥

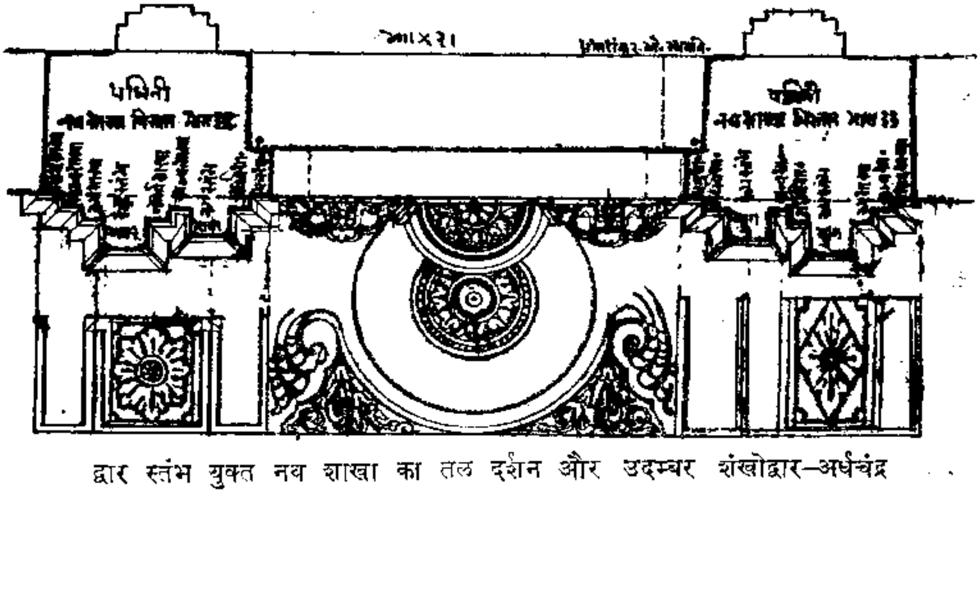

द्वार स्तंभ युक्त नव शाखा का तल दर्शन और उदम्बर शंखोद्वार-अर्धचंद्र

ઉદંબરને દ્વારની પહોળાઈના ત્રીજા ભાગે વચ્ચે ગોળ મંદારક–માણું કરવું. તે ગોળ માણું કમળપત્રથી શોભતું કરવું. માણાની નીચે જાડંબો અને કણીનો ઘાટ ઉંબરાની ઉંચાઈના ત્રીજા ભાગે અથવા ચોથે ભાગે જાડો (ઉંબરા તથા તલકડાને) કરવો. (માણાની બંને તરફ એકેક ખુણી કરી) તેની બે બાજુ ગ્રાસ = કીર્તિવકનાં મુખો કરવાં ઉંબરાની બંને બાજુ શાખાઓનાં તલરૂપ = તલકડાં કરવાં.

उदम्बरको द्वारकी चौडाईके तीसरे भागमें बिचमें गोल मंदारक=माणा करना। वह गोल मंदारक कमल पत्रसे सुशोभित करना। माणेके नीचे जाडंबा और कर्णीका घाट उम्बरकी ऊँचाईको तीसरे या चोथे भागमें मोटा (उम्बरा तथा तलरूपको करना। थाणेकी दोनों बाजु ग्रासका मुख करना शाखाओंके तलरूप तिलकडा करना। १९–२०.

उदंबरं ततो वक्ष्ये कुंभतस्योदयं भवेत्।
तस्यार्धेन त्रिभागेन पादोनहृतोत्तमं ॥२१॥
चतुर्विध तथा स्वस्थं कुर्याचैव मुदुंम्बरम्।
उत्तमोत्तम चत्वारो न्यूनाधिकाश्च दोषदा ॥२२॥

હવે ઉંબરાની ઊંચાઈનું કહું છું. ૧ ઉંબરાની ઊંચાઈ કુંભા કુંભી બરાબર રાખવી. ૨ કુંભીથી અર્ધ ભાગે, ૩ ત્રીજા ભાગે કે ૪ ચોથા ભાગે ઉંબરો નીચે ઉતારવો=ગાળવો. એ રીતે ઉંબરો ગાળવાના ચાર પ્રમાણો ઉત્તમોત્તમ કહ્યા છે. ઓછાથી વધુ ગાળવા તે દોષ કારક છે. ૨૧–૨૨.

अब मैं उदम्बरकी ऊँचाई कहता हूँ। १ उदंम्बरकी ऊँचाई कुंभा कुंभिके बराबर रखना। २ कुंभिसे आधे भागमें, ३ तीसरे भागमें या ४ चौथे भागमें उम्बरा नीचे उतारना। जिस तरह उम्बरा उतारनेके चार प्रमाण उत्तमोत्तम कहो हैं! उससे कम या ज्यादा उतारना दोषकारक है। २१–२२.

उदंबरांते हृते कुंभीस्तंभंच पूर्ववत्।
सांधारेस्य निरंधारे कुंभि कृत्वामुदंम्बरम् ॥२३॥

કુંભીથી ઉંબરો ગાળવો (હૃત કરવો) પરંતુ કુંભી અને સ્તંભ તો પૂર્વની જેમ જ રાખવા. સાંધાર અને નિરંધાર પ્રાસાદોમાં કુંભીથી ઉંબરો ગાળવો. ૨૩.

कुंभिसे उम्बरा नीचाहृत करना। परंतु कुंभि और स्तंभ तो पूर्वक अनुसार ही रखना। सांधार और निरंधार प्रासादोंमें कुंभिसे उदंम्बर हीन करना। २३.

(૧) શિલ્પીઓમાં કંઈ એવી પણ માન્યતા પ્રવર્તે છે કે જો ઉંબરો ગાળવામાં આવે તો કુંભીઓ પણ ગાળવી જોઈએ જો કે બન્ને મતના દૃષ્ટાંતો પ્રાચિન મંદિરોમાં મળે છે.

शिल्पीओमें कइ एसी मान्यता है के जब उदंबर हृत गालनेका हो तब कुंभी भी उतारना दोनु प्रकारका द्रष्टांत मीलता है

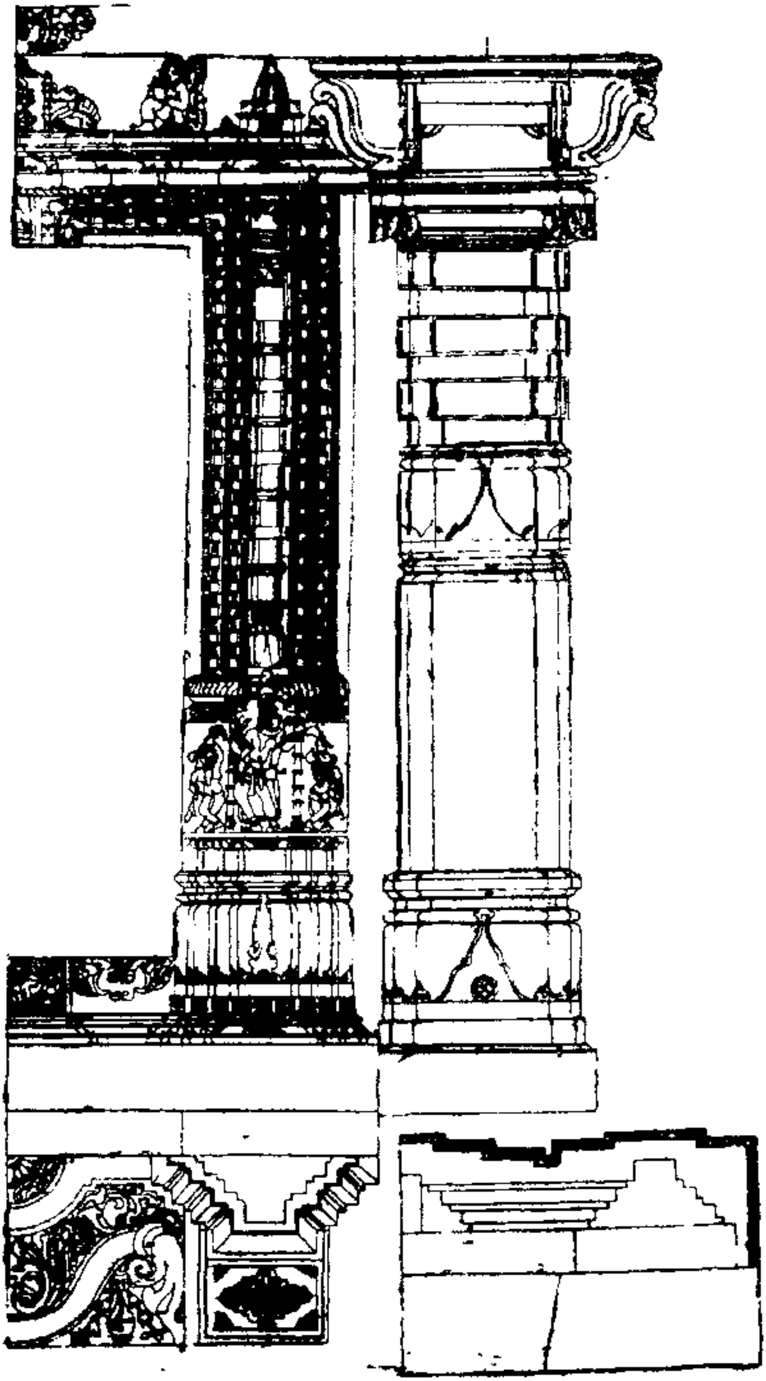

सप्त शाखा युक्त अलंकृत द्वार तथा स्तंभ उदंम्बर-अर्धचंद्र

खुरकेन समं कुर्यादर्धचंद्रस्य चोच्छ्रितिः ।
द्वारव्यास समं दैर्घ्यं निर्गमंच तदर्धतः ।।२४।।
द्विभागमर्धचंद्रश्च भागेन द्वौ गगारका ।
शंखपत्र समायुक्तं पद्माकारैरलंकृतम् ।।२५।।

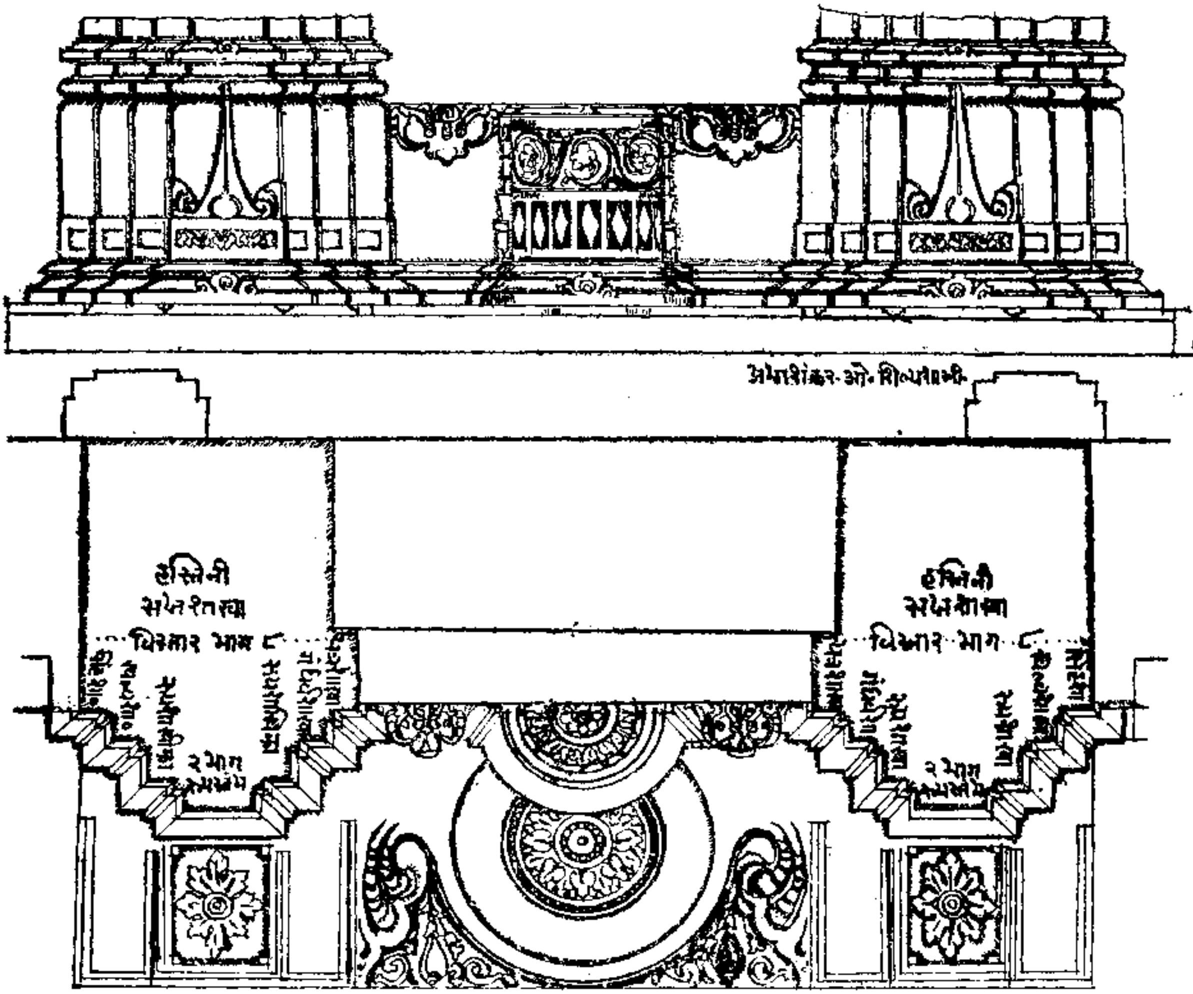

सप्त शाखाका १ उदंबर २ तिलकहा ३ शंखोद्वार अर्धचंद्र

મંડોવરના ખરાના થરાના મથાળાના સૂત્રે અર્ધચંદ્ર (શંખોદ્ધાર=શંખાવટ) નો મથાળો રાખવો દ્વારની પહોળાઈ જેટલો લાંબો અને તેનાથી અર્ધ શંખોદ્ધાર નીકળતો રાખવો. અર્ધ ચંદ્ર ભાગ બે અને તેની બંને તરફ અરધા અરધા ભાગના બે ગગારા કરવા. અર્ધ ચંદ્ર અને ગગારાના ગાળામાં શંખ અને કમળની આકૃતિ પત્રોથી અલંકૃત શંખોદ્ધાર કરવો.

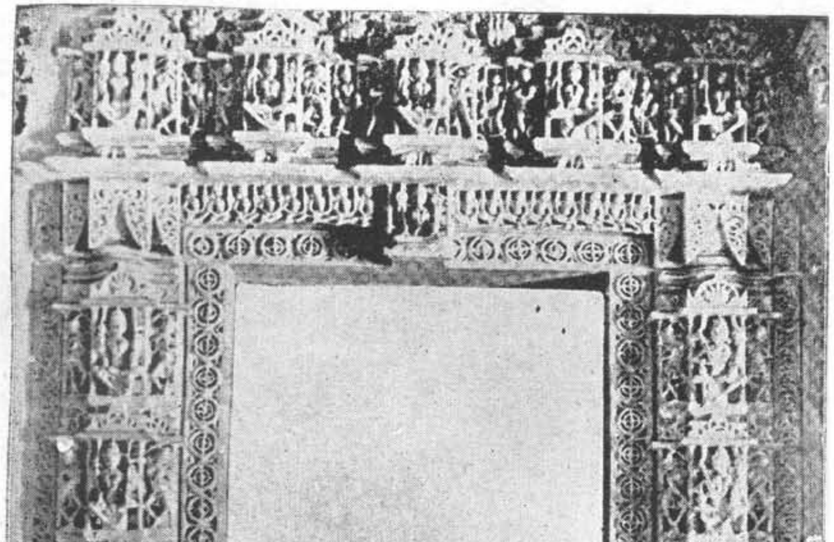

रुपशाखायुक्त पंचशाखा द्वार उदंम्बर उत्तरङ्ग–आरासणा (अंबाजी)

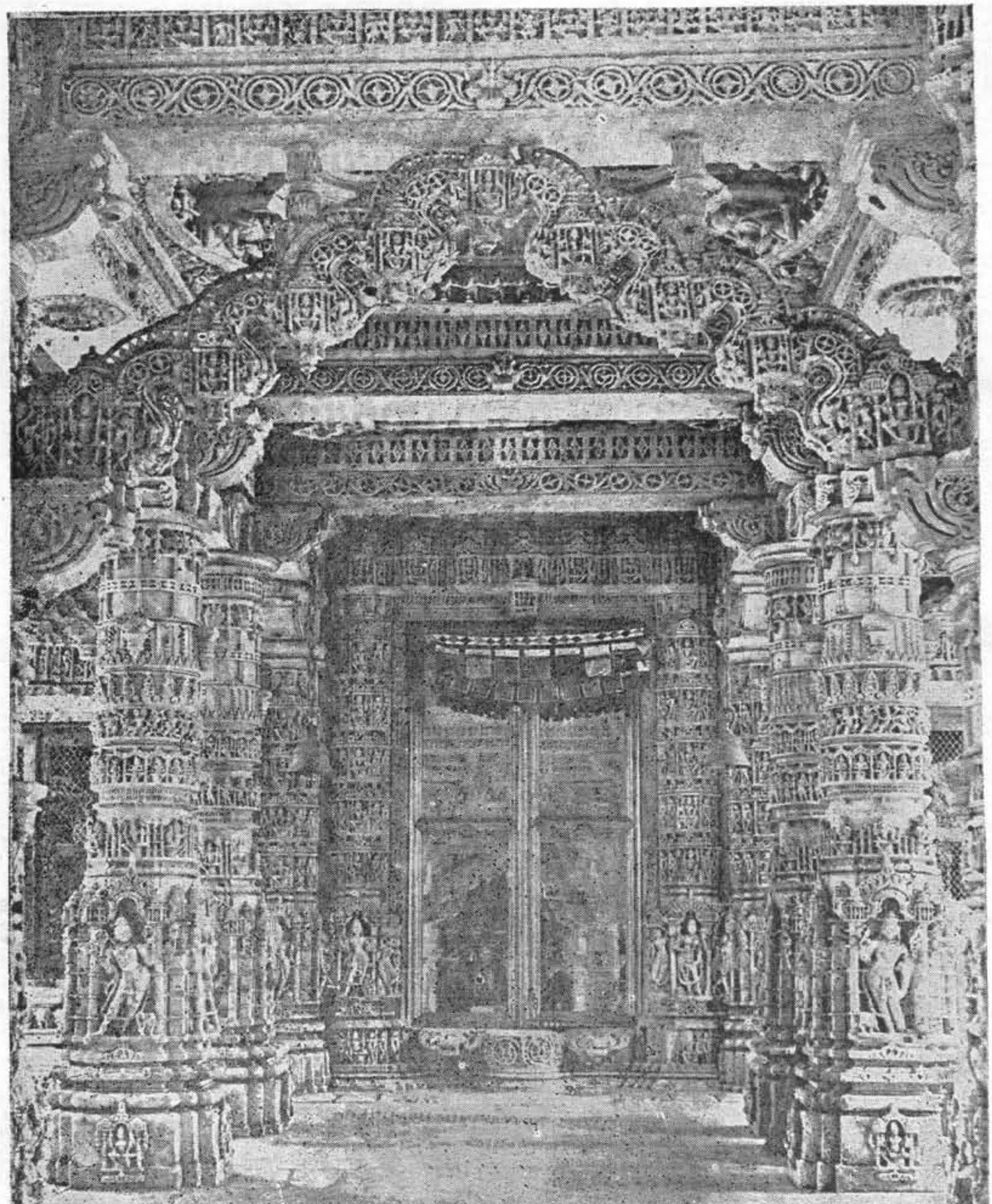

रुपस्तंभ ईलिका तोरण-रुपशाखायुक्त द्वार, (आबु देलवाडा)

खरेके शीर्षके सूत्रमें अर्धचन्द्र (शंखोद्वार=शंखावट) का शीर्षक रखना। द्वारकी चौडाईके जितना लम्बा और उससे अर्ध-शंखोद्वार निकलता रखना। अर्धचन्द्र भाग दो और उसकी दोनों तरफ आधे आधे भागके दो गगारक करना। अर्धचन्द्र और गगारकके गालेमें शंख और कमलके आकृति पत्रोंसे अलंकृत शंखोद्वार करना। २४-२५.

यस्य देवस्य या मूर्तिः सैवकार्योत्तरङ्गके।
परिवारश्च शाखायां गणेशश्चोत्तरङ्गके ॥२६॥

द्वारशाखाका ठेकामें देवप्रतिहार स्वरुप

દેવાલયમાં જે દેવ પધરાવેલા હોય તેની મૂર્તિ કે સેવક (ગરૂડ) ની મૂર્તિ ઉત્તરંગમાં કરવી અને શાખાઓમાં તે દેવના પરિવારના પંક્તિબદ્ધ સ્વરૂપો કરવાં. ઉત્તરંગમાં વિશેષે કરી ગણેશની મૂર્તિ પણ મધ્યમાં કરે છે. ૨૬.

देवालयमें जो देव पधराये हुए हो उसकी मूर्ति या सेवककी (गरुड) मूर्ति उतरंगमें करना। और शाखाओंमें उस देवके परिवारके पंक्तिबद्ध स्वरूपों बनाना। उत्तरंगमें विशेषकर गणेशकी मूर्ति भी मध्यमें करते हैं। २६.

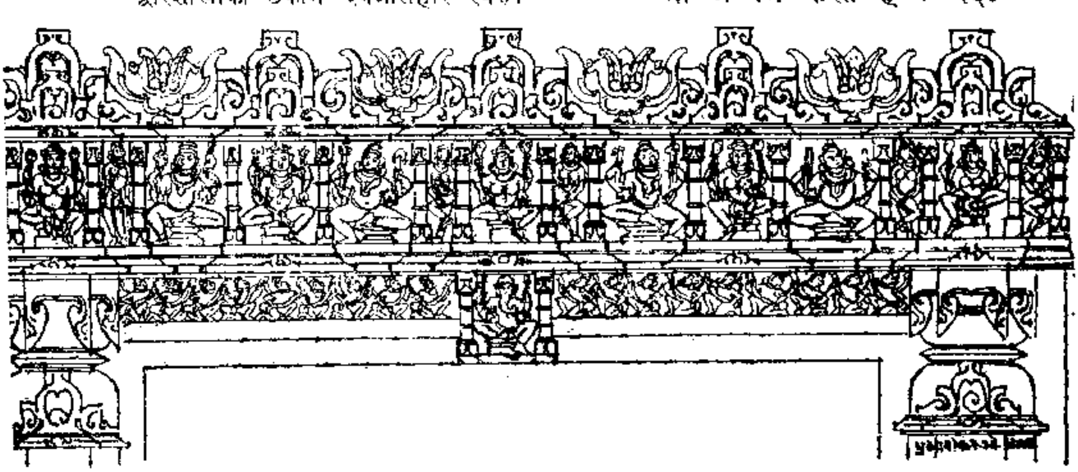

गर्भगृह का मुख्य द्वारका उत्तरङ्ग

इति श्री विश्वकर्मा कृते क्षीरार्णवे नारदपृच्छायां गर्भगृह द्वारशाखाधिकारे शताग्रे नवमोऽध्याय ॥१०९॥ (क्रमांक अ० ११)

ઇતિશ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદમુની સંવાદરૂપ ગર્ભગૃહ અને દ્વાર શાખાધિકારનો -શિલ્પ વિશારદ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા એ રચેલી સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો નવમો અધ્યાય ॥૧૦૯॥

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव नारदमुनिके संवादरुप गर्भगृह और द्वारशाखाधिकारका शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुराकी रचिता सुप्रभा नाम्नी भाषाटीकाका एकसौ नौवाँ अध्याय ॥१०९॥ (क्रमांक अ० ११)

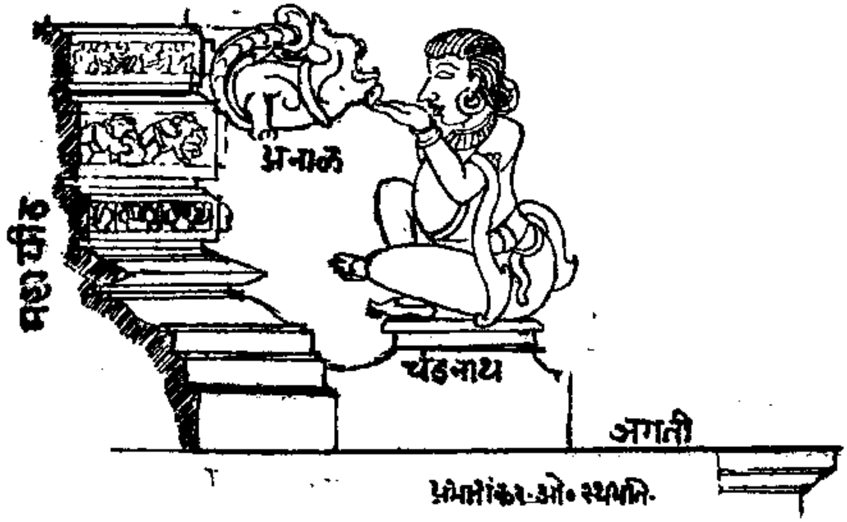

महापीठ साथप्रमाल और शिवनिर्माल्यका चंडनाथ

॥ अथ प्रतिमा पीठ लिङ्ग मान ॥

क्षीरार्णव अ० ११०—क्रमांक अ० १२

श्री विश्वकर्मा उवाच

[1]देवता मुनिभिर्भाग पीठमान मथोच्यते ।
पीटभागमेकेन सार्द्ध भाग मध्यमम् ॥ १ ॥
द्विभागमुत्तमं चैव देवपीठं समुच्छ्रयं ।
यदि सम समाल्किर्णः प्रतिमा लक्षणान्वितं ॥ २ ॥
महेश्वरस्य विष्णोश्च ब्रह्माचोश्चमं संभवेत् ।
इति रेषांतो देवानां कर्तव्यं धिमता ॥ ३ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. પ્રાસાદના દેવ અને મુનિની મૂર્તિ અને પીઠ માન કહું છું. એક ભાગનું પીઠ કનિષ્ઠમાન, દોઢ ભાગનું પીઠ મધ્યમાન, અને બે ભાગનું દેવપીડ ઊંચું એ ઉત્તમ માન જાણવું. કદીક પ્રતિમા અને પીઠ સમ ઊંચાઈના લક્ષણના પણ થાય. તે મહેશ્વર વિષ્ણુ અને બ્રહ્મા ઊંચાઈના રેખાસૂત્ર માન પ્રમાણે પીઠ બુદ્ધિમાને જાણવું.[1] ૧–૨–૩.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं । प्रासादके देव और मुनिकी मूर्ति और पीठमान कहता हूँ । एक भागका पीठ कनिष्ठमान, डेढ भागका पीठ मध्यमान और दो भागका देवपीठका ऊँचा उत्तममान समझना । कभी प्रतिमा और पीठ समझना ऊँचाईके लक्षणके भी होते है । वह महेश्वर विष्णु ब्रह्मा ऊँचाईके रेखासूत्र मानके अनुसार पीठ बुद्धिमानको समझना ।[1] १–२–३.

द्वारमष्ट विभक्तं च त्रिधा भक्तं सप्तभिः
पीठं च भाग मेकं तु शेषं च प्रतिमा मुने ! ॥ ४ ॥

પ્રાસાદના દ્વારની ઊંચાઈના આઠ ભાગ કરી ઉપરનો એક ભાગ તજીને બાકીનાના સાત ભાગ કરી તેમાં ત્રણ ભાગ કરી એક ભાગનું પીઠ અને બાકીના બે ભાગની પ્રતિમા હે મુનિ, કરવી. ૪

प्रासादके द्वारकी ऊँचाईके आठ भागकर उपरका एक भाग तजकर बाकीके

---

(૧) શ્લોક ૧ થી ૩ ની શુદ્ધિ માટે પ્રયાસ કરતાં જે અર્થ નિકળે છે તે આપવા પ્રયાસ કરેલ છે. છતાં પાઠાંતર અન્ય મળે તો ઉત્તમ.

(१) श्लोक एक से तीनकी शुद्धिके लिये प्रयास करते जो अर्थ निकलता है यह देनेके लिये प्रयास किया है फिर भी पाठांतर अन्य मिले तो उत्तम है ।

भागके सात भागका तीन भागकर एक भागका पीठ और बाकीके दो भागकी प्रतिमा करना । ४.

सप्तभागं भवेद्द्वारं षड्भाग त्रिधाकृतम् ।
द्विभागं प्रतिमामानं शेषं पीठस्यमुच्छ्रय ॥ ५ ॥

ગર્ભગૃહના દ્વારની ઊંચાઈના સાત ભાગ કરી ઉપરનો એક ભાગ તજીને બાકીનાના છ ભાગના ત્રણ ભાગ કરવા. તેના બે ભાગની પ્રતિમા અને બાકી એક ભાગનું પીઠ ઊંચું કહ્યું છે. ૫.

गर्भगृहके द्वारकी ऊँचाईके सात भागकर उपरका एक भाग छोडकर बाकीके छः भागके तीन भाग करना । उसके दो भागकी प्रतिमा और बाकी एक भागका पीठ ऊँचा कहा है । ५.

द्वारं षड् भागिकं ज्ञेयं त्रिधा पंच[२]प्रकल्पयेत्
पीठे तु भाग मेकेन द्विभागे प्रतिमा भवेत् ॥ ६ ॥

ગર્ભગૃહના દ્વારની ઊંચાઈના છ ભાગ કરી ઉપરનો એક ભાગ તજી બાકીના-ના ત્રણ ભાગ કરી એક ભાગનું પીઠ ઊંચું કરવું અને બે ભાગ ઊંચી પ્રતિમા જાણવી.[२] ૬.

गर्भगृहके द्वारकी ऊँचाईके छः भागकर उपरके एक भागको छोडकर बाकीके भाग तीन भागकर एक भागका पीठ ऊँचा करना । और दो भाग ऊँची प्रतिमा जानना ।[२] ६.

एवमूर्ध्वे प्रतिमा च अर्द्धे शयनासनं भवेत् ।
पीठमानं च नान्यत्र शेष स्थाने च निष्कलम् ॥ ७ ॥
जल शय्या प्रमाणेन द्वार विस्तार साधितम्
अन्यथा च यदा अर्चा विस्तरं नैव लङ्घयेत् ॥८॥

આ રીતે ઊભી પ્રતિમાનું માન જાણવું. શયનાસન પ્રતિમાનું માન દ્વારોદયના અર્ધ ભાગે રાખવું. જલશય્યાના શેષશાઈના માન પ્રમાણે દ્વારનો વિસ્તાર સાધવો=રાખવો દ્વાર વિસ્તારથી શય્યા મૂર્તિના વિસ્તારનું લંઘન કરવું નહિ અર્થાત્

(૨) શ્લોક ૬ ના બીજા પદમાં षड ના સ્થાને અન્ય પ્રતોમાં पंच નો પાઠ વધુ મળે છે. પરંતુ શ્લોક ૪-૫ અને ૬ ના ક્રમથી જોતાં षड् પાઠ યોગ્ય છે.

(२) श्लोक ६ के दूसरे पदमें षड्के स्थानपर अन्य प्रत्रोंमें पंचका पाठ ज्यादा मिलता है, लेकिन श्लोक ४, ५ और ६ के क्रमसे देखते षड्‌ पाठ योग्य है ।

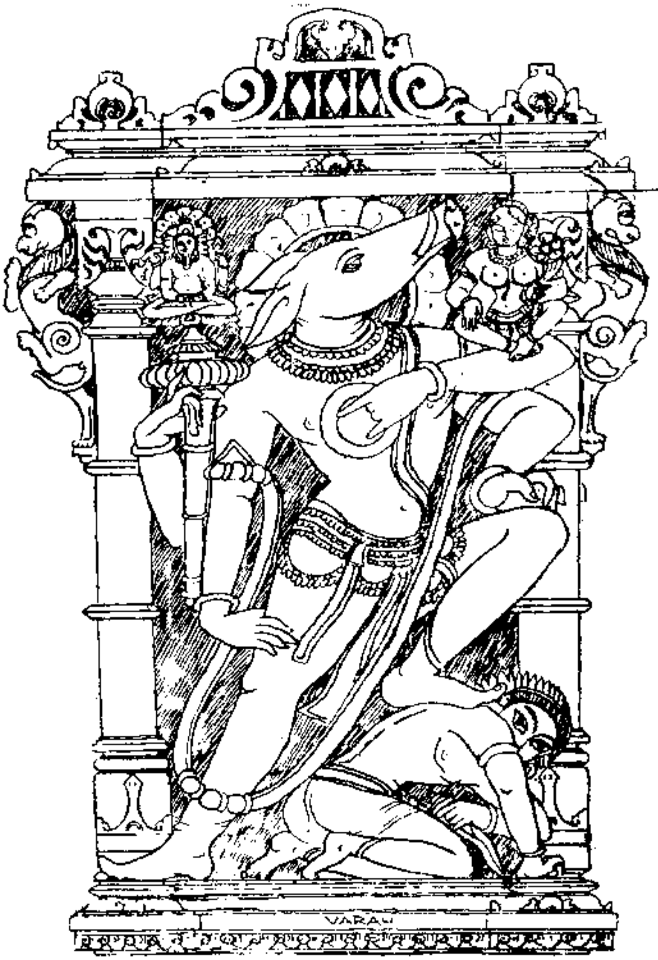

गवाक्षमें वारह : पक्षमें विरालिका

દ્વાર વિસ્તાર જેટલી શયન પ્રતિમા લાંબી રાખવી. (અપરાજિત સૂત્ર માં આપેલા પ્રમાણથી આ પ્રમાણ નાનું છે.) ૭–૮.

इस प्रकार खडी प्रतिमाका मान जानना। शयनासन प्रतिमाका मान द्वारोदयके आधे भागमें रखना। जलशय्याके मान के अनुसार द्वारका विस्तार रखना द्वार विस्तारसे शय्या मूर्तिके विस्तारका लंघन नहीं करना अर्थात् द्वार विस्तारके बराबर शयन प्रतिमा लम्बी रखना। ७–८ (अपराजित सूत्रके प्रमाणसे यह प्रमाण छोटा है।)

द्वारस्य विस्तरार्द्धेनि पादोनेवा विचक्षणं[१]
दलौकृत्य तदस्थाने प्रमाण तु त्रिधा पुनः ॥९॥

ગર્ભના દ્વારની પહોળાઇના (૧) અર્ધ ભાગે (૨) પોણા ભાગે (૩) કે દ્વાર વિસ્તાર જેટલી એમ ત્રણ પ્રકારે પ્રતિમાના વિસ્તારનું પ્રમાણ જાણવું. ૯.

गर्भगृहके द्वारकी चौडाईके (१) आधे भागमें (२) पौने भागमें (३) या द्वार विस्तारके बराबर इस तरह तीन प्रकारसे प्रतिमाके विस्तारका प्रमाण जानना। ९

[१] तृतीयांशेन गर्भस्य प्रासादे प्रतिमोत्तमा।
मध्यमा स्वदशांशेन पंचमांशोना कनीयसी ॥६१॥ दीपार्णव

अथ लिङ्गमान–प्रासाद पंचमांशेन लिङ्गाकूर्यात्प्रयत्नतः
वेदविंशादित्पीठं भावाङ्गपीठ मानकम् ॥१०॥

गवाक्षमे उर्ध्व तिलक शिव–पक्षमें विरालिका

પ્રાસાદના પાંચમા ભાગે રાજલિંગની લંબાઈ પ્રયત્ને કરીને રાખવી અને પ્રાસાદના ચોથા ભાગે જળાધારીનો વિસ્તાર રાખવો. ૧૦.

प्रासादके पाँचवें भागमें राजलिङ्गकी लम्बाई प्रयत्न करके रखना और प्रासादके चौथे भागमें जलधारीका विस्तार रखना । १०.

ગર્ભગૃહના ત્રીજા ભાગની પ્રતિમાનું પ્રમાણ ઉત્તમ માન જાણવું. તેનો દશમો ભાગ હીન કરે તો મધ્ય માન અને પાંચમો ભાગ હીન કરે તો કનિષ્ઠ માન પ્રતિમાનું જાણવું.

गर्भगृहके तीसरे भागकी प्रतिमाका प्रमाण उत्तम मान जानना । उसका दशवाँ भाग हीन करे तो मध्यम मान और पाँचवा भाग हीन करे तौ कनिष्ठ मान प्रतिमाका जानना ।

सप्तांशे गर्भगेहे तु द्वौ भागो परिवर्जयेत् ।
पंचमांशो भवेद्देव शयनस्य सुखावह ॥ अपराजित सूत्र

ગર્ભગૃહના સાત ભાગ કરી તેના બે ભાગ તજીને પાંચ ભાગના જળશાયી સૂતેલી મૂર્તિનું પ્રમાણ રાખવું એ સુખને આપનાર જાણવું. તે અપરાજીતનું પ્રમાણ છે.

गर्भगृहके सात भाग कर उसके दो भाग छोड़कर पाँच भागके जलशायी सुप्त मूर्तिका प्रमाण रखना, यह सुखदाता है । यह अपराजित ग्रंथका प्रमाण है ।

उर्ध्व प्रतिमा मान–एक हस्तेतु प्रासादे मूर्तिरेकादशाङ्गुला ।
दशांङ्गुल ततो वृद्धिः यावद् हस्त चतुष्ठयत् ॥६६॥

द्वार विस्तार गृह्य अष्टमांशोनिमध्यत ।
ज्येष्ठ मध्याकनिष्ठं चा अर्चामानं चतुर्मुखं ॥११॥

ચાતુર્મુખ પ્રતિમાનું પ્રમાણ કહે છે. દ્વાર વિસ્તારની બરાબર પ્રતિમા રાખવી તે મધ્યમાન, આઠમો ભાગ હીન રાખવી તે કનિષ્ઠ માન અને દ્વાર વિસ્તારથી આઠમો ભાગ વધુ રાખવી તે જ્યેષ્ઠ માન એ રીતે ચાતુર્મુખ પ્રાસાદની પ્રતિમાનું પ્રમાણ જાણવું–૧૧.

द्वयाङ्गुला दश हस्तान्ता शतार्द्धा-ताङ्गुलस्य च ।
अतो विंशदशोना मध्यमाऽर्चा कनीयसी ॥६७॥ दीपार्णव

એક હાથના પ્રાસાદને અગિયાર અંગુલની માન જાણવું એ રીતે ચાર હાથ સુધીના પ્રાસાદને ગજે દશ અંગુલની વૃદ્ધિ પ્રત્યેક ગજે કરવી. પાંચથી દશ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક ગજે બબ્બે અંગુલની વૃદ્ધિ કરતા જવું. દશથી પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક ગજે એકેક અંગુલની વૃદ્ધિ કરવી. તે ઉત્તમ માન જાણવું. તેનો વીશમો ભાગ હીન કરવાથી મધ્યમાન અને દશમો ભાગ હીન કરવાથી કનીષ્ઠ માન જાણવું.

एक हाथके प्रासादको ग्यारह अंगुलकी खड़ी प्रतिमाका मान जानना । इस तरह चार हाथ तकके प्रासादके गज पर दस दस अंगुलकी वृद्धि प्रत्येक गज पर करना । पाँचसे दस हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक गज पर दो दो अंगुलकी वृद्धि करते जाना । दससे पचास हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक गज पर एक एक अंगुलकी वृद्धि करना । यह उत्तम मान जानना । उसके बीसवें भागको हीन करनेसे मध्यमान और दसवें भागको हीन करनेसे कनीष्ठमान जानना ।

आसनस्थ प्रतिमामान–हस्तादेर्वेद हस्तां ते षड्वृद्धिः स्यात् षडांगुला ।
तदूर्ध्वं दश हस्तान्ता त्र्यंगुला वृद्धिरिष्यते ॥६६॥
एकाङ्गुला भवेद् वृद्धि यावत् पंचाशद्धस्तकम् ।
विंशत्येकाधिका ज्येष्ठा विंशत्योन कनीयसी ॥६७॥
उध्वस्थिता प्रथमा प्रोक्ता आसनस्था द्वितीयका ।

બેઠી પ્રતિમાનું માન કહે છે. એક હાથથી ચાર હાથ ગજસુધીના પ્રાસાદનું પ્રત્યેક હાથે છ છ આંગળની બેઠી પ્રતિમાનું માન જાણવું. ત્યાર પછી છ થી દશ હાથ સુધીના પ્રાસાદનું પ્રત્યેક હાથે ત્રણ ત્રણ આંગળ વધારતા જવું. અગ્યારથી પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક ગજે એકેક આંગળની વૃદ્ધિ કરતા જવું તે મધ્યમાન આવેલ માનનો વીશમો ભાગ વધારવાથી જ્યેષ્ઠમાન અને વીસનો ભાગ હીન કરવાથી કનિષ્ઠમાન જાણવું. એ રીતે આગળ જે પહેલું ઊભી પ્રતિમાનું માન કહ્યું અને આ બીજું માન બેઠી પ્રતિમાનું જાણવું.

बैठी हुई प्रतिमाका मान कहते हैं । एक हाथसे चार हाथ–गज तकके प्रासादका प्रत्येक हाथमें छः छः अंगुलकी बैठी प्रतिमाका मान जानना । बादमें छः से दस हाथ तकके प्रासादका प्रत्येक तीन तीन अंगुल बढ़ाते जाना । ग्यारहसे पचास हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक गज पर

चातुर्मुख प्रतिमाका प्रमाण कहते हैं। द्वार विस्तारके बराबर प्रतिमा रखना यह मध्यमान, आठवाँ भाग हीन रखना यह कनिष्ठमान, और विस्तारसे आठवाँ

एक एक अंगुलकी वृद्धि करते जाना। यह मध्यमान है। आये हुए मानका बीसवाँ भाग बढ़ानेसे ज्येष्ठमान और बीसवें भागको हीन करनेसे कनिष्ठमान जानना। इस तरह आगे जो पहेला खड़ी प्रतिमाका मान कहा और यह दूसरा मान बैठी प्रतिमाका जानना।

प्रासाद गज	बैठी प्रतिमा मान अंगुल	खड़ी प्रतिमा मान अंगुल	प्रासाद गज	बैठी प्रतिमा मान–अंगुल	खड़ी प्रतिमा मान अंगुल	प्रासाद गज	बैठी प्रतिमा मान अंगुल	खड़ी प्रतिमा मान अंगुल
१	६	११	६	३०	४५	२०	५२	६७
२	१२	२१	७	३३	४७	३०	६२	७३
३	१८	३१	८	३६	४९	४०	७३	८३
४	२४	४१	९	३९	५१	५०	८२	९३
५	२७	४३	१०	४२	५३			

गर्भे पंचाशकेत्र्यंशे ज्येष्ठे लिङ्गं तु मध्यगम्।
नवांशे पंच भागं स्याद्गर्भार्धे कनिष्ठादेय ॥अ० १३॥

ગર્ભગૃહના પાંચ ભાગ કરી ત્રણ ભાગના રાજલિંગની લંબાઈ જ્યેષ્ઠ માનની જાણવી તેના નવ ભાગ કરી પાંચ ભાગની લંબાઈનું લિંગ ઉદય મધ્યમાનનું અને ગર્ભગૃહના અર્ધભાગે રાજલિંગનું ઉદય તે કનિષ્ઠમાન જાણવું.

गर्भगृहके पाँच भाग कर तीन भागके राजलिङ्गकी लम्बाई ज्येष्ठमानकी जानना। उसके नौ भाग कर पाँच भागकी लम्बाईके लिङ्ग उदयको मध्यमानका और गर्भगृहके आधे भागमें जो राजलिङ्गका उदय है उसे कनिष्ठमान जानना।

गृहपूजा योग्य प्रतिमामान–आरंभ्यांङ्गुल उर्ध्वं पर्यंते द्वादशाङ्गुलम्।
गृहेषु प्रतिमा पूज्या नाधिके शश्यते बुधः॥

એક આંગળથી બાર આંગળ સુધીની દેવમૂર્તિ ગૃહપૂજાને યોગ્ય જાણવી તેથી અધિક મોટી મૂર્તિ બુદ્ધિમાને ઘરપૂજામાં ન રાખવી (મત્સ્ય પુરાણમાં અંગુઠાના પર્વથી નવ આંગળ સુધીનું પ્રમાણ ગૃહપૂજાને માટે આપેલું છે.)

एक अंगुलसे बारह अंगुल तककी देवमूर्तिको गृहपूजाके योग्य जानना। उससे अधिक बड़ी मूर्तिको बुद्धिमानको द्वारपूजामें न रखना चाहिये। (मत्स्य पुराणमें अंगुष्ठके पर्वसे नौ अंगुल तकका प्रमाण गृहपूजाके लिये दिया है।)

भाग ज्यादा रखना, यह ज्येष्ठमान इस तरह चातुर्मुख प्रासादकी प्रतिमाका प्रमाण जानना। ११.

पदमांशनीषदार्चा द्वारविस्तारं भाषितम्।
वितराग यदा लक्ष्मी नीकुलीश बुध मेव च ॥१२॥

ગર્ભગૃહના પદના વિભાગે કે દ્વારના વિસ્તાર પ્રમાણથી વિતરાગ=જીન લક્ષ્મીજી કે નકુલીશ કે બુદ્ધની પ્રતિમા રાખવી–૧૨.

गर्भगृहके पदके विभागमें या द्वारके विस्तार प्रमाणसे वितराग–जीन लक्ष्मीजी या नकुलीश या बुद्धकी प्रतिमा रखना। १२.

उच्छ्रये यत्र पीठस्य त्रिंशता परिभाजिते।
एकोशं भूगतं कार्यं त्रिभागः कण्ठपीठिका ॥१३॥
भागार्द्धं मुखपट्टं च स्कन्ध सार्द्धत्रयोन्नतः।
स्कन्धस्य पट्टिकावैस्याद् भागैकं चान्तरपत्रिका ॥१४॥
कर्णं सार्द्धं द्वयं वैस्याद् भागैकं चिप्पिका मता।
द्विभागं चान्तः पत्रकं कपोताली द्विसार्द्धिका ॥१५॥
सार्द्धं पंच ग्रासपट्टिः कर्तव्या विधिपूर्वकम्।
अर्धे मुखपट्टिकाख्या त्रिभागं कर्णशोभनम् ॥१६॥
अर्धः स्कन्धपट्टिः कार्या चतुर्भागश्च स्कन्धकः।
क्षोभणाश्चष्टभागैः कर्तव्यं तदशंकितैः ॥१७॥

વિભાગ
જમીનમાં
કંઠપટ્ટી
મુખપટ્ટી
સ્કંધ જાડંબો
અંધારી
કર્ણીકા
ચીપ્પીકા
અંતરપત્ર
કેવાળ
ગ્રાસપટ્ટી
મુખપટ્ટી
કર્ણીકા
સ્કંધપટ્ટિ
સ્કંધ

દેવસ્થાપન નીચેની પીઠિકા=પબાસણ–સિંહાસનની ઊંચાઈ (જે ભાગે આવતી હોય તેના) ના ત્રીસ ભાગ કરવા. તેમાં એક ભાગ ભૂમિમાં–ત્રણ ભાગ કંઠપટ્ટી અર્ધા ભાગની મુખપટ્ટી, સાડાત્રણ ભાગનો સ્કંધ (ગલતો, જાડંબો) કરવો (તેમાંથે અરધા ભાગનો કંદ કાઢવો) તે પર અરધા ભાગની અંધારી–તે પર કર્ણી અઢી ભાગની–તે પર એક ભાગની ચીપ્પીકા કરવી–તે પર બે ભાગનું અંતરપત્ર–કેવાળ અઢી ભાગનો–તેના પર ગ્રાસપટ્ટી સાડાપાંચ ભાગની વિધિથી કરવી. અરધા ભાગની મુખપટ્ટી–અંધારી કરવી, ત્રણ ભાગની કર્ણી કરવી. તે પર અરધા ભાગની સ્કંધપટ્ટી=કંદ અને સૌથી ઉપર સ્કંધક. ગલતો ચાર ભાગનો કરવો. આ બધા થરોમાં અંતરપત્રથી કંઠપટ્ટીનો ઘાટ આઠ ભાગ ઊંડો

બેસાડવો એ રીતે સિંહાસન અંકિત કરવું. ૧૩-૧૪-૧૫-૧૬-૧૭.

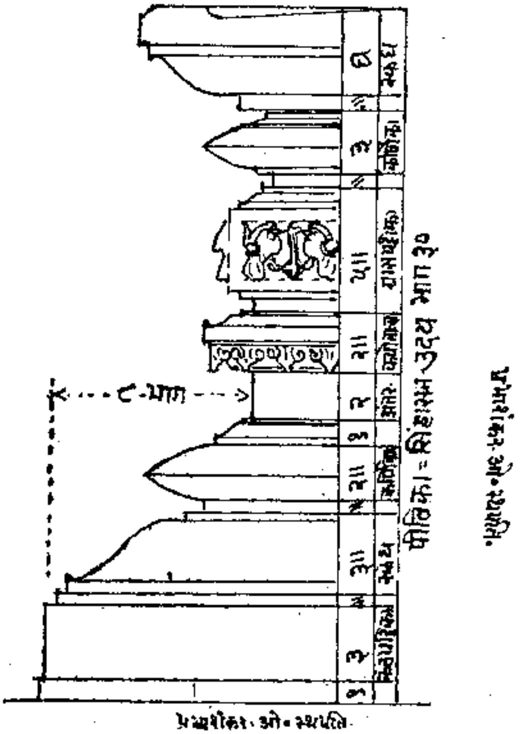

देव सिंहासनः पीठ—उदय विभाग

देवस्थापनकी नीचेकी पीठिका—सिंहासनकी ऊंचाई (जिस भागमें आवें उसके) के तीस भाग करना। इनमें एक भाग भूमिमें—तीन भाग कण्ठपट्टी, आधे भागकी मुखपट्टी, साढ़े तीन भागका स्कंध (गलता—जाडंबा) करना (उसमेंसे आधे भागका कंद निकालना।) उसके पर आधे भागकी अंधारी, उसके पर कणी ढाअी भागकी, उसके पर एक भागकी चिप्पिका करना। उसके पर दो भागका अंतरपत्र—करना केवाल ढाअी भागका, उसके पर ग्रासपट्टी साढ़े पाँच भागकी विधिसे करना। आधे भागकी मुखपट्टी अंधारी करना। तीन भागकी कर्णी करना, उसके पर आधे भागकी स्कंधपट्टी—कंद और सबसे उपर स्कंधक गलता चार भागका करना। इन सब स्तरोंमें अंतरपत्रसे कंठपट्टीके घाटको आठ भाग गहरा बिठाना इसीतरह सिंहासनको अंकित करना। १३—१४—१५—१६—१७.

इति श्री विश्वकर्मा कृते क्षीरार्णवे नारद पृच्छीयां प्रतिमा लिङ्गपीठ मानधिकारे शताग्रे दशमोऽध्याय ॥११०॥ क्रमांक अ० १२

ઈતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવે નારદમુનિના સંવાદરૂપ પ્રતિમા, લિંગ અને પીઠના માનનો અધિકાર શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો દશમો અધ્યાય-૧૧૦ ક્રમાંક અ૦ ૧૨

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णवमें नारदमुनिके संवादरूप प्रतिमा, लिङ्ग और पीठके मानका अधिकार शिल्पविशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुराकी रची हुअी सुप्रभा नामकी भाषा टीका का अेकसौ दसवाँ अध्याय। ॥११०॥ (क्रमांक अ० १२)

॥ अथ देवता दृष्टिपद स्थापन ॥

क्षीरार्णव अ० १११–क्रमांक अ० १३

उच्छ्रयं द्वांत्रिशत् भागं द्वार मान विशेषतः
(अधःतै अष्ट भागं च शिवस्थानं च निश्चलं ॥ १ ॥)
हरश्चदशमे भागे द्वादशे जलशायिते ।
मातरस्य द्वयाधिक्यै यक्ष षोडशान्विते ॥ २ ॥
अष्टादशैव कर्तव्यं उमारुद्राश्रिया हरिं ।
विंशमे ब्रह्मयुग्मंच तत्र दुर्गाअगस्तादय ॥ ३ ॥
एवं विधेयप्रकर्तव्या नारदादि मुनीश्वराः ।

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. ગર્ભગૃહના દ્વારની ઊંચાઈના બત્રીશ ભાગ કરવા. નીચેના આઠ ભાગ શિવસ્થાનના જાણવા નીચેથી આઠ ભાગમાં શિવલિઙ્ગ બેસાડવા, દશમે ભાગે, હરઃ શીવઃ, બારમા ભાગે શેષ શાયિની દષ્ટિ રાખવી; ચૌદમા ભાગે માતૃકાઓની; સોળમા ભાગે યક્ષની દષ્ટિ રાખવી. અઢારમા ભાગે–ઉમા રૂદ્ર–લક્ષ્મી અને વિષ્ણુની અને બ્રહ્મા-સાવિત્રીનું વીશમા ભાગે તેમજ દુર્ગા અગસ્તાદય નારદ આદિ મુનિની દષ્ટિએ વિધિથી એટલે વીશમે ભાગે રાખવી. ૧–૨–૩–૪.

विश्वकर्मा कहते हैं–गर्भगृहके द्वारकी ऊँचाईके बत्तीस भाग करना। नीचे का आठ भाग शिवलिङ्ग का स्थान का समझना उम्बरेसे दस भाग हर शिव बारहवें भागमें शेषशायीकी दृष्टि रखना। चौदहवें भागमें मातृकाओंकी। सोलहवें भागमें यक्षकी दृष्टि रखना। अठारहवें भागमें उमारूद्र–लक्ष्मी और विष्णु की। ब्रह्मा और सावित्रीका बीसवें भागमें और दुर्गा अगस्त्यादय नारद आदि मुनिकी दृष्टि इस विधिसे अर्थात् बीसवें भागमें रखना। १–२–३–४.

एकविंशे भवेक्लक्ष्मीश्चतुर्विंशे सरस्वती ॥ ४ ॥
पंच विंशे जिनस्थानं षड्विंशेचंद्रमेव च ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथारुद्रः सूर्यश्च सप्तविंशतिः ॥ ५ ॥
भैरवश्चंडिकाश्चैव एकोनत्रिंशदेशके ।
तत्पदंच परेशून्यं भूतप्रेतादि राक्षसा ॥ ६ ॥

१ કોઈ પ્રતોમાં ત્રિશત્–ત્રીશ ભાગ કહ્યા છે. પણ તે કદાચ અશુદ્ધ હોય–ત્રિશત् भाग कोइ प्रतमें कहा है मगर वो अशुद्ध प्रत होगी

એકવીશમા ભાગે લક્ષ્મીની દૃષ્ટિ, ચોવીશમા ભાગે સરસ્વતી (અને ગણેશની) પચ્ચીશમા ભાગે જિન તીર્થંકર, છવ્વીસમા ભાગે ચંદ્રની, સત્તાવીશમા ભાગે બ્રહ્મા વિષ્ણુ અને રૂદ્રની અને સૂર્યની મૂર્તિની, ઓગણત્રીસમા ભાગે ભૈરવ અને ચંડિકાની દૃષ્ટિ રાખવી. તે ઉપરના ત્રણ શૂન્ય ભાગમાં ભૂત પ્રેત અને રાક્ષસની દૃષ્ટિ રાખવી.

इक्कीसवें भागमें लक्ष्मीकी दृष्टि, चौवीसवें भागमें सरस्वती (और गणेशकी) पच्चीसवें भागमें जिन तीर्थंकर, छब्बीसवें भागमें चंद्रकी, सत्ताबीशवें भागमें ब्रह्मा विष्णु और रूद्रकी और सूर्यकी मूर्तिकी और उनतीसवें भागमें भैरव और चंडिकाकी दृष्टि रखना। उसके उपरके तीन शून्य भागमें भूत प्रेत और राक्षसकी दृष्टि रखना। ४–५–६.

द्वारोच्छ्रयोऽष्टधाभक्तं ऊर्ध्वभागं परित्यजेत्।
सप्तमा सप्तमे भागे तस्मिन् दृष्टिस्तु शोभना ॥७॥

દ્વારની ઊંચાઈના આઠ ભાગ કરી ઉપરનો આઠમો ભાગ તજી દેવો. અને સાતમા ભાગના ફરી આઠ ભાગ કરી તેના સાતમા ભાગે દેવોની દૃષ્ટિ રાખવી તે શુભ છે.

द्वारकी ऊँचाईके आठ भागकर उपरके आठवें भागको छोड देना। और सातवें भागके फिर आठ भागकर उसके सातवें भागमें देवोंकी दृष्टि रखना, यह शुभ है। ७.

ક્ષીરાર્ણવની કેટલીક પ્રતોમાં "उच्छ्रयं त्रिशतद्वारं" આવો ત્રિશ ભાગનો પાઠ મળે છે પરંતુ એક જૂની આધારભૂત પ્રતમાં શુદ્ધપાઠ અને ઘટતા બે પદોની ત્રુટિ પણ મળી આવી–'उच्छ्रयं द्वाविंशत् भाग' નો સાચો પાઠ મળ્યો ને પહેલાં શ્લોકના પાછલા બે પદો अधस्तै अष्ट भागं च शिव स्थानं च निश्चलं ॥१॥ દીપાર્ણવ ગ્રંથના દૃષ્ટિપદ વિભાગ આ ગ્રંથના થોડા થોડા ફેરફાર સાથે મળે છે પરંતુ તે ફેરફાર વધુ ભાગે અશુદ્ધિના આભારી હોય! ૧૮ ભાગો બ્રહ્મા યુગ્મને લઈ ૧૯મા ભાગે બુધ ચિત્ર લેપને ૨૦માં ભાગે દુર્ગા નારદાદિ મુનિ દીપાર્ણવમાં કહ્યાં છે. જિન તીર્થંકર ૨૧મા ભાગે લક્ષ્મી સાથે લીધેલ છે જ્યારે આ ગ્રંથમાં ૨૫મા ભાગે જિનનું સ્વતંત્ર દૃષ્ટિ સ્થાન કહ્યું છે. ક્ષીરાર્ણવની કેટલીક પ્રતોમાં 'पंचविंशे घनस्थान'નો અશુદ્ધ પાઠ મળે છે પરંતુ ઉપરોક્ત આધારભૂત પ્રતમાંથી घनस्थानने बदले जिनस्थानનો પાઠ મળી આવ્યો છે તે તે સાચો પાઠ છે.

દૃષ્ટિસૂત્ર વિષયમાં અપરાજિત સૂત્ર સંતાન, ઠક્કુરફેરૂ વાસ્તુસાર, અને આ૦ વસુનંદી કૃત પ્રતિષ્ઠાસાર જ્ઞાન રત્નકોષ દેવતામૂર્તિ પ્રકરણમાં મતમતાંતરો છે. अपराजित सूत्र १३७માં ચોસઠ ભાગ દ્વારોદયના કહ્યા છે. તેમાં લિંગ ૧૮ ભાગ સુધીમાં, ૨૭મા ભાગે જળશાયિન ૩૭ ઉમારૂદ્ર, ૪૯ ગણેશ સરસ્વતી અને ૫૫મા ભાગે બ્રહ્મા વિષ્ણુ રુદ્ર અને જિનની દૃષ્ટિ રાખવાનું કહ્યું છે. ઠક્કુર ફેરુ વાસ્તુસારમાં દ્વારના ઉદયના દશભાગ કરી પહેલા ભાગમાં

उर्ध्वदृष्टि विनाशाय अधो च भोग हानि च ।
सुखदा सर्वकालेषु समदृष्टि न संशयः ॥८॥

દૃષ્ટિ સ્થાનથી જો ઊંચી દૃષ્ટિ રાખે તો વિનાશ થાય અને નીચી દૃષ્ટિ રાખે તો સમૃદ્ધિનો નાશ થાય માટે સમસૂત્રમાં સરખી, વિભાગે સૂત્રે દૃષ્ટિ રાખવાથી સર્વ કાળમાં સુખ જ રહે તેમાં સંશય ન જાણવો. ૮.

दृष्टि स्थानसे जो ऊँची दृष्टि रखें तो विनाश होता है, और नीची दृष्टि रखें तो समृद्धिका नाश होता है । इसलिये समसूत्रमें समान विभागमें सूत्रमें दृष्टि रखनेसे सर्वकालमें सुखही रहे उसमें जरा भी संशय न जानना । ८.

શિવલિંગ ત્રીજામાં શેષ શાયી, સાતમામાં શાસનદેવ (યક્ષયક્ષણી)ની રાખવી. હવે તે ૭ અને સાતમા ભાગ વચ્ચે દશભાગ કરી સાતમા ભાગે જિન તીર્થંકરની દૃષ્ટિ રાખવાનું કહે છે. આઠમા ભાગે ચંડી ભૈરવ અને નવમા ભાગે છત્ર ચામર ધારી ઇંદ્રાદિ દેવો, દીપાર્ણવ અને ક્ષીરાર્ણવના દૃષ્ટિ વિષયના પાઠોમાં નજીવો ફેરફાર છે. ઠક્કુર ફેરૂ વાસ્તુસાર દશભાગ કરી જિનદૃષ્ટિ સાતમાં ભાગથી પણ નીચે રાખવાનું કહે છે. તેના વિભાગ કોષ્ટકમાં આપેલ છે. દિગંબરાચાર્ય વસુનંદીકૃત પ્રતિષ્ઠાસારમાં કહે છે.

विभज्य नवधा द्वारं तत् षड्भागानधस्त्जेत् ।
ऊर्ध्वे द्वौ सप्तमं तद्वद् विभज्य स्थापयेद् दशाम् ॥

દ્વારની ઊંચાઈના નવ ભાગ કરી નીચેના છ ભાગ અને ઉપરના બે ભાગ છોડી દેવા, બાકીનો સાતમો ભાગ રહ્યો તેના નવ ભાગ કરી તેના સાતમે ભાગે જીન પ્રતિમાની દૃષ્ટિ રાખવી. આમ બેઉ જૈન મત પણ દૃષ્ટિ વિષયમાં એકમત નથી. મતભેદ છે. આ મત મતાંતર જોતાં એક દૃષ્ટાંત રૂપે જો ૨ ગજ ૧૭ આંગળના દ્વારની ઊંચાઈ લઈ જિનદેવની દૃષ્ટિ દૃષ્ટાંત રૂપે ગણતાં—અપરાજિત સૂત્રની દૃષ્ટિ ઉત્તરંગથી ૯ આંગળ ૧। દો. નીચી

ઠકુર ફેરવાસ્તુસારના મતે	૧૮	—	०	,,
આ૦ વસુનંદીના મતે	૧૬	—	०॥	,,
દીપાર્ણવ	૨૨	—	૨॥।	,,

આ રીતે કોઈ જૂના સ્થળે દૃષ્ટિ નીચી જણાતી હોય તો દોષ જોતાં પહેલાં શાસ્ત્રોક્ત નિર્ણય કરવો. સર્વ સામાન્ય મત આઠમા ભાગના સાતમા ભાગના આઠ ભાગ કરી સાતમા ભાગનું દૃષ્ટિ સૂત્ર અપરાજિત સૂત્ર સંતાનના ૬૪ ભાગના મતને મળતું છે. અને તે વર્તમાનમાં વિશેષ વ્યવ્હારમાં છે. બીજો એક મતભેદ વર્તમાનમાં વિદ્વાનોમાં પ્રવર્તે છે.

દૃષ્ટિ સૂત્ર જે આવ્યું હોય તેના ખસરે જ આંખની કીકીના મધ્યનું સૂત્ર એકસૂત્ર માં રાખવું જોઈએ. અને તેને શિલ્પી વર્ગ અનુસરે છે. હમણાં જૈન વિદ્વાનો સપ્તમાસપ્તમે નો અર્થ સાતમામાં એટલે સાતમાની અંદર નીચે એવો અર્થ કરે છે, જ્યારે શિલ્પીઓ સાતમાના સાતમે જ જે વિભાગ આવ્યો ત્યાં જ દૃષ્ટિ રાખવાનું માને છે. જૈન વિદ્વાનો તેના સિંહધ્વજગજાયે દૃષ્ટિ રાખવા નીચે ઉતારવાનું કહે છે—પરંતુ તે આયમેળ મંડન સૂત્ર-

अष्टाविंशतिर्भागानि गर्भगृहार्धे भागतः ।
प्रथमे च शिवस्थाप्यं किंचिद्विशानमाश्रितम् ॥ ९ ॥
कर्णपिप्पलिकासूत्रं भुजगर्भेतु संस्थितम् ।
पादगुल्फ गर्भसूत्रे पदगर्भेषु देवता ॥१०॥

धार सिवायना कोई जूना ग्रंथमां आयमेळे दृष्टि राखवानुं कहेता नथी. वृक्षार्णव अ० १४७ मां दृष्टिसूत्र एक वालाग्रपणु न लोपवानुं कहे छे जो ते सूत्र चाळवे तो दोष कह्यो छे.

कार्यसिद्धि समये शिल्पीओए आवा मतमतान्तरना वितंडावादमां न उतरतां जैन विद्वानो पोताना मतनो आग्रह सेवे त्यारे तेम करवुं.

१. क्षीरार्णवकी कई प्रतोंमें 'उच्छ्रय त्रिंशत् द्वार' ऐसा तीस भागका पाठ मिलता है। परंतु एक पुरानी आधारभूत प्रतमें शुद्धपाठ और कम दो पदोंकी त्रुटी भी मिली है। उच्छ्रयं द्वात्रिंशत् भाग—यह सच्चा पाठ मिला, उसके पहले श्लोकके पिछले दो पदों अधस्तै अष्टभागं च शिवस्थानं च निश्चलं ॥१॥

दीपार्णव ग्रंथके दृष्टिपद विभाग इस ग्रंथके बहुत थोडे तफावतके साथ मिलता है परंतु वह तफावत ज्यादा भागमें अशुद्धिके आभारी है। १८ वे भागमें ब्रह्मा युग्मके कारण १९ वें भागमें बुध, चित्रलोपको बीसवें मार्गमें दुर्गाको नारदादि मुनि दीपार्णवमें कहे हैं। जिन तीर्थंकर २१ वे भागमें लक्ष्मीके साथमें लिये हुए हैं। इस ग्रंथमें २५ वे भागमें जिनका स्वतंत्र दृष्टि स्थान कहा है। क्षीरार्णवकी कई प्रतोंमें "**पंचविंश धनस्थान**"का अशुद्ध पाठ मिलता है। परंतु उपरोक्त आधारभूत प्रतमेंसे धनस्थानके बदले 'जिन स्थान'का शुद्ध पाठ मिला है। यह पाठ सच्चा है।

दृष्टि सूत्र विषयमें अपराजित, सूत्र संतान, ठक्कुरफेरू वास्तुसार, आ० वसुनंदी कृत प्रतिष्ठासार, ज्ञानरत्नकोश, देवता मूर्ति प्रकरणमें मतमतांतर है। अपराजित सूत्र १३७ में द्वारोदयके चौसठ भाग कहे हैं। उसमें लिङ्ग अठारह (१८) भाग तक २७ वें भागमें जलशायिन, ३७ उमारूद्र, ४९ गणेश सरस्वती और ५५ वें भागमें ब्रह्मा विष्णु, रूद्र और जिनकी दृष्टि रखनेके लिये कहा गया है।

ठक्कुर फेरू वास्तुसारमें द्वारके उदयके दस भाग कर, पहले भागमें शिव लिङ्ग तीसरेमें शेष शायी सातवेंमें शासदेव = (यक्षयक्षिणी) की रखना। अब वह छः और सातवें भागके बिच दस भागकर सातवें भागमें जिन तीर्थंकरकी दृष्टि रखनेका कहा है। आठवें भागमें चंडी भैरव और नौवें भागमें छत्र चामरधारी इन्द्रादि देवों दीपार्णव और क्षीरार्णवके दृष्टि विषयके पाठोंमें नहिवत् तफावत है।

ठक्कुर फेर वास्तुसारमें दस भागकर जिन दृष्टिको सातवें भागसे भी नीचे रखनेको कहते हैं। उसके विभाग कोष्टकमें दिये हुए हैं। दीगम्बराचार्य वसुनंदी कृत प्रतिष्ठासारमें कहते हैं।—

"द्वारकी ऊँचाईके नौ भाग कर, नीचेके छः भाग और उपरके दो भाग छोड देना। बाकीका सातवाँ भाग जो रहा, उसके नौ भाग कर उसके सातवें भागमें प्रतिमाकी दृष्टि रखना।" इस तरह दोनों जैन मत भी दृष्टि विषयमें एक सूत्रमें नहीं है, मतभेद हैं।

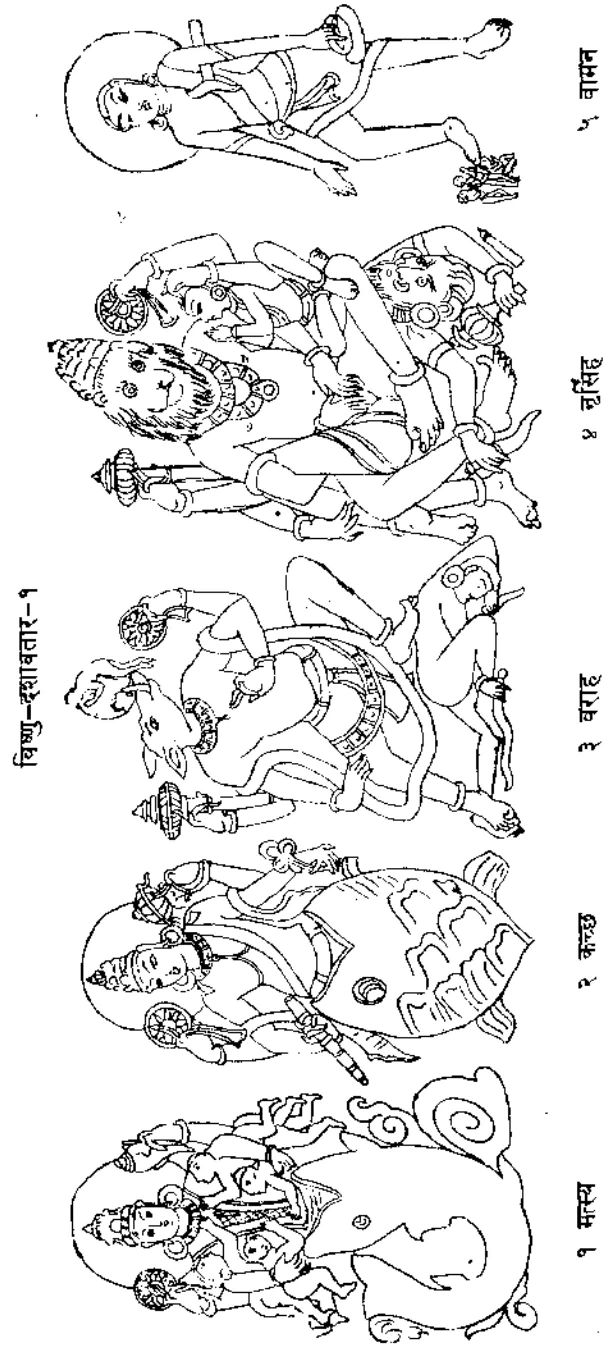

ગર્ભગૃહમાં દેવ સ્થાપન કરવાના વિભાગ કહે છે. પ્રાસાદના ગર્ભગૃહના બે ભાગ કરી દ્વાર તરફનો ભાગ છોડી મધ્યગર્ભથી પાછળ ભિંત સુધીના અર્ધ ભાગમાં અઠ્ઠાવીશ ભાગ કરવા. તેમાં મધ્ય ગર્ભના પ્રથમ ભાગમાં શિવલિંગ મધ્યે સ્થાપન કરવા. પરંતુ તે કંઈક ઈશાન તરફ (પા—અર્ધો દોરા જેટલા) સ્થાપન્ કરવા અન્ય મૂર્તિઓને કાનના મધ્ય ગર્ભે કે બાહુના ગર્ભે કે પગની ઘુંટીના ગર્ભે એમ કહેલા પદના ગર્ભે દેવોની સ્થાપના કરવી. ૯—૧૦.

गर्भगृहमें देवस्थापन करनेके विभाग कहते हैं। प्रासादके गर्भगृहके दो भाग कर द्वारकी तरफके भागको छोड़कर मध्यगर्भसे पीछे दिवार तकके अर्ध भागमें अठ्ठाईस भाग करना। उसमें मध्यगर्भके प्रथम भागमें शिवलिङ्गको मध्यमें स्थापन करना। लेकिन उसे कुछ इशानकी तरफ (पा, आधे धागेके बराबर) स्थापन करना। अन्य मूर्तियोंको—कानके मध्यगर्भमें या बाहुके गर्भमें या पाँवकी घुंटीके गर्भमें इस तरह बताये हुए गर्भमें देवोंकी स्थापना करना। ९—१०.

यह मतमतांतर देखते, एक दृष्टांत रूपमें जो २—गज १७—आंगुलके द्वारकी ऊँचाई लेकर जिनदेवकी दृष्टिको दृष्टांत रूपमें गिनते—

द्वितीये हेमगर्भस्तु नकुलीशस्तृतीयके ।
चतुर्थे चैव सावित्री रूद्रः स्यात् पंचमे पदे ॥११॥
षष्ठि स्यात् षड्वक्त्रस्तु सप्तमे च पितामहः ।
अष्टमे वसुदेवश्च नवमे च जनार्दनः ॥१२॥
दशमे विश्वरूपस्तु अग्निदेवं एकादशे ।
द्वादशे भास्करश्चैव दुर्गास्याश्च त्रयोदशे ॥१३॥
चतुर्दशे विघ्नराजो ग्रहाणां दशपंचके ।
षोडशं मातरो देवि गणसप्तदशौ तथा ॥१४॥
भैरवं च तदग्रे च क्षेत्रपाल तथापरे ।
विंशति यक्षराजं च हनुमतं पदाधिके ॥१५॥
द्वाविंशे मृगघोरिंद्र ईश्वरं च पदाधिके ।
[चतुर्विंशे भवेत् दैत्यो राक्षसश्च पदाधिके]॥१६॥
[पिशाचश्चैव षड्विंशे भूतश्चैव तथा परे]।
तस्याग्रे पदं शून्यं क्रमेण स्थित देवता ॥१७॥

બીજા ભાગે બ્રહ્મા શાલિગ્રામ, ત્રીજા ભાગે નકુલીશ (પાશુપત શૈવ) ચોથા ભાગે સાવિત્રી, પાંચમા ભાગે રૂદ્ર, છઠ્ઠા ભાગે કાર્તિક સ્વામી, સાતમા ભાગે બ્રહ્મા, આઠમા ભાગે વસુદેવ, નવમા ભાગે જનાર્દન, દશમા ભાગે વિશ્વરૂપ (એમ આઠથી દશ ભાગમાં વિષ્ણુ સ્વરૂપ) અગ્યારમાં ભાગે અગ્નિદેવ, બારમે સૂર્ય, તેરમે ભાગે દુર્ગા, ચૌદમે ગણપતિ, પંદરમે ગ્રહો, સોળમે ભાગે માતૃકાદેવીઓ, સત્તરમે ભાગે ગણો–અઢારમા ભૈરવ, ઓગણીશમા ભાગે ક્ષેત્રપાળ, વીશમા ભાગે યક્ષરાજ એકવીશમા ભાગે મૃગઘોરેન્દ્ર, ત્રેવીશમા ભાગે અઘોર શિવ, ચોવીશમા ભાગે દૈત્ય, પચ્ચીસમે રાક્ષસ, છવ્વીસમે પિશાચ, સત્તાવીશમે ભાગે ભૂતની

		अंगुल	धागा	नीची
अपराजित सूत्रकी दृष्टि उत्तरंगसे	...	९	११	,,
ठक्कुरफेर वास्तुसारके मतसे	...	१८	०	,,
आ० वासुनंदीके मतसे ...	...	१६	१॥	,,
दीपार्णव ग्रंथका मतसे ...	...	२२	२॥	,,

इस तरह कोई पुराने स्थल पर दृष्टि नीची दिखती हो तो दोष देखनेसे पहले शास्त्रोक्त निर्णय करना । सर्वसामान्य मत–आठवें भागका–सातवें भागके मतको मिलता जुलता है । और वह वर्तमानमें विशेष व्यवहारमें हैं ।

મૂર્તિની સ્થાપના કરવી. એથી બીજા પદો શુન્ય જાણવા. આ રીતે ગર્ભગૃહના અઠ્ઠાવીશ ભાગના મંડળોમાં મૂર્તિ સ્થાપનાનો ક્રમ જાણવો. ૧૧ થી ૧૭. [ ] માં દીધેલ ૧૬મો શ્લોક એક શુદ્ધ પ્રતિમાંજ ફક્ત આપેલ છે બીજી પ્રતોમાં નથી.

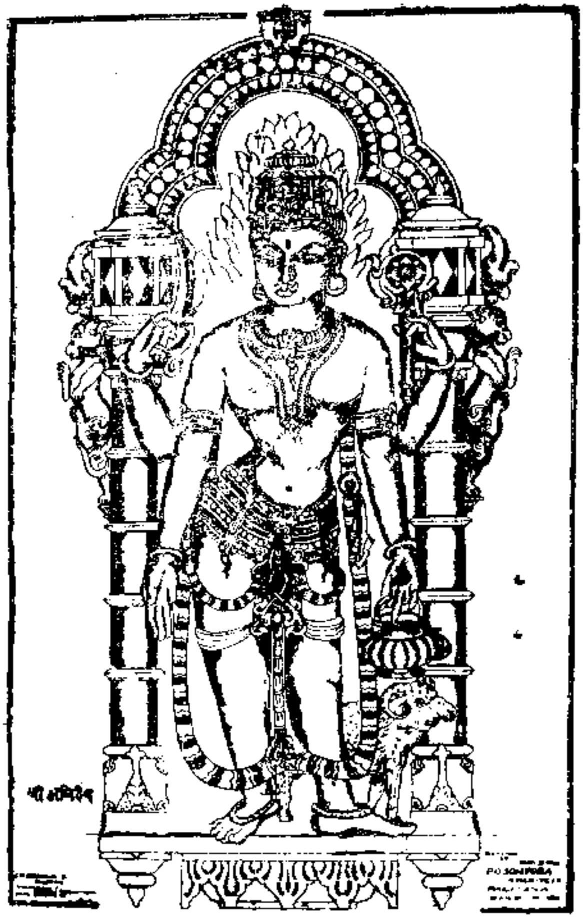

तोरण-गजसिंह विरालिका युक्त अग्निदेव ।

दूसरे भागमें ब्रह्मा, शालीग्राम, तीसरे भागमें नकुलीश (पाशुपत शव) चाथे भागमें सावित्री, पाँचवें भागमें रूद्र, छट्ठे भागमें कार्तिक स्वामी, सातवें भागमें ब्रह्मा, आठवें भागमें वासुदेव नवमें भागमें जनार्दन विष्णु स्वरूप, दशमा भागे विश्वरूप, ग्यारहवें भागमें अग्निदेव, बारहवें भागमें सूर्य, तेरहमें देवियाँ, चौदवें गणेश, पंदरमें ग्रहो, सोलहवें मातृकादेवी, सत्रहवें भागमें गणों, अठारहवें भागमें भैरव, उन्नीसवें भागमें क्षेत्रपाल, बीसवें भागमें यक्षराज, इक्कीसवें भागमें हनुमानजी, बाईसवें भागमें मृगधोरेन्द्र, तेईसवें भागमें अघोरशिव, चौबीसवें भागमें दैत्य, पचिशवें राक्षस, छब्बीसवें पिशाच, सत्तावीसवें भागमें भूतकी मूर्तिकी स्थापना करना। इससे दूसरे पदोंको शून्य जानना। इस तरह गर्भगृहके अट्ठाईश भागके मंडलोंमें मूर्तिस्थापनाका क्रम जानना। ११ से १७ [ ] कौसमें दीया हुआ १६ वे श्लोक शुद्ध प्रतिमें फक्त है।

वर्तमान विद्वानोंमें एक मतभेद प्रवर्तता है, दृष्टिसूत्र जो आया हो उसके खसरेज आँखकी किकीके मध्यका सूत्र एक सूत्रमें रखना चाहिये। और उसे शिल्पी वर्ग अनुसरता है। अभी जैन विद्वानों "**सप्तमा सप्तमें**"का अर्थ सातवेंमें अर्थात् सातवेंकी अंदर नीचे ऐसा अर्थ करते हैं। जब शिल्पियों सातवेंका सा वें ही जो विभाग आया हो वहां ही दृष्टि रखनेका मानते हैं। जैन विद्वानों उसमें ध्वज, गज, सिंह आय मीलानेकी व्यर्थ कोशिश करते हैं और दृष्टि निचा उतारनेके लिये कहते हैं। परंतु यह आयमेल मण्डन सूत्रधारके सिवा कोसी भी पुराने ग्रंथमें आय मीलानेका कहा नहीं है। वृक्षार्णव अ० १४७ में दृष्टिसूत्रको एक वालाग्र भी न लोपरेके लिये कहते हैं। जो उसका लोप करे तो दोष कहा है।

कार्य सिद्धिके समय शिल्पियोंको ऐसे मत मतान्तरके वितंडावादमें न उतरके जैसे विद्वानों अपना मतका आग्रह करे तब वैसा करना।

(पेज १२९ की टीका चालु)

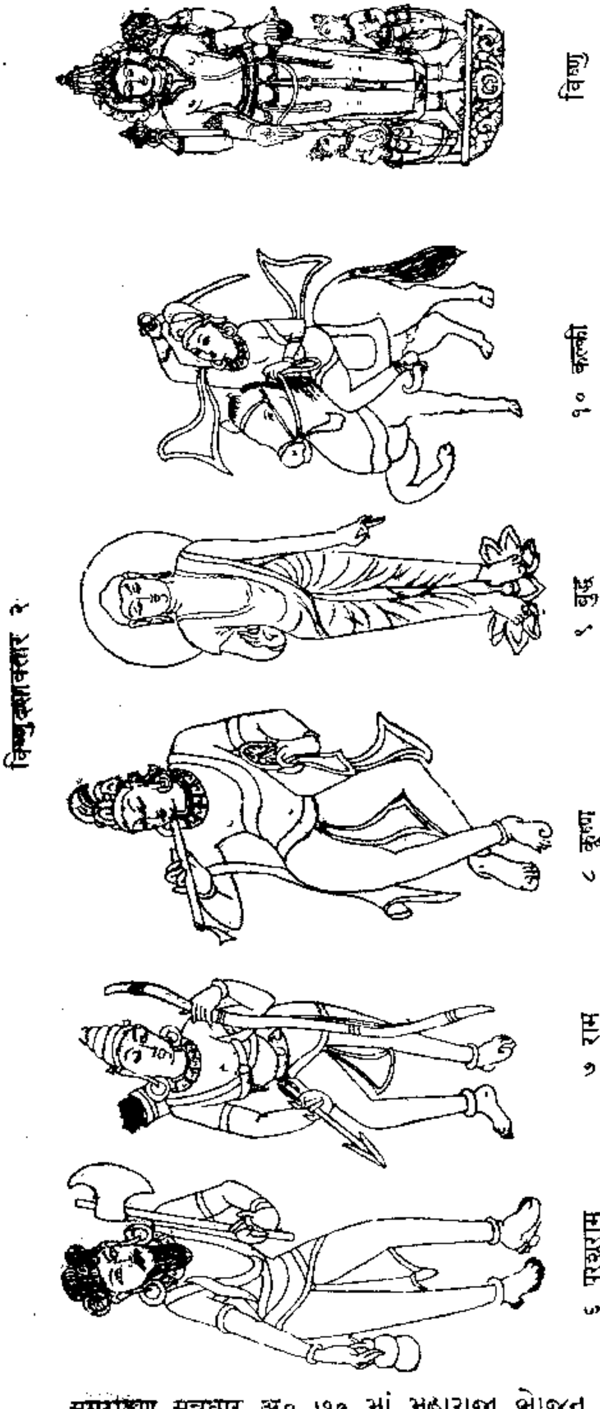

(કૌંસમાં આપેલા અને ૧૬ મા શ્લોકનો ઉત્તરાર્ધ અને ૧૭ મા શ્લોકનો પૂર્વાર્ધ ક્ષીરાર્ણવની કેટલીક પ્રતોમાં નથી.)

દેવ પ્રતિમા સ્થાપન ૫૬ વિભાગ – સંબંધમાં ક્ષીરાર્ણવ દીપાર્ણવ, જ્ઞાન રત્નકોશ, અને સૂત્ર સંતાન અપરાજિત–આ સર્વ ગ્રંથમાં એક મતે અઠ્ઠાવીશ ભાગનો મત સ્વીકારે છે. પરંતુ વાસ્તુરાજ ગર્ભગૃહના દશ ભાગ કહે છે, ઠક્કુર ફેરૂ વાસ્તુસાર પાંચ ભાગ કહે છે. देवतामूर्ति प्रकरणम् અને मयमतम् ૪૯ ભાગ કહે છે. समराङ्गण सूत्रधार દશ અને ૭ ભાગ કહે છે. અને સૂત્રધાર વિરપાલ વિરચિત प्रासाद तिलक પણ પાંચ ભાગ કહે છે.

દેવના મૂર્તિ પ્રકરણમાં–ગર્ભ ગૃહાર્ધના ઓગણ પચાસ ભાગ કરવા. તેમાં ગર્ભથી પહેલો ભાગ બ્રહ્માંશ–નવ ભાગ દેવાંશ, તે પછીના સોળ ભાગ માનુષાંશ અને તે પછીના ચોવીશ ભાગ પિશાંચક (મળી કુલ ૪૯ ભાગ થયા) બ્રહ્માંશમાં લિંગ સ્થાપના કરવી, બ્રહ્મા વિષ્ણુ સ્થાપન કરવા, મનુષાંશમાં સર્વ દેવ અને પિશાચકમાં માતર, યક્ષ, ગંધર્વ રાક્ષસ, ભૂત આદિની સ્થાપના કરવી. આ ઓગણ પચાસ વિભાગનું દેવતાપદ સ્થાપન દ્રવિડ ગ્રંથ मयमतम् માં પણ આપેલ છે.

समराङ्गण सूत्रधार અ૦ ૭૦ માં મહારાજા ભોજન દેવ કહે છે કે.

विष्णुस्थाने उमादेवी ब्रह्मस्थाने सरस्वती ।
सावित्री मध्यदेशे तु लक्ष्मी सर्वत्र दापयेत् ॥१८॥

भक्ते प्रासादगर्भार्धे दशधा पृष्ठ भागतः
पिशाच रक्षोदनुजाः स्थाप्यागंधर्वगुह्यकाः
आदित्यश्चंडिका विष्णु ब्रह्मेशानाः पदक्रमात् ।

समरांगण सूत्रधार

પ્રાસાદના ગર્ભગૃહના અર્ધમાં પછીત તરફના અર્ધ ભાગમાં દશ ભાગ કરવા તેની પછીતથી પહેલા ભાગમાં પિશાચ, બીજામાં રાક્ષસ, ત્રીજામાં દૈત્ય, ચોથામાં ગંધર્વ પાંચમા યક્ષ છઠ્ઠામાં સૂર્ય, સાતમામાં ચંડી દેવી, આઠમામાં વિષ્ણુ, નવમામાં બ્રહ્મા અને દશમામાં મધ્યે શિવલિંગની સ્થાપના કરવી એમ અનુક્રમે પદ સ્થાપના જાણવી. સૂત્રધાર રાજસિંહ કૃત वास्तुराज પણ દશભાગગ જુદી રીતે કહે છે.

गर्भार्द्धे दशभि र्भक्ते मध्येलिङ्गंन्यसेत्ततः
विधि हरिमुमा सूर्यं बुधं शक्रं जिनं तथा ॥
मातृगणेश गंधर्वान् यक्षान् क्षेत्रेशदानवान्
रक्षोग्रहान् क्रमान्मातृः पिशाचं र्भित्तिकावधि ॥ वास्तुराज

ગર્ભગૃહના પાછળના અર્ધભાગના દશ ભાગ કરવા. તેમાં મધ્યે ગર્ભે શિવલિંગની સ્થાપના કરવી. ૧. બ્રહ્મા. ૨. વિષ્ણુ ૩. ઉમા ૪. સૂર્ય. ૫. બુધ. ૬ ઈન્દ્ર ૭ જિન ૮ માત્ર ગણેશ ૯ ગંધર્વ યક્ષ અને ક્ષેત્રપાળ અને ૧૦ દશમા ભાગમાં દાનવ રાક્ષસ ગ્રહ ચંડી અને પિશાચની મૂર્તિઓની સ્થાપના અનુક્રમે કરવી. શ્રી જિનદત્ત સૂરિજીના નીતિશાસ્ત્રના ગ્રંથ विवेक विलास માં નીચે પ્રમાણે પાંચ ભાગ કહે છે.

प्रासादगर्भगेहार्धे भित्तितः पंचधाकृते
यक्षाद्याः प्रथमे भागे देव्यः सर्वे द्वितीयके ॥१॥
जिनार्क स्कंद कृष्णानां प्रतिमाः स्युस्ततोर्थके
ब्रह्मा चतुर्थ भागे स्याल्लिंगमीशस्य पंचमे ॥२॥

:विवेकविलास

પ્રાસાદના ગર્ભગૃહના અર્ધ ભાગના ભીત તરફના અર્ધમાં પાંચ ભાગ કરી પહેલામાં યક્ષ, બીજામાં સર્વ દેવદેવીઓ, ત્રીજામાં જિન, સૂર્ય, કાર્તિક સ્વામી અને કૃષ્ણ ચોથામાં બ્રહ્મા અને પાંચમા ભાગમાં બ્રહ્મા અને મધ્ય ગર્ભમાં શિવલિંગની સ્થાપના કરવી.

આ પ્રમાણે સમરાંગણના બીજા મતે પ્રાસાદ તિલક અને વિવેકવિલાસના મતે આસન એટલે પબાગણુ એવો અર્થ શિલ્પી વર્ગમાં પ્રવર્તે છે. પરંતુ ક્ષીરાર્ણવ દીપાર્ણવ અને અપરાજિત અને જ્ઞાનરત્નકોશ જેવા પ્રાચીન ગ્રંથો—પ્રતિમા સ્થાપનના વિભાગ કહે છે. તે દેવ પ્રતિમાનાં કાનના ગર્ભે, બાહુના ગર્ભે કે પગના ગર્ભે સ્થાપન કરવાનું સ્પષ્ટ કહે છે. બ્રહ્મા અને વિષ્ણુની મૂર્તિઓની સ્થાપના પ્રાચીન મંદિરોમાં તે રીતે જોઈએ છીએ તેમાં મૂર્તિ ફરતી ગર્ભગૃહમાં પણ પ્રદક્ષિણા ફરે તેટલી જગ્યા પાછળ રહે છે. પરંતુ જિન

वितरागो विघ्नराजे ये उकता जिनशासने।
मातृमंडलमध्ये तु देवीनां समस्तके ॥१९॥
पर्यंकासनोर्ध्वार्चा स्थान विष्णुरूपाणि यानिच।
विष्णुस्थाने जलशायी वराहस्तत्पदेस्थितः ॥२०॥

પ્રતિમા પાછળ આવી જગ્યા હજુ જોવામાં આવી નથી. જિન પ્રભુને આ સૂત્ર બંધ-બેસતું કદાચ ન હોય; તેમ પરંતુ પંક્તિબદ્ધ જિનાયતનમાં કે નાના ગર્ભગૃહમાં જો અર્ધના પાંચમા ભાગના પાંચમા ભાગના ત્રીજા ભાગે પ્રતિમાજી પધરાવવામાં આવે તો પૂજકોને હરવા ફરવાની જગ્યાની મુશ્કેલી ઉભી થાય. આથી શિલ્પી વર્ગ જૈન પ્રતિમા સ્થાપન માટે મંડન સૂત્રધારનો નીચેનો મત વધુ સ્વીકારે છે.

पदाधो यक्षभूताद्याः पट्टाग्रे सर्वदेवता।
तदग्रेवैष्णवं ब्रह्मा मध्येलिङ्गा शिवस्य च ॥७॥

प्रासाद मंडन ॥ अ० ६॥

ગર્ભગૃહના પાછલા પાટ ભારવટ નીચે યક્ષ ભૂતાદિ દેવો બેસાડવા. પાટ છોડીને આગળ બીજા દેવો બેસાડવા. તેનાથી આગળ બ્રહ્મા અને વિષ્ણુ અને મધ્યગર્ભે શિવલિંગની સ્થાપના કરવી. પાટ છોડીને જૈન પ્રતિમા પધરાવવાના સૂત્રને શિલ્પી વર્ગ વધુ પ્રામાણિક માને છે. અર્ધના પાંચ ભાગ કરી ત્રીજા ભાગે સિંહાસન પબાસણ કરવાનું પ્રમાણ માની તેમ કરે છે. જો કે મહારાજ ભોજદેવ સમરાંગણ સૂત્રધારમાં કહે છે કે ગર્ભના ૭ ભાગ કરી પાછલો ભીંત તરફનો છઠ્ઠો ભાગ છોડી પાંચમા ભાગમાં સર્વ દેવતાઓની સ્થાપના કરવાનું સ્થૂળ પ્રમાણ આપે છે તે કંઈક મંડનના મતને મળતું આવે. વ્યવહારમાં પ્રાસાદમંડનનો મત શિલ્પી વર્ગમાં પ્રચલિત છે. પાટ નીચે પ્રતિમાજીની અર્ધ ચોટી રાખી બીજો ભાગ પાટથી બહાર રાખવાની પ્રથાને આચાર્ય દેવ શ્રી વિજયનેમિ સુરીશ્વરજી અનુસરવાને જણાવતા.

देव प्रतिमा स्थापन पर विभागके संबंधमें क्षीरार्णव, दीपार्णव–ज्ञानरत्नकोश और सूत्र-संतान अपराजित इन सब ग्रंथोंमें अठ्ठाईस भागके मतका स्वीकार हैं। परंतु वास्तुराज गर्भगृहके दस भाग करता है। ठक्कुर फेर वास्तुसार विवेक विलास पाँच भाग कहता है। देवता मूर्ति प्रकरण और मयमतम् ४९ भाग कहते हैं। समराङ्गण सूत्रधार दस और छः भाग कहता है। और सूत्रधार विरपाल विरचित प्रासादतिलक भी पाँच भाग कहता है।

देवता मूर्ति प्रकरणमें–गर्भगृहार्धके उनचास भाग करना। उसमें गर्भसे प्रथम भाग ब्रह्मांश उसमें नौ भाग देवांश बादके सोलह भाग मनुषांश और उसके बादके उपर चौबीस भाग पिशाचक (मिलकर कुछ ४९ हुए) ब्रह्मांशमें, लिङ्ग स्थापना करना। देवांशमें ब्रह्मा विष्णुका स्थापन करना। मानुषांशमें सर्व देव और पिशाचकमें मातर यक्ष, गंधर्व, राक्षस, भूत आदिकी स्थापना करना। इन उनचास विभागका देवता पद स्थापन द्रविड ग्रंथ 'मयमतम्'में भी दिया हुआ है। "प्रासादके गर्भगृहकी दिवारके तरफके अर्ध भागमें दस भाग करना। उसकी दिवारसे पहले भागमें पिशाच, दूसरेमें राक्षस, तीसरेमें दैत्य, चौथेमें गंधर्व, पाँचवेमें यक्ष, छट्ठेमें सूर्य, सातवेंमें चंडी देवी, आठवेंमें विष्णु, नौवेंमें ब्रह्मा और दसवेंमें अर्थात् मध्यमें शिवलिङ्गकी स्थापना करना। इस तरह अनुक्रमसे पद स्थापनाका जानना" (समराङ्गण सूत्रधार) सूत्रधार

विष्णुरूपाणि सर्वाणि मत्स्यादि नवमेपदे ।
हरि शंकरे वराह मूर्ति-विष्णुस्थाने प्रदीयते ॥२१॥
अर्धनारीश्वरं देवं रूद्रस्थाने प्रकल्पयेत् ।
सप्तमे ब्रह्मसंस्थाने मिश्रमूर्ति संस्थापयेत् ॥२२॥

વિષ્ણુના ભાગે ઉમાદેવી. બ્રહ્માના ભાગે સરસ્વતી ને સાવિત્રીદેવી. બ્રહ્માના મધ્ય

राजसिंह कृत 'वास्तुराज' भी दस भागका अलग रीतसे कहता है। "गर्भगृहके पीछे के अर्ध भागके दस भाग करना। उसमें मध्यमें, गर्भमें शिवलिङ्गकी स्थापना करना। पहेले ब्रह्मा, २ विष्णुजी ३ उमा ४ सूर्य ५ बुध ६ इन्द्र ७ जिन ८ गणेश ९ गंधर्व यक्ष और क्षेत्रपाल और दसवें भागमें दानव राक्षस ग्रह चंडी और पिशाचकी मूर्तियोंकी स्थापना अनुक्रमसे करना।" ('वास्तुराज')

श्री जिनदत्त सूरिजीके नीतिशास्त्रके ग्रंथ 'विवेकविलास'में इस तरह पाँच भाग कहे हैं। "प्रासादके गर्भगृहके अर्ध भागकी दिवारकी तरफ अर्धमें पाँच भागकर पहलेमें यक्ष, दूसरेमें सर्व देव-देवियों, तीसरेमें जिन, सूर्य, कार्तिक स्वामी और कृष्ण, चौथेमें ब्रह्मा, और पाँचवें भागमें ब्रह्मा और मध्यगर्भमें शिवलिङ्गकी स्थापना करना।" (विवेक विलास)

इस तरह समराङ्गणके दूसरे मतमें प्रासाद तिलक और विवेकविलासके मतमें आसन अर्थात् पबागण ऐसा अर्थ शिल्पी वर्गमें प्रवर्तता है, परंतु क्षीरार्णव, दीपार्णव और अपराजित और ज्ञानरत्नकोश जैसे प्राचीन ग्रंथों प्रतिमा स्थापनके विभाग कहते हैं। इस देव प्रतिमाके कानके गर्भमें, बाहुके गर्भमें, या पाँवके गर्भमें स्थापन करनेके लिये स्पष्ट कहा गया है। ब्रह्मा और विष्णुकी मूर्तियोंकी स्थापना प्राचीन मंदिरोंमें उसी तरह देखते हैं। उसमें मूर्तिके फिरते गर्भ गृहमें भी प्रदक्षिणा करे इतनी जगह पीछे रहती है। परंतु जैन प्रतिमाके पीछे ऐसी जगह अभी देखनेमें नहीं आती है। जिन प्रभुको यह सूत्र लागु हो या न भी हो, लेकिन पंक्ति बद्ध जिनायतनमें या छोटे गर्भगृहमें जो अर्धके पाँच भाधके तीसरे भागमें प्रतिमाजीको बिठाया जाय तो पूजकोंको चलने फिरनेकी जगहकी मुश्किल होती है। इससे शिल्पी वर्ग जैन प्रतिमा स्थापनके लिये मंडन सूत्रधार नीचेका मत ज्यादा स्वीकारता है।

"गर्भगृहके पीछले पाट-भारवटके नीचे यक्ष भूतादि उग्र देवोंको बिठाना। पाटको छोड़ कर आगे दूसरे देवोंको बिठाना। उससे आगे ब्रह्मा और विष्णु और मध्य गर्भमें शिवलिङ्गकी स्थापना करना। (७ प्रासाद मंडन ॥ अ० ६ ॥)"

पाटको छोड़कर जैन प्रतिमाको बिठानेके सूत्रको शिल्पी वर्ग ज्यादा प्रामाणिक मानता है। अर्धके पाँच भाधकर तीसरे भागमें सिंहासन-पबासण करनेका प्रमाण वैसा-शिल्पी वर्ग करता है। यद्यपि महाराज भोजदेव समराङ्गण सूत्रधारमें कहते हैं कि "गर्भगृहके छः भागकर पीछले दिवारकी तरफके छठे भागको छोड़कर पाँचवें भागमें सर्व देवताओंकी स्थापना करनेका स्थूल प्रमाण देते हैं।" वह कुछ मंडनके मतसे मिलता जुलता है।

व्यवहारमें प्रासाद मंडनका मत शिल्पी वर्गमें प्रचलित है। पाटके नीचे प्रतिमाजीकी अर्ध चोटी रखकर दूसरे भागका पाटसे बाहर रखनेकी प्रथाको आचार्य देवश्री विजय नेमिसूरीश्वरजी अनुसरनेके लिये कहते थे।

ભાગે અને લક્ષ્મીજી (વિષ્ણુના) કોઈપણ ભાગે સ્થાપન કરી શકાય. જિન તીર્થંકર વીતરાગ અને જિન શાસનના દેવ દેવીઓ (યક્ષ યક્ષણી)ને વિઘ્નરાજ–ગણેશના સ્થાને ચૌદમા ભાગે સ્થાપન કરવા. બધી દેવીઓની મૂર્તિઓ માતૃકા મંડળમાં સ્થાપવી. વિષ્ણુની પદ્માસને કે ઊભી કે શેષશાયી અને વરાહાદિ, મત્સ્યાદિ દશાવતારની મૂર્તિઓ વિષ્ણુના નવમા ભાગમાં સ્થાપવી. વિષ્ણુ શંકર ઉમાની યુગ્મમૂર્તિઓ વિષ્ણુના સ્થાને સ્થાપવી. અર્ધનારીશ્વરની મૂર્તિ રૂદ્રના સ્થાને પધરાવવી. બ્રહ્માના સાતમા ભાગમાં મિશ્રમૂર્તિ, ત્રિમૂર્તિ, યુગ્મમૂર્તિ (હરિહર, આદિ બ્રહ્મા વિષ્ણુ કે શિવની મિશ્રમૂર્તિઓ)ની સ્થાપના કરવી. ૧૮ થી ૨૨.

विष्णुके भाग पर उमादेवी, ब्रह्माके भाग पर सरस्वती, साबित्री (ब्रह्माके) मध्य भाग पर और लक्ष्मीजी (विष्णुके) कोई भी भाग पर स्थापन हो सकते हैं। जिन तीर्थंकर वितराग और जिन शासनके देव देवीओं (यक्षयक्षणी) को विघ्नराज–गणेशके स्थान पर चौदहवें भाग पर स्थापन करना। सब देवियोंकी मूर्तियाँ मातृकामंडलमें स्थापना। विष्णुकी पद्मासनमें या खडी या शेषशायी और वराहादि मत्स्यादि दशावतारकी मूर्तियाँ विष्णुके नौवें भागमें स्थापना। विष्णु, शंकर, उमाकी युग्ममूर्तियाँ विष्णुके स्थान पर स्थापना। अर्धनारीश्वरकी मूर्ति रुद्रके स्थान पर पधराना। ब्रह्माके सातवें भागमें मिश्रमूर्ति, त्रिमूर्ति, युग्ममूर्ति (हरिहर आदि ब्रह्मा विष्णु या शिवकी मिश्र मूर्तियों) की स्थापना करना। १८ से २२.

त्रिदेव स्थानके चैव हरिहरपितामह: ।
पितामहंच चंद्रार्कौ स्थापयेत्पद भास्करे ।
वेदाश्च ब्रह्म संस्थाने ऋषिणां पद भास्करे ॥२३॥

હરિહર, પિતામહની ત્રિદેવની મૂર્તિ બ્રહ્માના પદે સ્થાપન કરવી. પિતામહ–બ્રહ્મા ચંદ્ર ને સૂર્ય અને ઋષિઓની મૂર્તિને અને વેદ મૂર્તિઓને બ્રહ્માની સાથે પધરાવવી. ૨૩.

हरिहर, पितामहकी त्रिदेवकी मूर्ति, ब्रह्माके पद पर स्थापन करना। पितामह–ब्रह्मा चंद्र और ऋषियोंकी मूर्तिको और वेदमूर्तिओंको ब्रह्माके साथ पधराना। २३.

इति श्री विश्वकर्मा कृतायां क्षीरार्णव नारद पृच्छायां देवता दृष्टिपद स्थापनाधिकारे शताग्रेमेकादशमोऽध्याय ॥१११॥ क्रमांक अ० १३

ઇતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદજીએ પૂછેલ દેવતા દષ્ટિપદ સ્થાપનાધિકારનો શિલ્પવિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈએ રચેલી ગુર્જર ભાષાની સુપ્રભા નામની ટીકાનો એકસો અગિયારમો અધ્યાય ૧૧૧.

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव नरदजीके संवादरूप देवता दृष्टि पद स्थापनाधिकारका शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा रचित सुप्रभा नामकी भाषा टीकाका अध्याय ॥१११॥ (क्रमांक अ० १३)

विविध ग्रंथमते देवता दृष्टिस्थान विभाग दर्शावतुं कोष्टक

क्षीरार्णव दीपार्णव द्वारोदयका ३२ विभागे दृष्टिस्थान

क्षीरार्णव दीपार्णव मत	सूत्रसंतान अपराजित देवतामूर्ति प्रकरणका मत	ठक्कुरफेरु वास्तुसार मत
३२ ०	६४–०	१०– ०
३१ भूतप्रेत राक्षस	६३–वैताल	
३० ०	६१–भैरव	
२९ भैरव चण्डि	५९ चण्डि	९–छत्र चामरधारी देवो
२८ ०	५७-अघोर रुद्र	
२७ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य	५५-ब्रह्मा-विष्णु, रुद्र-जिन	
२६ चन्द्र	५३–हरसिद्ध	
२५ जिन	५१–पद्मासन त्रिमूर्ति	८–चण्डिका
२४ सरस्वती	४९–गणेश–शारदा	
२३ ०	४७ ब्रह्मा	
२२ ०		
२१ लक्ष्मी	४५–लक्ष्मी नारायण	७–शासनदेव देवियाँ
२० दुर्गा-नारदादि ऋषि	४३–ऋषिमुनि नारद	६॥ भाग –जिन प्रभु
ब्रह्मयुग्म	४१–ब्रह्मा सावित्री	दश भागमें सातवें भागे
१९ ०	३९–बुद्ध	६–चित्रलेप प्रतिमा
१८ उमा, रुद्र, विष्णु, लक्ष्मी	३७ उमा रुद्र	
१७ ०	३५–भृंगवराह	
१६ यक्षराज	३३–यक्ष कुबेर	५–वराह
१५ ०	३१–मातर	
१४ मातृकाओ	२९-गरुड	
१३ ०	२७–शेषाशयिन	४–लक्ष्मी नारायण
१२ शेषशयिन	२५–शेष नाग	
११ ०	२३–व्यक्तशिव	
१० हर मूर्ति	२१–व्यक्ताव्यक्त लिङ्ग	
९ ०	१९–अव्यक्त लिङ्ग	३ शेषशयिन
८ ↑	१७– ↑	
७	१५–	
६	१३–	२-शिवशक्ति
५	११–	
४ शिवलिङ्ग	९– शिवलिङ्ग	
३	७–	१-शिवलिंग
२	५–	
१ ↓	३–	
	१– ↓	

देवतामूर्ति प्रकरणम् तथा अपराजित–सूत्रसंतान का मते द्वारोदयका ६४ विभागे दृष्टिस्थान

ठक्कुर फेरु वास्तुसार मते द्वारोदयका दश भागके सातमा भागे दश भाग करके इसके सातवा भागे जिनदृष्टिमान

देवता पद स्थापन विभाग पृथक् पृथक् ग्रंथो का मतमतान्तर का कोष्टक

क्रम भाग	१ क्षीरार्णव २ दीपार्णव ३ ज्ञानरत्नकोश ४ अपराजित	समरांगण सूत्रधार का मत भीतसे दश भाग		प्रासादतिलक वस्तुसार विवेक विलास भीतसे भाग	पांच भाग	देवमामूर्ति प्रकरण मयमतम ४९ भाग
२८	०	१	०			
२७	पिशाच					
२६	भूत वैताल					
२५	राक्षस	२	राक्षस	१	यक्षगन्धर्व	
२४	दैत्य				क्षेत्रपाल	
२३	अघोर					
२२	मृग घोर	३	दैत्य			२६ पिशाचांश — मातृका यक्ष गन्धर्व राक्षस भूतादि
२१	हनुमंत					
२०	यक्षराज					
१९	क्षेत्रपाल	४	गंधर्व	२	देव और देविकाँ	
१८	भैरव					
१७	गण					×
१६	मातृका लक्ष्मी सर्व देवीओं	५	यक्ष			
१५	ग्रहो					
१४	गणेश लक्ष्मी वितराग जिन					
१३	दुर्गा लक्ष्मी	६	सूर्य	३	कृष्ण जीन	
१२	सूर्य				सूर्य कार्तिक	२४ भाग मातृयांश — सर्वदेव स्थापन
११	अग्नि					
१०	विश्वरूप, उमा, लक्ष्मी	७	चण्डि			
९	जनार्दन पद्मासन की ऊभी विष्णु मूर्ति					
८	वासुदेव शेषशायी दशावतार शंकर उमा	८	विष्णु	४	ब्रह्मा	×
७	ब्रह्मा, सरस्वती, सावित्री हिरण्यगर्भ, मिश्र युग्ममूर्ति	९	ब्रह्मा			४ ब्रह्मांश — ब्रह्मा विष्णु स्थापन
६	कार्तिक स्वामी					
५	रुद्र अर्ध नारिश्वर	१०	शिवलोक मध्यमें	५	शिवलिंग मध्यमें	
४	सावित्री					
३	नकुलीश					
२	हेमगर्भ शालिग्राम ब्रह्मा					
१	शिवलिंग मध्यमें मध्यमें					

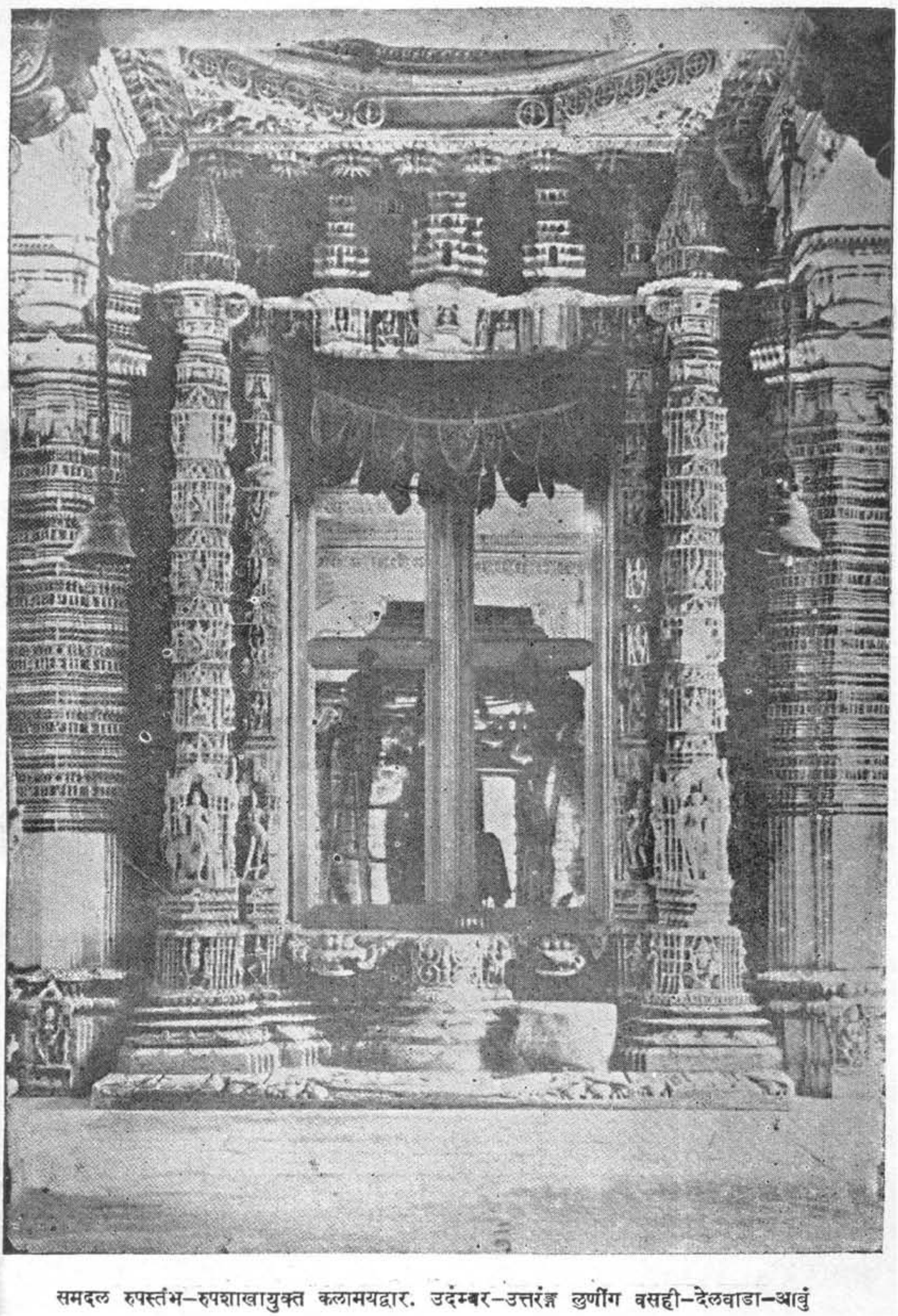

समदल रुपस्तंभ–रुपशाखायुक्त कलामयद्वार. उदंम्बर–उत्तरंङ्ग लुणींग वसही–देलवाडा–आवुं

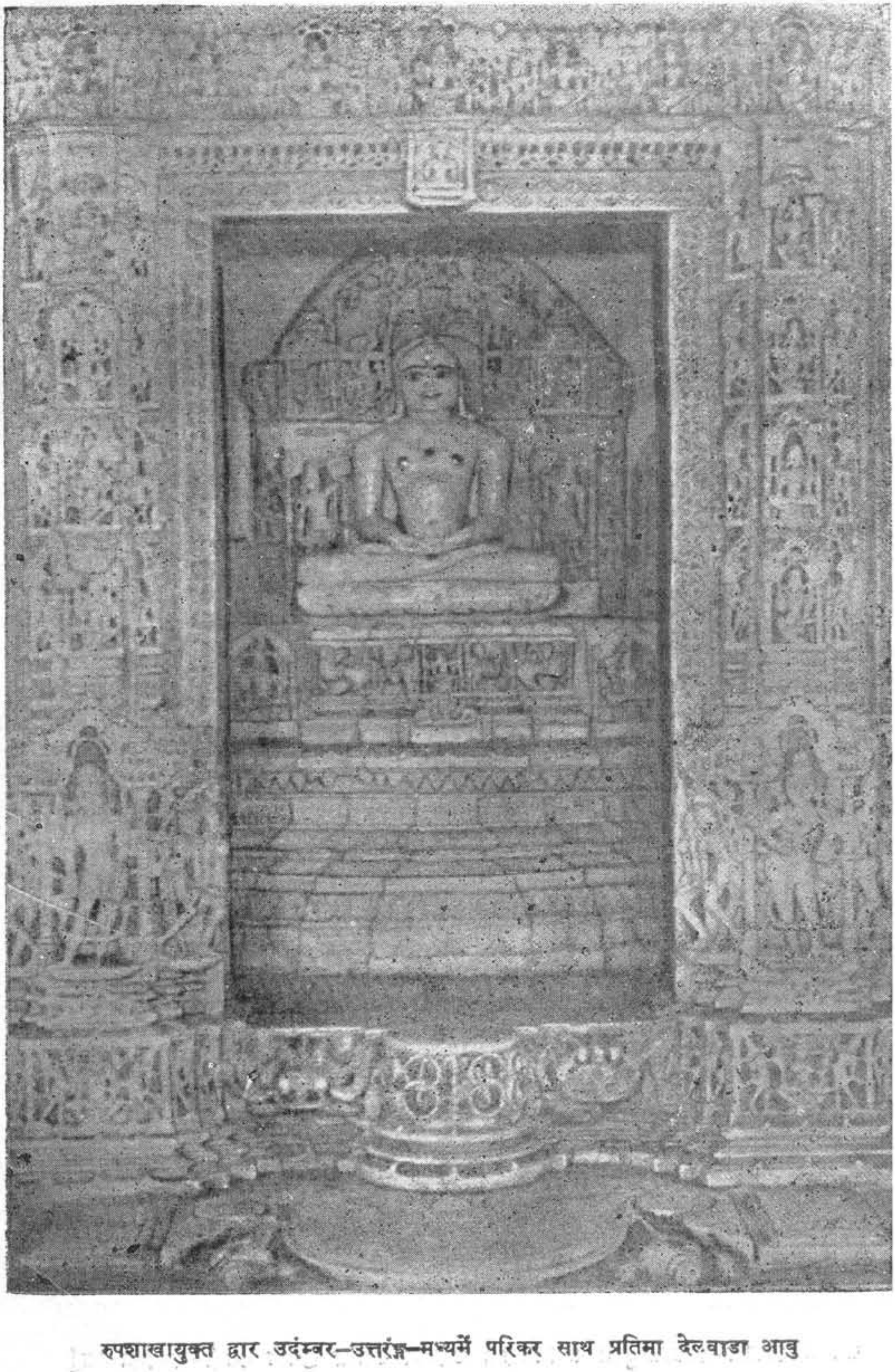

रुपशाखायुक्त द्वार उदंम्बर–उत्तरंङ्ग–मध्यमें परिकर साथ प्रतिमा देलवाडा आबु

॥ अथ शिखर भद्र नासिकादि सरवेधादि ॥

क्षीरार्णव अ० ११२—क्रमांक अ० १४

विश्वकर्मा उवाच—

अतः परं प्रवक्ष्यामि भद्रार्धे शिखरं तथा।
भद्रार्धे च ततो रिषि ज्ञातव्यं मूलनासीके ॥ १ ॥
भद्रार्धं च त्रिंशत्ति भागं च कर्तव्य च विचक्षणैः।
मूल नाशिकं द्विभागं च द्विभागं द्वितीयके ॥ २ ॥
वेदभाग तृतीया तु चतुर्दशभद्रमेव च।
पंचमी फालना कार्यां उपागसद्दशा भवेत् ॥ ३ ॥

—इति पंचनासिक

श्री विश्वकर्मा शिखरना भद्रना पंचनाशक हवे कहे छे. हे ऋषि, शिखरना भद्रना भद्रना खुणा सुधीना त्रीश भाग विचक्षण शिल्पीओ करवा. मूळ नाशिक बे भाग, बीजी फालना पण बे भाग त्रीजी फालना चार भाग अने आखुं भद्र चौद भागनुं जाणवुं. पांचमी फलना उपांग प्रमाणे करवी. १–२–३.

श्री विश्वकर्मा शिखरके भद्रके पाँच नासक कहते हैं। हे ऋषि, शिखरके भद्रके भद्रके कोने तकके तीस भाग विचक्षण शिल्पीको करना चाहिये। मूल नाशिक दो भाग, दूसरी फालना भी दो भाग, तीसरी फालना चार भाग और सारा भद्र चौद भागका जानना। पाँचवीं फालना उपांगके अनुसार करना। १–२–३.

यावद्धस्त प्रमाणेन विस्तृता क्रियते कटिः।
*तावद्‌गुल पादेन फालनानां च निर्गमम् ॥ ४ ॥

प्रासाद जेटला हाथनो पहोळो रेखाये होय तेना प्रत्येक हाथे पापा आंगळनी फालनाना नीकाला राखवा. ४.

जितने हाथका चौडा प्रासाद रखा गया हो उसके प्रत्येक हाथ पर १/४ अंगुलकी फालनाके निकाले रखना। ४.

---

* तावदङ्गुलमानेन पाठान्तरे।

१. शिखरना भद्रमां आवी फालनाओनुं विधान रत्नकोश अने दीपार्णव तथा क्षीरार्णवमां आपेल छे. अपराजितसूत्रमां आ पाठो नथी. पंच सप्त अने नवनाशिक जूना प्रासादोमां करेला जोवामां आवे छे. केटलाक छज्जापरथी भद्रमां आवां नाशिक काढे

सप्तनाशिक प्रवक्ष्यामि भद्रार्धं षड्मेव च ।
प्रथमं वसुभिर्भागं द्वितीयं रुद्र संख्यया ॥ ५ ॥
तृतीयं वसुभिर्भागं चतुसार्द्धं मूल नाशकम् ।
षष्ठम् च सप्तम् चैव कालना नाम नामत् ॥ ६ ॥
॥ इति सप्तनाशिक ॥

હવે હું સપ્તનાશિક કહું છું. અર્ધભદ્ર ૭ ભાગનું, પહેલી ફાલના આઠ ભાગની, બીજી ફાલના અગિયાર ભાગની, ત્રીજી ફાલના આઠ ભાગની, મૂળનાશક સાડા ચાર ભાગની છઠ્ઠી અને સાતમી ફાલનાઓ નામ માત્રની કરવી (ફાલનાના નિકાળા આગળ કહ્યા તેમ રાખવા.) કુલ પંચોતેર ભાગ સપ્ત નાશિકના જાણવા. ૫-૬.

છે. તો વિશેષ કરીને નીચે પીઠથી તે છજા ઉપર શિખરના ભદ્રમાં આવાં નાશિક પાડેલા જોવામાં આવે છે. મેવાડમાં આ પ્રથા વિશેષ, ગુજરાતમાં અલ્પ છે.

ક્ષીરાર્ણવ ગ્રંથ ઘણો પ્રાચીન હોઈ તે અસ્તવ્યસ્ત સ્થિતિમાં આડાઅવળા અસંબદ્ધ વિષયોથી ભરપૂર છે અને એક વિષયની વચ્ચે બીજા વિષયના પાઠો વાળી પ્રતો ગુજરાત અને સૌરાષ્ટ્રમાં છે. હજુ શુદ્ધ પ્રતો અમને મળી નથી. અમારી પાસેની આઠથી દશ પ્રતોની તારવણી કરતાં આવાં અસંબદ્ધ લખાણવાળા અને પારાવારા અશુદ્ધિપૂર્ણ ગ્રંથો પ્રાપ્ત થયેલા છે. શિખરના પંચ, સપ્ત, નવ નાશિક સાથે શિખરનો થોડો વિષય ચર્ચી શ્લોક ૧૪ થી ૨૬ સુધીના ઘણાજ અશુદ્ધ અને વિષયાન્તર હોઈ પાઠો મૂળ પ્રતોમાં છે, જેમાંથી શરવેધ સરવેધ કે સ્વરવેધના મહાદોષો ઉપરાંત બીજા પાઠો એટલા અશુદ્ધ છે કે તેનો અર્થ આપણે તારવી શકયા નથી તે માટે સુજ્ઞવાચક દરગુજર કરે અને જૂની શુદ્ધ પ્રતોનો ક્રમ અને અસંબંદ્ધ વિષયોના કારણે મૂળ પાઠ કાયમ રાખી ગ્રંથનું સંકલન કરવા બદલ વાચક ક્ષમા કરે. શ્લોક ૨૩ થી ૨૬ ના ચાર શ્લોકોનો ૧૧૨ એક સો બાર મો અધ્યાય જૂની પ્રતોમાં ગણાવેલ છે.

* तावदङ्गुलमानेन पाठान्तरे ।

(१) शिखरके भद्रमें ऐसी फलनाओंका विधान ज्ञानरत्नकोश और दीपार्णव तथा क्षीरार्णव में दिया है। अपराजित सूत्रमें यह पाठ नहीं है। पँच सात और नौ नाशिक पुराने प्रासादों में किये हुए दिखते हैं। कई लोग छज्जे के परसे भद्रमें ऐसे नाशिक फोडते हैं। विशेषतया नीचे पीठसे छज्जाके उपर शिखरके भद्रमें ऐसे नाशिक पाडे हुए दिखते हैं। यह प्रथा मेवाडमें विशेष है और गुजरातमें अल्प है।

क्षीरार्णव ग्रन्थ बहुत प्राचीन होनेसे वह अस्तव्यस्त स्थितिमें असम्बन्ध विषयोंसे भरपूर है और एक विषयके बिच दूसरे विषयके पाठोंवाली प्रतें गुजरात और सौराष्ट्रमें हैं। अभी उसकी शुद्ध प्रतें हस्तगत नहीं हुई हैं, हमारे पास आठ से दस प्रतों की तुलना करते मालूम हुआ है कि वे असम्बद्ध और अशुद्धिपूर्ण है। शिखर के पंच, सप्त नौ नाशकके साथ शिखर

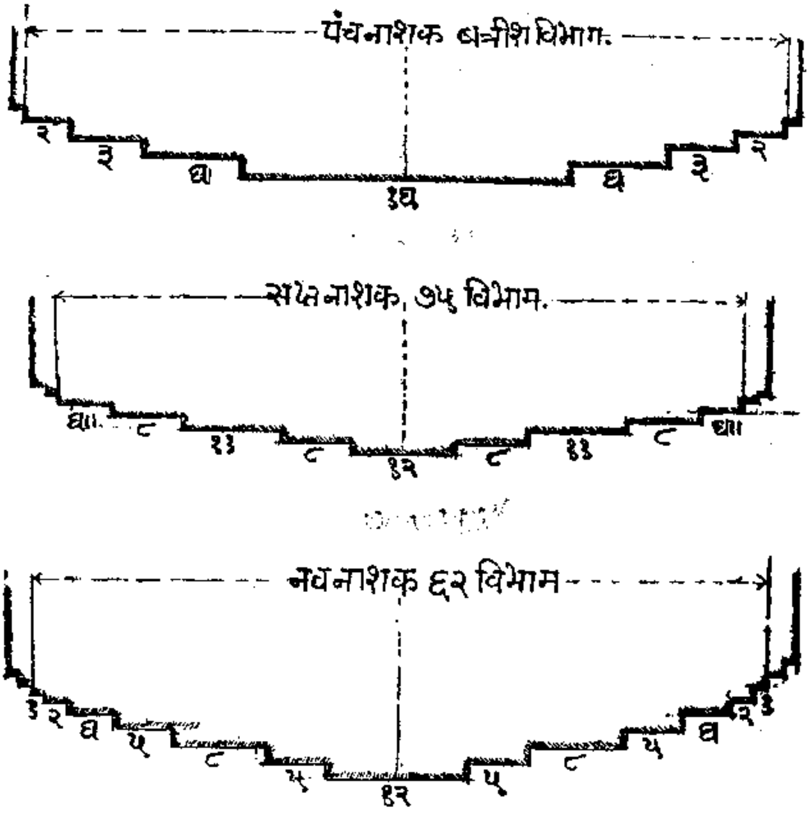

शिखरका भद्रका पाँच सप्त नव नाशक

अब मैं सप्तनाशिक कहता हूँ । आधा भद्र छः भागका, पहली फालना आठ भागकी, दूसरी फालना ग्यारह भागकी, तीसरी फालना आठ भागकी, मूल नाशक साढ़े चार भागकी छठ्ठी और सातवीं फालनाएँ नाम मात्रकी करना । (फालनाके निकालेको आगेके अनुसार रखना ।) सप्त नाशिकके कुल पचहत्तर (७५) भाग जानना । ५–६.

नवनाशिक प्रवक्ष्यामि भद्रार्धे मेकत्रिंशतम् ।
एक भागं द्विभागं वा वेदभागं तृतीयकम् ॥ ७ ॥

का थोडा विषय छोडकर श्लोक १४ से २६ तकके बहुत ही अशुद्ध और विषयान्तर वाले पाठ मूल प्रतोंमें हैं, जिनमें से हम अर्थ नहीं निकाल सके हैं। इसके लिये सुज्ञ वाचकगण क्षमा करें, और पुरानी अशुद्ध प्रतोंका क्रम असम्बद्ध विषयोंके कारण मूल पाठको कायम रखकर ग्रंथका संकलन करनेके लिये वाचकों की हम क्षमा माँगते हैं। श्लोक २३ से २६ के चार श्लोकका ११२ एकसौ बारहवाँ अध्याय पुरानी प्रतोंमें गिनाये हुए हैं।

चतुर्थ बाण भागं तु पंचमं वसु संयुतम् ।
षष्ठं बाम पिभागं तु सप्तमे रस संयुतम् ॥८॥
अष्टमं नवमं चैव फात्कना नाम नामतः ।
अथ न लोपयेद् यस्तु न चाल्यं शिल्पिबुद्धिमान् ॥९॥

હવે હું શિખરના ભદ્રના નવ નાશિક કહું છું. રેખાથી અર્ધાભદ્રના એકત્રીશ ભાગ કરવા તેમાં પહેલી ફાલના એક ભાગ, બીજી બે ભાગ, ત્રીજી ચાર ભાગ, ચોથી ફાલના પાંચ ભાગ, પાંચમી ફાલના આઠ ભાગ, છઠ્ઠી ફાલના પાંચ ભાગ, સાતમી ફાલના ભદ્રાર્ધ છ ભાગની જાણવી, આઠમી અને નવમી ફાલના નામ માત્રની કરવી. (રેખાયે જેટલા હાથ હોય તેમાં પાયા આંગળના ફાલનાના નીર્ગમ રાખવા) આ પ્રમાણે બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ ફાલનાઓના ભાગ લોપવા નહિ. ૭–૮–૯.

अब मैं शिखरके भद्रके नौ नाशक कहता हूँ । रेखासे आधे, भद्रके इकीस भाग करना । उसमें पहली फालना एक भाग, दूसरी दो भाग, तीसरी चार भाग, चौथी फालना पाँच भाग, सातवीं फालना, भद्रार्ध छः भागकी जानना । आठवीं और नौवीं फालना नाम मात्रकी करना । (रेखाके पर जितने हाथ हों उनमें $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{4}$ अंगुलके फालनाके निकाले रखना ।) इस तरह बुद्धिमान शिल्पीको चाहिये कि वे फालनाओंके भागको न लोपें । ७–८–९.

रेखा विस्तारमानेन सपादेतदुच्छ्रयः ।
त्रिभाग सहितं श्चैव सार्द्धवा तु विचक्षणः ॥१०॥

છજાપર કહેલ શિખરીઓ ચડાવી મૂળ રેખાથી (૧) સવાયું શિખર બાંધણે કરવું. (૨) ૧$\frac{1}{3}$ કે (૩) દોઢું ઊંચું શિખર એમ ત્રણ પ્રકારે બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ કરવું. ૧૦.

छज्जे पर कही हुई शिखरियोंको चढ़ाना । मूलरेखासे सवा गुना ऊँचा शिखर स्कंधे पर करना । १$\frac{1}{3}$ या डेढ़ गुना ऊँचा शिखर तीन प्रकार बुद्धिवान शिल्पीको करना । १०.

दशधा मूले पृथुत्वे षड्भागः स्कंध उच्यते ।
षड्बाह्ये दोषदः प्रोक्तः पंचाधःश्च न सस्यते ॥११॥

મૂળ શિખરના પાયચે દશ ભાગ કરી ઉપર બાંધણે છ ભાગ રાખવાનું

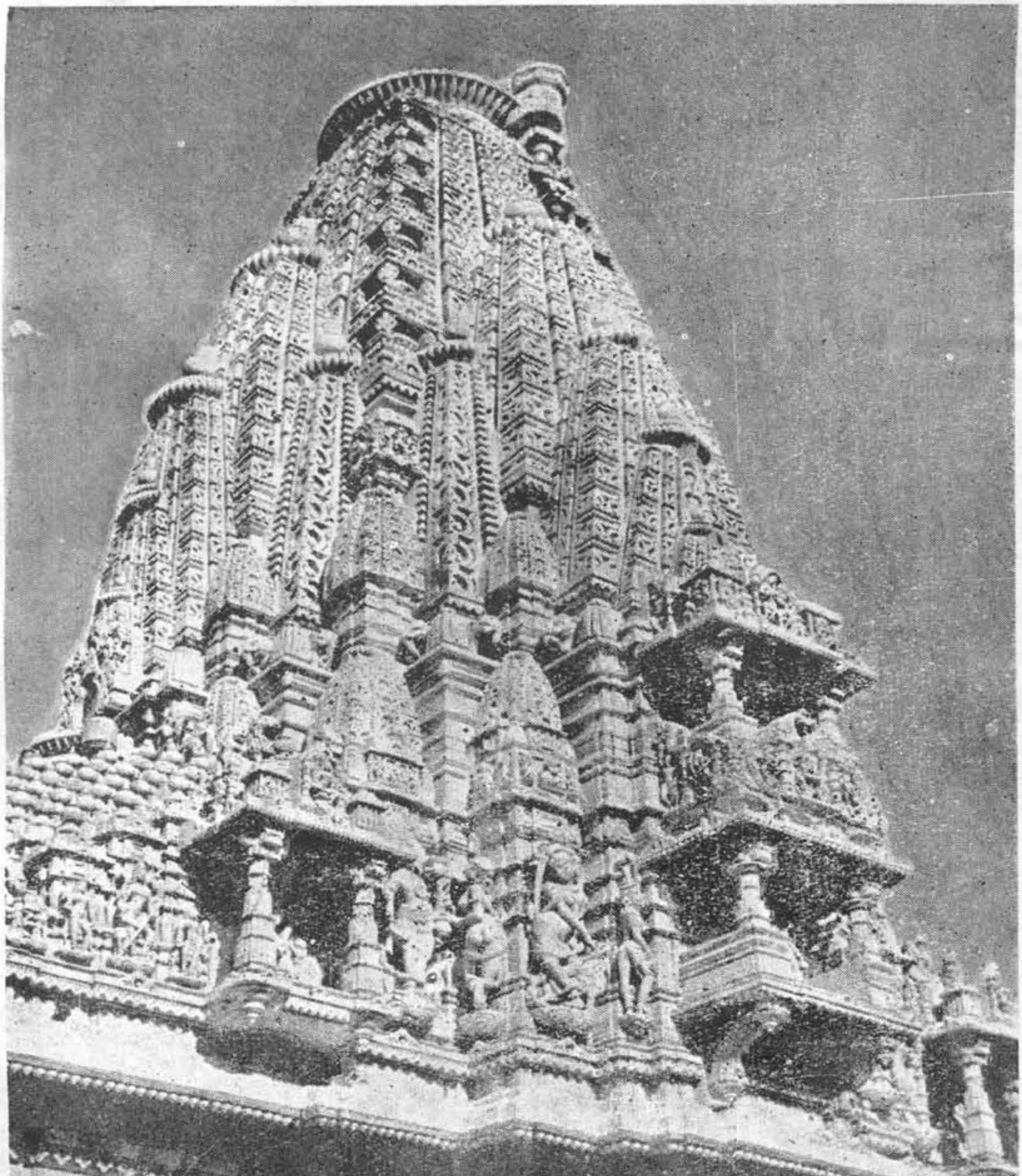

नागर शैलीका अलंकृत शिखर. तेरवीं शताब्दी की प्रतिकृती. पंचासरा पाटण.

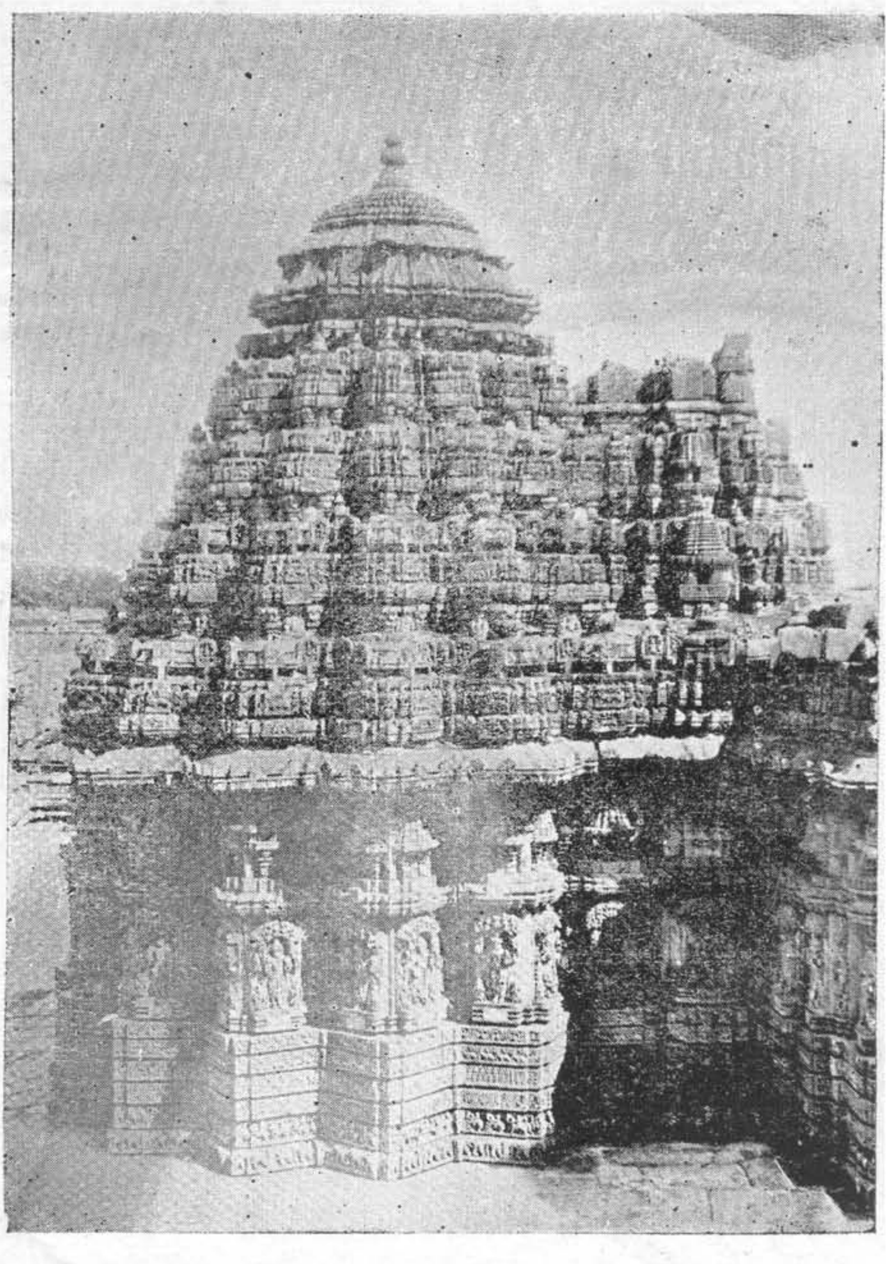

बेलुर–हलेबिड (मैसूरराज्य)के कलामय प्रासाद के महापीठ मंडोवर और शिखर

કહ્યું છે. છ ભાગથી વધુ રાખવું દોષકારક કહ્યું છે. અને પાંચ ભાગથી ઓછું ન કરવું. (એટલે સાડા પાંચ ભાગ ભાંધણે રાખવાથી તે શોભે છે.)

मूल शिखरके पायचे दश भाग कर उपर स्कंधके पर छः भाग रखनेके लिये कहा है । छः भागसे अधिक रखना दोषकारक है । और पाँच भागसे कम न करना । (अर्थात् साढे पाँच स्कंधके पर रखनेसे वह शोभता है ।)

ग्रंथान्तर—रेखाविस्तार यन्मानं दशभाग विधीयते ।
द्विभागकोण मित्युक्तं भद्र भागत्रयं भवेत् ॥१२॥
प्रतिरथः सार्द्ध भागं तु उभयो परिपक्षयोः ।
स्कंधनवांशे सार्द्धद्वौ रथकोणो द्विभद्रकम् ॥१३॥

શિખરના પાયચે રેખા વિસ્તારનું જે માન હોય તેના દશ ભાગ કરવા. બે ભાગ રેખા, આખુંભદ્ર ત્રણ ભાગનું અને વચ્ચે પઢરો દોઢ ભાગનો બેઉ તરફનો કરવો (તે રીતે કુલ દશ ભાગ) તે રીતે નીચે દશ ભાગ અને ઉપર નવ ભાગ ભાંધણે સ્કંધે કરવા તેના બે ભાગની રેખા. દોઢ ભાગનો પઢરો અને આખુંભદ્ર બે ભાગનું મળી કુલ નવ ભાગ જાણવા. ૧૨–૧૩.

शिखरके पायचे पर रेखा विस्तारका जो मान हो उसके दस भाग करना । दो भाग रेखा, सारा भद्र तीन भागका, और बिचमें पढ़रा–डेढ भागका, दोनों तरफका करना । (उस तरह कुल दस भाग) इस तरह नीचे दस भाग और उपर नौ भाग स्कंधके पर करना । उसके दो दो भागकी रेखा डेढ डेढ भागका पढ़रा और सारा भद्र दो भागका मिलकर कुल नौ भाग जानना । १२–१३.

[1]शरवेध प्रवक्ष्यामि जायते मूलनाशके ।
कक्षान्तरे प्रभेदेच महा शेष (च) राजयेत्[2] ॥१४॥
[3]प्रथमेत्रयक्षूद्राणां गृहेपक्षेचुगानि[4] च ।
[5]द्वौ सा शक्ति सतुचाष्टोच षाडेश्यमतुपंचमी ॥१५॥
[6]जंघिसशम त्रयोदश क्षाणिषष्टेलनमथेते स्वराः ।
सरवेधे यदि चैव हन्यते पशुबाधवाः ॥१६॥
सानुकूलषयं (कृत) मबले हन्यते शत्रु ।
.........स्वरवेधं न कारयेत् ॥१७॥

(१) सरवेध स्वरवेध ? पाठान्तर (२) मेरु शेषं च राजयेत् (३) प्रथमं त्रय रुद्राणां (४) गुणानिच (५) शिवशक्ति शिवाष्टोच (६) जंघिपक्ष त्रयोदश (७) कल्पते षड् भासिका.

षट्मासे भवेन्मृत्यु राजदंडस्तथैव च ।
अथवा त्रीणि मरणं जं षट्मासेन संशयः ॥१८॥
स्वरवेध यदा चैव क्रियते षड्भागिता ।
तत्र नारी महाव्याधि राष्ट्रभंगं प्रजायते ॥१९॥
दुर्भिक्षश्चापि रुद्रं (स) राजमृत्यायने यथा ।
यम शमातां निष्कलं यांति शिल्पीनं मृयते ध्रुवा ॥२०॥
अन्यथाकरणे कर्त्तुर्मोक्षोनास्ति युगान्तरे ।
पूजायां न लभतेदेव सुभकीर्ति राक्षसः ॥२१॥
शोकस्य यदातस्य विरोधः स्यात्परस्परम् ।
गौ प्राणपीडास्यात् आतासगनिष्टरागभंगृहावपुभवेत् ॥२२॥
कौं अषोषांच राजनीक्य कुर्वातीक्यस्ते ।
केटिरोधस्तत्र वराहा अकाले मृत्यु फलकम् ॥२३॥
अहमद् फलं यांति कुकस्तलोकपीड तु ।
... ... ॥२४॥
प्रासादस्य न सांगायं विस्तारोग्रे स्तथैव च ।
षड मध्येषु दातव्यो पोत्रिकाद्यं प्रदक्षिणे ॥२५॥
मूलनाशक त्रिसार्द्ध कर्तव्यंच तदाग्रतः ।
नव नाशिक भवेतंश्च सार्द्धते भद्रसन्निधैः ॥२६॥

... ...

इतिश्री विश्वकर्माकृतायां क्षीरार्णवे नारद पृच्छते.........धिकारे शताग्रे द्वादशमोऽध्याय ॥ ११२ ॥ (क्रमांक अ० १४)

ઇતિશ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદજીએ પૂછેલ...........અધિકારનો શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી ગુર્જરભાષામાં સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો બારસો અધ્યાય. ૧૧૨. ક્રમાંક અ० ૧૪.

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव नारदजीके संवादरूप...अधिकार का शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा रचि हुओ सुप्रभा नामकी भाषाटीका का ११२ एकसोबारहवाँ अध्याय । ११२ (क्रमांक अ० १४)

॥ अथ शिखराधिकार ॥

क्षीरार्णव अ० ॥ ११३ ॥ (क्रमांक अ० १५)

श्री नारदोउवाच—

प्रणपत्यमिदं वक्षयानिभ्यं धरणीमतः ।
कथयामि न संदेहो शिखरं सर्वकामदं ॥ १ ॥
कस्मिनाकार समुत्पन्ना प्रासाद शिखरोत्तमे ।
किं दलविभकते च कींमाश्रृंगे विभागते ॥ २ ॥
किंमे अष्टविभक्तं च स्तैषां स्कंधकीतो भवेत् ।
दशधा स्कंध रेखा च स्कंध मानोकृताभवेत् ॥ ३ ॥
ममवालजरं श्रृत्वा सरतस्कें न हेतवे ।
कं विभागमृतो तन्ना कथितो मम सांप्रतम् ॥ ४ ॥

મહર્ષિ નારદજી શ્રી વિશ્વકર્માને પૂછે છે કે–

સર્વકામનાને આપનારી એવી શિખરની વિધિ સંદેહ વગરની કહો, પ્રાસાદના શિખરો કેવી રીતે ઉત્પન્ન થાય, તેના ભાગ વિભાગ અને શ્રૃંગ આદિના વિભાગ કેવી રીતે કરવા? વળી આઠ ભાગ કેમ કરવા? શિખરનું સ્કંધ બાંધણું કેટલા ભાગે રાખવું દશ ભાગ નીચે રેખા અને બાંધણું કેમ કરવું? મને વાલંજરની વિધિ તેમાં ભાગ........કેટલા ભાગે ઊંચાઈમાં કેમ કરવું તે મને હમણાં કહો. ૧–૨–૩–૪.

महर्षि नारदजी श्री विश्वकर्माको पूछते हैं कि–

सर्वकामनाको देनेवाली एसी शिखरकी विधि संदेहके बिना बताओ। प्रासादके शिखरों कैसे उत्पन्न होते हैं, उनके भाग, विभाग, शृंग आदिके विभाग कसे करें ? और आठ भाग कैसे कैसे करें ? शिखरका स्कंध कितने भागपर रखना ? दस भागके नीचे रेखा और स्कंधके पर किस तरह करें ? मुझे वालंजरकी विधि, उसके भाग और कितने भागमें ऊँचाईमें कैसे करना यह अभी कहो । १–२–३–४.

विश्वकर्मा उवाच –

यत्वया पृच्छते चैव शृणुत्वेकाग्रतो मुनिः ।
शिखराश्च विविधाकारा मनेकाकार मुद्भिला ॥ ५ ॥

एकस्यापि तलस्योर्ध्वे शिखराणि बहून्यपि ।
नामानि जातयस्तेषां मूर्ध्वमार्गानुसारतः ॥ ६ ॥

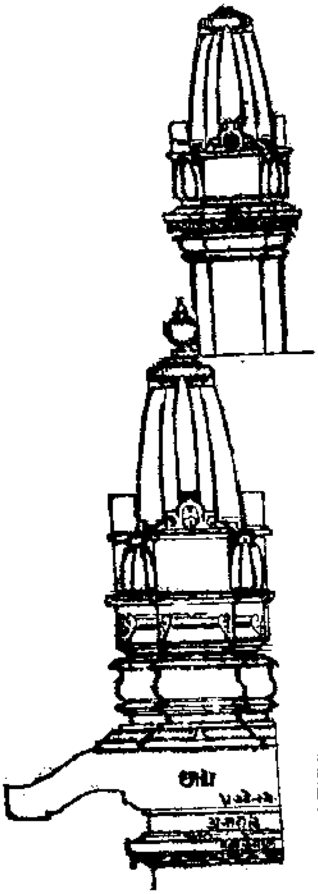

शिखरमें शृंगोर्ध्व शृंग श्लोक ७-८

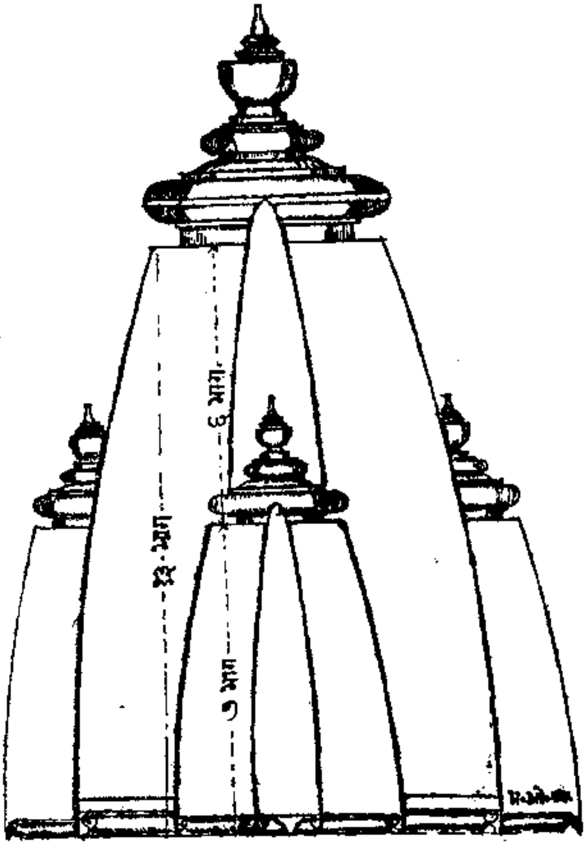

ऊरु शृंगोर्ध्वऊरुशृंग रखनेका विभाग श्लोक २१

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે કે મુનિ, તમે પૂછો છો તો એકમનથી સાંભળો. શિખરો વિધવિધ અને અનેક આકારના થાય. એક જ તળ ઉપર ઘણા પ્રકારના શિખરો ચડે તે શિખરના ઉપરના માર્ગથી પ્રાસાદની જાતિ અને ઓળખાય છે. ૫-૬.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं–हे मुनि, यदि तुम पूछते हो तो एकाग्र होकर सुनो। शिखरों विविध और अनेक प्रकारके होते हैं। एक ही तलके पर बहुत प्रकारके शिखरें चढ़ते हैं। उनके उपरके मार्गसे प्रासादकी जाति और नाम पहचाने जाते हैं। ५-६.

छाद्योर्ध्वे प्रहारः स्यात् शृंगे शृंगे तथैवच ।
प्रहारांश पुनर्दद्यात् पुनः शृंगाणि कारयेत् ॥ ७ ॥

समस्तानामधो भागे कुर्याच्छाद्यं विभूषितम् ।
अधः श्रृंगार्ध्वे भागेन उर्ध्वं श्रृंगोवरोद्गमः ॥ ८ ॥

પ્રાસાદના છજા પર પ્રહાર પહારૂનો થર કરી તે પર ઉપરા પર શ્રૃંગો ઉપર બીજું શ્રૃંગ અર્ધભાગે ચડાવવાં પ્રત્યેક શ્રૃંગ નીચે કરી પહારૂનો થર કરી શ્રૃંગ ચડાવવા પ્રત્યેક શ્રૃંગના નીચેનો ભાગ છાજલીથી વિભૂષિ કરવો. વળી નીચેના શ્રૃંગના અર્ધભાગે ઉપરનું શ્રૃંગ ચડાવતા જવું અને દોઢીયા કરવા. [1]

प्रासादके छज्जे पर प्रहार—पहारुका थर कर उसकेपर उपरापर श्रृंगोंकेपर दूसरे श्रृंगको अर्ध भागमें चढ़ाना। प्रत्येक श्रृंगके नीचे फिर पहारुका थर करके श्रृंग चढ़ाना। प्रत्येक श्रृंगका नीचेका भाग छाजली से विभूषित करना। नीचेके श्रृंगके आधे भागके उपरके श्रृंगको चढ़ाते जाना और दोढिये करना। [1] ७–८.

मूलकर्णरथादौच एक द्वित्रिक्रमेन्यसेत् ।
नीरंधारेमूलभित्तौ सांधारभ्रमभित्तिषु ॥ ९ ॥

પ્રાસાદની મૂળ રેખા અને પ્રતિરથ આદિ ઉપાંગો પર એક બે ત્રણ એમ કહેલા ક્રમ પ્રમાણે શ્રૃંગો ચડાવવા. પરંતુ નિરંધાર પ્રાસાદની મૂળ ભીત ઉપર (ગભારાની અંદરની ફરકથી કંઈક વધુ) અને સાંધાર પ્રાસાદને ભ્રમની ભીતે શિખરનો પાયચો રાખવો. (ગળવા ન દેવો.)

प्रासादकी मूल रेखा और प्रतिरथ आदि उपांगोंके पर एक दो तीन इस तरह कहे हुए क्रमके अनुसार श्रृंगोंको चढ़ाना। परंतु निरंधार प्रासादकी मूल दिवारके पर (गर्भगृहके अंदरके फर्कसे कुछ ज्यादा) और सांधार प्रासादको भ्रमकी दिवारके पर शिखरका पायचा रखना। (गलने नहीं देना।) ९.

(૧) છજા પર પહારૂનો થર કરી શ્રૃંગ ચડાવવા. આધુનિક કાળમાં મંડપનો ઘુમટ ઉંચો કરે છે. તેથી શુકનાશ મેળવવા છજા પર જાંગી બે ત્રણ કે ચાર ફૂટની ચઢાવે છે. પ્રહારૂની વિશેષ પ્રથા રાજસ્થાની સોમપુરા ભાઈઓમાં વધુ છે. પ્રહારૂ અને મોરલી પાર એમ તેઓ કહે છે. વૃક્ષાર્ણવ ગ્રંથમાં પ્રહારના ૭ પ્રકાર કહ્યા છે. તેના પૃથક્ પૃથક્ ઘાટ કહ્યા છે. પહારૂના થરના ઘાટને ગુજરાતમાં "પાલ" કહે છે.

(१) छज्जेके पर पहारुके थर करके श्रृंग चढ़ाना। आधुनिक कालमें—मण्डपका गुँबज ऊँचा किया जाता है, इससे शुकनास मिलाने के लिये छज्जेके पर जांगी दो तीन या चार फूटकी चढ़ाते हैं। पहारुके विशेष प्रथा राजस्थानी सोमपुरा भाइयोंमें विशेष है। पहारु और मुरलीपार, ऐसा वे लोग कहते हैं। वृक्षार्णव ग्रंथमें प्रहारके छः प्रकार कहे हैं। उनके पृथक् पृथक् घाट कहे हैं। प्रहारके थरके घाटको गुजरातमे **"पाल"** कहते हैं।

[२]रेखा विस्तारमानेन सपादेनतदुच्छ्रयः ।
त्रिभाग सहितश्चैव सार्द्ध कृत्वा विचक्षणैः ॥१०॥

શિખરની મૂળ રેખા: પાયચો જેટલો વિસ્તાર હોય તેનાથી (૧) સવાયું ઉંચું શિખર (બાંધણે) કરવું. (૨) મૂળ પાયચાથી તેના ત્રીજા ભાગ સહિતની ઊંચાઈ કરવી (૩) મૂળ પાયચાના વિસ્તારથી દોઢું ઊંચુ શિખર વિચક્ષણ શિલ્પીએ કરવું. આ ત્રણ રીત શિખરની ઊંચાઈની (નાગરાદિ જાતિમાં) જાણવી. (૨) ૧૦

शिखरकी मूलरेखा—पायचाके बराबर विस्तार हो तो उससे (१) सवा गुना ऊँचा शिखर स्कंधके पर करना । (२) मूल पायचेसे उसके तीसरे भागके सहितकी ऊँचाई करना । (३) मूल पायचेके विस्तारसे डेढ गुना ऊँचा शिखर विचक्षण शिल्पीको बनाना । इन तीन रीतियोंको शिखरकी ऊँचाईके लिये जानना । (नागरादि जातिमें) १० (२).

उरुश्रृङ्गाणि भद्रेस्यु ह्येकादि ग्रहसंख्यया ।
त्रयादेश समुर्ध्वेऽधो लुप्तः सप्तोरुश्रृङ्गकै ॥११॥

શિખરના ભદ્રે ઉરુશ્રૃંગો ચડાવવાનું વિધાન કહે છે. ભદ્ર ઉપરથી એકથી નવ સુધી (કહેલા-ક્રમ પ્રમાણે) ઉરુશ્રૃંગ ચડાવવા. તેમાં ઉપરના ઉરશ્રૃંગના બાંધણાથી નીચે પાયચાની ઉંચાઇના તેર ભાગ કરી નીચેના ઉરુશ્રૃંગના બાંધણે સાતભાગ રાખી લુપ્ત દબાતું મોટું ઉરુશ્રૃંગ કરવું. એમ ક્રમે ચડાવવા (આમ છ ભાગ ઉપરને સાત ભાગ નીચે એમ બાંધણાથી બાંધણા સુધીના જાણવા.) ૧૧

शिखरके भद्रके पर उक्त श्रृंगोंको चढ़ानेका विधान कहते हैं । भद्रके उपरसे एक से नौ तक क्रमके अनुसार उरुश्रृंगको चढ़ाना । उसमें उरुश्रृंगके स्कंधसे नीचे पायचेकी ऊँचाईके तेरह भागकर नीचेके उरुश्रृंगका स्कंधके पर सात भाग रखकर लुप्त दबाता हुआ बडा उरुश्रृंग करना । इस तरह क्रमके अनुसार

(૨) નાગરાદિ જાતિમાં આ ત્રણ પ્રકારો શિખરની ઊંચાઈના કહ્યા છે. પુરાણોમાં શિલ્પનો વિષય સમાવિષ્ટ કરેલ છે. તેમાં શિખર બમણું ઊંચું કરવાનું કહ્યું છે. ઉત્તર ભારતમાં તેવાં શિખરો જોવા મળે છે. ભારતના એક પ્રદેશમાં અઢીગણી ઉંચાઈના શિખરો શાસ્ત્રોક્ત વિધિના અમે જોયાં છે. તે પ્રાસાદની ચૌદ જાતિમાંની એક જાતિ હશે.

(२) नागरादि जातिमें इन तीन प्रकारसे ऊँचाइ बतायी है । पुराणोंमें शिल्पका विषय समाविष्ट किया हुआ है । उसमें शिखरको दूगुना ऊँचा करनेके लिये कहा है । उत्तर भारतमें वैसे शिखर देखनेमें आते हैं । भारतके एक प्रदेशमें ढाई गुनी ऊँचाईके शिखर शास्त्रोक्त विधिसे हमने देखें हैं । यह प्रासादकी चौदह जातियोंमेंसे एक जाति होगी ।

चढ़ाना । (इस तरह छः भाग उपर और सात भाग नीचे, इस तरह स्कंधसे स्कंध तकके जानना ।) ११.

शृंगोरूशृंग प्रत्यङ्गारंडकान गणयेत्सुधी ।
तवङ्गा तिलकं कर्णे कूर्याद् प्रासाद् भूषणाम् ॥१२॥

શિખરના શ્રૃંગ-ખીખરીઓ ઉરુશ્રૃગ અને પ્રત્યંગ (ચોથ ગરાશિયા) તે અંડકની ગણત્રીમાં લેવાં બાકી તવંગ તિલક કૂટ ઘંટા જે રેખા કે પઢરા આદિ અંગો પર ચડાવેલા હોય તે પ્રાસાદના આભૂષણ રૂપ જાણવા. તે ગણત્રીમાં ન લેવા.

शिखरके शृंगको, उरुशृंगको और प्रत्यंगको (चोथ गराशिया) अंडककी गिनतीमें लेना । बाकी तवंग तिलक कूट घंटा जो रेखा या पढरा आदि अंगोंके पर चढ़ाये हुए हो उनको प्रासादके आभूषण रूप जानना । उनको गिनतीमें नहीं लेना । १२.

रेखामूलस्य दिग्भागे कुर्यादग्रे षडांशकाः ।
षड्बाह्ये दोषदं प्रोक्तं पंचमध्ये न शोभनम् ॥१३॥

શિખરની મૂળ રેખા-પાયચાના વિસ્તારના દશ ભાગ કરી ઉપર બાંધણે-સ્કંધે છ ભાગ પહોળું રાખવું. છ ભાગથી વધુ રાખવાથી દોષ કહ્યો છે. અને પાંચ ભાગથી ઓછું શોભતું નથી. (તેથી સાડા પાંચ ભાગ બાંધણે રાખતું.) ૧૩

शिखरकी मूल रेखा = पायचेके विस्तारके दस भागकर उपर स्कंधके उपर छ भाग चौडा रखना । छः भागसे ज्यादा रखनेसे दोष कहा है, और पाँच भागसे कम शोभायमान नहीं होता है । इससे साढ़े पाँच भाग स्कंधके पर रखना ।) १३

रेखामूलस्य विस्तारात् पद्मकोश समालिखेत् ।
चतुर्गुणेन सूत्रेण सपाद् शिखरोदयः ॥१४॥

સવાયા શિખરને પાયચામા વિસ્તારથી ચારગણું વૃત સૂત્ર ફેરવવાથી વગર ખીલેલા કમળ પુષ્પના આકારના જેવી શિખરની નમણ રેખા થશે.[3] ૧૪

सवागुने शिखरको पायचेके विस्तारसे चार गुना वृत सूत्र फिरानेसे अविकसित कमलपुष्पके आकारके जैसी शिखरकी नमण रेखा होगी ।[3] १४

(૩) ૧કુ શિખરોદયના પાયચાથી સાડાચાર ગણું સૂત્રથી વૃત રેખા દોરવી અને દોઢા ઉદયવાળા શિખરના પાયચા વિસ્તારથી પાંચગણું સૂત્ર વૃત રેખા દોરવાથી બાંધણે સાડા પાંચ ભાગના હિસાબે બરાબર મળી રહે છે. આ સ્થૂળ સામાન્ય નીયમ કહ્યો.

રેખા દોરવાના અનેક પ્રકાર-ભેદો પ્રાસાદ શિલ્પગ્રંથોમાં કહ્યાં છે. તેમાં પ્રાસાદની જાતિ ૭૬ પ્રમાણે મુખ્ય ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે. ૧ શિખાંત ૨ ઘંટાત ૩ સ્કંધાત ૧ શિખાંત

दशधातलरेखा च दिग्भाग द्वौ कर्ण विस्तर ।
रथ सार्द्ध विस्तार भद्रार्धं तत्र निर्यम् ॥१५॥
हस्तमानार्धाङ्गुलेन फालनानिर्गविचक्षण ।
दशांशा शिखरे मूले चाग्रे तत्रनवांशकाः ॥१६॥
सार्द्धांशकौ रथौ कोणौ द्वौ शेषंभद्र मिष्यते ।
द्वौ प्रतिरथौ मध्ये वृतमामल सारकम् ॥१७॥

શિખરના નીચે મૂળ રેખા–પાયચે દશ ભાગ કરવા. તેમાં બે ભાગની રેખા –દોઢ દોઢ ભાગનો પઢરા અને બાકી અધું ભદ્ર પણ તેટલું જ એટલે દોઢ ભાગનું આ ફાલનાઓના નિકાળા–પાયચે જેટલા ગજ હોય તેના ગજે રાખવા. જેમ દશ ભાગ નીચે કહ્યા તેની ઉપર સ્કંધ બાંધણે નવ ભાગ કરવા. તેમાં બે ભાગની રેખા અને દોઢ દોઢ ભાગના પઢરા અને બાકી આખું ભદ્ર બે ભાગનું કરવું (કુલ નવભાગ) આ સ્કંધના ખુણાખુણ પ્રતિરથની મધ્યમાં ગોળ આમલ સારો પહોળો રાખવો. ૧૫–૧૬–૧૭

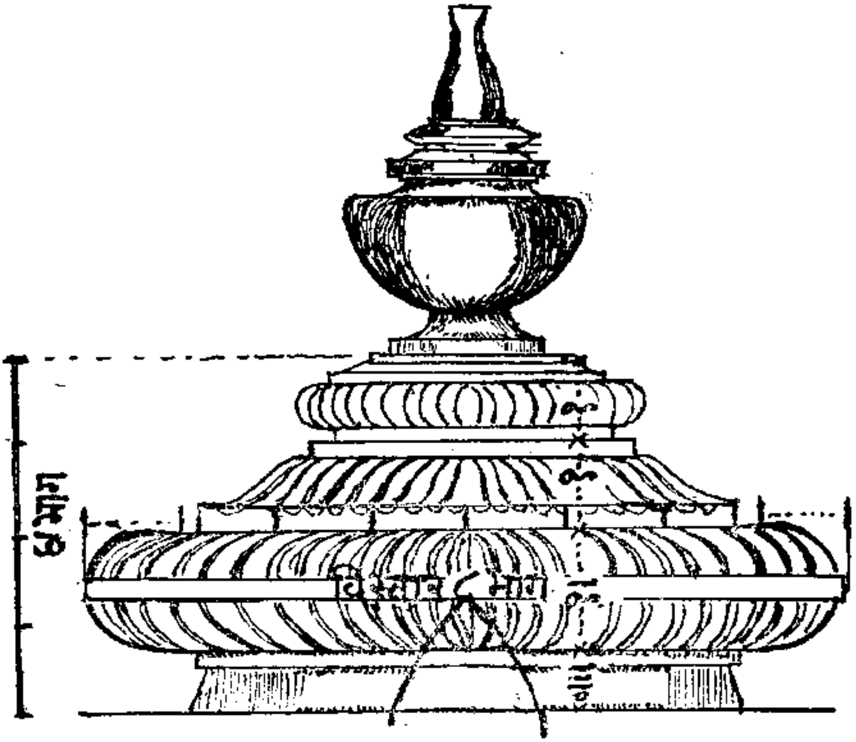

એટલે નીચે પાયાથી ઠેઠ કળશ સુધીની સળંગ વૃત રેખા દોરાય તે. તેમાં બાંધણું અને આમલસારા સાંકડાં થાય ર. દ્રષ્ટાંત–નીચે પાયચાથી આમલસારા સુધી વૃત રેખા દોરાય તે

शिखरमें नीचे मूलरेखाके पर–पायचेके पर दस भाग करना । उनमें दो भागकी रेखा–डेढ़ डेढ़ भागका पढरा और बाकी आधा भद्र भी उतना ही अर्थात् डेढ़ भागका–इन फालनाओंके निकाले–पायचेके बराबर जितने गज हो उसके आधे अंगुल गजके पर रखना । जिस तरह दस भाग नीचे कहे उस तरह स्कंधके पर नौ भाग करना । उनमें दो भागकी रेखा और डेढ़ भागके पढ़रे और बाकी पूरा भद्र दो भागका करना । (कुल नौ भाग) इस स्कंधके कोनेके सामने कोनेमें प्रतिरथकी मध्यमें गोल आमल सारा चौडा रखना । १५–१६–१७.

આ પ્રકાર વિરાટ ભૂમિજ અને વલ્લભી જાતિના પ્રાસાદ માટે છે. (૩) સ્કંધાત એટલે નીચે પાયચાથી બાંધણા સુધી ગોળ વૃત રેખા છુટે (ઉપર આમલસારો તેનાથી બહાર રહી જાય છે તે સ્કંધાંત રેખાવાળુ શિખર નાગરાદિ જાતિના છંદના સાંધાર કે નિરધાર પ્રાસાદને પ્રશસ્ત કહ્યું છે.

(३) १३ शिखरोदयके पायचेसे साढ़ेचार गुने सूत्रसे वृत रेखा दोरना और डेढ़ गुने उदयवाले शिखरके पायचेके विस्तारसे पाँच गुनी सूत्र वृत रेखा दोरनेसे स्कंध के पर साढ़ेपाँच भागके हिसाबसे बराबर मिल रहता है ।

रेखा दोरनेके अनेक प्रकार भेदों प्रासाद शिल्प ग्रंथोंमें कहे हैं । उसमें प्रासादकी जाति छंदके अनुसार मुख्य तीन प्रकार कहे हैं । १ शिखांतर २ घंटांत ३ स्कंधांत

अथवालंजर—तथा वालंजर प्राज्ञ भागभेद विशेषतः ।
द्वाविंशश्च पदं कार्यं चतुर्भिर्मूलनासिकं ॥१८॥
प्रतिरथेत्रयं भागं द्वितीये द्वयमेव च ।
द्विभागाचैव भद्रार्द्धभागभागश्च निर्गमम् ॥१९॥
त्रयादेशांश स्कंधोर्ध्वे कर्तव्यं च प्रयत्नतः ।
त्रिधाकर्णं विभक्तं च द्विभागउर्ध्वकर्णकः ॥२०॥
तथारथप्रभेदेन शेषं भद्रं प्रकीर्तितम् ।
वालंजरे च विज्ञेया रेखा भेदस्यकस्तथा ॥२१॥

હે સુજ્ઞ પુરુષ, હવે (સાંધાર પ્રાસાદના) શિખરના વાલંજરના ભાગના ભેદ વિશેષ કરીને કહું છું. શિખરના પાયચે બાવીશ ભાગ કરવા. તેમાં રેખા ચાર ભાગની, પ્રતિરથ ત્રણ ભાગનો. બીજો ઉપરથ બે ભાગનો અને અરધું ભદ્ર બે ભાગનું. તેના નિકાળા ભાગ ભાગના રાખવા. હવે તેના ઉપર સ્કંધ બાંધણે તેર ભાગ કરવા. ત્રણ ભાગની રેખા–કર્ણ બે ભાગના પ્રતિરથ, એક ભાગનો રથ અને બાકી અર્ધું ભદ્ર, અરધા ભાગનું એમ કુલ તેર ભાગ સાંધાર પ્રાસાદના શિખરના બાંધણે જાણવા. એ રીતે શિખરની રેખાના વાલંજરના ભેદ જાણવા.[४] ૧૮ ૧૯–૨૦–૨૧

हे सुज्ञपुरुष, अब (सांधारप्रासादके) शिखरके वालंजरके भागके भेद विशेषतया मैं कहता हूँ । शिखरके पायचे पर बाईस भाग करना । उसमें रेखा चार भागकी प्रतिरथ तीन भागका दूसरा उपरथ दो भागका और आधा भद्र दो भागका, उनके निकाले भाग भागके रखना । अब उसके उपर स्कंधके पर तेरह भाग करना । तीन भागकी—रेखा—कर्ण दो भागका दूसरा प्रतिरथ, एक भागका रथ और बाकी आधा भद्र आधे भागका, इस तरह कुल तेरह भाग सांधार प्रासादके शिखरके स्कंध पर जानना । इस तरह शिखरकी रेखाके वालंजरके भेद जानना ।[४] १८—१९—२०—२१

(१) शिखांत अर्थात् नीचे पायचेसे कलशतककी सलंग वृतरेखा आँकी जाती है वह, उसमें स्कंध और आमलसारे सँकरे होते हैं । (२) घंटांत—नीचे पायचेसे आमलसारा तक वृतरेखा आँकी जाती है वह, ये प्रकार विराट भूमिज और वल्लभी जातिके प्रासादके लिये हैं । (३) स्कंधांत अर्थात् नीचे पायचेसे स्कंध तक गोल वृतरेखा छुटे (उपर आमलसारा उससे बाहर रह जाता है वह) स्कंधांत रेखावाला शिखर नागरादि जातिके छंदके सांधार या निरंधार प्रासादको प्रशस्त है ।

(४) આગળ શ્લોક ૧૫થી૨૭માં શિખરના ઉપાંગોના ભાગ કહ્યા છે તે નિરધાર

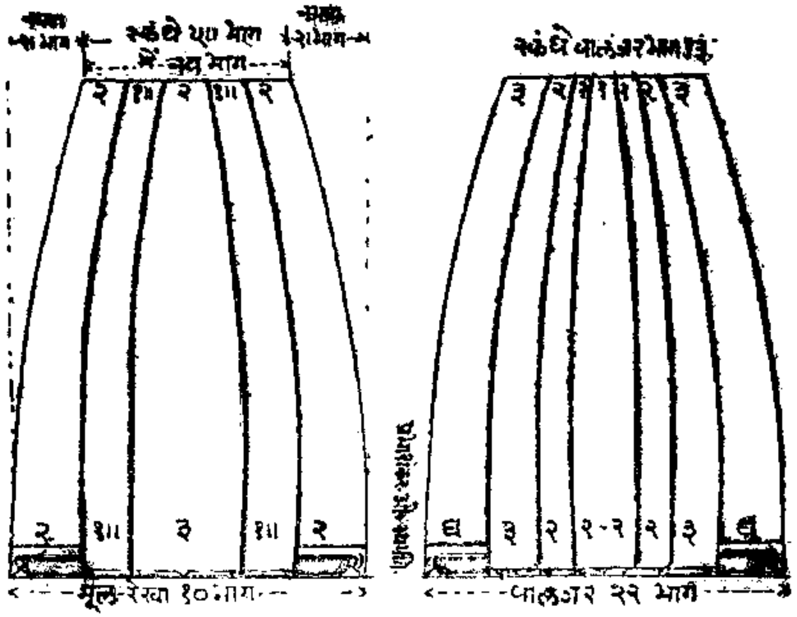

निरंधार–और सांधार प्रासादका मूल शिखरका उपाङ्ग–वालंजर बालपंजर

स्कंधहीनं न कर्तव्यं नाधिकं किंच कारयेत् ।
स्कंध हीने कुलोच्छेदो मृत्यरोग भयावहम् ॥२२॥
आयुरारोग्य सौभाग्यं लभते नात्र संशयः ।
मूलकन्द प्रविष्टे तु स्कंधवेध इति स्मृतः ॥२३॥
शिल्पी स्वामी नौ हन्यते स्कंधवेधेन संशयः ।
निर्गमे हस्त संख्यैर्वाधांगुलैरुपमादितः ॥२४॥

માન પ્રમાણુથી ઓછા સ્કંધવાળું કે અધિક માનના સ્કંધવાળું શિખર ન કરવું. શિખર સ્કંધઃ બાંધણે માપથી ઓછું થાય તો કુળનો નાશ મૃત્યુ અને રોગનો ભય ઉપજે. માન પ્રમાણે કરવાથી આયુષ્ય આરોગ્યને સૌભાગ્યની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેમાં જરા પણ શંકા ન કરવી. જો સ્કંધના મૂળમાં (ધ્વજાદંડ) પ્રવિષ્ટ થાય તો તે સ્કંધવેધ જાણવો. તે વેધથી શિલ્પી અને સ્વામીનો નાશ થાય તે

પ્રાસાદને યોગ્ય છે અને શ્લોક ૧૮થી૨૧ના વાલંજર કહ્યા તે સાંધાર પ્રાસાદના શિખરના છે સાંધારામાં બે પ્રતિરથ કહ્યા છે વાલંજરને સમરાંગણ સૂત્રધારમાં બાલપંજર કહેલ છે.

(४) आगे श्लोक १५ से १७ मे शिखरके उपागोंके भाग कहे थे निरंधार प्रासादके शिखरके योग्य है। और श्लोक १८ से २१ -मे वालंजर कहे है सांधार प्रासादके शिखरके लिये कहे है । सांधारमें दो प्रतिरथ कहा है। वालंजरको समराङ्गण सूत्रधार में बाल पंजर कहा है ।

સંશય વગર જાણવું. બાંધણે વાલંજરના સર્વ નાશિકના નિકાળા જેટલા ગજે પાયચો કે બાંધણું હોય તેટલા ગજે અર્ધા આંગળ પ્રમાણે રાખવા.

मान प्रमाणसे कम स्कंधवाला या अधिक मानके स्कंधवाला शिखर नहीं करना । शिखर जो स्कंधके मापसे कम हो तो कुलका नाश, मृत्यु और रोगका भय उत्पन्न होता है । मानके अनुसार करनेसे आयुष्य आरोग्य और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है । उसमें जरा भी शंका न रखना । जो स्कंधके मूलमें (ध्वजादंड) प्रविष्ट हो तो उसे स्कंध वेध समझना । इस वेधसे शिल्पी और स्वामिका नाश होता है । यह बात निःसंशन जानना । स्कंधके पर वालंजरके सर्व नासिकके निकाले जितने गज पर पायचा या स्कंध हो उतने गज पर आधे आंगुल प्रमाणमें रखना । २२–२३–२४.

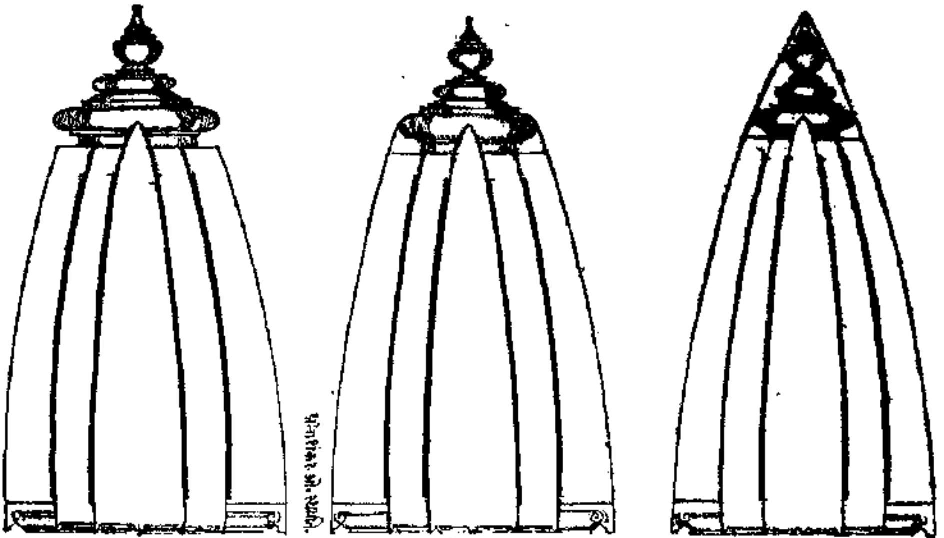

रेखाका सामान्य स्वरुप—१ स्कंधांत (नागरी)—२ घण्टान्त—३ शिखान्त रेखा (विराट वल्लभीः)

अन्योन्ये कथिताश्चैव शुकनाशः मतः शृणु ।
छाद्योर्ध्वे स्कंध पर्यंतं मेकविंशति भाजितम् ॥२५॥
नंद त्रयोदश मध्ये प्रमाणं पंचधामतं ।
कुमारं कपिरुद्रंच निर्धंटा हि निशाचरः ॥२६॥
चंद्रघोषश्च विज्ञेयं शुकनाशंपंचधामतं ।
षणमेकं कुमारं च त्रिषणंकपिरुद्रकम् ॥२७॥

શિખરનું અન્યો અન્ય કહ્યું. હવે શુકનાસના લક્ષણ સાંભળો. છજા ઉપરથી

શિખરના સ્કંધ બંધારણા સુધીની ઊંચાઈના એકવીસ ભાગ કરી. તેમાંના નવ દશ અગ્યાર બાર અને તેર ભાગે શુકનાસની ઊંચાઈના પાંચ પ્રકારે સ્થાન વિભાગ કહ્યા. કુમાર કપિરૂદ્ર, નિર્ધન્ટ નિશાચર અને ચંદ્રઘોષ એમ પાંચ નામો અનુક્રમે શુકનાશના જાણવા. ૨૫–૨૬–૨૭

शिखरका अन्योअन्य कहा । अब शुकनासके लक्षण सुनो । छज्जेके उपरसे शिखरके स्कंध तक ऊँचाईके इकीस भागकर उनके नव, दस, ग्यारह, बारह और तेरह भाग पर शुकनासकी ऊँचाईके पाँच प्रकार कहे । कुमार, कपिरूद्र, निर्धंटं, निशाचर और चंद्रघोष इस तरह पाँच नामों अनुक्रमसे शुकनासके जानना । २५-२६-२७

पंचसप्त नवश्चैव द्विषणांतं प्रकीर्तितं ।
विमानाकार वर्तते कक्षेमुर्ध्वे च नासिकम् ॥२८॥

---

(૫) શિખરના શુકનાસ બરાબર મંડપની ઘંટા સમાન રાખવી. તેવું વિધાન છે. પણ **शुकनासे** समाघंटाः न न्यूना न तत्तोऽधिका એવું अपराजितसूत्र १८५માં કહેલું છે. વળી **दीपार्णव** અને અન્ય શિલ્પગ્રંથો તેમજ अपराजितમાં બીજે સ્થળે तदूर्ध्वेन **प्रकर्तव्यं अधः स्थं** नैवदूषयत्" આમ પણ કહેલ છે. તેથી શુકનાશથી મંડપની ઘંટા નીચે રાખવી. તેમાં દોષ નથી. शुकनासे समाघंटा કહે છે. પણ આમલસારો મંડપ પરનો કહ્યો નથી. તેનું કારણ તેરમી ચૌદમી સદીમાં મંડપ પર ઘુમટ નહીં પરંતુ શામરણ કરતા અને તેની સર્વોપરિ મૂલઘંટા આવે તેથી ઘંટા કહેલ છે. સંવરણા પાછલા કાળમાં ઓછી થવા માંડી તેથી ઘુમટ કરી ચંદ્રસ મુકી આમલસારા પર કળશ મુકવાની પ્રથા શરૂ થઈ.

(५) शिखरके शुकनासके बराबर मंडपकी घंटाको समान रखना, वैसा विधान है । लेकिन "शुकनासे समाघंटा नन्यूना न तत्तोऽधिका" ऐसा "अपराजित सूत्र" १८५ में कहा है, और दीपार्णव और अन्य शिल्प ग्रंथों और अपराजितमें दूसरे स्थल पर" तदूर्ध्वे न प्रकर्तव्यं अधः स्थे नैव दूषयेत्" ऐसा भी कहा है । इससे शुकनाससे मंडपकी घंटाको नीची रखना, इसमें दोष नहीं है । शुकनास समाघंटा कहते हैं, लेकिन आमलसारा मंडपके उपरका नहीं कहा है । इसका कारण तेरहवीं सदीमें मंडपके पर घुमट गुँबज नहीं लेकिन शामरण करते थे और उसकी सर्वोपरि मूलघंटा आवे इसीलिये घंटा कहा है । संवरणां पीछले कालमें कम होने लगी इससे गुँबजकर चंद्रस रखकर आमलसारा के पर कलश रखनेकी प्रथा शुरू हुई।

(૬) શ્લોક ૨૭થી૩૧નાં મૂળપાઠ જ અમે મુકેલ છે. તેની અશુદ્ધિના કારણે અનુવાદ કરવામાં ગેરસમજના ભયે અમે તેમ કર્યું નથી. શુકનાસમાં એક ત્રણ પાંચ કે સાત ઉપરાપર દોઢિયા કરી ઉપર સિંહ સ્થાપન થાય છે.

(६) श्लोक २७ से ३१ के मूल पाठ ही हमने रखे हैं । उनकी अशुद्धिके कारण अनुवाद करनेमें गैरसमज के संभवसे हमने वैसा रखा है । शुकनासमें एक तीन पाँच या सात उपरापर दोढिये बनाकर ऊपर सिंहका स्थापन होता है ।

अष्टधादश चैवोकतं नष्टकर्णी विशेषत: ?
नष्टकर्णी यदामूर्ध्वे निर्वादं परिभूमिकैः ॥२९॥
सर्वेसिंह समायुक्ता कलशाग्रे विशेषत: ।
तथा भद्र विचारेण शृंगस्य शुष्कमेव च ॥३०॥
शृङ्गाद्वयं प्रयत्नेन शृंगमेके विचक्षण:
... ... ॥३१॥

ભાવાર્થ—એક ખંડ કુમાર, ત્રણ ખંડ કપિરૂદ્ર, પાંચ ખંડ નિઘંટુ, સાત ખંડ નિશાચર અને નવખંડ ચંદ્રઘોષ. એમ ઉત્તરોત્તર બબ્બે ખંડના અંતે.... વિમાનકારનું શુકનાસ કરવો. તે પર બાજુ અને ઉપર નાસિકા કરવી........અઠ્ઠાઇ કે દશાઈ ખુણી વગરના વિશેષ કરી..........ઉપર કળશના આગળ સિંહો કરવા ૨૭–૨૮–૨૯–૩૯–૩૧

एक खंड कुमार, तीन खंड कपिरूद्र, पाँच खंड निघंटु, सात खंड निशाचर और नौ खंड चँद्रघोष इस तरह उत्तरोत्तर दो दो खंडके अंतमें......विमानाकारका शुकनास करना । उसके पर बाजु और उपर नासिका करना । खट्टाई या दसाई कोनेके विना विशेष कर.........उपर कलशके आगे सिंहो करना....... ...२७–२८–२९–३०–३१

अथ कोकिला लक्षण— [७]अथात: संप्रवक्ष्यामि कोकिला लक्षणंपरम् ।
स्थान प्रमाणमे तेषां शुभं वा यदिवाऽशुभम् ॥३१॥
कोण विस्तार विस्तीर्णा कोकिला शुभलक्षणम् ।
उभयो: पार्श्वयोरेव एकैका च प्रशस्यते ॥३२॥
कोणार्द्धं च यमदंष्ट्रा भित्तिश्चैव शुभप्रदा ।
सर्वलक्षणसंयुक्ता कोकिला सुफलप्रदा ॥३३॥

હવે હું કોકિલાના સ્થાન પ્રમાણ અને શુભાશુભ લક્ષણો કહું છું. પ્રાસાદની રેખા કોણ જેટલી પહોળી કોકીલા કરવી તે શુભ લક્ષણ જાણવું. કોલીના બેઉ પડખે એકેક કોકીલા–પ્રાસાદપુત્ર કરવા તે પ્રશંસનીય છે. રેખા જેટલા ભાગની હોય તેનાથી ઓછી કે અર્ધા ભાગની કોકિલા કરે તે યમ દંષ્ટ્રા વેધરૂપ જાણવી પણ તે પ્રાસાદની ભિતની જાડાઈ જેટલી કોકિલા શુભ કહી છે. સર્વ લક્ષણ યુક્ત કોકિલા (પ્રાસાદપુત્ર) કરવાથી શુભ ફળને આપે છે. ૩૧–૩૨–૩૩.

अब मैं कोकिलाके स्थान प्रमाण और शुभ अशुभ लक्षणोंके बारेमें कहता

૭ કોકિલા લક્ષણના પાઠ કેટલીક ગ્રંથોમાં નથી. તેથી આ પ્રથા પાછળથી પ્રવિષ્ટ થઈ હોય.
७ कोकिला लक्षणके पाठ कई ग्रंथोमें नहीं है, संभव है उसका प्रचार पीछेसे हुआ हो।

हूँ । प्रासादकी रेखाके कोनेके बराबर चौडी कोकिला । यह शुभ लक्षण समझना । कोलीका दोनों तरफ एक एक कोकिला (प्रासादपुत्र) बनाना, यह प्रशंसनीय है । रेखासे कम भागकी कोकिलाकी जाय, वह यमदंष्ट्रावेधरूप जानना । लेकिन वह प्रासादकी दिवारके मोटेपनके बराबर कोकिला शुभ कही है । सर्व लक्षण युक्त कोकिला (प्रासादपुत्र) करनेसे शुभफलको देती है । ३१–३२–३३.

षड्भागैस्कंध विस्तारं सप्तभिः आमलसारकं ।
अर्धोदयं कर्तव्यं तदूर्ध्वे कलशोत्तमा ॥३४॥
तथामलसारि च विस्तारं च अतःश्रृणु ।
सप्तभागमध्ये च चतुषष्टि विभाजितम् ॥३५॥
द्वांत्रिशोदयं काय ग्रीवा भागं षडंमवेत् ।
अंडकं भास्करं विद्यात्–अष्ट चंद्रा विलोकित ॥३६॥

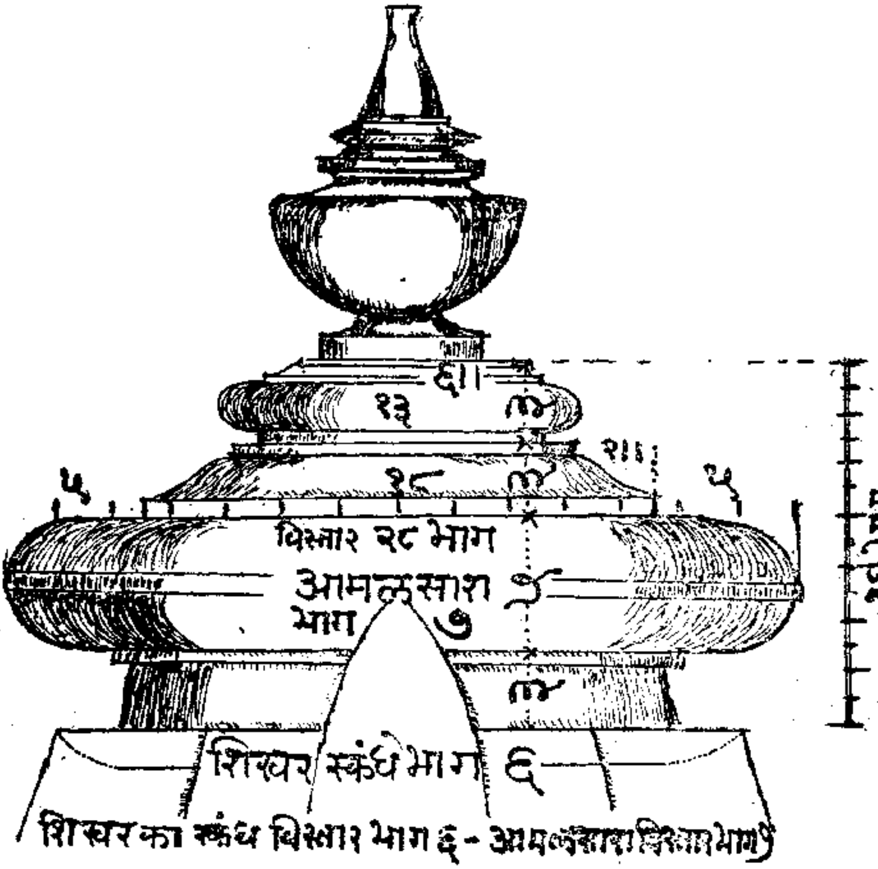

आलमसारा विभाग २८ × १४

આમલસારા વિસ્તારનું બીજું પ્રમાણ કહે છે. સ્કંધ-બાંધણે છ ભાગ હોય તો આમલસારો સાત ભાગ વિસ્તારનો કરવો. અને તેનું અર્ધ ઊંચો કરી તે પર ઉત્તમ એવો કળશ (ઇંડું) મૂકવો, હવે આમલસારાની પહોળાઈના ભાગ કહું છું. છ ભાગ બાંધણે અને સાત ભાગ આમલસારો વિસ્તારમાં કહ્યો તે સાત ભાગમાં ચોસઠ ભાગ પહોળાઈના અને બત્રીશ ભાગ ઊંચાઈના કરવા. ગળું છ ભાગ-અંડક (મોટો ગોળો) બાર ભાગનો, તે પર ચંદ્રસ આઠ ભાગનો અને ઉપર જાંજરી (ગોળો) છ ભાગનો કરવો. એ રીતે ઊંચાઈના બત્રીશ ભાગ જાણવા. હવે તેના નિકાળાના ભાગ સાંભળો. ૩૪-૩૫-૩૬.

आमलसारा विस्तारका दूसरा प्रमाण कहते हैं । स्कंध छः भाग हो तो आमलसारा सात भाग विस्तारका करना । और उसका अर्ध ऊँचा करके उसके पर उत्तम ऐसा कलश (अण्डा रखना । अब आमलसाराकी चौडाईके भाग कहता हूँ । छः भाग स्कंधपर और सात भाग जो आमलसारा जो विस्तारमें कहा वह सात भागमें. चौसठ भाग चौडाईमें और छत्तीस भाग ऊँचाईमें करना । गला छः भाग-अंडक (बडा गोला) बारह भागका, उसकेपर चंद्रस आठ भागका और उपर की जांजरी (गोला) छः भागकी करना । इस तरह ऊँचाईमें बत्तीस भाग जानना । अब उसके निकालेके भागको सुनो । ३४-३५-३६

षड्भाग वामलसारि च निष्कांत च अत:श्रृणु ।
अंडकं द्वादशं भागं च सप्तमि चंद्रकोधिकम् ॥३७॥
षड्भिः रामलसारि च चतुर्दशोर्ध्वकलशासनम् ।
तपसा स्कंध संस्थाने अंडकौपर्यंकादिषु ॥३८॥

હવે આમલસારાના વિસ્તાર-પહોળાઈના ભાગ કહે છે. અંડક નીકાળો (ચંદ્રસની પટ્ટીથી) બાર ભાગનો ચંદ્રસનો નિકાળો (જાંજરીના ગોળાના પેટાથી) સાત ભાગનો, અને જાંજરીનો નીકળો તેના કંદથી છ ભાગનો રાખવો કળશાસન કળશને સ્થાપન કરવાની પહોળાઈના ચૌદ ભાગ રાખવા એ રીતે કુલ ચોસઠ ભાગ વિસ્તારના જાણવાં સ્કંધના બાંધણાના કોણે તાપસનાં રૂપ કરવાં અને અંડકમાં પ્રાસાદનો સુવર્ણ પુરુષ પર્યંક-ઢોલીયો સાથે પધરાવવો.[૮] ૩૭-૩૮

(૮) આમલસારાના પૃથક્ પૃથક્ વિભાગ જુદા જુદા ગ્રંથોમાં કહ્યા છે. દીપાર્ણવમાં ચૌદ ભાગ ઉંચાઈમાં ગળું ત્રણ ભાગ અંડક પાંચ ભાગ ચંદ્રસ અને જાંજરી ત્રણ ત્રણ ભાગની એમ કુલ ચૌદ ભાગ ઉદય અને અઠ્ઠાવીશ ભાગ વિસ્તાર બીજા પ્રકારે ઉંચાઈમાં ચાર ભાગ કરી પોણા ભાગનું ગળું સવા ભાગનો અંડક ચંદ્રક અને જાંજરી એકેક ભાગની કરવી કુલ ૮ ભાગ વિસ્તારમાન જાણવું.

(८) पाठान्तरे नवचन्द्राविलोकित ।

अब आमलसाराके विस्तार-चौडाईके भाग कहते हैं। अंडक निकाला (चंद्रसकी पट्टीसे) बारह भागका निकाला (जांजरीके गोलेके पेटेसे) सात भागका, और जांजरीका निकाला उसके कंदसे छः भाग का रखना। कलशासन-कलशको स्थापन करनेकी चौडाईके चौदह भाग रखना। इस तरह कुल चौसठ भाग विस्तारके जानना। स्कंध के कोणेंपर तापसके रूप करना और अंडकमें प्रासादके सुवर्णपुरुष पर्यंकके साथ पधराना। ३७-३८

शिवेचेश्वररुपं तु ध्यानमूर्ति विचक्षणः।
शिखरकर्णे प्रस्थाप्यं जिनेकुर्याज्जिनेश्वरः ॥३९॥

શિખરના સ્કંધે-બાંધણાના ખુણે આમલસારાના ગળામાં શિવ-ઈશ્વરનું ધ્યાનમગ્ન સ્વરૂપ વિચક્ષણ શિલ્પી એ કરવું. પરંતુ જો જૈન પ્રાસાદ હોય તો જિનેશ્વરની બેઠી મૂર્તિ કરી મૂકવી.[૯] ૩૯.

शिखरके स्कंधपर बांधणेके कोनेपर आमलसाराके गलेमें शिव-ईश्वरका ध्यान मग्न स्वरूप विचक्षण शिल्पीको करना। लेकिन जो जैन प्रासाद हो तो जीनेश्वरकी बैठी मूर्ति कर रखना। [६] ३९

ध्वजादंडकास्थान-प्रासादपृष्ठि देशे तु दक्षिणे प्रतिरथके।
ध्वजाधारस्तुकर्तव्य ईशाने नैरुतेऽथवा ॥४०॥

८. आमलसाराके पुथक् पृथक् विभाग भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें हैं। दीपार्णव में चौदह भाग ऊँचाईमें गला तीन भाग, अँडक पाँच भाग, चन्द्रस और जांजरी तीन तीन भागकी इस तरह कुल चौदह भाग उदय और अठ्ठाईस भाग विस्तार, दूसरे प्रकारसे-ऊँचाई में चार भाग कर पौने भागका गला, सवा भागका अंडक चन्द्रस और जांजरी एक एक भागकी करना। उस तरह ८ विस्तारमान है।

(૯) મૂળ શિખરના આમલસારાના મધ્યગર્ભે જીભીરૂપે (કુંડ્યતોથી અલંકૃત કરેલી હોય છે.) પરંતુ પાછલા કાળમાં આમલસારના ચારે ગર્ભે યોગિનીના મુખો અને સ્કંધ પર ખુણે તાપસનાં રૂપો કરવાની પ્રથા પ્રવિષ્ટ થઈ હોય તેમ લાગે છે. ભદ્રે યોગિની મુખ કરવાનો કોઈ ગ્રંથમાં પાઠ નથી. ભારતના અન્ય પ્રદેશોના શિખરોમાં જીભીના સ્થાને જુના કામોમાં રૂપની આકૃતિ કરેલ જોવામાં આવે છે. ઉડીયા પ્રદેશમાં ઉભડક પગે બેઠેલ હાથ જોડતો પુરુષ જોવામાં આવે છે.

બીજી એક પ્રથા શિખરના બાંધણામાં ૭ આઠ દશ આંગુલનો બાંધણાનો પટ્ટો બહાર કાઢવાની પ્રથા શિલ્પીઓમાં બસોક વર્ષથી નવીન પેઠી છે. જૂના કોઈપણ કામમાં બાંધણાનો ઉપડતો પટ્ટો જોવામાં આવતો નથી. બારમી સદીના સોમનાથજીના પ્રાચીન મંદિરના શિખરને આવો પટ્ટાનો થર નરથર જેવો તેના અવશેષોમાં જોવા મળે છે.

९. मूल शिखरके आमलसाराके मध्य गर्भमें जीभी के रूपमें (कुडचलोंसे अलंकृत की हुई होती है) परन्तु पीछले कालमें आमलसाराके चारों गर्भोमें योगिनीके मुखों और स्कम्ध के पर

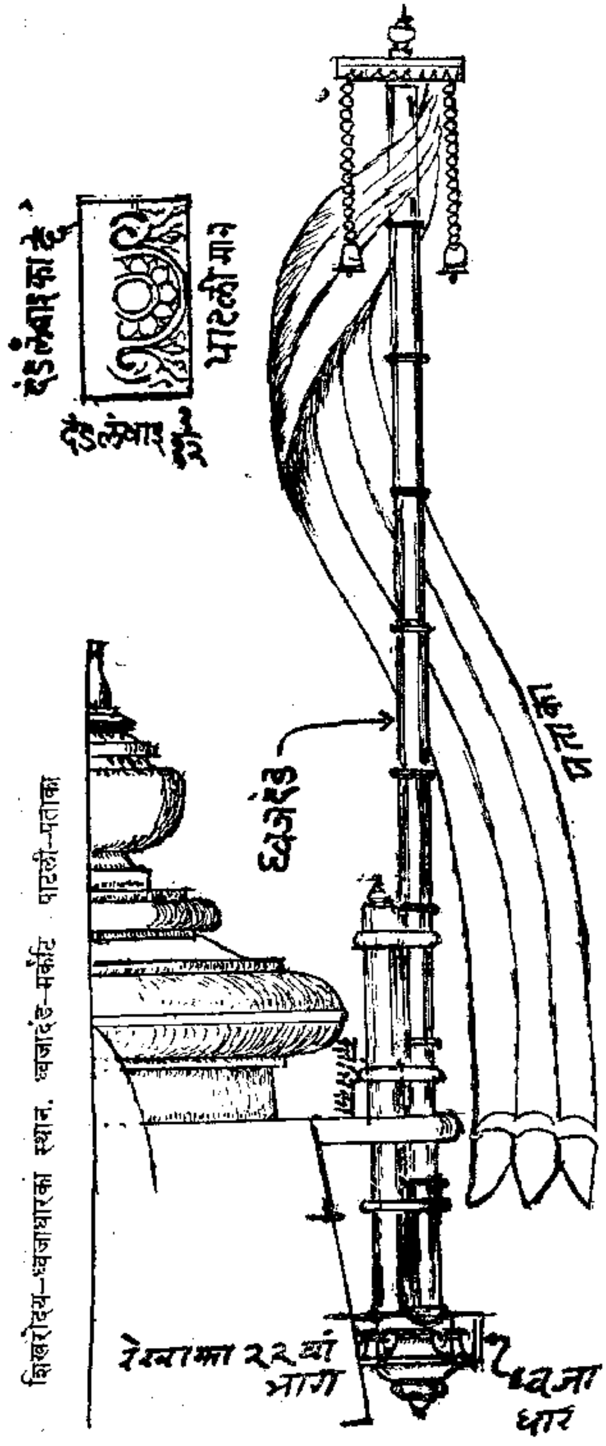

પ્રાસાદના શિખરને ધ્વજાદંડ રોપવાનું સ્થાન–પાછલા ભાગમાં જમણી તરફના પઢરે ધ્વજાધાર પૂર્વમુખના પ્રાસાદને નૈઋત્ય ખુણે કે પશ્ચિમ મુખના પ્રાસાદને ઈશાનકોણે રાખવો. ૪૦.

प्रासादके शिखरको ध्वजादंड रखनेका स्थान पिछले भागमें दाहिनी तरफ के पढरेपर ध्वजाधार पूर्वमुखके प्रासादको नैऋत्य कोनेमें या पश्चिम मुखके प्रासादको ईशानकोनेमें रखना । ४०

ध्वजाधार—स्तंभवेध स्थान प्रमाण—

रेखोर्ध्वे षष्टके भागे
सूत्रांशपाद वर्जितम् ।
ध्वजाधारस्तु कर्तव्या
दक्षिणे च प्रतिरथे ॥४१॥

પ્રાસાદના શિખરની મૂળ રેખાના ઉદય પાયચાથી બાંધણા સુધીની ઊંચાઈના છ ભાગ કરી તેમાં ઉપરના છઠ્ઠા ભાગમાં ચોથો ભાગ હીન કરી તેટલામાં ભાગે બાંધણાથી નીચે ધ્વજાધાર (મોટું લાભસું કલાબો) શિખરની પાછળ જમણી તરફના પ્રતિરથમાં કરવો. આ ધ્વજાધારને=સ્તંભવેધ–પણ કહે છે. (પાછલા બસોક વર્ષમાં ત્યાં ધ્વજાપુરુષની મૂર્તિ કરવાની પ્રથા ગુજરાતમાં ચાલુ થઈ છે

शिखरोदय का ध्वजाका स्थान ध्वजादंड—मर्कटी=पाटली और पताका

પરંતુ ત્યાં લામસા જેવો ધ્વજાધર કરવો ૪૧.

प्रासादके शिखरकी मूलरेखाके उदय-पायचेसे स्कंध तककी ऊँचाईके छः भागकर उसमें उपरके छट्ठे भागमें चौथे भागको हीनकर, उतनेही भागमें स्कंधसे नीचे ध्वजा धार (बडा लामसा, कलाबा) शिखरके पीछे दाहिनी तरफके प्रतिरथमें करना। यह ध्वजाधारको=स्तम्भवेध भी कहते हैं। (पीछले करीब दोसौ वर्षमें यहाँ ध्वजापुरुषकी मूर्ति करनेकी प्रथा गुजरातमें चालु हुई है, परंतु वहाँ लामसाके जैसा ध्वजाधार करना। ४१

प्रासादस्य पृष्ठभागे दक्षिणादिशि चानुगे।
स्तंभवेधस्तु कर्तव्यों भित्तिश्च षष्टकांशकः ॥४२॥
ध्वजावती स्तंभिका च चाष्टांश्रवा वृत्तास्तथा।
तदूर्ध्वेकलशं कुर्यात् वंश बंध प्रतिहस्तके॥४३॥

પ્રાસાદના શિખરના પાછલા ભાગમાં જમણા પ્રતિરથમાં સ્તંભવેધ (ધ્વજાદંડને ઉભા રાખવાનો લામસા જેવો કલાબો) કરવો તે પ્રાસાદની ભીતની જાડાઈના છઠ્ઠા ભાગ જેટલો કરવો. ધ્વજાદંડ સાથે ઉભી કરવાની સ્તંભિકા (ધ્વજાધારથી તે આમલસારના મથાળા સુધીની ઉંચાઈની) કરવી તે સ્તંભિકા અઠાંશ અથવા ગોળ (ધ્વજાદંડથી થોડી પાતળી) કરી તે ઉપર કળશ કરવો ધ્વજાદંડઅને તે સ્તંભિકાને મજબુત (ત્રાંબાના પાટાના) બંધો ગજે ગજે જડવા.[१०] ૪૨–૪૩.

कोनेमें तापसके रूपों करने की प्रथा प्रविष्ट हुई हो ऐसा लगता है। भद्रमें मुख करने का किंसी ग्रंथमें पाठ नहीं है।

भारतके अन्य प्रदेशोंके शिखरोंमें जीभीके स्थानपर पुराने कामोंसे रूपकी आकृति की हुई दिखती है। उडीया प्रदेशमें खडे पाँव पर बैठा हुआ हाथ जोडता पुरुष देखनेमें आता है।

दूसरी एक प्रथा शिखरके स्कंधमें छः आठ दस अँगुलके स्कंधके पट्टेको बाहर निकालनेकी प्रथा शिल्पियोंमें करीब दोसों वर्षोंसे प्रविष्ट हुई है। पुराने कोई भी काममें स्कंधका उठता पट्टा दिखता नहीं है। बारहवीं सदीके सोमनाथजीके प्राचीन मंदिरके शिखरको ऐसा पट्टा-थर नरथर जैसा उसके अवशेषोंसे देखनेको मिलता है।

(૧૦) ધ્વજાદંડ સ્થાપનની પ્રાચીન પ્રથા શ્લોક ૪૧ થી ૪૩માં બતાવ્યા પ્રમાણે સ્કંધ બાંધણા નીચે ધ્વજાધાર સ્તંભવેધ કે કલાબા કરી ત્યાંથી ધ્વજાદંડ ઊભો કરવામાં આવે છે. વળી બાંધણાના ભાગમાં પણ પાષાણનો નિકાળો રાખી તેમાં કાણું–(હોલ) પાડી ધ્વજાદંડને પરોવી સ્થિર મજબૂત કરવામાં આવે છે તે સ્તંભવેધ કલાબામાં આંગળ અરધા આંગુલ જેટલું નીચે દંડ ઉતારી સ્થિર કરવો. અને દંડ સાથે સ્તંભિકા જરા પાતળી આમલસારા જેટલી ઊંચી બાંધવી.

બસોક વર્ષોથી ગુજરાતની વર્તમાન પ્રથા આમલસારામાં સાલ ખોદી ત્યાંથી ધ્વજાદંડ ઉભો કરવાથી ધ્વજાદંડની લંબાઈના માનથી એ સાલ જેટલો દંડનો ભાગ વધુ રાખવો.

प्रासादके शिखरके पीछले भागमें दाहिने प्रतिरथमें स्तम्भवेध, (ध्वजा दंडको खडा रखनेका लामसा जैसा कलाबा) करना। उसको प्रासादकी दिवारके मोटेपनके छट्ठे भागके बराबर करना। ध्वजादंडके साथ खडी करनेकी स्तंभिका (ध्वजाधारसे आमलसाराके शीर्षक तककी ऊँचाईकी) करना। उसको अठांश अथवा गोल (ध्वजादंडसे थोडी पतली) कर उसके उपर कलश करना। ध्वजदंड और स्तम्भिकाको मजबूत (ताँबेके पाटेकी बंध गज गज पर जड़ देना।[१०] ४२-४३

પડે છે. અને તે ઉંચો જણાય છે. પ્રાચીન પ્રથા બાંધણાથી બહાર અને બાંધણાથી નીચે ધ્વજાધાર કરીને તે પર દંડ ઊભો કરવાથી તે પ્રમાણસર દંડ ઉંચો દેખાય છે. રાજસ્થાનના સોમપુરા શિલ્પીઓ ઘણાખરા આ જૂની પ્રથાને અનુસરે છે.

આમલસારામાં ધ્વજાદંડને દાખલ કરવો તે વેધ છે.

ઉપર કહ્યો તે ધ્વજાધારને બદલે ધ્વજા ધારણ કરતો પુરુષ શિખરની પાછળ કરવામાં આવે છે. આ પ્રથા માટે મતભેદ છે. કેટલાક જૂના કામમાં જોવામાં આવે છે. પરંતુ શાસ્ત્ર પાઠ ધ્વજાધાર લામસાનો અર્થ વધુ બંધ બેસે છે.

ધ્વજાદંડ સાથે ઊભી કરવામાં આવતી દંડીકા માટે વાદવિવાદ છે. શાસ્ત્રાધારને વધુ માન આપવું તે યોગ્ય છે.

(१०) ध्वजादंड स्थापनकी प्राचीन प्रथा श्लोक ४१ से ४३ में जो बताया है। उसी अनुसार स्कंधके नीचे ध्वजाधार स्तंभवेध या कलाबा करके वहाँसे ध्वजादण्डको खडा किया जाता है, और स्कंधके भागमें भी पाषाणका निकाला रखकर उसमें छिद्र रखके ध्वजा दंडको पिरोकर स्थिर-मजबूत किया जाता है, वह स्तंभवेध-कलाबेमें अंगुल अर्ध अंगुल जितना नीचे उतारकर दंडको स्थिर करना। और दंडके साथ स्तंभिका जरा पतली आमलसाराके बराबर ऊँची बाँधना।

करीब दो सौ वर्षोंसे गुजरातकी वर्तमान प्रथा आमलसारेमें सालको गाड़कर वहाँसे ध्वजा दंडको खड़ा करनेसे ध्वजा दंडकी लम्बाईके मानसे उस सालके बराबर दंडका भाग ज्यादा रखना पड़ता है। और वह ऊँचा दिखता है। प्राचीन प्रथा स्कंधसे बाहर और स्कंधसे नीचे ध्वजाधार कर उसके उपर खड़ा करनेसे वह प्रमाणसर ऊँचा दिखता है। राजस्थानके सोमपुरा शिल्पीयों बहुत करके पुरानी प्रथाको अनुसरते हैं।

आमलसारेमें ध्वजादंडको दाखिल करना यह वेध है।

उपरोक्त ध्वजाधारके बदले ध्वजाधारी पुरुष शिखरके पीछे किया जाता है। इस प्रथाके लिये मतभेद है। कई पुराने काममें दिखाता है। परंतु शास्त्र पाठ ध्वजाधार लामसाका अर्थ ज्यादा बैठता है।

ध्वजा दंडके साथ खड़ी की जाती दंडिकाके लिये वाद विवाद है। शास्त्राधारको ज्यादा मान देना चाहिये।

अथकलश—यथाकलशस्य यत् द्रव्यं प्रासादाष्टमांशकंम्[११] ।
विस्तारंकृते प्राज्ञ उदयं च सार्द्धं संगुणम् ॥४४॥
ततो नवधा विभक्तं च पडघीभागमेवच ।
अण्डकं च त्रयो भाग ग्रीवायां भागएवच ॥४५॥
पनडी कंकणीयुक्तं भागमेकं च कारयेत् ।
अंडकोच्च त्रयो भागे भागैकं मस्तको परि ॥४६॥

જે દ્રવ્યનો પ્રાસાદ હોય તે દ્રવ્ય (પાષાણ કે ધાતુ કે કાષ્ટ)નો કળશ, પ્રાસાદ જેટલો રેખાયે હોય તેના આઠમા ભાગે પહોળો કરવો અને પહોળાઇથી દોઢો ઉંચો ડાહ્યા શિલ્પીએ કરવો. નીચેની પડઘી પીઠ એક ભાગની, અંડક ત્રણ ભાગનો, ગળું છજીને કણી એકેક કુલ બે ભાગની અને દોડલો = બીજપુર ત્રણ ભાગ ઉંચો અને તે મથાળે એક ભાગનો પહોળો ડોડલો કરવો એ રીતે નવ ભાગ ઉંચાઇના જાણવા. ૪૪–૪૫–૪૬.

जिस द्रव्यका प्रासाद हो उस द्रव्य (पाषाण या धातु या काष्ट) का कलश, प्रासादको वह जितना रेखाके पर हो उसके आठवें भागमें चौडा करना । और चौडाईसे डेढ़गुना ऊँचा करना । नीचेकी पडदा पीठ एक भागकी, अंडक तीन भागका, गला, छजी और कणी एक एक कुल दो भागकी और दोडला = बीजपुर, तीन भाग ऊँचा और उस शीर्षकपर एक भागका चौडा दोडला करना । इस तरह नौ भाग ऊँचाईके जानना । ४४–४५–४६

(११) પ્રાસાદની રેખાના આઠમાંશ કળશ એ કનિષ્ઠમાન કહેલ છે. તેનો સોળમો ભાગ વધારવાથી શ્રેષ્ઠમાન અને બત્રીશમો ભાગ વધારવાથી મધ્યમાન કળશની પહોળાઇના જાણવા.

વૈરાટ, દ્રાવિડ, ભૂમિજ, વિમાન અને વલ્લભાદિ જાતિના પ્રાસાદોને પ્રાસાદના છઠ્ઠા ભાગે વિસ્તારનો કળશ કહ્યો છે.

કળશનાં બીજા બે પ્રમાણો કહ્યાં છે. શિખરના પાયચાની પહોળાઇના પાંચમા ભાગે કળશ પહોળો કરવાનું કહ્યું છે તેમજ આમલસારાના સોળ ભાગ કરી તેના પાંચમા ભાગે કળશ પહોળો રાખવાનું ત્રીજું પ્રમાણ છે.

(११) प्रासादको रेखाके अष्टमांश कलश यह कनिष्ठमान कहा है । उसके सोलहवे भागका बढानेसे श्रेष्ठमान और बत्तीसवाँ भाग बढानेसे मध्यमान कलशकी चौडाईके जानना ।

वैराट, द्रविड, भूमिज, विमान और वल्लभादि जातिके प्रासादोंको प्रासादके छठ्ठे भागमें विस्तारका कलश कहा है । कलशके दूसरे दो प्रमाण कहे हैं । शिखरके पायचेकी चौडाईके पाँचवे भागमें कलशको चौडा रखनेके लिये कहा है । और आमलसारेके विस्तारके सोलह भाग कर उसके पाँचवे भागमें कलशको चौडा रखनेका तीसरा प्रमाण है ।

ग्रीवायांक्षोभयेत्प्राज्ञः द्विभागं च विचक्षणम् ।
षड्अंडकं पनडी चैव चतुर्भागानि मध्यतः ॥४७॥
अग्रेकांशमूले द्वौ वह्नी वेदांश कर्णिके ।
श्रेष्ठं च सर्वं श्रेष्ठानां सुवर्णकलशं ध्वजम् ॥४८॥

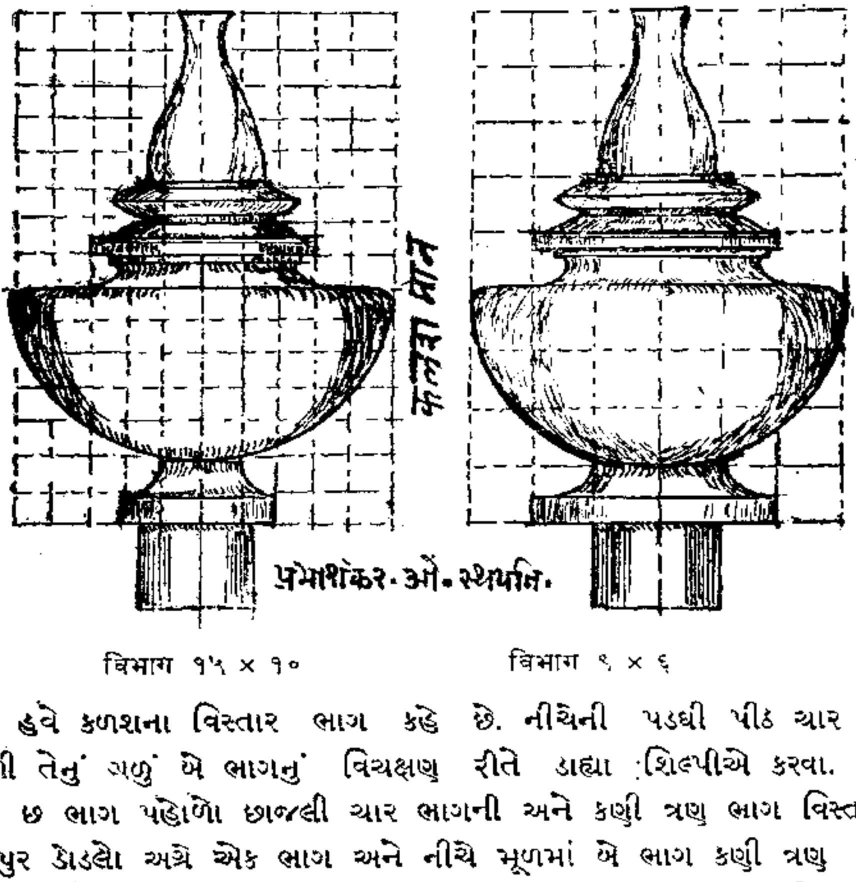

विभाग १५ × १०   विभाग ९ × ६

હવે કળશના વિસ્તાર ભાગ કહે છે. નીચેની પડઘી પીઠ ચાર ભાગ પહોળી તેનું ગળું બે ભાગનું વિચક્ષણ રીતે ડાહ્યા શિલ્પીએ કરવા. મોટો અંડક છ ભાગ પહોળો છાજલી ચાર ભાગની અને કણી ત્રણ ભાગ વિસ્તારની બીજપુર ડોડલો અગ્રે એક ભાગ અને નીચે મૂળમાં બે ભાગ કણી ત્રણ ભાગ અને છાજલી ચાર ભાગની કરવી. શ્રેષ્ઠમાં શ્રેષ્ઠ અને સર્વશ્રેષ્ઠ સુવર્ણનો કળશ ધ્વજદંડ પ્રાસાદને જાણવો. ૪૭–૪૮.

अब कलशके विस्तार भाग कहते हैं । नीचेकी पीठ चार भाग चौडी उसका गला दो भागका विचक्षण रीतसे सयाने शिल्पीको करना । बडा अंडक छः भाग चौडा-छांजली चार भागकी और कणी तीन भाग विस्तारकी-बीजपुर डोडला अग्रे एक भाग और नीचे मूलमें दो भाग-कणी तीन भाग और छाजली चार भागकी करना । श्रेष्ठमें श्रेष्ठ और सर्वश्रेष्ठ सुवर्णके कलशको ध्वजदंड प्रासादको जानना । ४७–४८

अथ प्रासादपुरुष:—अथातः संप्रवक्ष्यामि पुरुषस्य प्रवेशनम् ।
न्यसेद् देवालयप्येवं जीव स्थान फलं भवेत् ॥४९॥
स्कंधोर्ध्वं तत स्थाप्य ताम्र पर्यंक संस्थिताम् ।
शयनं चापि निर्दिष्टं पद्मं वै दक्षिण करे ॥५०॥
[१२]त्रिपताक करं वामे कार्ये हृदि संस्थितम् ।
धृतपात्रं स्यो परि पर्यंके सुवर्णपुरुषे ॥५१॥
प्रमाणं तस्य वक्ष्यामि अर्द्धांगुले चैक हस्तकम् ।
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि र्यावत्पंचाश हस्तकम् ॥५२॥

હવે હું સુવર્ણના પ્રાસાદ પુરુષ જે જીવ સ્થાન રૂપ છે તે આમલ સારામાં પધરાવવાનો વિધિ જે ફળ રૂપ છે તે કહું છું. બાંધણાના મથાળે આમલસારામાં ત્રાંબાકે ચાંદીનો ઢોલીયો (રેશમના દોરાની પાટી કરી) ગાદલી ઓશીકું રેશમનું કરી તે પર સુવર્ણનો પ્રાસાદ પુરૂષ જેના જમણા હાથમાં કમળ અને ડાબો હાથ ત્રણ શિખાવાળી પતાકા ધારણ કરેલ હાથ હૃદયે છાતીએ રાખેલો હોય તેવી આકૃતિવાળી પધરાવવી (સુવરાવવી.) આમલસારમાં ત્રાંબાનો ઘી ભરેલ કળશ પાત્ર ઉપર ઢોલીઓ મૂકી તે પર સુવર્ણની પ્રાસાદ પુરુષની મૂર્તિ સંપૂટ રૂપે રાખી સુવરાવવી. તેનું પ્રમાણ કહું છું. પ્રત્યેક ગજે અર્ધા અર્ધા આંગળની તેમ પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદનું પ્રમાણ પ્રાસાદ પુરુષનું જાણવું.[૧૩] ૪૯-૫૦-૫૧-૫૨.

---

(૧૨) સુવર્ણ પ્રાસાદ પુરુષના ડાબા હાથમાં ત્રણ શીર્ષકવાળી પતાકા દેવાનું કહ્યું છે અને તે પ્રથા શિખરમાં ધ્વજાપુરુષનું પણ કરે છે. ત્રિપતાકનો અર્થ તેવી ધ્વજાને બદલે હસ્ત-મુદ્રા એમ કેટલાક માને છે. ધ્વજાને બદલે ત્રિપતાક હસ્તમુદ્રા કરવાનું કહે છે.

(१२) सुवर्ण प्रासाद पुरुषके बाये हाथमें तीन शीर्षकवाली पताका देनेके लिये कहा है । और यह प्रथा शिखरमें ध्वजा पुरुष भी करते हैं । त्रिपताकका अर्थ वैसी ध्वजाके बदले हस्तमुद्रा कई लोग करते हैं । ध्वजाके बदले त्रिपताक हस्तमुद्रा कहते हैं ।

(૧૩) આમલસારમાં મધ્યમાં ઉંડું ગોળ સાલ ખોદી તેમાં પ્રથમ ગાયનું ઘી ભરેલ શેર સવાશેરના કળશ ઢાંકણું બંધ કરી કપડું બાંધી મૂકવો તે પર પાતળું આરસનું પાટિયું ઢાંકી તેના પર સુવર્ણ પુરૂષની ગાદીવાળો ઢોલીઓ ચાંદીનો મૂકી તેમાં પ્રાસાદ પુરુષની મૂર્તિ સુવરાવવી તે પર બે ત્રણ કે ચાર આંગળ જેટલી ખાલી જગ્યા રહે તેમ આરસનું પાતળું પાટિયું સંપૂટની જેમ ઢાંકી દેવું. તે પછી પ્રતિષ્ઠા સમયે કળશ સ્થાપન કરવાને કળશના સાલ જેટલી ઉંડાઈ રાખી આમલસારાનું વચલું સાલ વધારાનું પૂરી દેવું. સુવર્ણનો પ્રાસાદ પુરુષ દબાય નહીં તેમ ઢાંકવું સંપૂટની જેમ ખાલી જગ્યા રાખી સુવર્ણના પ્રાસાદ પુરુષને પધરાવવો સુવર્ણપુરૂષને પ્રાસાદમાં છાતીયા ઉપર શિખરીના થરોમાં કે શુકનાશ ઉપર પધરાવી શકાય એમ કહ્યું છે.

अब मैं सुवर्णके प्रासादपुरुष जीवस्थानरूप आमलसारेमें पधरानेका विधि जो फलरूप है, वह कहता हूँ। स्कंधके शीर्षकपर आमलसारेमें तांबे या रूपेके पर्यंकपर (रेशमके धागेकी पाटी करना।) बिछौना और तकिया कर सुवर्णका प्रासाद-पुरुष जिसके दाहिने हाथमें कमल और बायाँ हाथ तीन शिखावाली पताका लिया हुआ हाथ हृदयपर रखा हुआ हो, वैसी आकृतिको पधराकर संपूट रुप रखके (सुलाकर) आमलसारेमें त्रांबेके घीके भरे हुए कलश पात्रके उपर पर्यंकको रखकर उसके उपर सुवर्णकी, प्रासाद पुरुषकीमूर्ति को संपूट जैसे रखके सुलाना। उसका प्रमाण कहता हूँ। प्रत्येक गजपर आधे आधे अंगुलका और पचास हाथ तकका प्रासादका प्रमाण-प्रासाद पुरुषका जानना।[१३]

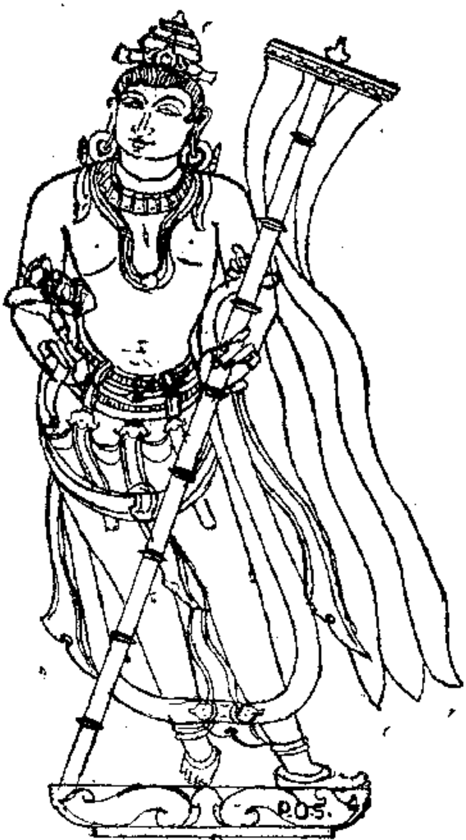

सुवर्ण प्रासाद पुरुष

अथध्वजदंड—

तथाचानन्तरं वक्ष्ये दंडमान अत: शृणु।
एक हस्ते तु प्रासादे दंडपादुन
मंङ्गुलं ॥५३॥
अर्धाङ्गुल भवेद् वृद्धि पंचविंशति हस्तके।
अतोर्धपादवृद्धिप्रयत्नेन शतार्द्धमानके॥५४॥

હવે હું દંડમાન કહું છું તે સાંભળો. એક હાથના પ્રાસાદને પોણા આંગળનો જાડો ધ્વજદંડ કરવો, એથી પચ્ચીસ હાથ સુધીનાને પ્રત્યેક હાથે અર્ધા

(१३) आमलसारेमें मध्यमें गहरा, गोलमालको गढ़कर उसमें प्रथम गायके घीसे भरे हुए शेर शवाशेरके कलश ढ़कना बंधकर कपड़ा बाँधकर रखना। उसके पर पतली आरसकी पट्टी ढँककर उसके पर सुवर्ण पुरुषकी गद्दीवाला चाँदीका पर्यंक रखकर उसमें प्रासाद पुरुषकी मूर्ति को सुलाना। उसकेपर दो तीन या चार अंगुल जितनी खाली जगह रहे इस तरह आरसकी पतली पट्टी संपूटकी तरह ढँकना। उसके बाद प्रतिष्ठाके समय कलश स्थापन करनेके लिये कलशके सालके बराबर गहराई रखकर आमलसाराके बिचके सालको पूर देना। सुवर्णका प्रासाद पुरुष दब न जाय इस तरह ढँकना। संपूटकी तरह खाली जगह रखना। सुवर्णके प्रासाद पुरुषको पधरानेके स्थान प्रासादमें छतीयाके उपर शिखरी के थरोंमें शुकनासके उपर ऐसा भी कहा है

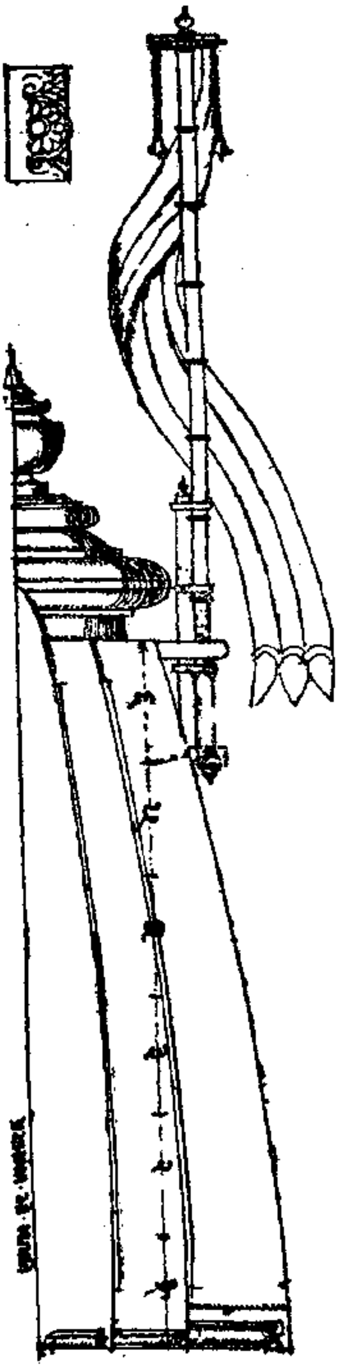

शिखरपर ध्वजादंड स्थापनका विभाग और ध્वजादंड मर्कटी= पाटली और पताका–ध्वजा

અર્ધા આંગુલની વૃદ્ધિ કરવી. તેથી વધુ પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક ગજે પાપા ¼ આંગળની વૃદ્ધિ કરતા જવી. હે ઋષિરાજ, એ રીતે ધ્વજાદંડની જાડાઇ કહી. હવે ધ્વજાદંડની લંબાઇનું ઉંચાઇનું માન સાંભળો. ૫૩–૫૪.

अब मैं दंडमान कहता हूँ, उसे सुनो। एक हाथके प्रासादको पौने अंगुलका मोटा ध्वजदण्ड करना। दोसे पच्चीस हाथ तकके प्रत्येक हाथपर आधे आधे अंगुलकी वृद्धि करना। उससे ज्यादा पचास हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक गजपर पा पा ¼ अंगुलकी वृद्धि करते जाना। हे ऋषिराज, इस तरह ध्वजादण्डका मोटापन कहा। अब ध्वजादण्डकी लम्बाईका–ऊँचाई का मान सुनो। ५३–५४

पीडंच कथितं वत्स उदयंच अतः शृणु।
प्रासादकोण मर्यादा सप्त हस्ता न मध्यतः ॥५५॥
गर्भमाने च कर्तव्यं हस्तस्यात्पंच विंशतिः।
रेखामानं च कर्तव्यं यावत्पंचाश हस्तकम् ॥५६॥

હવે ધ્વજાદંડની લંબાઇનું માન પ્રમાણ કહું છું. એકથી સાત સુધીના પ્રાસાદને બહાર રેખાયે હોય તેટલો દંડ લાંબો રાખવો. આઠથી પચ્ચીશ હાથના પ્રાસાદોને ગભારાના માન જેટલો અને છવ્વીશથી પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદોને શિખરની રેખા= પાયચાના વિસ્તાર જેટલો ધ્વજદંડ લાંબો રાખવો. ૫૫–૫૬.

अब ध्वजादण्डकी लम्बाईका मान प्रमाण कहता हूँ। एकसे सात हाथ तकके प्रासादको बाहर रेखापर हो उतना दण्ड लम्बा रखना। आठसे पच्चीस हाथके प्रासादोंको गर्भगृहके मानके बराबर और छब्बीससे पचास हाथ तकके प्रासादोंको शिखरकी रेखा–पायचे विस्तारके बराबर ध्वजदण्ड लम्बा रखना। ५५–५६

अष्टमांशयदाहीनं कन्यसं शुभ लक्षणम् ।
ज्येष्ठ तत्प्रायेत् दंड अष्टमांश तथाधिकम् ॥५७॥

આવેલ માનથી આઠમો ભાગ હીન કરવાથી શુભ એવું કનિષ્ઠમાન જાણુવું. અને જો આઠમો ભાગ વધારવાથી જ્યેષ્ઠમાન દંડનું જાણુવું. [१४]

आये हुए मानसे आठवाँ भाग हीन करनेसे शुभ ऐसा कनिष्ठमान जानना। और जो आठवाँ भाग बढाया जाय तो ज्येष्ठमान दण्डका जानना।[१४] ५७

(૧૪) દીપાર્ણવ માં ધ્વજાદંડના પાંચ જુદા જુદા પ્રમાણો આપેલા છે. ધ્વજાદંડની લંબાઈના વિવિધ પ્રમાણો કહે છે. ૧. પ્રાસાદની જંઘાએ વિસ્તાર જેટલો. ૨. ચોકીના પદના બે સ્તંભના વિસ્તારના ગાળા જેટલો. ૩. ગભગૃહ જેટલો ૪. રેખાયે હોય તેટલો ૫. પ્રાસાદના શિખરાના પાયચાના જેટલો ધ્વજદંડ લાંબો કરવો એ પાંચ પ્રકારના જુદા જુદા મત મતાંતરો મેં (વિશ્વકર્માએ) કહ્યા છે.

प्रासादकटिविस्तारं चतुष्कि स्तम्भ विस्तरात् ।
गर्भभित्ति समं दैर्ध्यं क्वचित् कर्णस्य विस्तरम् ॥९२॥
विभक्तं चैव प्रासादे शिखर विस्तृते समम् ।
ध्वजवंशस्य दीर्धत्वं मया प्रोक्तं मतान्तरे ॥९६॥

१४. ध्वजादण्डकी लम्बाईके भिन्न भिन्न प्रमाण-दीपार्णवमें ध्वजादण्ड के कहे हैं। १. प्रासादकी जंघाके पर विस्तारके बराबर २. चोकीके पदके दो स्तम्भ के विस्तारके अंतरके बराबर ३. गर्भगृहके बराबर ४. रेखाके पर जितना हो उतना ५. प्रासाद के शिखरके पायचेके बराबर ध्वजदण्ड लम्बा करना। ये पांच प्रकारके भिन्न भिन्न मतमतांतर मैंने (विश्वकर्माने) कहा हैं।

दंडकार्यस्तृतीयांशे शिलान्तः कलशान्तकम् ।
मध्यश्चाष्टांशहीनोऽसौ ज्येष्ठः पादोनः कन्यसः ॥ अपराजित सूत्र

નીચે ખરાથી ઈંડા–કળશ સુધીની ઊંચાઈના ત્રીજા ભાગના જેટલો લાંબો ધ્વજદંડ જ્યેષ્ઠ માનનો જાણુવો. તેમાંથી આઠમો ભાગ હીન કરે તો મધ્યમાન અને ચોથો ભાગ હીન કરે તો કનિષ્ઠમાન દંડનું જાણુવું. બીજા પણ પ્રમાણો જુદા જુદા ગ્રંથોમાં કહ્યાં છે.

नीचे खरेसे अण्डे (कलश) तककी ऊँचाई के तीसरे भाग के बराबर लम्बा ध्वजादण्ड ज्येष्ठमानका जानना। उसमेंसे आठवाँ भाग हीन करे तो मध्यमान और चौथा भाग हीन करे तो कनिष्ठमान दण्डका जानना। दूसरे भी प्रमाण भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें हैं। १. प्रासादरेखा के पर हो इतना ध्वजादण्ड लम्बा, वह ज्येष्ठमान उसका दसवाँ भाग हीन करे तो मध्यमान और जो पाँचवा भाग हीन करे तो कनिष्ठमान जानना। (२) शिखरको पायचेके बराबर ध्वजादंड कनिष्ठमान का जानना। उसमें बारहवाँ भाग बढानेसे मध्यमान और छठ्ठा भाग बढानेसे ज्येष्ठमान जानना।

(૧) પ્રાસાદ રેખાયે હોય તેટલો ધ્વજાદંડ લાંબો તે જ્યેષ્ઠમાન–તેનો દશમો ભાગ હીન કરે તો મધ્યમાન અને જો પાંચમો ભાગ હીન કરે તો કનિષ્ઠ માન જાણુવું.

(૨) શિખરના પાયચા જેટલો ધ્વજાદંડ કનીષ્ઠ માનનો જાણુવો. તેમાં બારમો ભાગ વધારવાથી મધ્યમાન અને છઠ્ઠો ભાગ વધારવાથી જ્યેષ્ઠ માન જાણુવું.

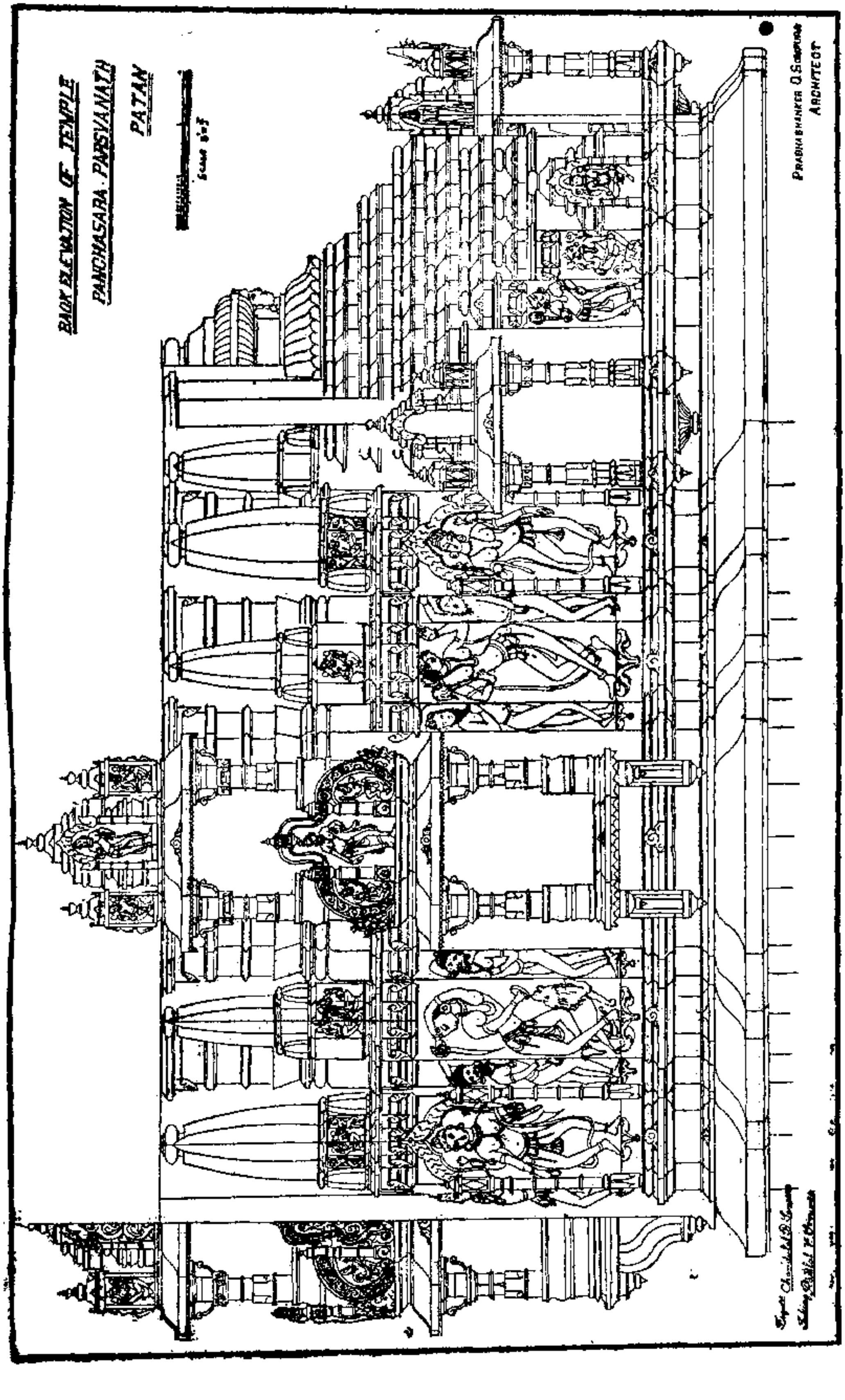

छाद्योर्ध्व शिखर जंघा देवस्वरूप और भद्रमें अलंकृत गवाक्ष गवाक्ष सन्मुख और पक्षदर्शन गवाक्ष और संवरणा

तथा पंचप्रमाणं तु शृणुत्वेकाग्रतो मुनि ।
समपर्वे यदादंड तत्र शक्तिमय प्रभु ॥५८॥
समं च विषमं प्रोक्तं शुभतेद्भवनेद्वयं ।

હે મુનિ! હવે તમે પાંચ પ્રમાણ એકાગ્રતાથી સાંભળો બેકી પર્વ (ગાળા) વાળો ધ્વજાદંડ તેમ શક્તિ દેવી ઉમીયા અને શિવને કરવો એકી અને બેકી પર્વના એમ બેઉ પ્રકારના દંડો રાજભવનને વિશે કરવાનું કહ્યું છે. ૫૮.

हेमुनि, अब तुम पाँच प्रमाण एकाग्रतासे सुनो । बेकी पर्व (गाला) वाला ध्वजादण्ड तन्त्र शक्ति देवी उमिया और शिवको करना । सम और विषमपर्वके इस तरहके दोनों प्रकारके दण्ड राजभवनके बारेमें करनेके लिये कहा है । ५९

वैक्षोवाच—कथंदंड समुत्पन्ना कथं पर्वप्रमाणतः ।
कथं शिवोमया प्रोक्ता कथं शक्ति विनिर्दिशेत् ॥५९॥

વૈક્ષ્ય કહે છે—દંડ કેવી રીતે ઉત્પન્ન થયો તેના પર્વનું પ્રમાણ શિવે ઉમિયાજીને કહેલું તે શક્તિના દંડના પર્વનું મને કહો. ૫૯.

वैक्ष्य कहते हैं ! दंड कैसे उत्पन्न हुआ ? उसके पर्वका प्रमाण शिवने उमियाजीको कहा था वह शक्तिके दंडका पर्वका प्रमाण मुझे कहो । ५९

श्री विश्वकर्मा उवाच—

कृत्वा योगेश्वरी पूजा दंड दारव संश्रये ।
महामहोत्सवार्थेन शिवशक्ति समागतः ॥६०॥
चतुषष्टि योगिन्या दंड हस्ते समागत् ।
नकुलिशाद्यो च योगिन्या दंडकलशमुत्तमम् ॥६१॥
कृत्वा प्रासादमयी पूजा दंडकलशं दीयते ।
पुनयगिरि समुत्पन्नो दंड वंशमयोत्तमा ॥६२॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. દેવદારુવનમાં આવીને રહેલા શિવ શક્તિની જોગેશ્વરી પૂજા કરવા મહામહોત્સાહ કરવા માટે ચોસઠ યોગિનીઓ હાથમાં દંડ લઈને તથા નકુલેશાદિ દેવો અને યોગિન્યાદિ ઉત્તમ દંડ કળશ લઈને આવ્યા. પ્રાસાદની રચના કરી. ને દંડ અને કળશ ચડાવ્યા. પુનયગિરિમાં ઉત્પન્ન થયેલા વાંસમાંથી બનાવેલ ઉત્તમ એવા દંડની ઉત્પત્તિ થઈ. ૬૦–૬૧–૬૨.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं । देवदारुवनमें आकर बसे हुए शिवशक्तिकी जोगेश्वरी पूजा करनेके लिये, महामहोत्साह करनेके लिये चौसठ योगिनियाँ हाथमें दण्ड लेकर तथा नकुलेशादि देवों और योगिन्यादि उत्तम दण्ड कलश लेकर

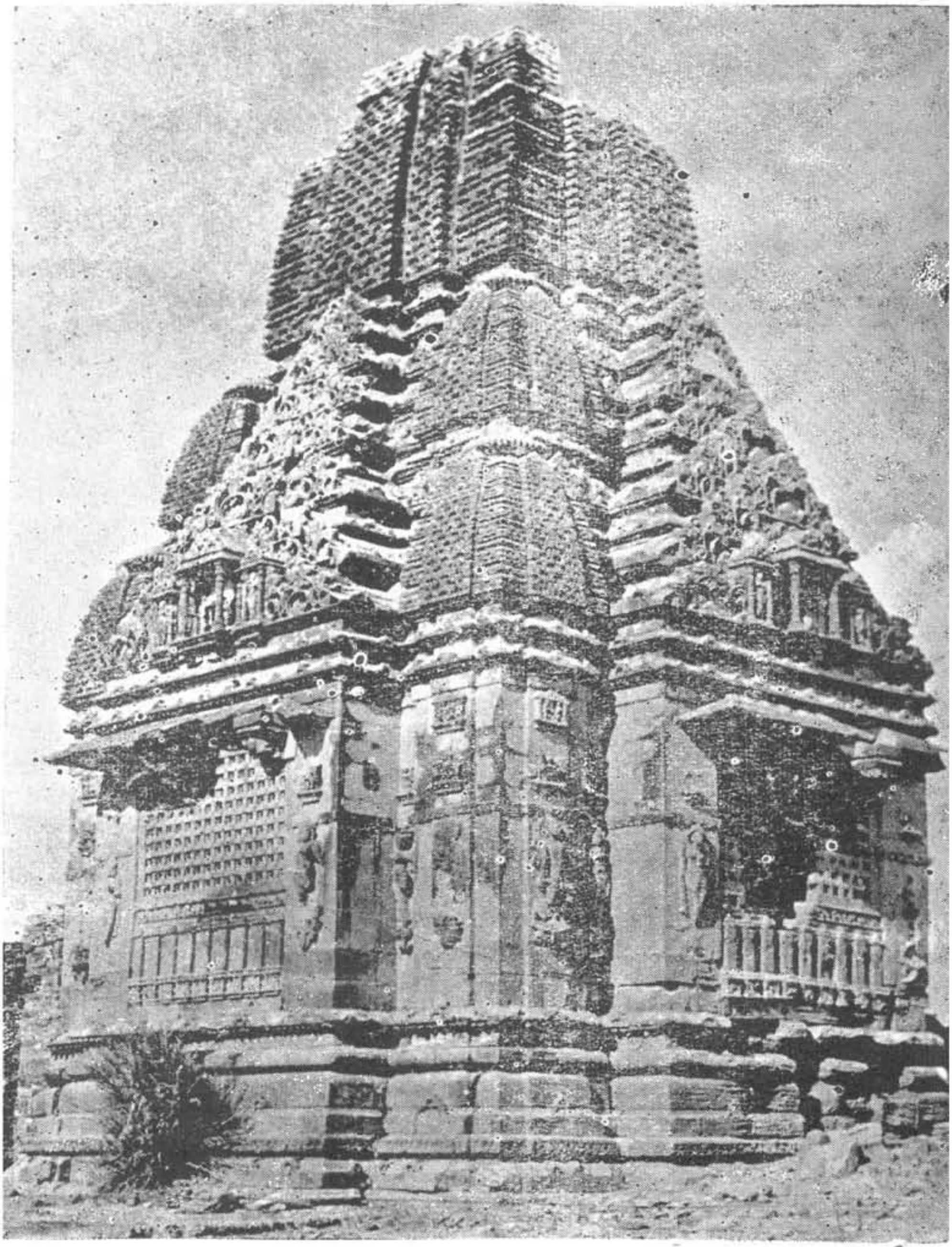

नवमी–दशमी शताब्दीका छजा विहीन (कच्छ) केशकोटा का सर्वतोभद्र शिवप्रासाद

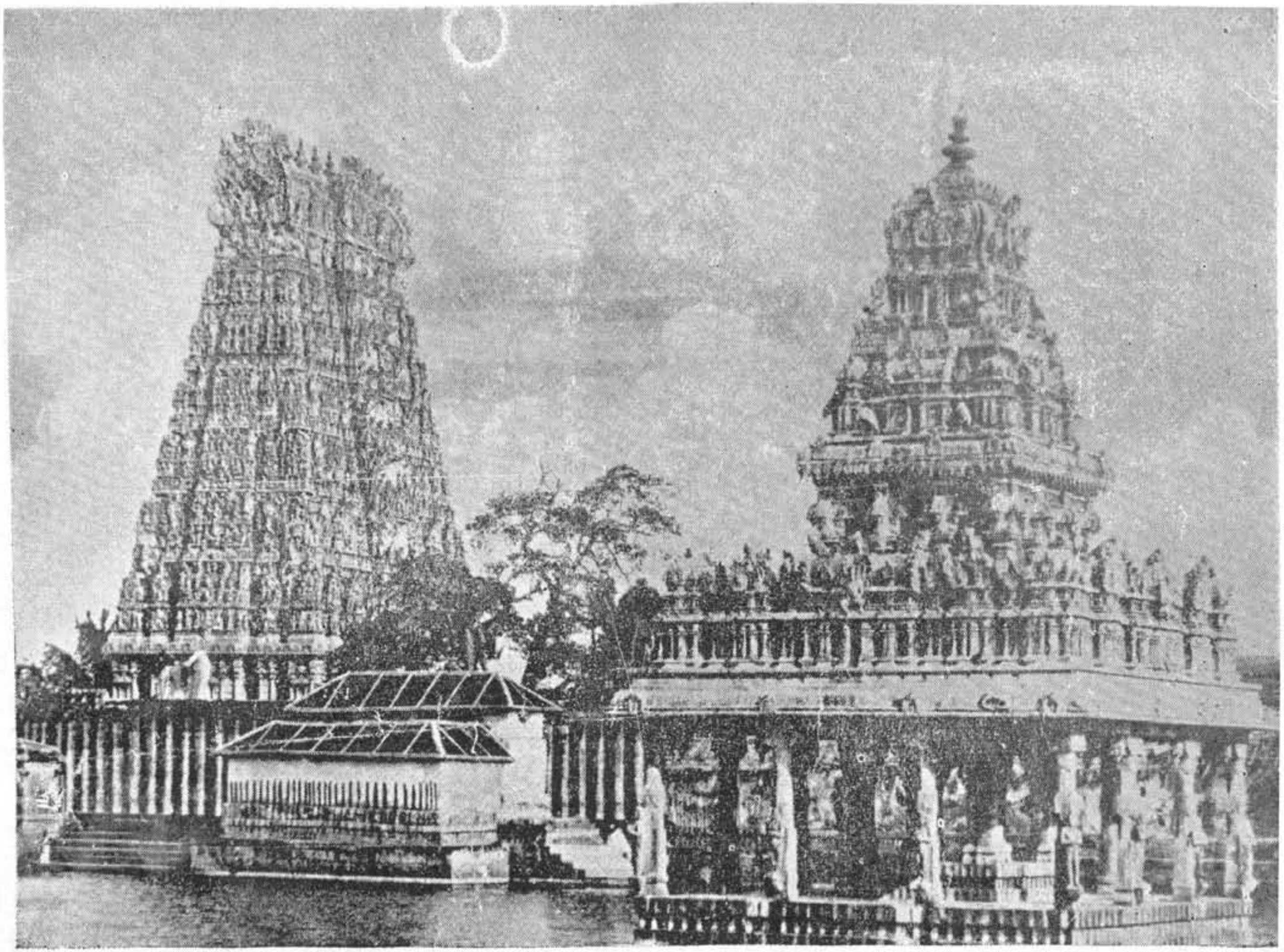

द्रविड शिखरों के दो प्रकार–गोपुरम् और शिखर

आये । प्रासादकी रचना कर दण्ड और कलश चढ़ाये । पुनयगिरिमें उत्पन्न हुये बाँसमें बनाये हुए उत्तम ऐसे दण्डकी उत्पत्ति हुई । ६०–६१–६२

तस्यार्धे पर्वमादाय विषमक्रमानोत्तमा ।
अधोमुख शिवदंड सन्मुखं शक्तिमेव च ॥ ६३ ॥
मध्यपर्व भवेज्जेष्ठं अधःउर्ध्वं च कन्यस ।
वंशा न क्रम भवेत च समपर्व शक्तिमार्चित ॥ ६४ ॥

ભાવાર્થ—પહેલા બે પદનો ત્રણ પ્રકારે અર્થ ઘટાવી શકાય. (૧) તેનાથી અર્ધમાં પર્વ દંડમાં ક્રમથી વિષમ કરવા તે જ્યેષ્ઠ (૨) તેના ઉપરના પર્વ જો વિષમક્રમથી હોય તો જ્યેષ્ઠ (૩) તેમાંથી અર્ધા વિષમ પર્વને ક્રમથી ગ્રહણ કરવા તે ઉત્તમ જ્યેષ્ઠ શક્તિની સામે શિવદંડ અધોમુખ ઊભો કરવો તે અધોમુખ એટલે વૃક્ષનું થડ મૂળ ઉપર અને ટોચનો ભાગ નીચે રાખી ઊભો કરવો. શક્તિનો દંડ તેથી ઊલટી રીતે વૃક્ષકાષ્ટનો દંડ ઊભો કરવો એટલે વૃક્ષકાષ્ટનું થડમૂળ નીચે અને ટોચનો ભાગ ઊંચો રાખવો (વાંસને પર્વ અને ગાંઠો હોય છે તેનાં પર્વ સરખા નથી હોતાં વાંસને નીચેનાં પર્વ નાનાં હોય છે અને ઉપરનાં પર્વ મોટાં હોય છે આ અપેક્ષા એ કાષ્ટના દંડને અધોઉર્ધ્વ કહ્યું) ૬૩.

(દંડની ઊંચાઈના ત્રણ ભાગમાં) મધ્યમાં પર્વ કરવાં તે જ્યેષ્ઠ માન અને નીચે ઉપર કનિષ્ઠ માન દંડના વંશના પર્વક્રમથી શક્તિને સમપર્વનો દંડ એટલે વચ્ચે કાંકણી = ગ્રંથીવાળો તેવો દંડ પૂજાય છે. ૬૪

भावार्थ–प्रथम दो पदोंके अर्थ तीन प्रकारसे हो सकते हैं । (१) उससे अर्धमें पर्वदण्डमें क्रमसे विषम करना यह ज्येष्ठ (२) उसके उपरके पर्व जो विषम क्रमसे हो तो ज्येष्ठ (३) उसमेंसे आधे विषमपर्वके क्रमसे ग्रहण करना, वह उत्तम ज्येष्ठ । शक्तिके सामने शिवदण्ड अधोमुख खडा करना । वह अधोमुख अर्थात वृक्षके खम्भेको मूलके उपर और टोचके भागको नीचे रखकर खडा करना । शक्तिका दण्ड इससे उलटी तरह वृक्षकाष्टका दण्ड खडा करना अर्थात् वृक्षकाष्टका थडमूल नीचे और टोचका भाग ऊँचा रखना (बाँसको पर्व और गांठ होते हैं । उसके पर्व समान नहीं होते हैं । बाँसको नीचेके पर्व छोटे होते हैं । और उपरके पर्व बडे होते हैं । इस अपेक्षासे काष्ठके दण्डको अधोउर्ध्व करना) । ६३

(दण्डकी ऊँचाईके तीन भागमें) मध्यमें पर्व करना यह ज्येष्ठमान और नीचे उपर कनिष्ठ मान दण्डके पर्वक्रमसे शक्तिको समपर्वका दण्ड अर्थात् बिचमें कांकणी=ग्रंथीवाला वैसा दण्ड पूजा जाता है । ६४

समपर्वे यदाद्दंडं मध्यं कुर्यात्तु किंकिणि ।
ज्येष्ठ पर्वे च मूर्ध्वे वा अधःउर्ध्वे न कन्यसः ॥ ६५ ॥
विषम पर्वे ज्येष्ठ दंड मध्य पर्वेसु ज्येष्ठकं ।
अंकानु क्रमतो यानि बभूपक्षे न कन्यस ॥ ६६ ॥

ભાવાર્થ–જ્યેષ્ઠ પર્વ ઉપર હોય અથવા નીચે ઉપર કનિષ્ઠ પર્વ વિષમ પર્વના જ્યેષ્ઠ દંડને મુધ્યનું પર્વ જ્યેષ્ઠ કરવું. આ અંકના ક્રમ હોવાથી બેઉ બાજુ એટલે ઉપર નીચે કનિષ્ઠ ન કરવા. ૬૫–૬૬.

भावार्थ-ज्येष्ठपर्व उपर होता है अथवा नीचे उपर कनिष्ठपर्व विषमपर्व के ज्येष्ठ दण्डको मध्यका पर्व ज्येष्ठ करना । ये अंकके क्रम होनेसे दोनों तरफ अर्थात् उपर नीचे कनिष्ठ न करना । ६५–६६

द्वित्रिमेके च रुपे च चतुष्कंच द्वितीयकं ।
षटसप्तमं कूर्यात चतुर्थेरष्ट नंदके ॥ ६७ ॥
एवमादि क्रमात्युक्तिः पदवै सर्वकामदम् ।
तथा च मुकुटमानं........................॥ ६८ ॥

....

....

હવે દંડનો મુકુટ અને પાટલીનું માન કહું છું. ૬૭–૬૮.

अब दण्डका मुकुट और पाटलीका मान कहता हूँ । ६७–६८

मर्कटीमान–दंडदीर्घषष्टमांशेन तदर्ध विस्तरै मर्कटि ।
विस्तरस्य तृतीयांशेन पींडं कूर्याद्विचक्षण ॥ ६९ ॥
त्रिभागं भागमित्युक्तं ततो वृत्तं च भूषितः ।
शङ्ख चक्र करोक्तं च कमलाना मतः शृणु ॥ ७० ॥
मध्ये कलशं च कर्तव्यं दंडोदयात् षोडश ।
प्राशकं तृतीयाशेन उभयो वामदक्षिणे ॥ ७१ ॥

ધ્વજાદંડની લંબાઈના છઠ્ઠાભાગની મર્કટી = પાટલી લાંબી કરવી. લંબાઈના અર્ધ પહોળી અને પહોળાઈના ત્રીજા ભાગે જાડી પાટલી કરવી. ૬૯. પાટલીના નીચે ત્રીજા ભાગે ગોળ વૃત કરી (બે બાજુ ગગારાની આકૃતિ કરવી) વિષ્ણુના મંદિરના દંડની પાટલી પર શંખ અને ચક્ર કમળ કરવા (શીવ હોય તો ડમરૂ ત્રિશૂલ) પાટલી ઉપર ધ્વજદંડની ઉંચાઈના સોળમા ભાગે ઉંચો કળશ કરવો તે

કળશના ત્રીજા ભાગે ઉંચા ભાલા (પક્ષી ન બેસે તેવા) પાટલીના કળશની બે બાજુએ કરવા.

ध्वजदण्डकी लम्बाईके छट्ठेभागकी मर्कटी=पाटली लम्बी करना । लम्बाईसे आधी चौडी और चौडाईके तीसरे भाग पर मोटी पाटली करना । ६९

पाटलीके नीचे तीसरे भागपर गोलवृत्त करके (दो तरफ गगारेको आकृति करना) विष्णुके मंदिरके दंडकी पाटलीके उपर शंख और चक्र कमल करना । (शिव हो तो डमरू त्रिशूल) पाटलीके उपर ध्वजादंडकी ऊँचाईके सोलहवें भाग पर ऊँचा कलश करना । उस कलशके तीसरें भाग पर ऊँचे भाले (पक्षी बैठ न सके वैसे) पाटलीके कलशकी दो बाजुपर करना । ७०–७१

वंशमयोऽपि कर्तव्यो दृढदारुमयोऽपि च ।
शिंशपः खदिर श्चैव अर्जुनो मधुकस्तथा ॥ ७२ ॥
सुवृतः सारदारुश्च ग्रंथीकोटिरवर्जितः ।
पंचदंड–ऊर्ध्वोरुश्रृंगे तूर्यं शिखरोर्ध्वे पंचदंडकम् ॥ ७३ ॥

ધ્વજદંડ વાંસ–મજબુત કાષ્ટનો શીશમ ખેર મહુડાના સારા કઠણ ને મજબૂત જેમાં ગાંઠો–કોતર કે કાણા વગરના કાષ્ટના ધ્વજદંડ માટે લેવો. પંચદંડ=ચતુર્મુખ, જિન, શિવ કે બ્રહ્માના મહાપ્રાસાદને શિખરના ઉપલા ઉરુશૃંગ ચારેમાં ધ્વજાદંડ સ્થાપન કરી એક મધ્યનો ઉપરનો મળી પાંચ ધ્વજદંડ સ્થાપન કરવા. ૭૨–૭૩

ध्वजदण्ड बाँस मजबूत काष्टका शीशम खेर महुडेका अच्छा पका कठिन और मजबूत जिसमें गाँठे कोतर या छिद्रके बिनाके काष्टके ध्वजादण्डके लिये योग्य जानना । पंचदण्ड–चतुर्मुख–जिन शिव या ब्रह्माके महाप्रासादको शिखर के उपरके उरुशृंग चारोंमें ध्वजादण्ड स्थापनकर करके मध्यका उपरका मिलकर पाँच ध्वजदण्ड स्थापन करना । ७२–७३

अथ पताकाप्रमाण–ध्वजदंडप्रमाणेन विस्तरे मर्कटिसमम् ।
त्रिपंचाग्र शीर्षमा च मणिबंध च शोभितम् ॥ ७४ ॥
स्वर्णरेखा यदाकारं सूर्यरश्मिनि रक्षत ।
प्रलयंति सर्वपापानि यत्रै लोकेच मध्यतां ॥ ७५ ॥

ધ્વજાદંડની જેટલી લાંબી અને પાટલીની પહોળાઈ જેટલી પતાકા–ધ્વજા પહોળી કરવી. ધ્વજા ત્રણ પાંચ સાત શિખાગ્ર છેડા પર કરી તેને મણિબંધથી શોભતી કરવી. તેવી ધ્વજાપતાકાથી સૂર્યના કિરણોમાં સુવર્ણરેખા જેવી તે દૃશ્ય-

માન થાય. આવી પતાકા ચડાવવાથી આ લોકમાં જ સર્વ પાપોનો નાશ થાય છે.[૧૫] ૭૪–૭૫.

ध्वजादण्डके बराबर लम्बी और पाटलीके बराबर पताका–ध्वजा चौडी करना । ध्वजा तीन पाँच सात शिखाग्र छेडेके पर करके उसे मणिबंधसे शोभायमान करना । वैसी ध्वजा पताकासे सूर्यकी किरनोंमें सुवर्णरेखा जैसी वह दृश्यमान होती है । वैसी पताका चढ़ानेसे इस लोकमें ही सर्व पापोंका नाश होता है । [१५]

निष्पन्नं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीन न कारयेत् ।
असुरावासमिच्छन्ति ध्वजहीने सुरालये ॥ ७६ ॥

તૈયાર કરેલા શિખરને ધ્વજા વગર રાખવું નહિ. કારણ કે ધ્વજારહિત શિખરને (છમાસ) જોઈને ભૂતાદિ રાક્ષસો તેમાં વાસ કરવા ઈચ્છે છે તેથી દેવાલય ધ્વજારહિત રાખવું નહિ. ૭૬

तैयार किये हुए शिखरको ध्वजाके बिना नहीं रखना । क्योंकि ध्वजा-रहित शिखरको (छः मास तक) देखकर भूतादि राक्षसों उसमें वास करनेकी इच्छा करते हैं । इससे देवालयको ध्वजारहित नहीं रखना । ७६

---

૧૫. ધ્વજા અને પતાકાનો કેટલાક પૃથક્ પૃથક્ અર્થ કરે છે. પ્રાસાદની પતાકા લંબ ચોરસ કરવાનું શિલ્પગ્રંથોમાં છે. ત્રિકોણ પતાકા કરવાનો કેટલાક યજમાનો આગ્રહ સેવે છે પરંતુ શિલ્પગ્રંથોમાં ત્રિકોણ પતાકાનું કોઈ પ્રમાણ હજુ સુધી જોવામાં આવેલ નથી. બ્રાહ્મણ ગ્રંથોમાં છે તેમ કહે છે. પણ તે ક્રિયા કાંડના ગ્રંથોમાં યજ્ઞયાગ પ્રતિષ્ઠા વિધિ વિધાનમાં પતાકા વિશે ચર્ચા છે. તેમાં ત્રિકોણ પતાકાનું કહ્યું છે ખરું પરંતુ તે તો યજ્ઞ યાગના મંડપોમાં ફરતી પતાકા–ધ્વજાઓના વર્ણનમાં છે. આમ છતાં ત્રિકોણ પતાકાના વિશે વધુ ચર્ચા કરવાને અને તે વિષયનું સાહિત્ય જોવાને ઉત્સુકતા છે.

જો ત્રિકોણ પતાકા કરવાનું પ્રમાણ હોય તો શિલ્પગ્રંથ લંબચોરસ પતાકા કરી તેને ત્રિપંચશિખાગ્રનું શું કરવા કહેત?

(१५) ध्वजा और पताका का अर्थ कई लोग पृथक् पृथक् करते हैं । प्रासादकी पताका लंब चोरस करनेका शिल्प ग्रंथोंमें है । त्रिकोण पताका करनेका आग्रह कई यजमानों करते हैं । परंतु शिल्प ग्रंथोंमें त्रिकोण पताकाका कोई प्रमाण अबतक देखनेमें आया नहीं है । ब्राह्मण ग्रंथोंमें है वैसा कहते हैं । मगर क्रियाकांडके ग्रंथोंमें यज्ञ याग प्रतिष्ठा विधि विधानमें पताकाके बारेमें चर्चा है, उसमें त्रिकोण पताकाके लिये कहा है, यह सही लेकिन यह तो यज्ञयागके मंडपोंमें फिरती पताका–ध्वजाओंके वर्णनमें हैं। ऐसा होते हुए भी त्रिकोण पताकाके बारेमें ज्यादा चर्चा करनेके लिये और उस विषयका साहित्य देखनेके लिये उत्सुकता है। जो त्रिकोण पताका करनेका प्रमाण हो तो शिल्प ग्रँथ लंबचोरस पताका कर उसे त्रिपंच शिखाग्रका किस लिये कहते ?

इदृशं कुरुतेयश्च लभते चाक्षयंपदम् ।
दिव्यदेहो भवेत्तस्य सूरेः सहस्रैः क्रीडति ॥७७॥

ઉપર પ્રમાણે ધ્વજાયુક્ત પ્રાસાદ કરાવનારને અક્ષય સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેમ જ દિવ્ય દેહ ધારણ કરી હજારો વર્ષો દેવોની સાથે ક્રીડા કરે છે. ૭૭

उपरके अनुसार ध्वजायुक्त प्रासादको बनानेवालेको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है । और दिव्य देह धारणकर हजारों वर्षों तक वह देवोंके साथ क्रीडा करता है । ७७

पुण्यं प्रासादजं स्वामी प्रार्थयेत् सूत्रधारतः ।
सूत्रधारो वदेत् स्वामिन् अक्षय भवतात् तव ॥७८॥

દેવાલય બંધાવનાર સ્વામિ સ્થપતિ સૂત્રધાર પાસે પ્રાસાદ બંધાવવાના પુણ્યની પ્રાર્થના કરી આશિર્વચન માગવા. ત્યારે સ્થપતિ સૂત્રધારે આશિર્વાદ આપવો કે હે સ્વામિન્! મંદિર બંધાવવાનું તમારૂં પુણ્ય અક્ષય થાયો. ૭૮

मंदिर बंधानेवाला स्वामी–स्थपतिको पुण्यकी प्रार्थना और आशिर्वाद मांगना जब स्थपत्ति आशिर्वचन देना स्वामिन्! मंदिर बंधानेका आपका पुण्य अक्षय हो । ७८

इति श्री विश्वकर्मा कृतायां क्षीरार्णवे नारदपृच्छाया शिखराधिकारे शताग्रेत्रयो दश अध्याय ॥ ११३ ॥ (क्रमांक अ० १५)

ઇતિશ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદજીએ પૂછેલ શિખરાધિકારનો શિલ્પ વિશારદ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ટીકાનો એકસો તેરમો અધ્યાય. ૧૧૩.

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव नारदजीके संवादरूप शिखराधिकारका–शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाईकी रची हुई सुप्रभा नामकी भाषा टीकाका एकसौ तेरहवाँ अध्याय ॥ ११३ ॥ (क्रमांक अ० १५)

कुतूहल

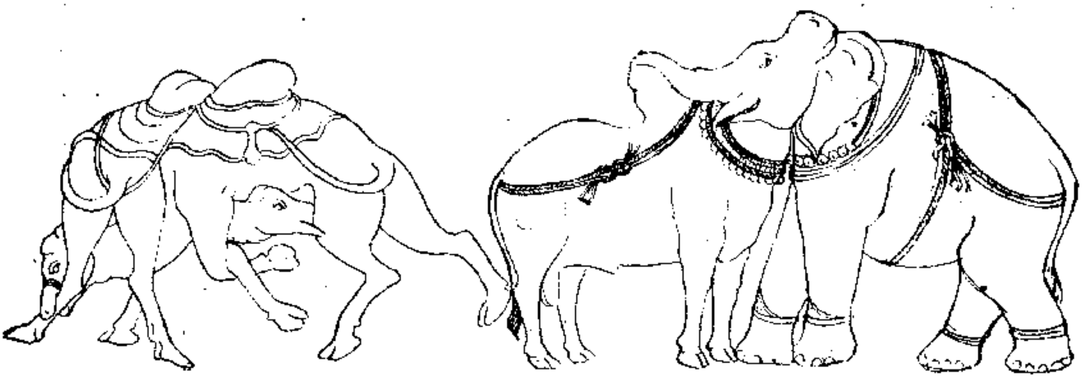

दो सांड युद्ध वृषभ और हस्तियुद्ध एकमें दूसरे का मुख प्रदर्शित होता है।

॥ अथ रेखाविचार ॥

क्षीरार्णव अ० ११४—क्रमांक अ० १६

श्री विश्वकर्मा उवाच

तथा रेखा विचारेण रिषिराज शृणोत्तमा ।
पंचखंडादौ खंडवृध्या एकोनत्रिंशकाविधि ॥१॥
खंडचारि कलाज्ञात्वा अंकवृद्धि क्रमेणतु ।
एकद्वित्री चतुः पंच षड् सप्ताष्ट क्रमोद्भता ॥२॥
अनेन क्रमयोगेन एकोनत्रिंशकावधि ।
पंचखंडे कलाश्चैव खंडख्य या दशपंच च ॥३॥
एकोनत्रिंशे पंचत्रिंशदुत्तरे चतुशतम् ।
कला रेखाः समाख्याताः सर्वकामफलप्रदाः ॥४॥

—इति कलाभेदोद्भवा रेखा ।

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે.

હે ઋષિરાજ, હવે શિખરની રેખાનો વિચાર સાંભળો પાંચ ખંડથી એકેક ખંડ વૃદ્ધિ ઓગણત્રીશ ખંડ સુધીની એ ખંડ ચારી અનુક્રમે અંક વૃદ્ધિથી કરી કળા રેખા જાણવી એક બે ત્રણ ચાર પાંચ છ સાત અને આઠ એમ ક્રમના યોગથી ઓગણત્રીશ સુધી વૃદ્ધિ કરતા જવું. પાંચ ખંડની કળા દશાખંડ........એમ ઓગણત્રીશ ખંડ સુધીની ચારસો પાંત્રીશ કળા ભેદની રેખા સધાય તે સર્વ કામને ફળદાતા જાણવી. ૧-૨-૩-૪.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं—ऋषिराज, अब शिखरकी रेखाका विचार सुनो । पाँच खंडसे एक एक खंडकी वृद्धि, उनतीस खंडतककी वह खंडचारी अनुक्रमसे अंकवृद्धिसे कर कला रेखा जानना । एक दो तीन चार पाँच छः सात और आठ इस तरह क्रमके योगसे उनतीस तककी वृद्धि करते जाना । पाँच खंडकी कला दस खंड......इस तरह उनतीस खंड तककी चारसौ पैंतीस कला भेदकी रेखा सधाती हो उसे सर्वकार्यकी फलदाता जानना । १-२-३-४.

तथा रेखा द्वयं गृह्यं त्रय सार्द्धं गुणकृतं ।
ततो वृत्तं च भ्रामयेन रेखा सर्वकामाय ॥५॥
वृषस्य (स्वष्ट) विमुच्यते रथमध्ये (भद्रे) च भ्रामितं ।

શિખરના પાયચાની બે રેખા વચ્ચેના અંતરથી સાડાત્રણ ગણી કામડી કરી ફેરવવાથી સર્વ કામનાને દેનારી એવી રેખા થશે. ૫.

शिखरके पायचेकी दो रेखाके बिचके अंतरसे साढ़े तीन गुनी कामडी कर फेरनेसे सर्वकामना को देनेवाली ऐसी रेखा होगी । ५.

दशधा तल रेखायां द्विभाग कर्ण विस्तरं ॥६॥
रथसार्द्धं च विस्तारा भद्रत्रय निर्गमं ।
निर्गमं हस्तमानेन अंगुलैकं विचक्षणं ॥७॥

શિખરના પાયચે રેખાયે દશભાગ કરી તેમાં બે ભાગની રેખા પહોળી દોઢ ભાગનો પઢરો, અને ભદ્રાર્ધ પણ દોઢ ભાગનું (આખું ભદ્ર ત્રણ ભાગનું) જાણવું તેનો નિકાળો ગજે આંગળના હિસાબે ચતુર શિલ્પીએ રાખવો. ૬–૭.

शिखरके पायचेपर रेखाकेपर दस भागकर उसमें दो भागकी रेखा चौडी डेढ़ भागका पढ़रा, और भद्रार्ध भी डेढ़ भागका (सारा भद्र तीन भागका)– जानना । उसका निकाला गजपर अंगुलके हिसाबसे चतुर शिल्पीको रखना । ६–७.

षट भाग स्कंध विस्तारे सप्तभिरामलसारकं ।
अर्धोदयं च कर्तव्यं तदुर्ध्वे कलशोपमा ॥८॥

શિખરના સ્કંધ બાંધણે છ ભાગ કરી સાત ભાગનો આમલસારો વિસ્તાર રાખી તેનું અર્ધ ઊંચો કરી તે પર શોભતો કળશ સ્થાપન કરવો. ૮

शिखरके स्कंधकेपर छः भागकर सात भागका आमलसारा विस्तार रखकर उसका अर्ध भाग ऊँचा कर उसकेपर शोभायमान कलश स्थापन करना । ८.

स्कंधार्धे नवभागेन कर्णभाग चतुर्भवेत् ।
प्रतिरथ त्रयं कार्यं शेष भद्रे निष्कलं ॥९॥

શિખરના બાંધણે નવભાગ કરી બે રેખા બબ્બે ભાગની અને બે પઢરા દોઢ દોઢ ભાગના બાકીનું આખું ભદ્ર બે ભાગનું કરવું. તેનો નીકાળો આગળ કહ્યો (તેમ ગજે આંગળ) રાખવો. ૯

शिखरके स्कंधपर नौ भागकर दो रेखायें दो दो भागकी और दो पढ़रे डेढ डेढ भागके, बाकीका सारा भद्र दो भागका करना । उसका निकाला, आगे कहा । (इस तरह गजपर अंगुल) ९.

अजिता इतिरङ्गा च संहिता च सागरा तथा ।
कालिका कुंडलिकाश्च स्वरुपा रुपसुंदरी ॥१०॥
चित्रा विचित्रा चैव स्यात्तारुण्या तरुणी स्तथा ।
निशाचरा सर्वरेषा शरच्चंद्रार्चिताउलि ॥११॥

मंजिरा वर्धिरा दुर्गा रिद्धिदा सिद्धिदायका ।
धनदा च वरदा मोक्षदा पंचविंशति ।।१२।।

પચ્ચીશ રેખાનાં નામ કહે છે. ૧. અજિતા ૨ ઇતિરંગા ૩ સંહિતા ૪ સાગરા ૫ કાલિકા ૬ કુંડલિકા ૭ સ્વરૂપ ૮ રૂપસુંદરી ૯ ચિત્રા ૧૦ વિચિત્રા ૧૧ તારૂણી ૧૨ તરૂણી, ૧૩ નિશાચરા, ૧૪ સર્વરેખા, ૧૫ શરચ્ચંદ્રા, ૧૬ ચર્ચિતા ૧૭ ઉલી, ૧૮ મંજરી, ૧૯ વર્ધિરા, ૨૦ દુર્ગા, ૨૧ રિદ્ધિદા, ૨૨ સિદ્ધિદાયકા, ૨૩ ધનદા ૨૪ વરદા અને ૨૫ મોક્ષદા એ પચ્ચીશનાં નામો વૃત્તિકા કારથી ૨૯ ખંડો રેખાના જાણવા તેનાં સ્વરૂપો હવે કહે છે. ૧૦ થી ૧૨.

पच्चीस रेखाके नाम कहते हैं । १. अजिता २. इतिरङ्गा ३. संहिता ४. सागरा ५. कलिका ६. कुंडलिका ७. स्वरूपा ८. रूपसुंदरी ९. चित्रा १०. विचित्रा ११. तारूणी १२. तरुणी १३. निशाचरा १४. सर्वरेखा १५ शरच्चँद्रा १६. चर्चिता १७. उली १८. मंजरी १९. वर्धिरा २०. दुर्गा २१. रिद्धिदा २२. सिद्धि दायका २३. धनदा २४. वरदा २५. मोक्षदा-ये पच्चीशके नाम वृत्तिकाकार से २९. खंडों रेखाके जानना । उसके स्वरूप अब कहते हैं । १० से १२.

अजिता वृत्तिकाकारा त्रिखंडा इतिरंगिणी ।
संहिता चतुः खंडा पाखंडा चैव सागरा ।। १३ ।।
खंडे खंडे भवेन्नाम उच्छया युक्त संकुला ।
संयुक्ता स्कंध संकीर्णा संख्याय पंचविंशति ।। १४ ।।

અજિતા ગોળાકારે, ઇતિરંગા ત્રિખંડા, સંહિતા ચતુઃખંડા, સાગરા પંચખંડા એમ ખંડે ખંડે પચ્ચીશ નામો જાણવાં તે ઉભણી ઊંચાઇમાં તેમ બાંધણાના નમણમાં એમ પચ્ચીશ ભેદો જાણવા. ૧૩-૧૪.

अजिता गोलाकारे, इतिरंगा त्रिखंडा, संहिता चतुःखंडा, सागरा पंच खंडा इस तरह खंडे खंडे पच्चीश नाम जानना । वह ऊँचाईमें उस तरह स्कंधकी स्कंधकी नमणके पच्चीश भेद जानना । १३-१४.

त्रिखंडे तु कलाअष्ट चतुः खंडेदक स्तथा ।
तिथिकला पंचखंडे षड्खंडै विंशति ।। १५ ।।
तथामये प्रकारेण तत्रभेद अतः शृणु ।
त्रिखंडादिकृतं पूर्वं अर्ध भाग वतादिकं ।। १६ ।।
त्रिखंडे न चतुः सार्द्ध चतुर्खंडे प्रति स्तथा ।

पंचखंडे द्विभागे च पटेसिद्धे त्रयोदशे ॥ १७॥
तथा ते (त्रि) प्रकारेण आदि मध्यवसानके।
तद्विचार प्रयत्नेन संख्या या पंचविंशति ॥ १८ ॥

પહેલા ત્રિખંડની કલા આઠ, ચતુર્ખંડની દશ–પંચખંડની પંદરકળા ષટ્ખંડની એકવીશ કલા (૧૫) એ પ્રકારે તેના ભેદ સાંભળો, ત્રિખંડાથી આગળ કરવા........(૧૬) ત્રિખંડે સાડાચાર, ચતુર્ખંડ....પંચખંડ બે........તેર એમ ૧૭ એમ ત્રણ પ્રકારે આદિ મધ્ય અને અંત એ વિચારના પ્રયત્નથી પચ્ચીશ ભેદ જાણવા. ૧૮ (૧૫ થી ૧૮)

पहले त्रिखंडकी कला आठ चतुखंडकी......पंचखंडकी पंद्रह कला, षड्खंडकी एकवीश कला (१५) इस प्रकार उसके भेद सुनो। त्रिखंडासे आगे करना। त्रिखंडकेपर साढ़ेचार, चतुखंड पर......पंचखंड पर दो......तेरह इस तरह तीन प्रकारसे आदि मध्य और अंत इस विचारके प्रयत्नसे पच्चीस भेद जानना। (१५ से १८)

पुनः स्तेनाविभक्तेनं नामनाश्रृणुतोऋषि।
जयो विजय येकैकं नाम पूर्व त्रि भाषित ॥ १९ ॥
जय अजितादिपूर्व इतिरङ्गा विजय: स्मृता।
जय संहिता त्रतिया च चतुर्था विजय सागरा ॥ २० ॥
जय विजय प्रकारेण संख्यायां पंचविंशति।

ફરી તે વિભક્તિના નામો હે ઋષિ! સાંભળો. જય વિજયના એકેક નામો આગળ કહ્યા છે. જય અજિતાદિ પૂર્વ અને વિજય–ઈતિરઙ્ગા પૂર્વે, ત્રીજું જય સંહિતા, ચોથું વિજય સાગરા એમ જય વિજયના પ્રકારેથી પચ્ચીશ સંખ્યા ના નામો ખંડની રેખાના જાણવા. ૧૯–૨૦.

फिर उस विभक्तिके नाम हे ऋषि, सुनो। जय विजयके एक एक नाम आगे कहते हैं। जय–अजितादि पूर्व और विजय–इतिरङ्ग पूर्वे–तीसरा जय–संहिता, चौथा विजय–सागरा इस तरह जय विजयके प्रकारसे पच्चीस संख्याके नाम खंडकी रेखाके जानना। १९–२०.

... ...

त्रिनासंपंचकं प्रोक्तं सप्तांनं च अतः श्रृणु ॥ २१ ॥
अष्टमांशेन नवमांश दशमांशे विशेषत्।
कृत्वा त्रिनाशकं रिषि चतुर्थांशे च निर्गमं ॥ २२ ॥

આગળ ત્રિનાસક પંચનાસક કહ્યા હવે સપ્તનાસક કહું છું તે સાંભળો. (૨૧) તે નાસકો આઠમા, નવમા કે દશમા ભાગે નીકળતા વિશેષ કરીને કરવા હે ઋષિ, ત્રિનાસકનો નીકાળો ચતુર્થાંશ રાખવો. (૨૨) એક શ્રૃંગના ઉપર બે માન હવે સાંભળો.... ૨૧-૨૨.

अब त्रिनासक-पंचनासक कहा और सप्तनासक कहता हूँ वह सुनो। २१. उन नासकोंको आठवें नौवें या दसवें भागपर निकलते विशेषकर करना। हे ऋषि, त्रिनासकका निकाला चतुर्थांश रखना। (२२) एक शृंगके उपर दो मान अब सुनो। २१-२२.
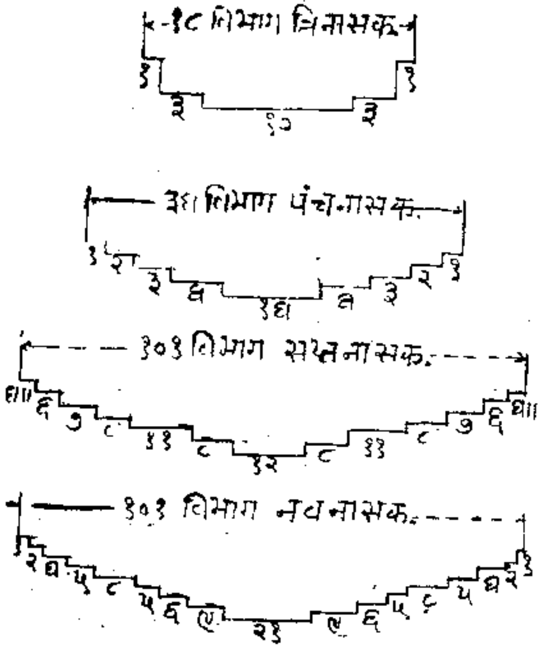
त्रि-पंच-सप्त-और नवनाशक

शृङ्गमेकं च तदूर्ध्वं च द्वयोमानं अतः शृणु।
द्वात्रिंशपदेकृत्वा द्विभागं मूलनासकं ॥२३॥
त्रिभागं द्वितीयंश्चैव तृतीय युग संख्यया।
शेष भद्रस्य विस्तारं निर्गमं च पदार्धत ॥२४॥
उरुशृंङ्ग द्विधाकार्यं रथिकामध्यदाययेत्।
तथा सर्वप्रमाणं च विभागं च अतः शृणु ॥२५॥

પંચનાશકના બત્રીશ ભાગ કરવા. મૂળ નાસક બે ભાગ-બીજી ત્રણ ભાગ ત્રીજી ચાર ભાગ અને બાકી ચૌદ ભાગનું ભદ્ર પહોળું જાણવું. તેનો નીકાળો અર્ધા ભાગનો રાખવો. ૨૩-૨૪.

त्रिनासकके बत्तीस भाग करना। मूलनासक दो भाग-दूसरी तीन भाग तीसरी चार भाग और बाकी चौदा भागका भद्र चौडा जानना। उसका निकाला आधे भागका रखना। २३-२४.

द्वयालिशं च भागानि द्विभागं मूलनासकं।
त्रिभागं द्वितीयं चैव तृतीयं द्वयमेव च ॥२६॥

चतुर्थं त्रिभागानि पंचमं चतुमेव च ।
शेषंभद्रस्य विस्तार निर्गमं च पदार्धतः ।।२७।।
सिद्धति सप्तनाशिन ऊरु त्रीणि मस्तके ।

રથિકા = ભદ્રની મધ્યમાં ઉરુશ્રૃંગ બે પ્રકારે કરવા. સર્વ પ્રમાણુના વિભાગ સાંભળો. સપ્તનાસકના બેતાળીશ ભાગમાં બે ભાગનું મૂળનાસક, બીજું ત્રણ ભાગનું, ત્રીજું બે ભાગ, ચોથું ત્રણ ભાગ, પાંચમું ચાર ભાગ. બાકી ભદ્ર ચૌદ ભાગ પહોળું જાણવું. તે સર્વના નીકાળા અર્ધા ભાગના રાખવા તે રીતે સપ્તનાશક સિદ્ધ થયું જાણવું તે ઉરુશ્રૃંગ ઉપર.... ૨૫–૨૬–૨૭.

रथिका—भद्रकी मध्यमें उरुशृंग दो प्रकारसे करना। सर्व प्रमाणके–विभाग सुनो। सप्त नासकके बेतालीश भागमें दो भागका मूलनासक, दूसरा तीन भागका, तीसरा दो भाग, चौथा तीन भाग, पाँचवा चार भाग, बाकी भद्र चौद भाग चौडा जानना। उन सर्वके निकाले अर्ध भागके रखना, इस तरह सप्तनासक सिद्ध हुआ समझना। उस उरु शृंगके उपर......२५–२६–२७.

तथैव सरतर ज्ञात्वा छंदभंगोन विद्यते ।।२८।।
उपर शृङ्गकूटं च मेकछन्दं मुनिश्वरः ।
फलस्थाने ततो शृङ्ग तिलक कस्यमेलय ।। २९ ।।
पत्रेमयूरे तथाकूटं वृतसूत्रं मुनिश्वरं ।
जगतीपीठकं ज्ञात्वा प्रासाद लिङ्गमुत्तमात् ।। ३० ।।
मुगदेशे शिरोरम्यं कर्तव्यं च विचक्षण ।
लभ्यते स्वर्ग संस्थाने जीव चंद्रार्कमेदिनी ।। ३१ ।।

એ રીતે શીખરમાં પાણીતાટ જાણવા. ૨૮. છંદ ભંગ ન કરવો. હે મુનીશ્વર! એકછંદમાં શ્રૃંગ ઉપર કૂટ કરવા યોગ્યસ્થાને શ્રૃંગ અને તિલક કરવા. (૨૯) ગોળ સૂત્રમાં પત્ર મયુરના કૂટ હે મુનીશ્વર કરવા. ૨૮–૨૯.

यह रीतसे शिखरमें पाणीतार जानना। छंदका भंग न करना। हे मुनीश्वर! एक छंदमें शृंगके उपर कूट करना। योग्य स्थान पर शृंग और तिलक करना। गोल सूत्रमें पत्र मयुरके कूट हे मुनीश्वर, करना। २८–२९.

શિવલિંગને જળાધારી રૂપ–એમ પ્રાસાદને જગતી અને પીઠ જાણવા. (૩૦) મુગદેશના ઉપર (!) રમ્ય એવા જગતી પીઠ વિચક્ષણ શિલ્પીએ કરવા થી સૂર્ય અને ચંદ્ર રહે ત્યાં સુધી તે યજમાનને સ્વર્ગના સ્થાનની પ્રાપ્તિ થાય. (૩૧) રમ્ય એવા મેરૂ શિખરના મર્મ હવે સાંભવો. ૩૦–૩૧.

शिवलिङ्गको जलाधारी रूप इस तरह प्रासादको जगती और पीठ जानना। मुंगदेशके उपर (?) रम्य ऐसे जगती पीठ विचक्षण शिल्पीके करनेसे सूर्य और चंद्र रहे तब तक उस यजमानको स्वर्गके स्थानकी प्राप्ति होती है। रम्य ऐसे मेरू शिखरका मर्म अब सुनो। ३०-३१.

मेरुशिखर सदारम्यं महामर्म अतः शृणु।
पंकजे कोमलाकारे अधमाध्यवमूर्ध्वन् ॥३२॥
अधस्ते सुषिकं कार्यं हस्ते हस्ते द्वि अंगुलम्।
अर्ध भागे सप्तमांशे गृहीत्वा तत्र सूत्रके ॥३३॥
तेन मूर्ध्वे परिस्थाने कलार्चा यत्र सादयेत्।
तत्शिखरं द्वयं भागं शेषं च मानसाधकम् ॥३४॥
स्कंध स्थाने यदामूर्द्धिकराक्षसं तद्रवक्षते।
तानि सर्वाणि दूर्वाति अशुभ कारक स्तदा ॥३५॥[1]

(१) रेખા વિચારનો આ અધ્યાય બીજી અશુદ્ધ પ્રતોમાં સ્વતંત્ર અધ્યાય નથી પરંતુ મિશ્ર છે. તેથી વિષયાંતર હોઈ તે અધ્યાય ૧૧૪ તરીકે મૂકેલ છે. આગળ અર્થ વગરના ત્રણેક શ્લોકના સાવ અશુદ્ધ નિરર્થક પાઠોનો એકસો બારમો અધ્યાય અશુદ્ધ પ્રતોમાં ગણાવેલ છે. આ ગ્રંથના સંશોધનનું કાર્ય કઠીન છે. કારણ કે ગુજરાત સૌરાષ્ટ્ર કે રાજસ્થાન માંથી હજુ અમને તેવી કોઈ શુદ્ધ પ્રતો પ્રાપ્ત થયેલ નથી. આથી સંશોધનના કાર્યમાં અમોએ ગમે તે એક વિષયને સળંગ સંકલિત કરેલ.

અધ્યાયો ક્રમવાર મૂકવાની ધૃષ્ટતા દુઃખ સાથે નાઈલાજે કરવી પડી છે. તે સુજ્ઞ વિચારક વિદ્વાનો પરિસ્થિતિનો વિચાર કરી અમને ક્ષમા કરશે. એવી આશા રાખું છું. આ એક સો ચૌદમા અધ્યાયમાં કેટલીક અપૂર્ણતા જાણવાથી જે સ્થિતિમાં પાઠો મળ્યા તે જ સ્થિતિમાં પ્રકાશન કરવા પડેલ છે. ભવિષ્યમાં કોઈ સારી શુદ્ધ પ્રતોની પ્રાપ્તિ થયેથી કોઈપણ વિદ્વાન સંશોધન કરી પ્રકાશ પાડશે તો શિલ્પીવર્ગનું ઋણ અદા કર્યું ગણાશે. તેવા વિદ્વાનનો અમે આભાર માનીશું.

આ ક્ષીરાર્ણવ ગ્રંથમાં જ્યાં જ્યાં અમોને અનુવાદ કરવામાં અસંબદ્ધતા કે અશુદ્ધિ જણાઈ અને તે પૂર્ણ કરવાનું જ્યાં જ્યાં શક્ય બન્યું નથી ત્યાં ત્યાં અમોએ અનુવાદ કર્યા સિવાય મૂળ પાઠો જ આપેલા છે.

(१) रेखाविचारका यह अध्याय दूसरी अशुध प्रतोंमें स्वतंत्र अध्याय नहीं है, परंतु मिश्र है। जिससे विषयांतर होनेसे उसे अध्याय ११४ के नामसे रखा गया है। आगे निरर्थक तीनों श्लोकके बिल्कुल अशुद्ध पाठोंका अेकसौ बारहवाँ अध्याय अशुद्ध प्रतोंमें गिना गया है। जिस ग्रंथके संशोधनका कार्य कठीन है। क्योंकि गुजरात सौराष्ट्र या राजस्थानमेंसे अभी तक हमको वैसी शुद्ध प्रत प्राप्त नहीं हुई है। जिससे संशोधन कार्यमें हमने इच्छित

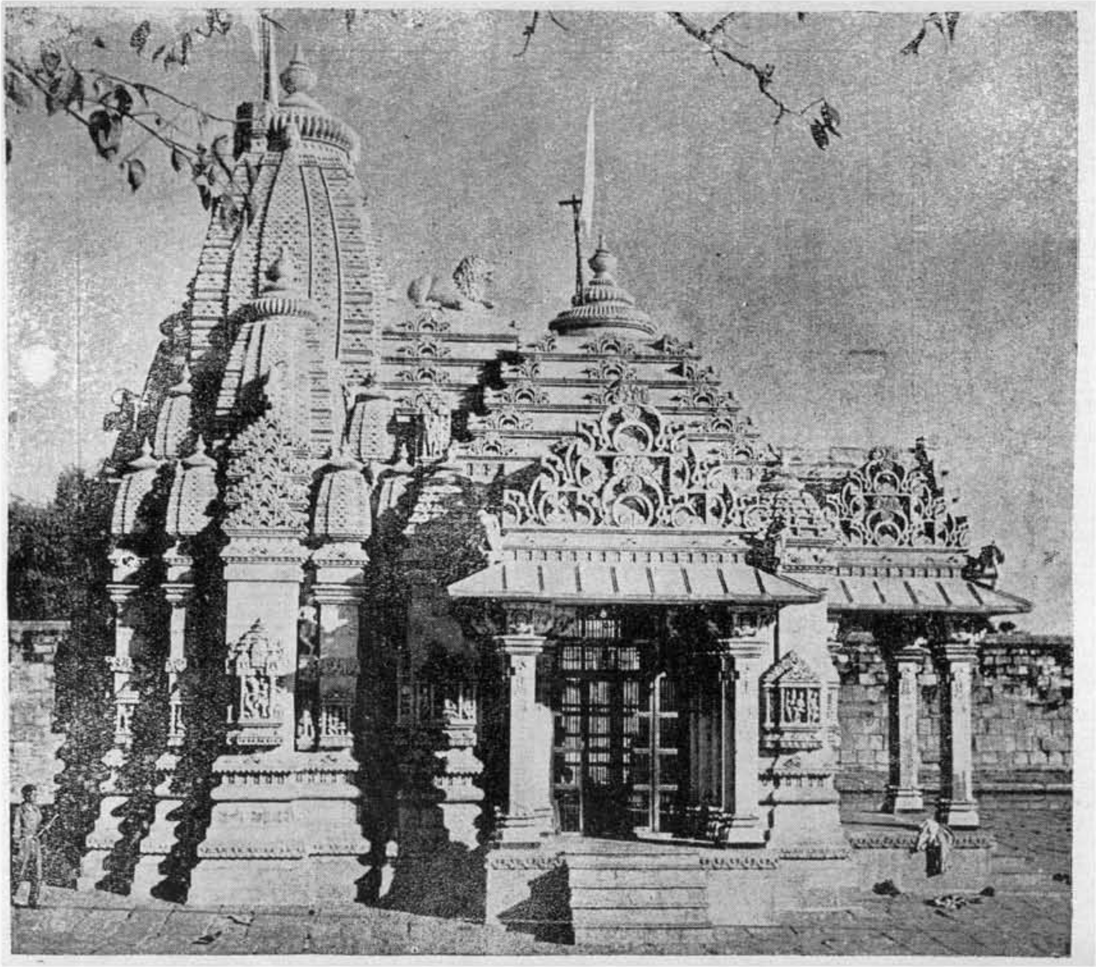

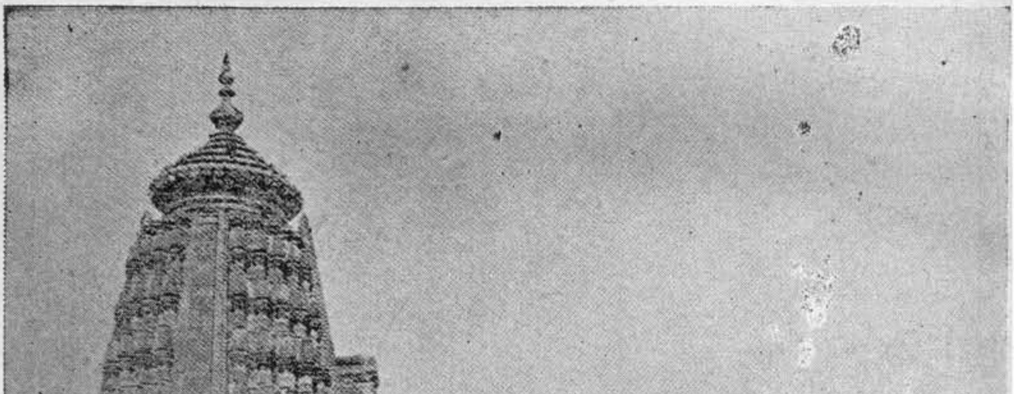

भूमिज प्रकार-शैलीका उदयपुर (मालवा) के उदयेश्वरका कलामयप्रासाद मंडप पर संवरणा

ભાવાર્થ–જેમ કમળ કોમળ આકારનું નીચે મધ્ય અને ઉપર વિકસિત થાય છે. (૩૨) તેમ નીચેથી અધિક બબ્બે આંગળ....અર્ધ ભાગમાં....સાતમો ભાગ ગ્રહણ કરવા. તે સૂત્ર....(૩૩) એ રીતે ઉપર પરિસ્થાને કલાર્ચા સાધવી....તેવું શિખર બે ભાગ....બાકી માન સાધક.... (૩૪) શિખરના સ્કંધ બાંધણાના સ્થાને ....તે સર્વ દુર્માર્ગથી તે સદા અશુભકારક જાણવું. ૩૨–૩૩–૩૪–૩૫.

जिस तरह कमल कोमल आकारका नीचे मध्य और उपर विकसित होता है, ३२–इस तरह नीचेसे अधिक दो दो अंगुल...अर्ध भागमें...सातवें भागको ग्रहण करने–उस सूत्र...(३३) इस तरह उपर परिस्थानपर कलार्चा साधना...वैसा शिखर दो भाग...बाकी मान साधक...(३४) शिखरके स्कंधके स्थान पर...उसको सर्व दुर्मार्गसे उसको सदा अशुभकारक जानना। ३५.

इति श्री विश्वकर्मा कृतायां क्षीरार्णवे नारद पृच्छते रेखा विचार शताग्रे चतुर्दशमोऽध्याय ॥११४॥ क्रमांक अ० १६

ઇતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવે નારદજીએ પૂછેલ શિખર રેખા વિચાર લક્ષણ પર શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલ સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો ચૌદમો અધ્યાય ૧૧૪. ક્રમાંક અધ્યાય ૧૬.

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव श्री नारदजीके संवादरूप शिखर रेखा विचार लक्षणपर शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुराकी रचि हुई सुप्रभा नाम्नी भाषाटीकाका एकसौ चौदहवाँ अध्याय ॥११४॥ क्रमांक अ० १६

अेक विषयको सांगोपांग संकलितकर अध्यायोंको क्रमशः रखनेकी धृष्टता दुःखके साथ निरूपाय करनी पडी है। तों सुज्ञ विचारक विद्वानों परिस्थितिका विचारकर हमें क्षमा करेंगे अैसी आशा रखते हैं। अिस अेकसीचौदहवें अध्यायमें कुछ अपूर्णता दिखनेसे जिस स्थितिमें पाठों मिले अिस स्थितिमें उनका प्रकाशन करना पडा है। भविष्यमें कोई अच्छी शुद्ध प्रतोंकी प्राप्ति होनेसे कोइ भी विद्वान संशोधन कर प्रकाश डालेगा तो शिल्पि वर्गका ऋण चूकानेका कार्य माना जायगा। वैसे विद्वानोंके हम आभारी होंगें।

जिस क्षीरार्णव ग्रंथमें जहां जहां हमें अनुवाद करनेमें असंबद्धता या अशुद्धि देखनेमें आयी और उसे पूर्ण करनेका काम जहां जहां शक्य नहीं हुआ हमने अनुवाद किये विना मूल पाठ ही दिये हैं।

॥ अथ स्तंभ लक्षणाधिकार ॥

क्षीरार्णव अ० ॥ ११५ ॥ (क्रमांक अ० १७)

विश्वकर्मा उवाच—

एक हस्ते तु प्रासादे स्तंभ वा चतुरं गुलम् ।
द्वि हस्ते अङ्गुलसप्तं त्रिहस्ते नवमेव च ॥१॥
ततो द्वादश हस्तांत हस्तेहस्ते द्विरङ्गुलम् ।
सपादाङ्गुल वृद्धि स्यात् यावत्षोडशहस्तके ॥२॥
अंगुलीकास्ततो वृद्धिश्चत्वारिंशत्हस्तके ।
तस्योर्ध्वे च शतार्द्धं च पादुनं मङ्गुलं भवेत् ॥३॥

સ્તંભપૃથુમાક		આગુલ
૧	ગજે.	૪
૨	,,	૭
૩	,,	૯
૪	,,	૧૧
૫	,,	૧૩
૬	,,	૧૫
૭	,,	૧૭
૮	,,	૧૯
૯	,,	૨૧
૧૦	,,	૨૩
૧૧	,,	૨૫
૧૨	,,	૨૭
૧૬	,,	૩૨
૪૦	,,	૫૬
૫૦	,,	૬૩॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. એક હાથના પ્રાસાદને ચાર આંગળ જાડો સ્તંભ રાખવો. બે હાથનાને સાત આંગળ ત્રણ હાથનાને નવ આંગળ, ચારથી બાર હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હસ્તે બબ્બે આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. તેરથી સોળ હાથના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે સવા સવા આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. સત્તરથી ચાલીશ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે એકેક આંગળની અને એકતાલીશથી પચાસ હાથ સુધીના પ્રાસાદને પ્રત્યેક હાથે પોણા પોણા આંગળની વૃદ્ધિ કરવી. ૧-૨-૩.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं-एक हाथके प्रासादको चार अंगुल मोटा स्तंभ रखना । दो हाथके प्रासादको सात अंगुल, तीन हाथके प्रासादको नौ अंगुल, चारसे बारह हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक हाथ पर दो दो अंगुलकी वृद्धि करना । तेरहसे सोलह हाथके प्रासादको प्रत्येक हाथपर सवा सवा अंगुलकी वृद्धि करना । सत्रहसें चालीश हाथ तकके प्रासादको प्रत्येक हाथ पर एक, एक एक अंगुलकी वृद्धि करना । एकतालिस से पचास हाथ तक का प्रासादको प्रत्येक हाथ पर पौने पौने अंगुलकी वृद्धि करना । १-२-३.

प्राकान्तर—प्रासाद दशांश स्तंभ शस्यते शुभकर्मसु ।
एकादशै तु कर्तव्या द्वादशै च विशेषत् ॥४॥
त्रयोदशांशे: प्रकर्तव्य शक्रांश तथोच्यते ।
एतन्मानं पंचधा च स्तंभान्तं विस्तरे पृथक् ॥५॥

પ્રાસાદના (૧) દશમા ભાગનો જાડો સ્તંભ, (૨) અગ્યારમા ભાગે, (૩)

બારમા ભાગે (૪) તેરમા ભાગે, અને (૫) ચૌદમા ભાગની જાડાઈના સ્તંભ કરવો એમ પાંચ પ્રકાર સ્તંભની જાડાઈના જુદા જુદા જાણવા. ૪–૫.

प्रासादके (१) दसवें भागका मोटा स्तंभ, (२) ग्यारहवें भागमें, (३) बारहवें भागमें (४) तेरहवें भागमें और (५) चौदहवें भागके मोटेपनका स्तंभ करना। इस तरह पाँच प्रकार स्तंभके मोटेपनके अलग अलग समझना। ४–५.

सभामंडप स्तंभानां प्रमाणं च अतः शृणु।
दशमांश द्वादशांश्य चतुर्दश्या विशेषत् ॥६॥

प्रमाणं तद्विज्ञेयं पश्चात् बुद्धिः पुनः क्रमात्।
ज्येष्ठ कन्यस मध्ये च कन्यसे ज्येष्ठमेव च ॥७॥

सभा मंडपयो यंत्र वेदिका च विशेषत्।
स्तंभ वा कन्यसो मानं कर्तव्यं शास्त्रपारगै ॥८॥

પ્રાસાદ વગરના ખુલ્લા મંડપો વેદી મંડપ તેવા ચોરસ કાર્યની કલ્પના હે મુનિ! હવે તેવા સભા મંડપના સ્તંભોનું પ્રમાણ સાંભળો. મંડપના ? કે

(૧) अपराजितसूत्रसंतान–અ૦ ૧૮૫માં પ્રાસાદના પ્રમાણથી સ્તંભની જાડાઈ ૧૦, ૧૧, ૧૨, ૧૩ અને ૧૪ એમ પંચવિધ પ્રમાણ કહ્યાં છે. સ્તંભની જાડાઈનું પ્રમાણ તો શિલ્પીએ વિવેકબુદ્ધિથી કાર્યના વાસ્તુદ્રવ્યના આધારે તેની દઢતાના પ્રમાણમાં તે જેટલું વજન ખમી શકે તે પર વિચાર કરીને રાખવું. શ્યામપાષાણ આરસ જોધપુરી ખારો પત્થર કે પોરબંદરી પત્થરો એ એકેકથી ઉત્તરોત્તર દઢ છે. પોરબંદરથી ખારો મજબુત ખારાથી જોધપુર વધુ દઢ છે. તેથી તે પાતળો સ્હેજ લઈ શકાય.

दीपार्णव માં એક સામાન્ય લક્ષણ જાડાઈનું પ્રમાણ આપે છે. "चतुर्गुणोच्छ्रायं प्रोक्तं-मते त्स्तंभस्य लक्षणम्।" થાંભલાની પહોળાઈથી ચારગણી ઊંચાઈ રાખવી એ સામાન્ય લક્ષણ ઈંટના, ચુનાના કે પોરબંદરી પત્થર જેવાના વાસ્તુ દ્રવ્યના ગણી શકાય.

(१) अपराजित सूत्र संतान अ. १८५वे प्रासादके प्रमाणसे स्तंभका मोटापन १०–११–१२–१३ और १४ जिस तरह पँचविध प्रमाण कहे हैं। स्तंभके मोटपनका प्रमाण तो शिल्पीको विवेक बुद्धिसे कार्यके वास्तु द्रव्यके आधार पर उसकी दृढताके प्रमाणमें वह जितना वजन झेलसके उसपर विचार करके रखना। श्यामपाषाण आरस जोधपुरी खारा मजबूत खारेसे जोधपुरी ज्यादा दृढ है। जिससे जरा पतला ले सकते हैं।

दीपार्णवमें अेक सामान्य लक्षण मोटेपनका प्रमाण देते हैं। **चतुर्गुणोच्छ्रायं प्रोक्तामत त्स्तंभस्य लक्षणम्**। स्तंभके मोटेपनसे चारगुनी ऊँचाई रखना। यह स्थूलमान ईंट खडीके या पोरबंदरी पत्थरके द्रव्यका गिना जा सकता है।

પદના ? દશમા, બારમા કે ચૌદમા ભાગે સ્તંભની જાડાઈનું પ્રમાણ રાખવું. તે પ્રમાણે વિવેકબુદ્ધિથી પાષાણની દ્રઢતા કે વાસ્તુ દ્રવ્યનો વિચાર કરીને કાર્ય કરવું તેમ તે જ્યેષ્ઠ કનીષ્ઠને મધ્યમાન કે કનીષ્ઠ જ્યેષ્ઠમાન એમ પ્રત્યેકના ત્રણ ત્રણ માન (કુલ નવ) ઉપજાવવા. સભામંડપ અને વેદિકા મંડપના સ્તંભોના પ્રમાણ કનીષ્ઠમાનના શિલ્પશાસ્ત્રના પારંગતોએ રાખવા. ૬-૭-૮.

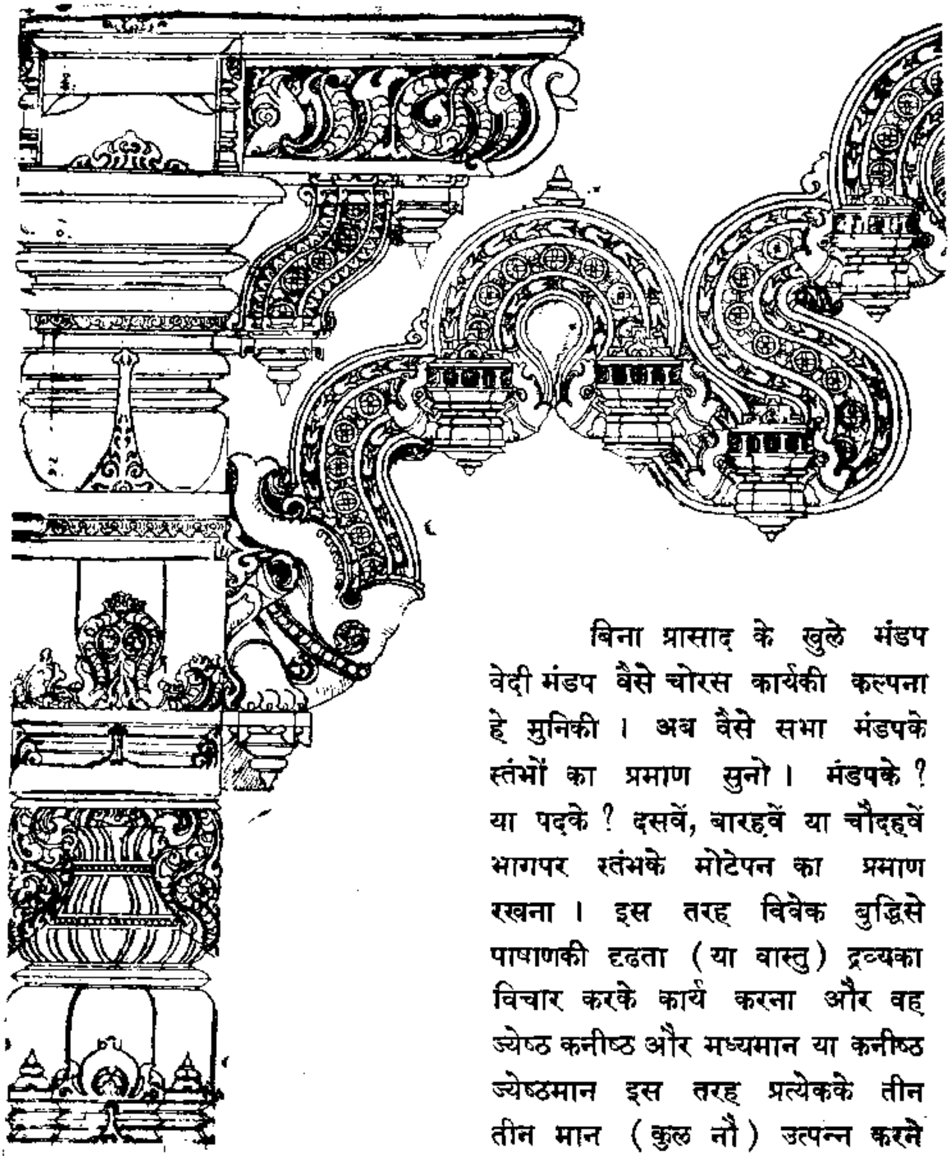

बिना प्रासाद के खुले मंडप वेदी मंडप वैसे चोरस कार्यकी कल्पना हे मुनिकी । अब वैसे सभा मंडपके स्तंभों का प्रमाण सुनो । मंडपके ? या पदके ? दसवें, बारहवें या चौदहवें भागपर स्तंभके मोटेपन का प्रमाण रखना । इस तरह विवेक बुद्धिसे पाषाणकी दृढता (या वास्तु) द्रव्यका विचार करके कार्य करना और वह ज्येष्ठ कनीष्ठ और मध्यमान या कनीष्ठ ज्येष्ठमान इस तरह प्रत्येकके तीन तीन मान (कुल नौ) उत्पन्न करने

घटपल्लव युक्त स्तंभ भरणा मदल ओर सरा

के लिये सभामंडप और वेदिका मंडपके स्तंभोंके प्रमाण कनीष्ठमान के शिल्प शास्त्रके पारंगतोंको रखना । ६-७-८.

रुचकाश्च चतुरस्त्रास्युभद्रेका भद्र संयुता ।
वर्धमानो प्रभद्राः स्युरष्टास्त्राश्चाष्टका मता ॥९॥

आसनोर्ध्वं भवेद् भद्रं स्वस्तिकाश्चाष्टकर्णके ।
पंच विधाश्च कर्तव्या स्तंभा प्रासाद रूपिणः ॥१०॥

स्तंभोंका पंच स्वरुप तलदर्शन

स्तंभोंकी आकृतिपरसे उसका नामाभिधान कहते हैं । (१) चोरस स्तंभको रुचक (२) भद्रवाले (त्रिनाश) को भद्रक (३) प्रति भद्रवाले स्तंभका वर्धमान (४) अष्ठांशके स्तंभको अष्ठक और वेदिका–आसनके उपरकी भद्र अष्ठांश और आठ कर्णीवाले स्तंभका (५) स्वस्तिक नाम जानना । इस तरह पाँच प्रकारके स्तंभोंकि नाम जानना । प्रासादके स्वरूप प्रमाण स्तंभोंका रूप होता है ।[२] ९–१०.

સ્તંભોની આકૃતિ પરથી તેનું નામાભિધાન કહે છે. ૧. ચોરસ સ્તંભને રૂચક ૨. ભદ્રવાળા (ત્રિનાશ)ને ભદ્રક ૩. પ્રતિભદ્રવાળા સ્તંભને વર્ધમાન ૪. અષ્ટાંસના સ્તંભને અષ્ટક અને વેદિકા આસનપટ પરની ભદ્ર અષ્ટાંશ અને આઠ કર્ણીવાળા સ્તંભનું (૫) સ્વસ્તિક નામ જાણવું. એ રીતે પાંચ પ્રકારના સ્તંભોનાં નામ જાણવાં. પ્રાસાદના સ્વરૂપ પ્રમાણ સ્તંભોનું રૂપ થાય. (૨) ૯–૧૦.

(૨) अपराजितसूत्र १८४ માં સ્તંભોની આકૃતિ સ્વરૂપ આ પ્રમાણે આપેલાં मत्स्य-पुराण અ० ૨૫૫ અને मानसार અ० ૧૫ માં પૃથક્ પૃથક્ નામો અને સ્વરૂપો આપેલા છે.

	ચોરસ	અષ્ટાંશ	સોળાંશ	બત્રીશણંશ	ગોળ
मत्स्यपुराण	રૂચક	વજ્ર	દ્વિવજ્રક	પ્રલીનક	વૃત
मानसार	બ્રહ્મકાંત	વિષ્ણુકાંત	રૂદ્રકાંત	સ્કંધકાંત (પાંચ કે ૭ હાંશનાને)	

આમ પૃથક્ પૃથક્ ગ્રંથોમાં નામ અને સ્વરૂપ જુદા જુદા આપેલાં છે.

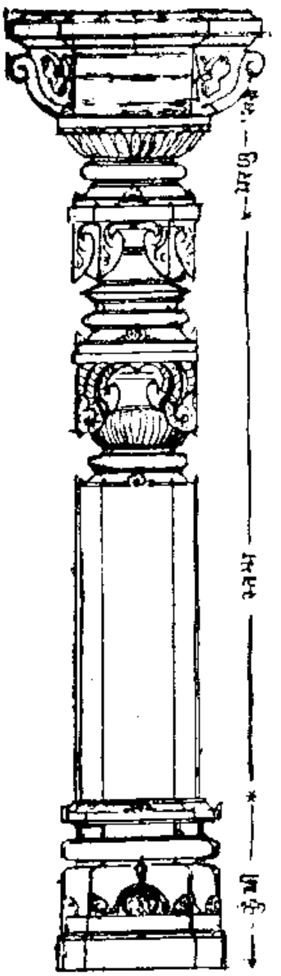

कुंभी घटपल्लव युक्त
स्तंम्भ भरणा सरा

भद्रैरलंकृता कुंभी स्तंभो भद्राष्टसवृतः ।
भरण्यां पल्लवावृता शीर्षाग्र वाथ किन्नराः ॥११॥

પ્રાસાદના મંડપ ચોકીના સ્તંભના છોડનું વર્ણન કરે છે. કુંભી અલંકૃત નકશીવાળી ભદ્રયુક્ત કરવી. એક સ્તંભમાં જુદાં જુદાં સ્વરૂપ કહ્યાં છે. પરંતુ એક સ્તંભમાં નીચે ભદ્ર વચ્ચે અષ્ટાશ્ર અને ઉપર વૃત્ત= ગોળ ઘટ પલ્લવયુક્ત પણ કરવા. ભરણાના ભદ્ર કે પત્ર પાંદડાં ખુલ્લાં કરી નીચે ગોળ કર્ણિકા કરવી. સરૂ એક યા બે ગુંડાવાળું કરવું અગર કિન્નર (કીચક) ના રૂપથી અલંકૃત કરવું. ૧૧.

प्रासादकी मंडप चोकीके स्तंभके पौवेका वर्णन कहते हैं। कुंभी अलंकृत नकशीवाली भद्रयुक्त करना। एक स्तंभमें भिन्न भिन्न स्वरूप कहे हैं। परंतु एक स्तंभमें नीचे भद्र बिचमें अष्टाश्र और उपरवृत्त=गोल घटपल्लवयुक्त करना। भरणेके भद्रके उपर पत्र पान खुले करके नीचे गोल कर्णिका करना। सरा एक या दो गुण्डेवाला करना अगर किन्नर (कीचक) के रूपमें अलंकृत करना। ११.

घटपल्लव कुंभीभिः स्तंभाः कार्यास्त्वलंकृताः ।
ईलिकातोरणैर्युक्ता मदलैर्मंडिताः शुभाः ॥१२॥
देवाङ्गना अष्ठ द्वादश षोडश जिन द्वांत्रिशाः ।
चतुषष्टि कला युक्ता स्तंभे स्तंभे बिराजिते ॥१३॥

સ્તંભના ઘાટ અનેક પ્રકારના થાય છે. સાદા, નકશીવાળા, રૂપવાળા પણ થાય. એક સ્તંભમાં નીચે ભદ્રક તે ઉપર અહાંશ અને તે પર ગોળ વળી ઉપર છ એક ઇંચનો પટ્ટો અહાંશનો કરી તેમાં ગ્રાસમુખ કે ફૂલો કરે છે. નીચે ગોળ ભાગમાં કળી બાંધણાના બંધો કરી ઊભી સાંકળી ટોકરી કે પુષ્પનો તોરો કરે છે. સાંકળી ટોકરી એ આધ્યાત્મિકરૂપે સુચક તેના ઘાટ કહે છે. એવા એવા ઘાટના સ્તંભોની સુંદર રચના કુશળ શિલ્પીઓ પોતાના ભેજામાંથી ઉપજાવી કાઢે છે. જો કે તે અશાસ્ત્રીય તો નથી જ. બારમી તેરમી સદીના સ્થાપત્યોમાં અવશેષોમાં ઘટપલ્લવયુક્ત કળામય સ્તંભો સુંદર લાગે છે. ચારે ખુણે કળામય પત્રો કરી વચ્ચે ઘટકુંભની આકૃતિ સ્તંભના મધ્યમાં કરેલી જોવામાં આવે છે. દક્ષિણાપથ પ્રદેશમાં કુંભીનો ઘાટ ખુણે પત્રો કરી મધ્યમાં કુંભની આકૃતિ કરી કુંભીના નામને સાર્થક કરેલ જોવામાં આવે છે.

મહાપ્રાસાદના કુંભી અને સ્તંભો ઘટપલ્લવોથી અલંકૃત શોભિત કરવા ઈલિકા તોરણ યુક્ત કે[3] મદળોવાળા સુંદર સ્તંભો કરવા. દેવાંગનાઓ=દેવકન્યા

अपराजित सूत्र १८४में स्तंभोंकी आकृतिके स्वरूप अिस प्रकार दिये हैं। अ० १५ में पृथक् पृथक् नामों और स्वरुपों दिये हैं।

आकृति	— चोरस	— अष्टांश	— सोलांश	— बत्तीसांश	— गोल
मत्स्य पुराण	— रूचक	— वज्र	— द्विवज्रक	— प्रलीनक	— वृत
मानसार	— ब्रह्मकांत	— विष्णुकांत	— रुद्रकांत	— स्कंधकांत	— पंच-छहांश

पृथक् पृथक् ग्रँथों में नाम और स्वरूप भिन्न भिन्न दिये हैं। स्तंभ के घाट अनेक प्रकारके होते हैं। सादे--नकशीवाले रूपवाले भी होते हैं। अेक स्तंभमें नीचे भद्रक उसके उपर अठांश और उपर गोलवलीके उपर छः ईंचका लगभग पट्टा अठांशका कर उसमें ग्रास मुख या फूलों करते हैं। नीचे गोल भागमें कणी स्तंभके बंधको कर खडी सांकल टोकनी या पुष्पका तोरा बनाते हैं। सांकली, टोकरी, आध्यात्मिक रूपसे सुचक उसके घाट कहते हैं। अैसे अैसे घाटके स्तंभोंकी सुंदरत रचना कुशल शिल्पीयों अपने दिमागमेंसे उत्पन्न करते हैं। यद्यपि वह अशास्त्रीय तो नहीं है।

बारहवीं तेरहवीं सदीके स्थापत्यों में अवशेषोंमें घटपल्लवयुक्त कलामय स्तंभों सुंदर लगते हैं। चारों कोनेमें कलामय पत्रोंका बिचमें घटकुंभकी आकृति कर कुंभीके नामको सार्थक किया हुआ देखनेमें आता है।

कर्णाटक शैलीकी दर्पणयुक्त विर्विचिता देवाङ्गना

(૩) બે સ્તંભો વચ્ચેના લાંબાગાળાના પાટની મજબુતાઈ શોભા સાથે કરવાને મદળો કરવામાં આવે છે. તે કમાન જેવું સુંદર દેખાય છે. તોરણ કે કાચલાવાળા તોરણ કરતાં મદળોની મજબુતાઈ વિશેષ રહે છે. તોરણની પુરાણી શૈલીનું સ્થાન કાચલાવાળી પડદીવાળા કમાને લીધું. તે પાછલા કાળની કૃતિ છે. ધ્રુવ સૂત્રમાં સાદી કમાનો પંદરમી સદી પછી

આઠ બાર સોળ ચોવીશ કે બત્રીશ નૃત્યાદિ ચેષ્ટા કરતી ચોસઠ કળાયુકત એવા લક્ષણોવાળી થાંભલે થાંભલે મૂકવી.[४] ૧૨–૧૩.

महाप्रासादके कुंभी और स्तंभों घट्टपल्लवोंसे अलंकृत करना। ईलिका त्रूल-युक्त [१]मदलेवाले सुंदर स्तंभों करना। देवाङ्गनाओं–देवकन्या आठ बारह सोलह चौबीस या बत्तीस नृत्यादि चेष्टा करती चौसठ कलायुक्त ऐसे लक्षणोंवाली प्रत्येक स्तंभ पर रखना।[४] १२–१३.

आद्यथरजाड्यकुंभ कर्णिका ग्रास एव च।
इत्येवं पीठ बन्धस्य भ्रमतश्च प्रदक्षिणे ॥१४॥
कुंभ कलश कपोताल्या वा राजसेन वेदिका।
आसन्न पट्टश्च कार्यः कक्षासन विभूषितः ॥१५॥

ખુલ્લા મંડપને (૧) પહેલા થરમાં ભિટ્ટ જાડંબો કણી અને ગ્રાસપટ્ટીનું પીઠ બંધ ફરતું પ્રદક્ષિણાએ કરવું. અગર (૨) કુંભો કળશો કેવાળ ને પુષ્પકંઠના થરો અગર (૩) પીઠ પર રાજસેવક વેદિકાને આસનપટ્ટ મૂકી તે પર કક્ષાસનથી શોભતો મંડપ કરવો. (આવા ત્રણ પ્રકારના જુદા જુદા કક્ષાસનના નામો વૃક્ષાર્ણવમાં આપેલાં છે.) ૧૪–૧૪.

ભારતમાં પ્રવિષ્ઠ થઈ. જોકે કમાન બીજા રૂપે ભારતમાં બૌદ્ધ કાળની સ્થાપત્યોમાં જોવામાં આવે છે. કમાનની જેમ ઘુમટ પણ સાદારૂપે પાછળથી પંદરમી સોળમી સદીમાં ભારતીય સ્થાપત્યમાં દાખલ થયા.

(३) दो स्तंभोंके बिचके लम्बे अंतरके पाटकी मजबूतीको शोभाके साथ करनेके लिये मदल किया जाता है। वह कमानकी तरह सुंदर दिखता है। तोरणके काचलेवाली कमान मदलोंकी मजबूती विशेष रहती है। झूलकी पुरानी शैलीका स्थान काचलेवाली पडदीवाली कमानने लिया। वह पीछले कालकी कृति है। ध्रुव सूत्रमें सादी कमानों सोलहवीं सदीके बाद भारतमें प्रविष्ठ हुई। यद्यपि कमान दूसरे रूपमें भारतमें बौद्धकालकी देखनेमें आती है।

कमानकी तरह गुँबज भी सादे रूपमें पीछेसे पंद्रहवीं सोलहवीं सदीमें भारतीय स्थापत्यमें प्रविष्ठ हुआ।

(૪) દેવાંગના=દેવકન્યાનાં સ્વરૂપો અને નામ લક્ષણો બત્રીશ કહેલાં છે. શરીરના અંગ મરોડ અને ચેષ્ટાપરથી તેના લક્ષણ અને નામો જુદા જુદા સવિસ્તર બહુસુંદર રીતે વૃક્ષાર્ણવનાં ૧૪૦મા અધ્યાયમાં આપેલા છે. કલ્પિત દેવાંગનાનું સ્વરૂપ કરવું નહિ તેમ શાસ્ત્રોક્ત પાઠ સાથે તેના આલેખન સહિત આ ગ્રંથ અધ્યાય ૧૨૦માં સચિત્ર આપેલા છે તે જોવું.

(४) देवांगना–देवकन्याके स्वरूपों और नाम लक्षण बत्तीस कहे हैं। शरीरके अंग मरोड और चेष्टा परसे लक्षण और नाम भिन्न भिन्न सविस्तर बहुत सुंदर ढंगसे वृक्षार्णवक अ. १४०मे दिये हैं। कल्पित देवांगनाका स्वरूप नहीं करना। उसके शास्त्रोक्त पाठके साथ उसके आलेखन सहित यह क्षीराणव ग्रंथमे अ. १२०में सचित्र दीया है सो देखना।

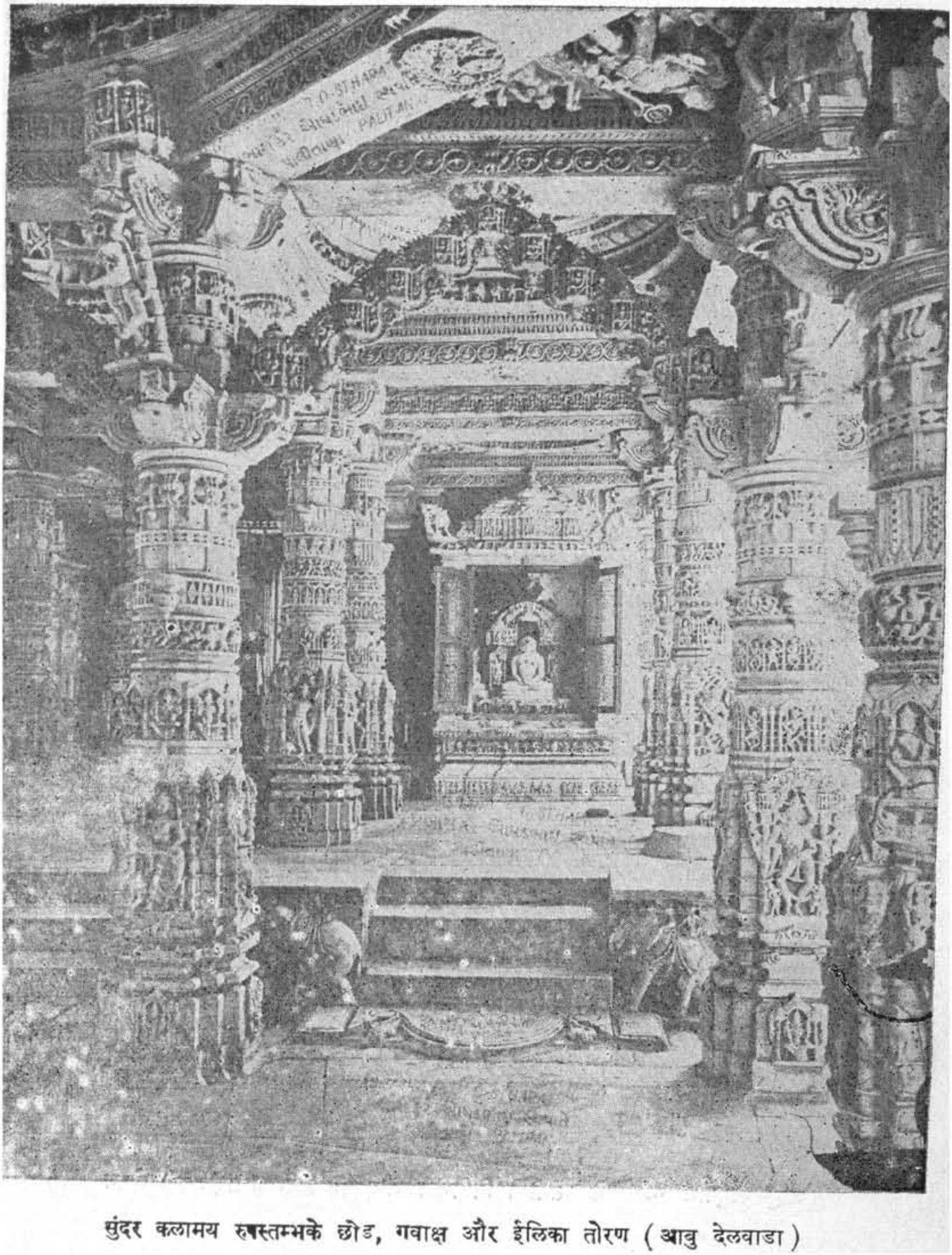

सुंदर कलामय रुक्स्तम्भके छोड, गवाक्ष और ईलिका तोरण (आबु देलवाडा)

आबु–वस्तुपाल भदिर के स्तंभोको विविधता और हींडोलक (आंदोलक) तोरण

खुले मंडपको (१) पहले थरमें भिट्ट जाडंबा कणी और ग्रासपट्टीका पीठ बंध फिरती प्रदक्षिणामें करना। अगर (२) कुंभ कलश केवाल और पुष्पकंठका थर अगर (३) पीठपर राजसेवक वेदिका और आसन रख कर उसकेपर कक्षासनसे मंडप करना। (ऐसे तीनों प्रकारके भिन्न भिन्न कक्षासनके नामों वृक्षार्णवमें दिये हैं। १४–१५.)

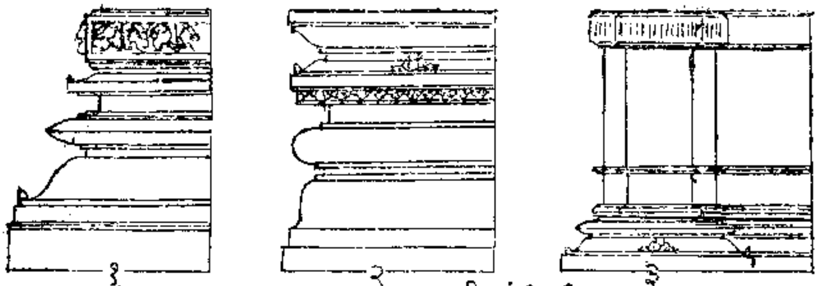

खुला - नृत्यमण्डप का पीठबांध. तीन प्रकार.

प्रासाद् स्त्रिपंच भूमिः सप्तभिः र्नवभिस्तथा।
ब्रह्मस्थानं सदारम्यं स्वर्ग प्रासाद शाश्वतम् ॥ १६॥
चतुर्मुखो ब्रह्मणो हि विष्णावे: कुर्याद् विशेषत:।
चतुर्मुखश्च रुद्रस्य प्रासाद: पुण्यहेतवे ॥ १७॥
यथा दिन विना सूर्य शशांक विना शर्वरी।
यस्मिन् देशे चतुर्मुख: प्रासादोन हि विद्यते ॥ १८॥

दीगंम्बर शिव–नृत्य

शिव–नृत्य

ईशानदेव–दिग्पाल दिग्पाल

ब्रह्मा

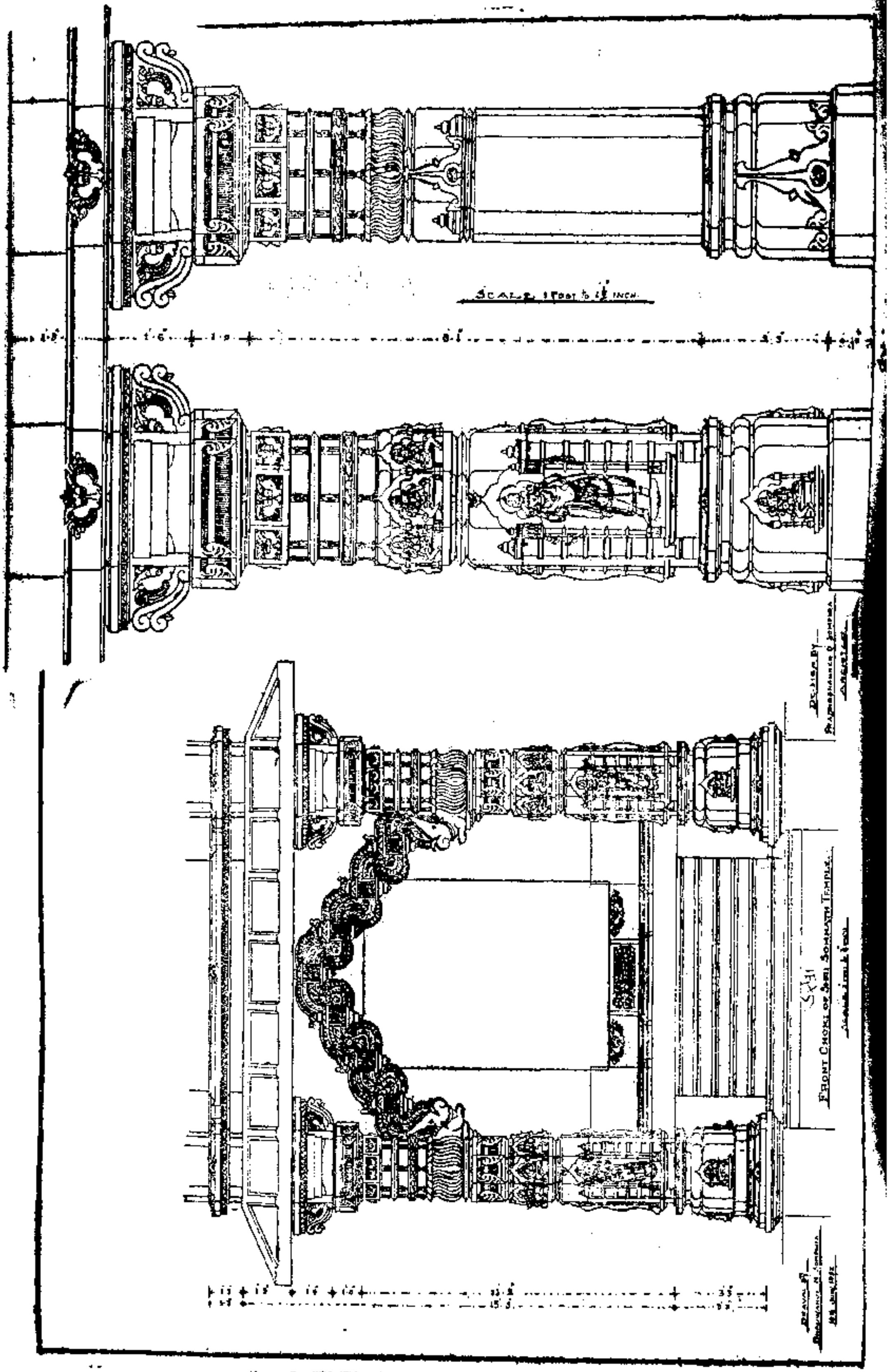
FRONT CHOKI OF SHRI SOMNATH TEMPLE.

મહાપ્રાસાદ ત્રણ પાંચ સાત કે નવ ભૂમિ-માળવાળા કરવા. સ્વર્ગ જેવા શાશ્વત પ્રાસાદમાં બ્રહ્મ=મધ્યસ્થાન હમેશાં રમ્ય કરવું. બ્રહ્મ વિષ્ણુ અને રૂદ્રના ચતુર્મુખ પ્રાસાદ કરાવવાથી મહદ્દ્પુણ્ય ઉપાર્જન થાય છે. જે દેશમાં આવા રમ્ય ચતુર્મુખ પ્રાસાદ નથી તે દેશ સૂર્ય વગરના દિવસ જેવો કે ચંદ્ર વિનાની રાત્રિ જેવો જાણવો. ૧૬-૧૭-૧૮.

महा प्रासाद तीन पाँच सात या नौ भूमि मजलेवाले करना। स्वर्ग जैसे शाश्वत प्रासादमें ब्रह्म मध्यस्थान हमेशा रम्य करना। ब्रह्मा विष्णु और रुद्रके चतुर्मुख प्रासाद करानेसे महद् पुण्य उपार्जन होता है। जिस देशमें ऐसे रम्य चतुर्मुख प्रासाद नहीं है वह देश सूर्यके बिना दिन जैसा या चंद्रके बिना रात्रि जैसा जानना। १६-१७-१८.

शिवरूपं च कर्तव्यं वामाऽघोर मीशानकम्।
लास्यं तांडव नृत्यं च वैतालं च विशेषतः ॥१९॥
नारद स्तुबरुश्चैव वादित्रै विविधैः सह।
सिद्धि बुद्धि समायुक्ते नृत्यकृद् गणनायकः ॥२०॥
अष्टाशिति सहस्राणि ऋषि रुपाण्यनेकधा।
चतुसहस्र गोपीयुक्त कृष्णः परिकरै वृतः ॥२१॥
स्त्री युग्म संयुते रुपं लोकलीलां प्रदर्शयेत्।
मिथुनैः पत्र वल्लिभिः प्रमथैश्चय शोभयेत् ॥२२॥

(૫) મિથુનનો અર્થ શિલ્પી બંધુઓએ મૈથુનમાની અનેક જૂના પ્રાસાદોમાં તેવી આકૃતિઓ કુતુહલ વૃત્તિથી કોરેલી છે. અશ્લીલ સ્વરૂપો ઘણા જૂના મંદિરોમાં તેવી ચેષ્ટા કરતા ખુણે ખાંચરે મંડોવરમાં, છતમાં, કુંભામાં કે નરપીઠમાં કરેલી જોવામાં આવે છે. તે સહેતુ છે એવી પણ એક માન્યતા પ્રવર્તે છે. આવાં સ્વરૂપો ઓરીસ્સા, ભુવનેશ્વર, જગન્નાથજી અને કોણાર્કના સૂર્યમંદિરમાં મોટા અને આબુ રાણકપુરના જૈન મંદિરોમાં નાનાં સ્વરૂપો કરેલાં છે.

નોટ—આ ગ્રંથની કેટલીક અપૂર્ણ પ્રતોમાં ફક્ત નવ જ શ્લોક છે. વળી શ્લોક ૧૩થી ૨૩ સુધી दीपार्णव ગ્રંથને મળતા છે.

(५) मिथुनका अर्थ शिल्पी बंधुओंने मैथुन मानकर अनेक पुराने प्रासादोंमें वैसी आकृतियों कुतूहल वृत्तिसे कँडारी हैं। अश्लील स्वरूपों बहुत पुराने मंदिरोंमें वैसी चेष्टा करते कोनेमें -मंडोवरमें, छतमें, कुंभामें या नरपीठमें की हुई देखनेमें आती हैं। वह सहेतु है ऐसी भी अेक मान्यता प्रवर्तती है। अैसे स्वरूपों ओरीसा, भुवनेश्वर जगन्नाथजी और कोनार्कके सूर्य मंदिरमें बडे और आबु राणकपुरके जैनमंदिरोंमें छोटे स्वरूपों बनाया है। नोट-अिस ग्रंथकी कुछ अपूर्ण प्रतोंमें सिर्फ नौ ही श्लोक १३से २१ तक पाठों दीपार्णव ग्रंथको मिलते जुलते हैं।

राम पंचायतन युक्त वानर सेना साथ हनुमत

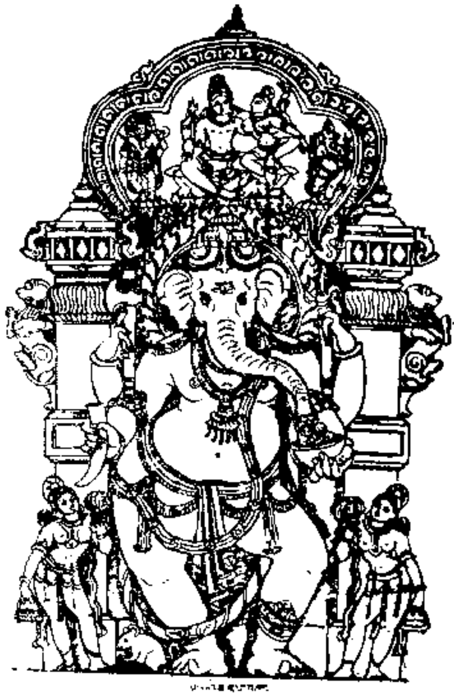

शिव पंचायतन युक्त गणपति विरालिका साथ स्तंभ तोरण नीम्न सिद्धि और सिद्धि नार

શિવના પ્રાસાદના મંડપમાં શિવનાં અનેક સ્વરૂપો વામ અઘોર, તત્પુરૂષ ઇશાનાદિ કરવા. લાસ્ય તાંડવ નૃત્ય કરતાં શિવનાં સ્વરૂપો કરવાં. વૈતાલના પણ રૂપો કરવાં. (તે રીતે જે દેવોનો પ્રાસાદ હોય ત્યાં તેવાં સ્વરૂપો કરવાં.) નારદ તુંબરૂ. વિવિધ વાજીંત્રયુક્ત સિદ્ધિબુદ્ધિ સહિત નૃત્ય કરતાં ગણપતિના રૂપ કરવા. અઠ્ઠાશી હજાર ઋષિમુનિનાં અનેક સ્વરૂપો ચોરાશી હજાર ગોપી સહિત કૃષ્ણથી ફરતા પરિકરયુક્ત સ્વરૂપો (વિષ્ણુમંદિરમાં ને મંડપમાં) કરવાં સ્ત્રીપુરુષના જોડલાં રૂપો લોકલીલા કરતાં દર્શાવવા. સ્ત્રીપુરુષનાં યુગ્મરૂપો કમળનાં પત્રો અને વેલડીઓથી રૂપો શોભતાં કરવાં. ૧૯–૨૦–૨૧–૨૨.

शिवके प्रासादके मंडपमें शिवके अनेक स्वरूपों वाम अघोर तत्पुरूष इशानादि करना । लास्य तांडव नृत्य करते शिवके स्वरूप करना । वैतालके रूपों भी करना । (इस तरह देवोंका प्रासाद हो वहाँ वैसे स्वरूपों करना ।) नारद तुंबरू, विविध वाजित्र युक्त सिद्धि बुद्धि सहित नृत्य करते गणपतिके रूप करना । अठ्ठाशी हजार ऋषि मुनिके अनेक स्वरूपों चौरासी हजार गोपी सहित कृष्णसे फिरते परिकरयुक्त स्वरूपों (विष्णु मंदिरमें तथा मंडपोंमें)

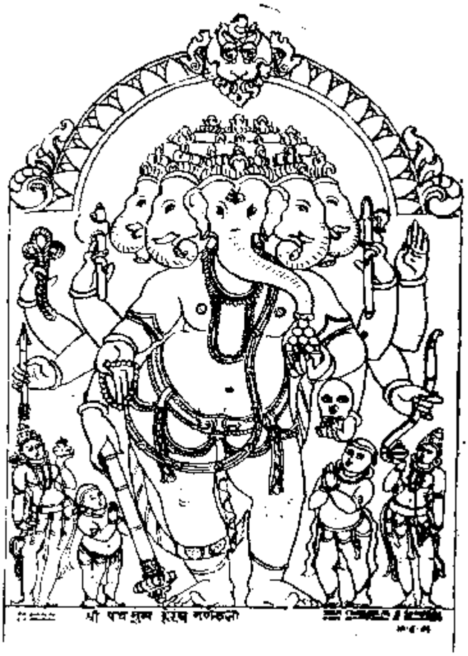

पंचमुख रुद्र हनुमंत मनुष मुखहस्ती करी सिंह वराह पंचमुख हेरम्ब गणपति परिकर युक्त करना । स्त्रीपुरुषके युगलरूपों लोकलीला करते दिखाना । स्त्रीपुरुषके युग्मरूपों कमलके पत्रों और बेलियोंसे रूपोंको शोभित करना । १९–२०–२१–२२.

आदित्य सूर्यका बारा स्वरुप

१ सुधाता

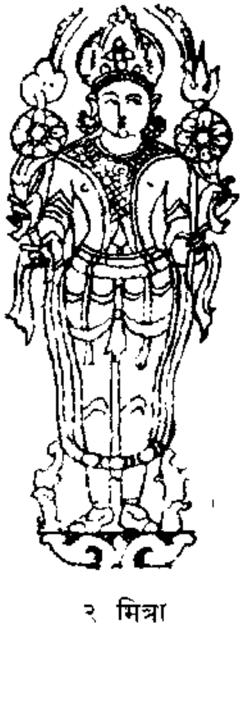

२ मित्रा

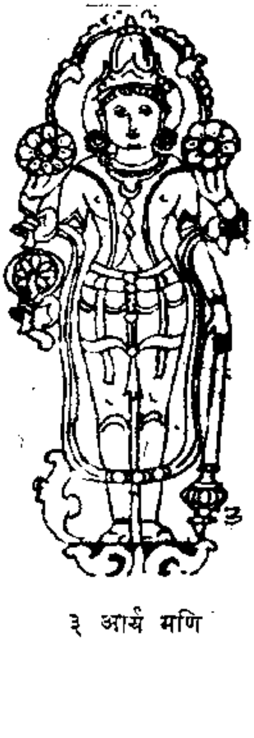

३ आर्य मणि

इंद्रादि लोकपालाश्च नृत्यकुर्वीत ते सदा ।
भास्करादि ग्रहः कार्या द्वादश राशयस्तथा ॥ २३ ॥
सप्तविंशतिर्नक्षत्रा कर्तव्यानि प्रयत्नतः ।
अष्टावाया श्चाष्टव्यया नवतारा स्वरुपकम् ॥ २४ ॥

४ रूद्र

५ वरूणा

६ सूर्य

आदित्य सूर्यका स्वरुप

७ भग

८ विवस्थान

९ पुषा

आदित्य सूर्यका स्वरुप

१० सविता

११ त्वष्टा

१२ विष्णु

सप्तस्वराश्च षड्रागाः षट्त्रिंशत्वरागिनिकाः ।
द्वादशमेघरूपाणि कर्तव्यानि प्रयत्नतः ॥ २५ ॥

नवग्रह

सूर्य

चंद्र

मंगल

बुध

गुरु

शुक्र

शनी

राहु

केतु

यक्ष गंधर्व विद्याधा: पन्नगा: किन्नरास्तथा ।
अनेक देवता नृत्य-मंडपे परिवेष्टिता: ।
इलिकातोरणैर्युक्ता गजसिंहविरालिका ॥ २६ ॥

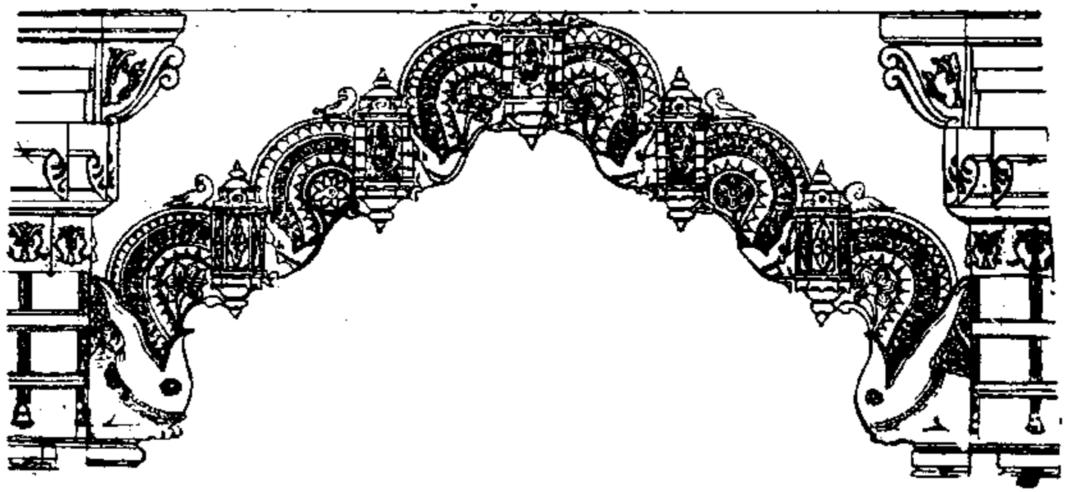

मदल युक्त तिलक तोरण इलिका तोरण

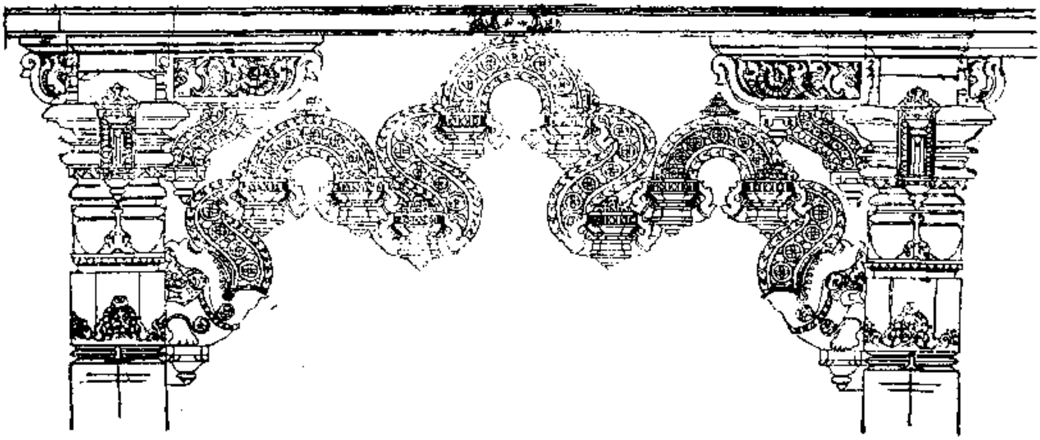

स्तंभ भरणा सरा मदल आंदोलक हींडोलक तोरण

મહાપ્રાસાદને કે મંડપની ફરતા જાંગી વેદિકા કે ઘુંમટ વિતાન શેઇપાટમાં યોગ્ય સ્થાને ઇંદ્રાદિ દિગ્પાલ નૃત્ય કરવા, સૂર્યાદિ નવ ગ્રહો, બાર રાશિઓ, સત્તાવીશ નક્ષત્રો, આઠ આય, આઠ વ્યય, નવતારા, સાત સ્વર. છ રાગ, છત્રીશ રાગિણી, બારમેઘ, યક્ષગાંધર્વ વિદ્યાધરો, નાગ, કિન્નરો વગેરે અનેક દેવો દેવી દેવતાઓનાં સ્વરૂપો મંડપ ફરતા નૃત્ય કરતાં કરવાં. (મુખ્ય સ્વરૂપને) ઈલિકા તોરણુ સાથે ગજસિંહ અને વિરાલિકા સાથે થાંભલી સાથે કરવા. ૨૩-૨૪-૨૫-૨૬.

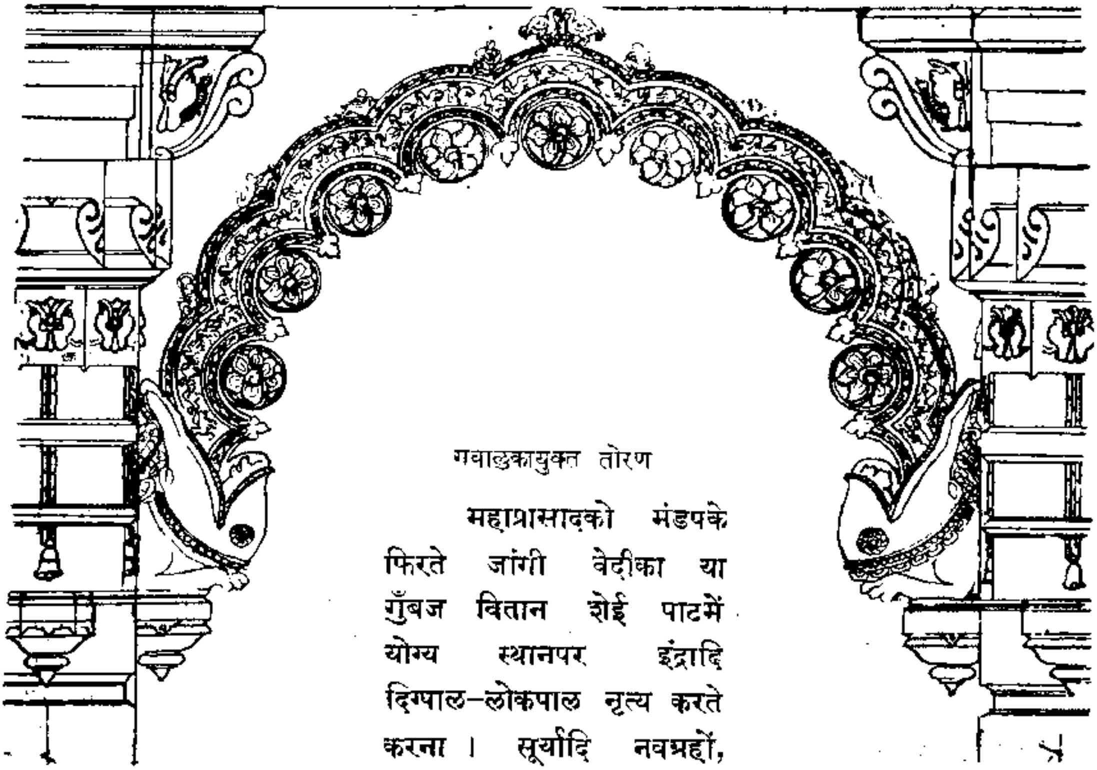

गवाक्षकायुक्त तोरण

महाप्रासादको मंडपके फिरते जांगी वेदीका या गुँबज वितान शेई पाटमें योग्य स्थानपर इंद्रादि दिग्पाल–लोकपाल नृत्य करते करना । सूर्यादि नवग्रहों, बारह राशियों, सत्ताईश नक्षत्रों, आठ आय आठ व्यय, नवतारा, सात स्वर, छः राग छत्तीस रागिणी, बारहमेघ, यक्ष, गँधर्व, विद्याधरों, नाग, किन्नरों वगैरह अनेक देवों देवी देवताओंके स्वरूपों मंडपके फिरते नृत्य करते करना । (मुख्य स्वरूपको) इलिका झूलके साथ गजसिंह और विरालिकाके साथ स्तंभिका के साथ करना । २३–२४–२५–२६.

इतिश्री विश्वकर्माकृतायां क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां स्तंभ मान लक्षणाध्याये शताग्रे पंचदशमोऽध्याय ॥११५॥ क्रमांक अ० १७

ઇતિશ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ નારદજીએ પૂછેલ સ્તંભમાન લક્ષણનો શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો પંદરમો અધ્યાય ૧૧૫. ક્રમાંક અધ્યાય ૧૭.

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णवमें नारदजीके पूछे हुए स्तंभमान लक्षणका शिल्प विशारद श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुराकी रचि हुअी सुप्रभा नामकी भाषाटीका का एकसो पँद्रहवाँ अध्याय ॥११५॥ क्रमांक अध्याय १७

॥ अथ मंडपाधिकार ॥

क्षीरार्णव (अ० ११६) क्रमांक अ० १८

विश्वकर्मा उवाच—

उत्सवार्थे प्रयत्नेन कर्तव्या शुभमंडपा: ।
प्रासाद राजवेश्मानि वापी कुप तडागयो ॥ १ ॥
तत्रैव मंडपा कार्यौ ऋषिराज शृणोत्तमा ।
प्रासादाग्रे महारम्या मंडपास्यामनेकधा ॥ २ ॥

श्री विश्वकर्मा કહે છે. યજ્ઞયાગાદિ ઉત્સવકાર્યમાં શુભ એવા મંડપ, પ્રાસાદ આગળ રાજભવન, આગળ, વાવ કુવા, તળાવાદિ જળાશ્રય આગળ મંડપો કરવાનું. હે ઋષિરાજ! હવે સાંભળો. પ્રાસાદની આગળ મહારમ્ય એવા અનેક પ્રકારના મંડપો કરવા કહ્યા છે. ૧–૨.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं । यज्ञयागादि उत्सव कार्यमें शुभ ऐसे मंडप प्रासादके आगे राजभवनके आगे, वाव–कूए तालाबादि जलाश्रय आगे मंडप करनेका हे ऋषिराज, अब सुनो । प्रासादके आगे महारम्य ऐसे अनेक प्रकारके मंडप करनेके लिये कहे हैं । १–२.

प्राग्वादि विजयाचाद्यं मंडपा उक्तमानतः ।
द्विस्तंभ स्ततो वृद्धि मंडपा पुष्प उच्यते ॥ ३ ॥
कन्यसं च ततो हीन द्विगुणं नैव कारयेत् ।
जगती मंडपा प्राज्ञ ग्रस्तदोषं परित्यजेत् ॥ ४ ॥

પ્રાગ્વાદિ અને વિજયાદિ અનેક મંડપો માનથી કહ્યા છે. પુષ્પકાદિ પ્રકારના મંડપો પ્રથમ સુભદ્ર મંડપથી બબ્બે થાંભલાની વૃદ્ધિએ પુષ્પકાદિ ૨૭ મંડપો કહ્યા છે. કનીષ્ઠમાનથી હીન પણ તે પદથી બમણો (મંડપ) કદિ ન કરવો. સુજ્ઞ શિલ્પીએ જગતીથી મંડપ નીચો ગાળવાનો દોષ ન કરવો. ૩–૪.

प्राग्वादि और विजयादि अनेक मंडपों मानसे कहे हैं । पुष्पकादि प्रकारके मंडपों प्रथम सुभद्र मंडपसे दो दो स्तंभोंकी वृद्धिकर पुष्पकादि २७ मंडपों कहे हैं । कनीष्ठमानसे हीन भी उस पदसे दूगना (मंडप) कभी नहीं करना । सुज्ञ शिल्पीको जगतीसे मंडप नीचा गाढ़नेका दोष न करना । ३–४.

प्रथमे सम सपाद सार्द्धंच पादोनद्वयम् ।
द्विगुणं चाऽपि कर्तव्या सपाद द्वयमेव च ॥ ५ ॥

सार्द्धं द्वयं तु कर्तव्यं अत ऊर्ध्वं न कारयेत् ।
सप्तधा प्रमाण सूत्रं वास्तुविद्भिरुदाहृतम् ॥ ६ ॥

મંડપના વિસ્તાર પ્રમાણ હવે કહે છે (૧) પ્રથમ પ્રાસાદ જેટલો (૨) પ્રાસાદથી સવાયો. (૩) પ્રાસાદથી દોઢો (૫) પ્રાસાદથી પોણા બે ગણો (૫) પ્રાસાદથી બમણો (૬) પ્રાસાદથી સવા બે ગણો (૭) પ્રાસાદથી અઢીગણો મંડપ કરવો તે સાત પ્રમાણ જાણવા તેથી મોટો મંડપ ન કરવો. વાસ્તુશાસ્ત્રના જ્ઞાતાઓએ એ રીતે સાત પ્રમાણ સૂત્ર મંડપના કહ્યા છે. ૫-૬.

मंडपके विस्तार प्रमाण अब कहते हैं । (१) प्रथम प्रासादके बराबर (२) प्रासादसे सवा गुना (३) प्रासादसे डेढ़ गुना (४) प्रासादसे पौने दो गुना (५) प्रासादसे दो गुना (६) प्रासादसे सवा दो गुना (७) प्रासादसे ढाई गुना मंडप करना । ये सात प्रमाण कहे । इससे बड़ा मंडप नहीं करना । वास्तुशास्त्रके ज्ञाताओंने इसी तरह सात प्रमाण सूत्र मंडपके कहे हैं । ५-६.

[1]समं सपादं पंचाशत्पर्यंतं दशहस्तकम् ।
दशत्पंच हस्ते सार्द्धं चतुर्हस्ते द्वयपादून ॥ ७ ॥
त्रिहस्ते द्विगुणं तद्विशिष्टा चतुष्किका ।
चतुष्कं वाऽपि चाष्टांश शुकस्तंभानुसारत् ॥ ८ ॥

પચાશ હાથથી દશ હાથના પ્રાસાદોને પ્રાસાદ જેટલો સમ અગર સવાયો મંડપ કરવો. પાંચથી દશ હાથના પ્રાસાદને દોઢો, ચાર હાથના પ્રાસાદને પોણા બે ગણો ત્રણ હાથનાને બમણો અને તેનાથી ઓછા નાના પ્રાસાદને વિશિષ્ઠ એવું ચોકિયાળું કરવું. ચોકી ચોરસ કે અષ્ટાંશ શિખરના આગળ શુકનાશના શુક સ્તંભને અનુસરતા પાદમંડપ જેવું કરવું. ૭-૮.

पचास हाथसे दस हाथके प्रासादोंको प्रासादके बराबर सम अगर सवा गुना मंडप करना । पाँचसे दस हाथके प्रासादको डेढ गुना, चार हाथके प्रासादको पौने दो गुना तीन हाथके प्रासादको दूगना और इससे कम छोटे

[1] अपराजितसूत्र १८५ માં આને મળતો પાઠ છે. મહારાજા ભોજદેવ વિરચિત समराङ्गण सूत्रधार अ॰ ६७માં લઘુ પ્રાસાદને મોટો મંડપ કરવો હોય તો થઈ શકે. વાસ્તુભૂમિના સંકોચના કારણે ઓછો પણ કરી શકાય તે આગળ જતા મહામંડપનું કહે છે.

शतमष्टोत्तरं ज्येष्ठश्चतुःषष्ठि करोऽवरः ।
कनिष्ठो मंडपः कार्यो द्वात्रिंशत्कर संमितः ॥

એકસો આઠ હાથનો જ્યેષ્ઠ મંડપ, ચોસઠ હાથનો મધ્યમાનનો અને બત્રીશ હાથનો કનિષ્ઠમાનનો મંડપ રચી શકાય છે.

प्रासादको विशिष्ठ ऐसी चोकी करना। चोकी चोरस या अष्टांश शिखरके आगेके शुकनासके शुकस्तंभको अनुसरते पादमंडप जैसा करना। ५-८.

शुकनासे समाघंटा कर्तव्या सर्व कामदा।
तेन मानेन पादान्त(?) मंडपोदय समुत्सृजेत्॥ ९॥

પ્રાસાદના શુકનાસની બરાબર મંડપની શામરણની મૂલ ઘંટા સમાન એક સૂત્રમાં રાખવી. તે સર્વ કામનાને આપનાર જાણવું. તેથી તે માનથી મંડપની ઊંચાઈ રાખવી.[२] ૯.

प्रासादके शुकनासके बराबर मंडपकी शापरणकी मूल घंटाके समान एक सूत्रमें रखना। उसे सर्व कामनाको देनेवाला जानना। इससे उस मानसे मंडपकी ऊँचाई रखना।[२] ९.

नरपीठस्य चोर्ध्वं तु उत्तरङ्गस्य मस्तके।
कृत्वा दश सार्द्धानि भागैकं राजसेनकं॥१०॥
वेदिका च द्विभागा तु भागार्द्धासनपट्टकं।
स्तंभश्चैव चतुर्भागा भागार्धं भरणं भवेत्॥११॥
शरं च भागमेकेन पट्टश्च सार्द्ध भागकः।
कन्यसं च समाख्यातं मध्यमं चमतः शृणु॥१२॥

भाग	
१	राजसेवक
२	वेदिका
०॥	आसरपद
४	स्तंभ
०॥	भरणी
१	सरु
१॥	पाट
१०॥	भागउदय

મહાપ્રાસાદના નરથરના મથાળાથી દ્વારના ઓત્તરંગના મથાળા સુધીની ઊંચાઈના (મુખ પ્રાગ્રીવ મંડપના) સાડા દશ ભાગો કરવા. તેમાંએક ભાગનું રાજસેનક. બે ભાગની વેદિકા અને અર્ધાભાગનું આસનપટ (આસરોટ) કરવો. તે પર ચાર ભાગનો સ્તંભ—અરધા ભાગનું ભરણું—એક ભાગનું શરૂ અને દોઢ ભાગનો પાટ જાડો કરવો એ રીતે સાડા દશ ભાગ મંડપના ઉદયના કનિષ્ઠમાનના જાણવા. હવે મધ્યમાનનો ઉદય સાંભળો. ૧૦-૧૧-૧૨.

महाप्रासादके नरथरके शीर्षकसे द्वारके ओत्तरंगके शीर्षक तककी ऊँचाई के

---

(૨) અપરાજિતસૂત્ર ૧૮૫માં શુકનાસ માટે કહે છે. "**तदूर्ध्वं न च कर्तव्यः मधःस्थं नैव दूषयेत्**। શુકનાસની ઘંટા ઊંચી ન કરવી પણ નીચે હોય તો દોષ નથી. મંડનસૂત્રધાર પણ તેમ કહે છે "**न्यूनाश्रेष्टा न चाधिका।**

(२) अपराजितसूत्र १८५ में शुकनानाके लिये कहते हैं। **तदूर्वं न च कर्तव्यः मधः स्थं नैव दूषयेत्**। शुकनाशकी घंटाको ऊँची न करना लेकिन नीचे हो तो दोष नहीं है। मंडन सूत्रधार भी ऐसा कहते हैं। **न्यूना श्रेष्टा न चाधिका।**

(मुख प्राग्रीवा मंडपके) साढ़े दस भाग करना। उसमें एक भागका राजसेनक दो भागकी वेदिका और आधे भागका आसनपट (आसरोट) करना। उसके पर चार भागका स्तंभ–आधे भागका भरणा एक भागका शरा और डेढ भागका पाट मोटा करना। इस तरह साढ़े दस भाग मंडपके उदयके कनीष्ठमानको जानना। अब मध्यमानका उदय सुनो। १०–११–१२.

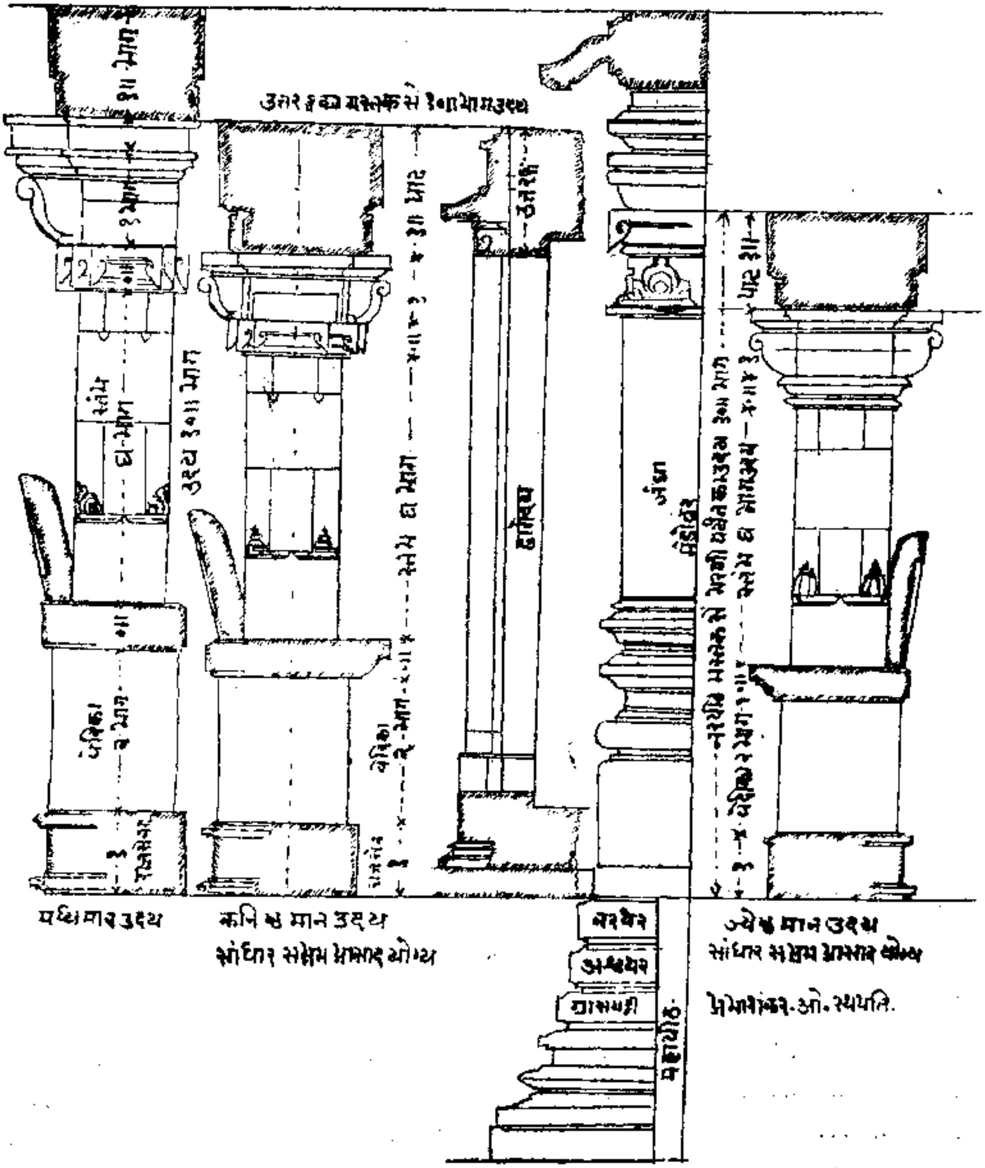

सांधार निरधार प्रासादके स्त्रीक मंडपका कक्षासन युक्त स्तंभादि उदय प्रमाण

	ભાગ
૧	રાજસેવક
૨	વેદીકા
૦॥	આસનપર
૪	સ્તંભ
૦॥	ભરણું
૧	સટ્ટ
૧॥	પાટ
૧૦॥	ભાગ

नरपीठस्या चोर्ध्वंतु कूटछाद्यस्य मस्तक ।
कृत्वा दश सार्द्धांशान् पूर्वमानेन मध्यमम् ॥१३॥

નિરંધાર પ્રાસાદના મંડપની નરથરના મથાળાથી છજા સુધીની ઊંચાઈના સાડા દશ ભાગ કરી આગળ જે વેદિકાને સ્તંભાદિના ભાગ કહ્યા પ્રમાણે કરવાથી મધ્યમાન જાણવું. ૧૩.

निरंधार प्रासादके मंडपकी नरथरके शीर्षकसे छज्जे तककी ऊँचाईके साढ़े दस भाग कर आगे जो वेदीकाके स्तंभादिके भाग कहे. उसके अनुसार करनेसे मध्यमान जानना । १३.

नरपीठस्य चोर्ध्वे तु यावद् भरणी मस्तके ।
भागाश्च दशसार्द्धंशां ज्येष्ठमानं विधीयते ॥१४॥[3]

સાંધાર મહાપ્રાસાદના નરથરના મથાળાથી મંડોવરની ભરણીના મથાળા સુધીના ત્રીક મંડપના ઉદયના સાડાદશ ભાગ કરી તેમાં આગળ કહેલા ભાગમાન પ્રમાણે વેદિકા સ્તંભાદિ કરવા. આ જેષ્ઠમાન જાણવું. ૧૪.

सांधार महाप्रासादके नरथरके शीर्षकसे मंडोवरकी भरणीके शीर्षक तकके त्रीक मंडपके उदयके साढ़े दस भाग उसमें आगे कहे हुए भाग मानके अनुसार वेदिका स्तंभादि करना । यह ज्येष्ठमान जानना । १४.

नरश्च भरणं चैव सार्द्धदश भाग समुच्छ्रयं ।
दंड छाद्यं द्विभागं च निर्गमं च विनिर्दिशेत् ॥१५॥

भागार्धे च कपोतालि पालके मंडप शुभं ।
भागाद्यं पद विस्तारं ततो वृतं च भ्रामितं ॥१६॥

(૩) નિરંધાર પ્રાસાદમાં છજુ અને પાટ એકસત્રમાં જ હોય તે પ્રમાણે અહીં શ્લોક ૧૪ પ્રમાણે મંડપના છોડનું કહ્યું છે. બાકી સાંધાર પ્રાસાદમાં ઓતરંગના મથાળા જેટલી મંડપની ઉભણી અગર તો ભરણા જેટલી ઉભણી રાખવાનું હોય. આનું તારંગામાં દૃષ્ટાંત છે.

(३) निरंधार प्रासादमें छज्जा और पाट अेक सूत्रमें ही हो, जिस तरह यहाँ श्लोक १४ के अनुसार मंडपके पौधेके लिये कहा है। बाकी सांधार प्रासादमें ओतरंगके शीर्षकके बराबर मंडपका उदय अगर तो भरणीके बराबर उदय रखनेका होता है। इसका दृष्टांत तारंगामें है ।

નરપીઠથી ભરણી સુધીના ઉદયના સાડાદશ ભાગમાં દોઢ ભાગનું દંડ છાધ-દાંતીયું છજું કરવું. અને નીકાળો પણ તેટલો બે ભાગનો રાખવો. તે પર (દાબડી પર) અરધા ભાગનો કેવાળ અને પાલ મંડપ ઉપર બહારના ભાગમાં કરવો તે શુભ જાણવું. અંદર પદ વિસ્તારથી હાંશો વગેરે થર ફરતા ગોળ કરવા. ૧૫-૧૬.

नरपीठसे भरणी तकके उदयके साढ़े दस भागमें देढ भागका दंड-छाध-दांतीया छज्जा निर्गम करना । और निकाला भी उतना दो भाग का रखना ।

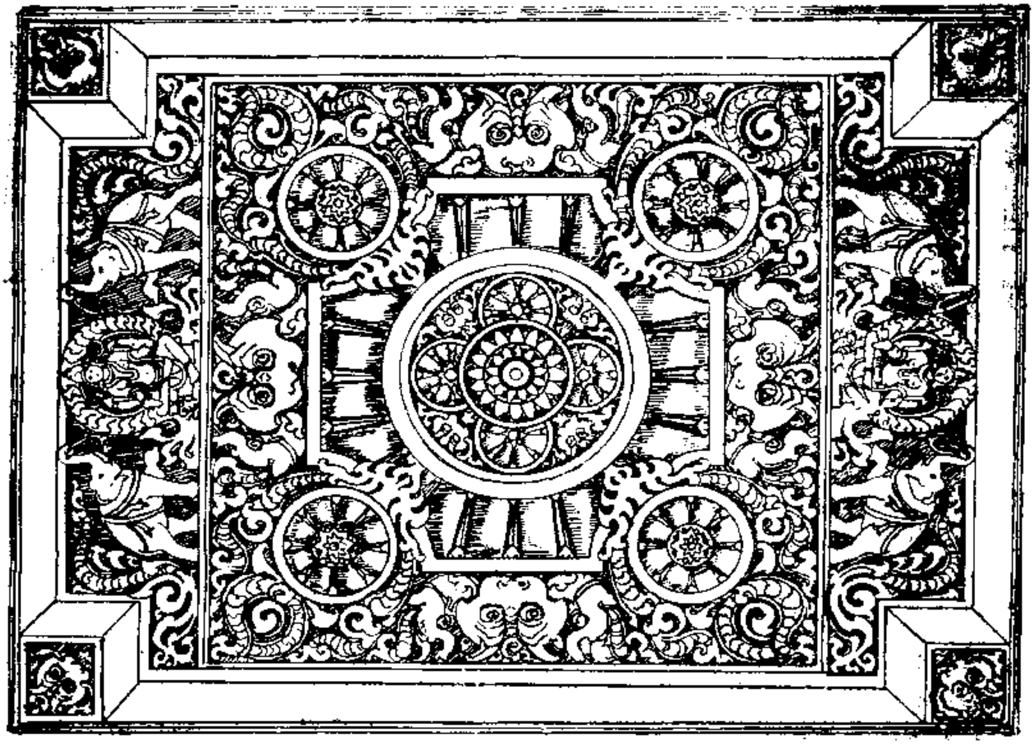

चतुष्कीकाकी छत शिलिंग-वितान

उसके पर (दाबडीके पर) आधे भागका केवाल और पाल मंडपके बाहरके भागमें करना । उसे शुभ जानना । अंदर पद विस्तारसें हांशो वगेरा थर फिरता गोल करना । १५-१६.

वितानानि विचित्राणि क्षिप्तान्युक्षिप्तकानि च ।
समतलानि ज्ञेयानि उदितानि त्रिधाक्रमात् ॥१७॥

एकादशशतान्येव वितानानि त्रयोदश ।
प्रोक्ताश्चं विविधाश्छंदा लुमा स्तत्रत्वनेकधा ॥१८॥[४]

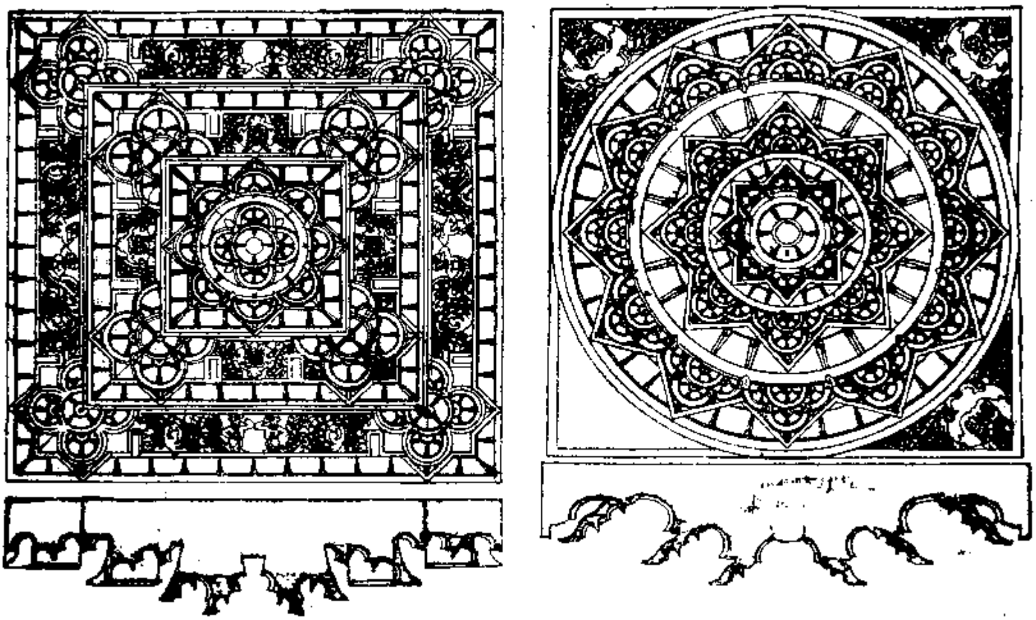

वितानका प्रकार–क्षिप्तानुक्षिप्त–तलदर्शन और छेद दर्शन

(૪) વિતાન એટલે આકાશ ચંદરવો, મંડપનું વિતાન એટલે ઘુમટ છત, કોલ કાચલા વાળો ઘુમટ સારા કામોમાં થાય છે તે શીલ્પીઓ પોતાની બુદ્ધિથી સુંદર કરતા રૂપકંઠ ઉપર એક કોલ, એક ગવાળુ વળી કોલ એમ ક્રમે ક્રમે એકેક કરી મધ્યમ ઝુમર જેવી પદ્મશિલા અલંકૃત થાય છે. કેટલાક ત્રણ કોલ અને એક ગવાળુનો થર એમ પણ ચડાવે છે. ગોળ રૂપકંઠમાં દેવરૂપ–કથાના દશ્યો કોતરે છે. કોઈ ગ્રાસ કે હંસના રૂપ કરે છે. જૈન પ્રાસાદમાં ચોવીશ તીર્થંકર તેમના યક્ષયક્ષણી સાથે કરે છે. મધ્યમાં પદ્મશિલા સ્થાપનનું વિધિથી મુહુર્ત થાય છે. કારણ કે તે ઘણું જોખમી કામ છે. કોલ કાચલાવાળું કામ ઘુમટનું કીંમતી કામ ન કરવું હોય તો ૫–૭–૯ કે ૧૧ થરો ગલતા ગલતાના નીકાળા કાઢીને ઘુમટ કરે છે. આ છેલ્લી સાદી રીત સોળમી સદી સુધી હતી. મુસ્લીમ રાજ્ય કાળમાં સાદા ઘુમટો થવા માંડયા તેમાં ઘુવમાં સાંધો રાખવામાં આવે છે. વિતાનના ૧૧૧૩ વિવિધ પ્રકારો શિલ્પશાસ્ત્રોમાં કહ્યા છે. તેમાં કોલ કાચલાના થરો થાય તે ઉપરાંત લુમ લામસા મદળોના નીકાળાથી સંકોચી ગોળ અગર ચોરસ પણ કામ થાય છે. મુસ્લીમ રાજ્યકાળમાં ઘુમટો અંદર બહાર સાદા થવા માંડ્યા. તોરણનું સ્થાન કમાને લીધું. ઘુમટની બહાર ઉપર સંવરણાને બદલે સન્યાસીના-મસ્તક જેવા ગોળ ઘુમટ થવા માંડયા. સંવરણાની રચના સુંદર છે. જોકે તેવું વર્તમાન કાળમાં થોડા ફેરફાર સાથે સંવરણા શિલ્પકારો કરી રહ્યા છે તે શુભચિન્હ છે.

(४) वितान अर्थात् आकाश, चंदरवा, मंडपका वितान अर्थात् गुंबज छत, कोल

અનેક પ્રકારોના વિતાનો–ઘુમટ વિચિત્ર પ્રકારના થાય તેમાં મુખ્ય ત્રણ ભેદ છે. ૧. ક્ષિપ્તાનુક્ષીપ્ત એટલે કાચલાના થરો ઊંચે ચડી વળી નીચે ઉતરે તેવો ઘાટ (૨) સમતલ– સરખા છાતિયા જેવા કે પટ્ટની જેમ તેમાં આકૃતિઓ પણ કોતરે. (૩) ઉદિતાનિ– એટલે કોલ કાચલાના ઊંચા ઊંચા ચડતા થરોનો

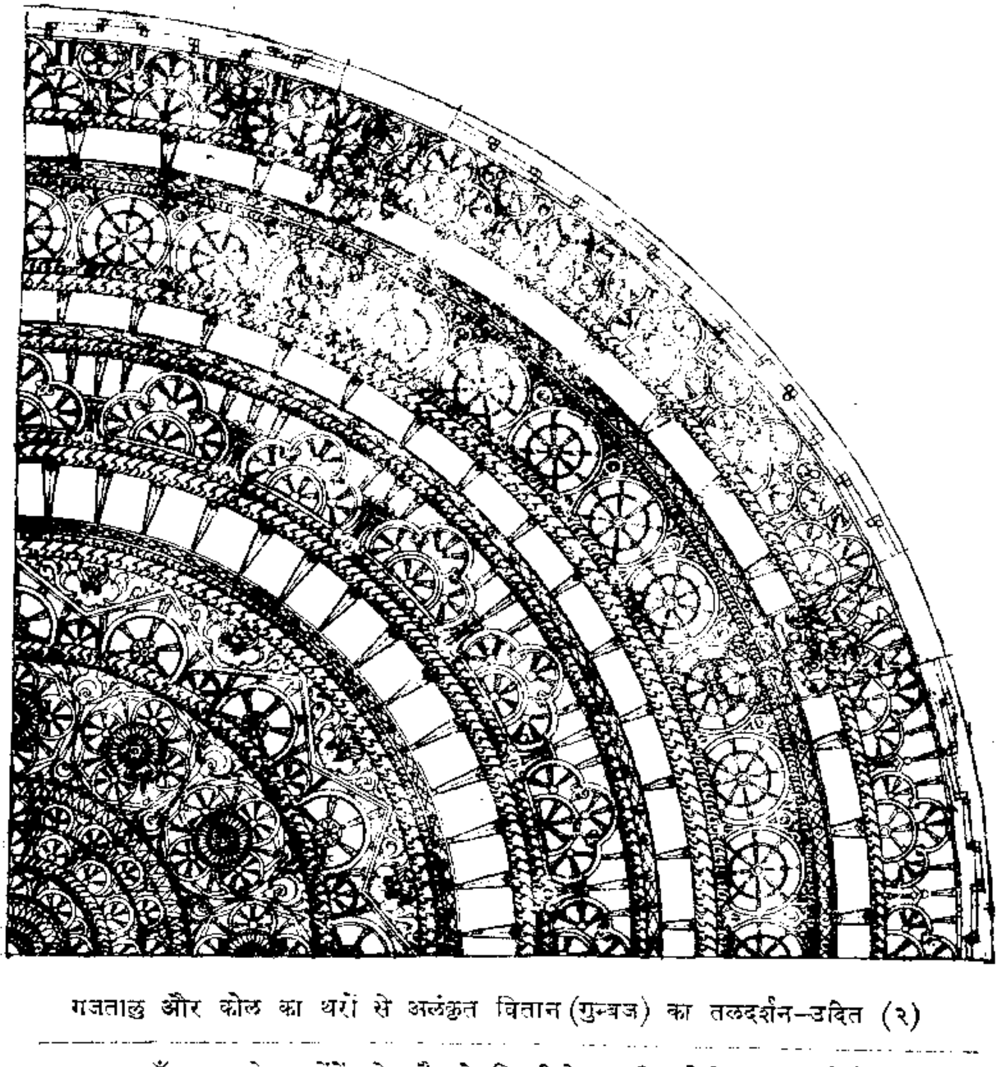

गजतालु और कोल का थरों से अलंकृत वितान (गुम्बज) का तलदर्शन–उदित (२)

काचलावाला गुँबज अच्छे कामोंमें होता है। ये शिल्पीओ अपनी बुद्धिसे सुंदर करते है। रुपकंठके उपर अेक कोल अिसी तरह क्रमसे अेक अेक कर मध्यम झुम्मरके जैसी पद्माशीला अलंकृत होती है। कअी लोग तीन कोल और अेक गवालुका थर अिस तरह भी चढाते हैं। गोल रूप कंठमें देवरूप कथाके दृश्योंको कोतरते हैं। कअी लोग ग्रास या हँसके रूप करते हैं। जैन प्रासादमें चौवीस तीर्थकरोंको उनके यक्ष यक्षणियोंके साथ करते हैं। पद्मशिला स्थापनका

ઘુમટ, એ રીતે વિતાન છત ઘુમટના ત્રિવિધ પ્રકાર જાણવા. તેની જુદી જુદી આકૃતિઓ એક હજાર એકસો તેરની વિવિધ છંદની લુમ મદલોના પ્રકારની કહી

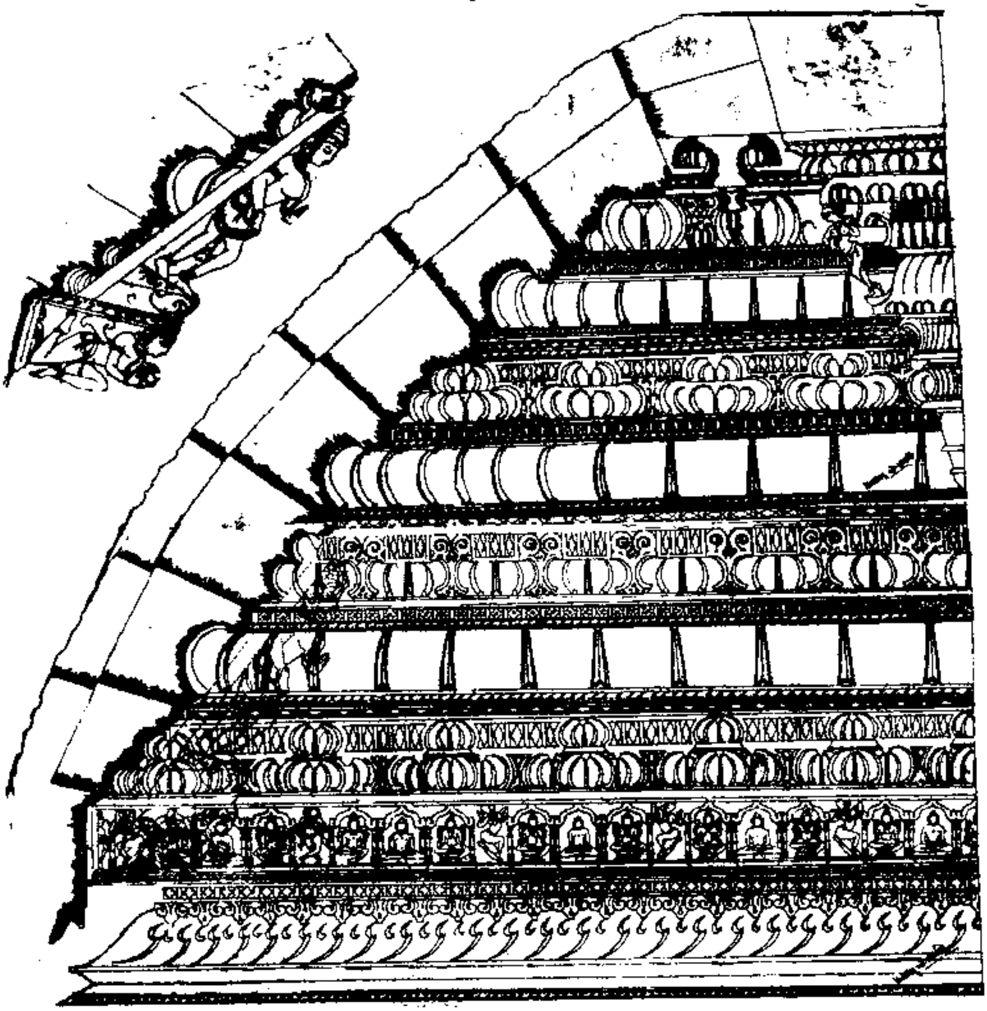

गजतालु और कोल से अलंकृत वितान (गुम्बज) का दर्शन और छेद दर्शन उदित (१)

विधिसे मुहुत होता है क्योंकि वह बहुत खतरेवाला काम है। कोल काचलावाला काम गुँबजका कीमती काम न करना हो तो ५-७-९ या ११ थरों गलते गलतेके निकाले निकालकर गुँबज करते है। यह अंतीम सादी रीत सोलहवीं सदी तक थी। मुस्लीम राज्य कालमें सादे गुँबज होने लगे। उसमें ध्रुवमें सथांन रखा जाता है।

वितानके ११११ विविध प्रकारों शिल्पशास्त्रोंमें कहे हैं। उसमें कोल काचलेके थरों होते हैं, तदूपरांत लुम लामसा मदलोंके निकालेसे संकोचकर गोल या चोरस भी काम होता है। मुस्लीम राज्यकालमें गुँबज अंदर बाहर सादे होने लगे। झूलका स्थान कमानने लिया। गुँबजके

છે. તેમાં શુદ્ધ સંઘાટ (સમતલ) મિશ્ર સંઘાટ ઊંચા નીચા તલવાળા ક્ષિપ્ત લટકતા કાચલાવાળા ૪ ઉક્ષિપ્ત–ઉંચા ચડતા કાચલાના થરોવાળા એવા પ્રકારના અનેક વિતાનો કહ્યા છે. મુખ્ય ત્રણ ભેદ છે. ૧૭–૧૮.

अनेक प्रकारोंके वितानों–गुँबज बिचित्र प्रकारके होते हैं । उसमें मुख्य तीन भेद हैं । १ क्षिप्त उक्षिप्त–अर्थात् काचलोंके थर उँचे चढ़कर और नीचे उतरे वैसा घाट २ समतल–समान छातिये जैसेकि पट्टकी तरह उसमें आकृतियोंको भी कोतरें । ३ उदितानी–अर्थात् कोल काचलेके ऊँचे ऊँचे चढ़ते थरोंका गुँबज इस तरह वितान छत गुँबजके त्रिविध प्रकार जानना । उसकी भिन्न भिन्न आकृतियाँ एक हजार एकसौ तेरहकी विविध छंदकी लुम मदलादिके प्रकारकी कही गई हैं । उसमें शुद्ध संघाट (समतल) २ मिश्र संघाट–ऊँचे नीचे तलवाले ३ क्षिप्त–लटकते काचलेवाले ४ उक्षिप्त–ऊँचे चढ़ते काचलेके थरोंवाले ऐसे अनेक प्रकारके वितानों कहा हैं, मुख्य तीन भेद हैं । १७–१८.

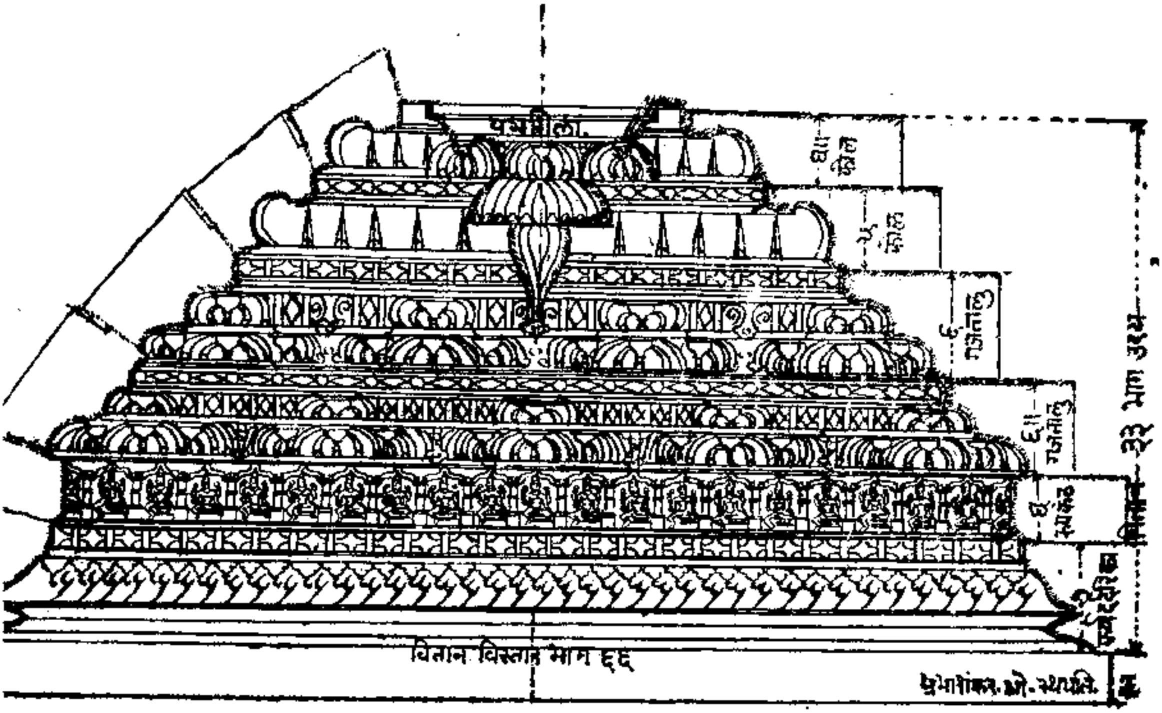

गजताल और कोलादि थरो युक्त वितान (गुम्बज) विस्तार भाग ६६ उदय भाग ३३

बाहर उपर संवरणाकें बदले सन्यासीके मस्तक जैसे गोल गुम्बज होने लगे। संवरणाकी रचना सुंदर है.। यद्यपि वैसा वर्तमान कालमें कुछ फेरफारके साथ संवरणा शिल्पकारों करते हैं। यह शुभ चिह्न है ।

अष्टास्रे षोडशास्रे च वृतं कुर्यात्तदूर्ध्वत: ।
उदयं विस्तरार्धेन षट षष्टि विराजिते ।।१९।।
कर्ण ददरिका सप्त भागेन निर्गमोतुच्छता ।
रूपकंठे तु पंचभाग द्वयभागेन निर्गमम् ।।२०।।
षोडशाष्टार्के जिन संख्ये विद्याधर निर्गमम् ।
तदूर्ध्वे चित्ररूपा देवाङ्गना नृत्य शोभिता ।।२१।।
गजतालु षडभागं प्रथमा द्वितीया तु षष्ठ ।
पंचभागं भवेत्कोलं चतुर्भाग द्वितियके ।।२२।।
मध्ये वितान कर्तव्यं चित्रवर्ण विराजितम् ।
एवं तु कारयेन्नित्यं वितानैक सुमंडिताम् ।।२३।।

મંડપના અંદર ઉપરના ભાગમાં અઠાંશ સોળાંશ (બત્રીશાંશ) આદિ થરે કરી ગોળ થર ફેરવવાં. ત્યાં તેના વિસ્તારના છાસઠ ભાગ કરી તેના ઉદયના અર્ધ–એટલે તેત્રીશ ભાગ જાણવા. કણી દાદરીનો થર સાત ભાગનો અને તેનો નિકાળો પણ તેટલો જ કરવો. તે પર રૂપકંઠ નો થર પાંચ ભાગનો, તેનો નિકાળો બે ભાગનો રાખવો. તે રૂપકંઠના થરમાં આઠ, બાર સોળ કે ચોવીશ એમ સંખ્યામાં વિદ્યાધરો ના નિકળતા સ્વરૂપો કરવા, ને વિદ્યાધર. ઉપર ચિત્ર વિચિત્ર એવી દેવાંગનાઓ નૃત્યથી શોભતી કરવી. પહેલો ગવાળુનો થર છ ભાગનો અને–બીજો તે પર ગવાળુનો થર પણ છ ભાગનો કરવો. પાંચ ભાગનો કોલનો થર કરી તે પર ચાર ભાગનો બીજો કોલનો થર કરવો. (એ રીતે કુલ તેત્રીશ ભાગ ઉદયના જાણવા.) તેની મધ્યમાં લટકતી ઘણી કોતરણીવાળી પદ્મશીલા કરવી એવા લક્ષણ યુક્ત વિતાન–ઘુમટ હંમેશા તારામંડળ જેવો સુશોભિત કરવો. ૧૯ થી ૨૩.

मंडपके अंदर उपरके भागमें अठाश सोलांश (बत्तीसांश) आदि थरोंको बनाकर गोल थरको फिराना । वहाँ उसके विस्तारके छियासठ भागकर उसके उदयके अर्ध अर्थात् तैतीस भाग जानना । कणी दादरीका थर सात भागका और उसका निकाला भी उतना ही करना । उस रूपकंठके थरमें आठ, बारह सोलहया चौबीस इसी संख्यामें विद्याधरोंके निकलते रूपों करना । उस विद्याधरके उपर चित्र विचित्र ऐसी देवाङ्गनाओंको नृत्यसे शोभित करना । पहला गवालुका थर छः भागका और उसके पर दूसरा गवालुका थर भी छः भागका करना । पाँच भागका कोलका थर कर उसके पर चार भागका दूसरा कोलका थर

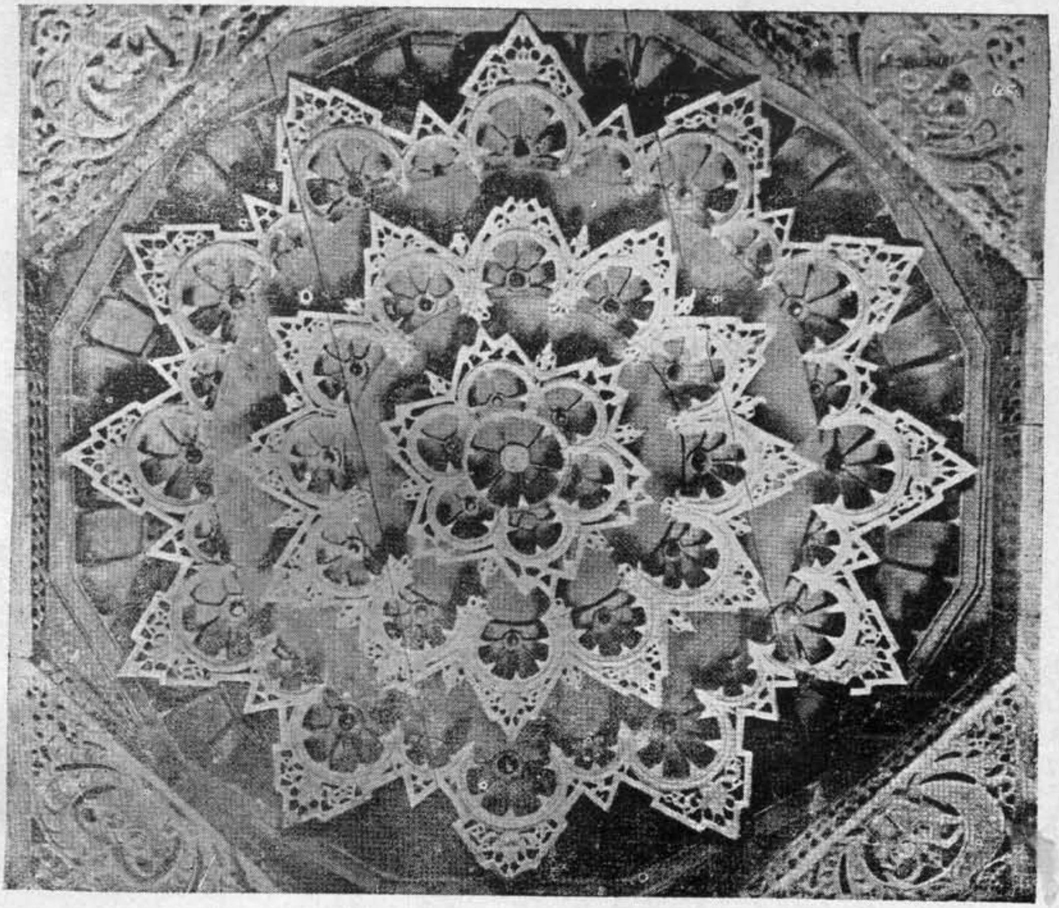

वितान छतके क्षिप्तानुक्षिप्त प्रकार (पंचासरा पाटण)

मूर्तिनिर्माण कर्ता गुजरातके सुप्रसिद्ध शिल्पकलाविद श्री चंदुलाल भ. सोमपुरा

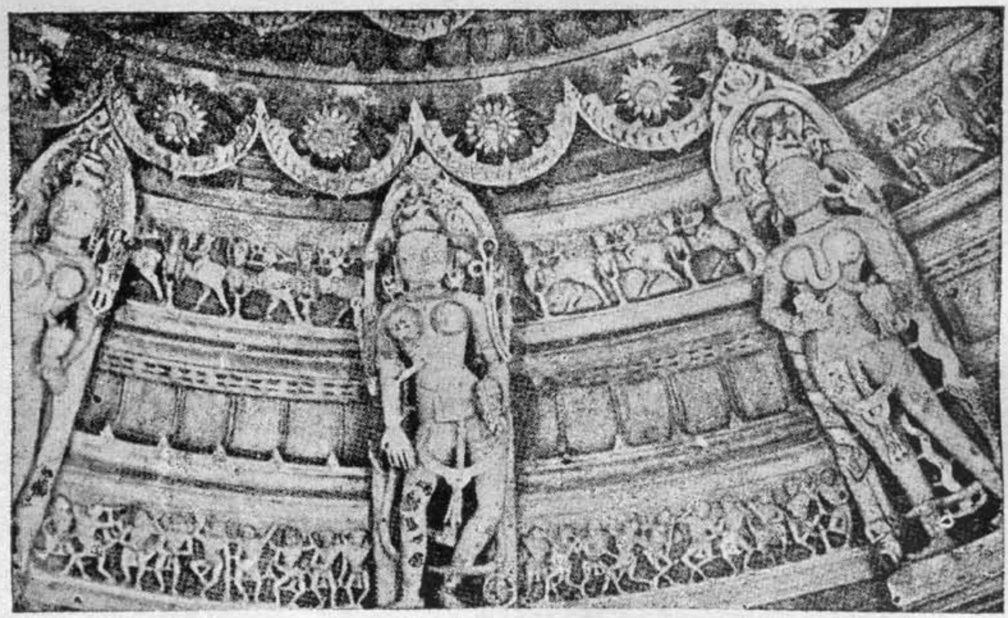

देवदेवाङ्गनादि :स्वरुप सहित कौल और गजतालु (ध्वालुं ,के थरयुक्त वितान (गुम्बज)

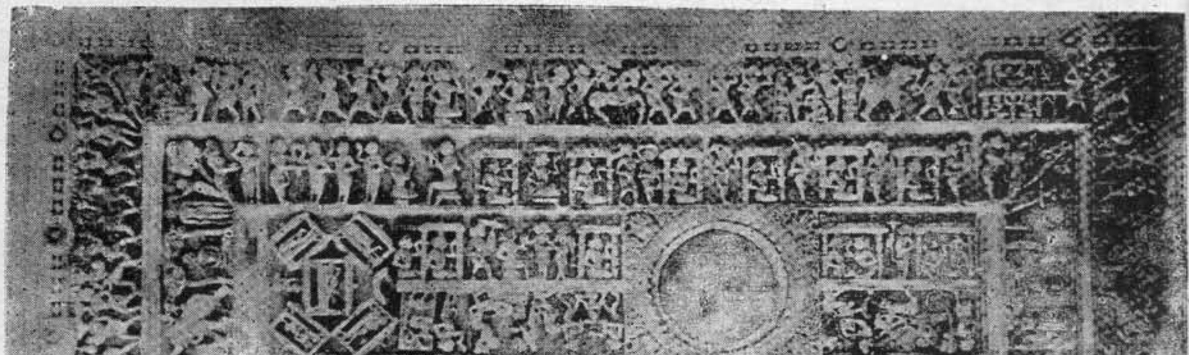

समतल (छतयुक्त) वितानका एक प्रकार (आरासण–अंबाजी)

करना । (इस तरह कुल तैंतीस भाग उदयके जानना ।) उसके मध्यमें लटकती बहुत ही कँडारी हुई पद्मशिला करना । ऐसे लक्षण युक्त वितान–गुँबज हमेशां तारा मंडल जैसा सुशोभित करना । १९ से २३.

पुष्पकोऽथ चतुषष्टि आद्ये द्वादश स्तंभका ।
पुष्पकाद् द्वौ द्वौ हीनाः स्युः मंडपाः सप्तविंशति ॥२४॥

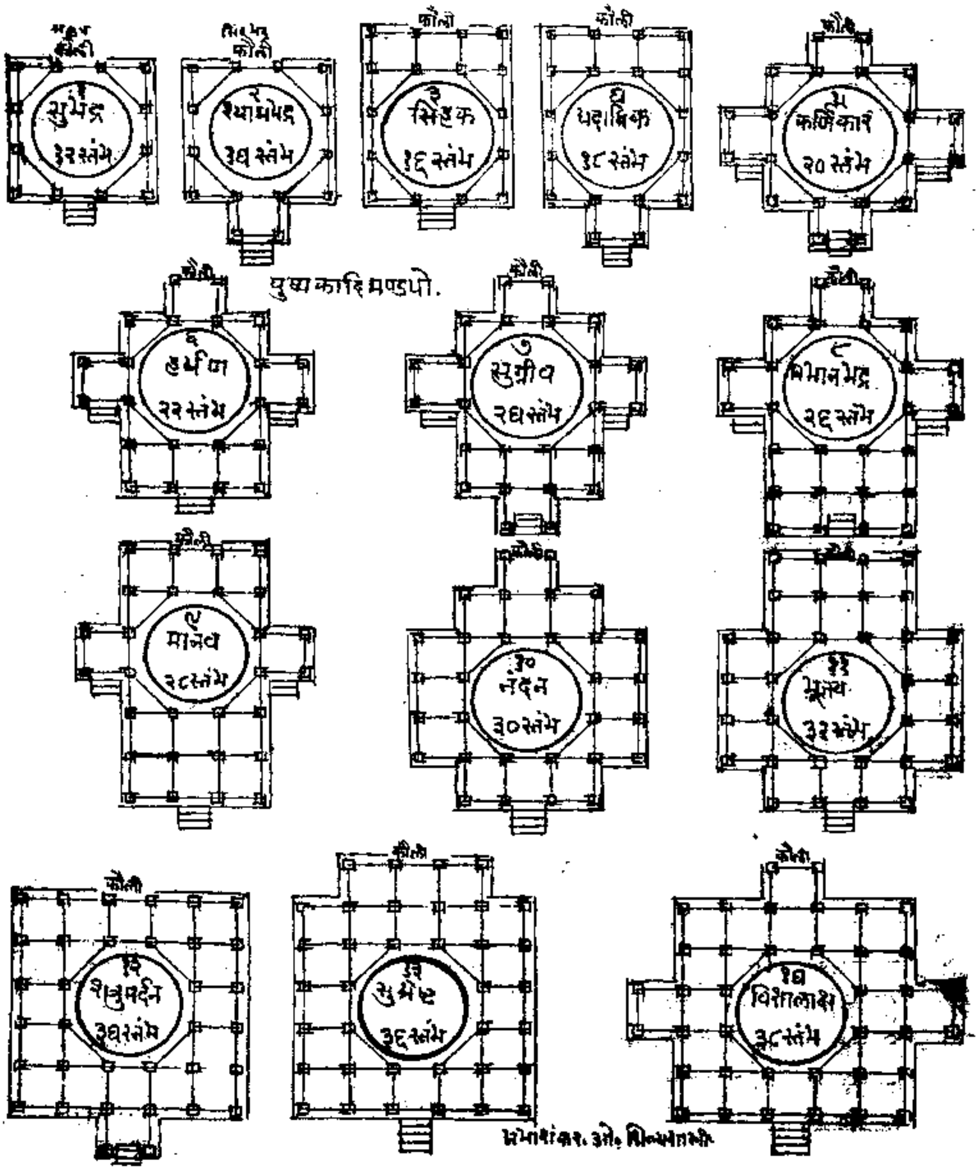

पुष्पकादि २७ मंडप स्वरूप (१ से १४) (१)

[५] પુષ્પકાદિ ચોસઠ સ્તંભોના મંડપોનો આદ્ય પહેલો મંડપ બાર સ્તંભોનો સુભદ્ર નામથી બબ્બે સ્તંભોની વૃદ્ધિ કરતા. ચોસઠ સ્તંભોના પુષ્પક મંડપ થાય. તેનાથી બબ્બે સ્તંભો ઓછાં ઓછાં કરતાં-૨૭ મંડપો થાય. (તેનાં નામો અને સ્તંભ સંખ્યા નીચે ફૂટનોટમાં આપેલ છે.)

[५]पुष्पकादि चौसठ स्तंभोंके मंडपोंका आद्य पहला मंडप बारह स्तंभोंका सुभद्र नामसे दो दो स्तंभोंकी वृद्धि करते चौसठ स्तंभोंका पुष्पक मंडप होता

(૫) (૧) अपराजित सूत्र संतान अ. १८६ માં પુષ્પકાદિ ૨૭ મંડપોનાં સ્વરૂપો સ્તંભ સંખ્યા સાથે બહુ સ્પષ્ટ વિગતથી તેની રચના કેમ કરવી તે સાથે આપેલાં છે. તેમજ મત્સ્યપુરાણમાં પણ તેનાં નામ સંખ્યા સાથે આપેલ છે. (૨) समराङ्गण सूत्रधार अ. ६७ માં મંડપોનાં નામો સ્તંભ સંખ્યા અને સ્વરૂપો અસ્પષ્ટ અને અશુદ્ધ આપેલા છે. (૩) मत्स्यपुराण अ. २७० માં ફક્ત નામો અને સ્તંભ સંખ્યા કહી છે. विश्वकर्मा प्रकाश માં પણ સત્તાવીશ મંડપોનાં નામ અને સ્તંભ સંખ્યા આપેલાં છે. પરંતુ સ્વરૂપ આપેલા નથી. અહીં પુષ્પકાદિ ૨૭ મંડપો સ્તંભ સંખ્યા સાથે તેનું કોષ્ટક ક્રમબદ્ધ આપેલ છે. જુદા જુદા ગ્રંથોમાં થોડાં નામ ફેર જોવામાં આવે છે. દીપાર્ણવમાં તેના સ્વરૂપ વિગતથી આપેલા છે.

(५) (१) अपराजित सूत्र संतान अ-१८६में पुष्पकादि २७ मंडपोंके स्वरूपों स्तंभ संख्याके साथ बहुत स्पष्ट विगतसे उसकी रचना कैसे करना यह सब साथमें दिया हुआहै और मत्स्य पुराणमें भी उसके नाम संख्याके साथ दिये हैं। (२) समराङ्गणसूत्रधार अ. १७ में मंडपोंके नाम स्तंभ संख्या और स्वरूपों अस्पष्ट और अशुद्ध है। (३) मत्स्य पुराण अ. २७०में सिर्फ नामों और स्तंभसंख्या बतायी गयी है। विश्वकर्मा प्रकाशमें भी सत्ताअीश मंडपोंके नाम और स्तंभ संख्या बतायी गयी है परंतु स्वरूप नहीं बताया है। यहां पुष्पकादि २७ मंडपों स्तंभ संख्याके साथ उसका कोष्टक क्रम बद्धदिया हुआ है। भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें कुछ नामफेर देखनेमें आता है। दीपार्णवमें उसका स्वरुप विगतसे दीया गया है।

		स्तंभ		स्तंभ		स्तंभ		स्तंभ		स्तंभ
सुभद्र	१ सुभद्र	१२	६ हर्षण	२२	११ भूज	३२	१६ श्रीधर	४२	२१ गजभद्र	५२
	२ श्यामभद्र	१४	(हरित)		(भागपंच)		(श्रुतिजय)		२२ बुधिसंकिर्ण	५४
									२३ कौशल्य	५६
	(सिंहभद्र)		७ सुग्रीव	२४	१२ शत्रुमर्दन	३४	१७ वास्तुकीर्ति	४४	२४ मृगनंदन	५८
	३ सिंहक	१६	८ विमानभद्र	२६	१३ सुश्रेष्ठ	३६	१८ विजय	४६	(अमृतनंदन)	
शतर्धिक	पदाधिक	१८	९ मानध	२८	१४ विशालाक्ष	३८	१९ श्रीवत्स	४८	२५ सुप्रभ	६०
	४ (शतर्धिक)								(सुव्रत)	
									२६ पुष्पभद्र	६२
	५ कर्णिकार	२०	१० नंदन	३०	१५ यज्ञभद्र	४०	२० जयावद	५०	२७ पुष्पक	६४

है । उससे दो दो स्तंभों कम कम करते सत्ताईस मंडपों होवें (उनके नाम) और स्तंभ संख्या नीचे फूटनोट में दिये हैं ।)

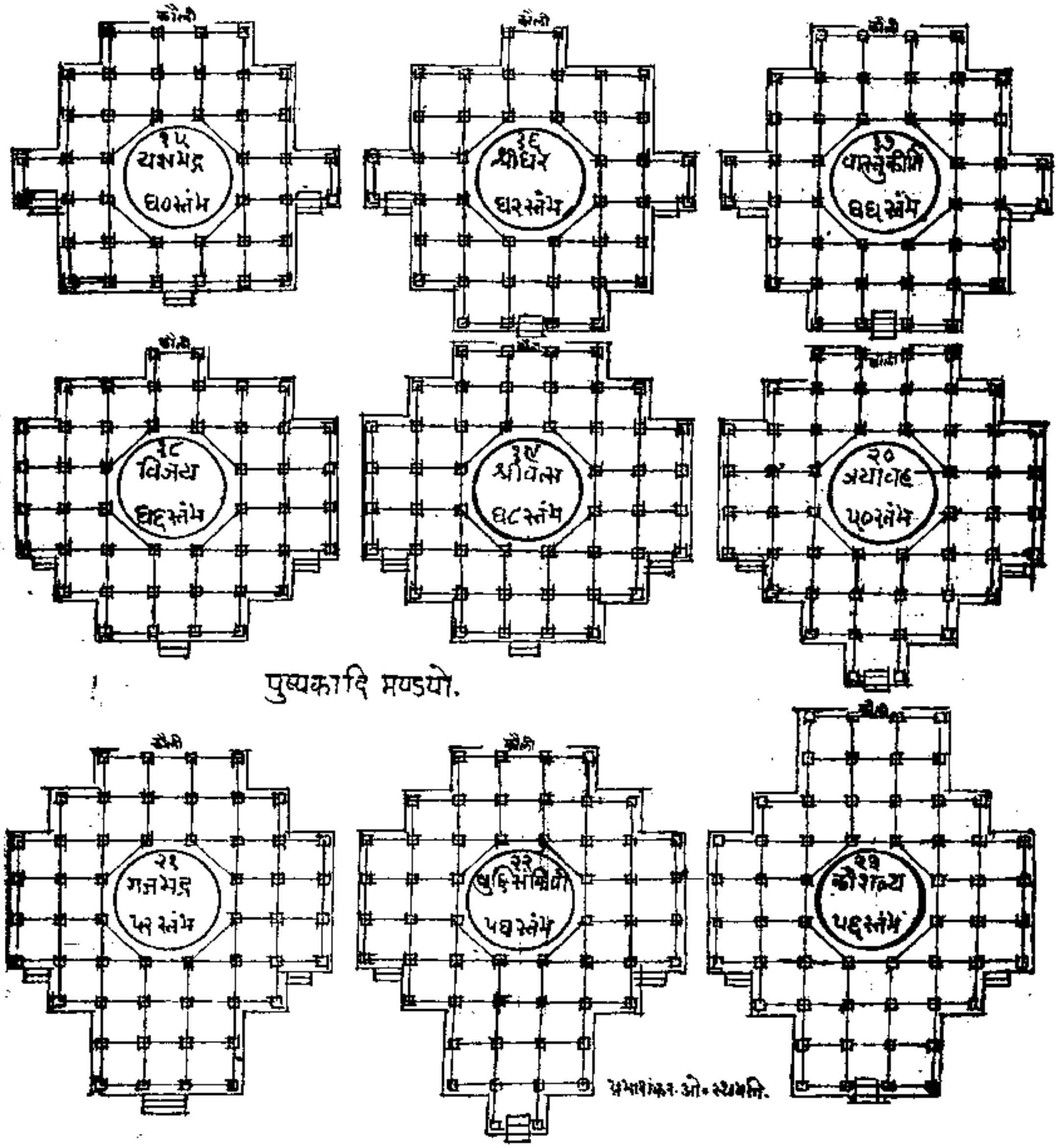

पुष्पकादि २७ मंडप स्वरूप (१५ से २३) (२)

एक त्रिवेद षट् सप्त नव चतुष्किकान्वितः ।
अग्रे भद्रं द्विपार्श्वे द्वेचाग्रपार्श्वद्वयो स्तथा ॥२५॥

अग्रतस्त्रि चतुष्कयश्च तथा पार्श्वे द्वयोऽपिच ।
मुक्तकोणो चतुष्कयौ चेदिति द्वादश मण्डपाः ॥२६॥

(૧) એક પદની ચોકી સુભદ્ર (૨) ત્રણ પદ કીરિટ (૩) ત્રણ પદ આગળ એક ચોકી દુંદુભિ (૪) છ ચોકી પ્રાંત (૫) છચોકી આગળ ૧ ચોકી મનોહર (૬) નવ ચોકીનો શાંત મંડપ (૭) નવ ચોકી આગળ ૧ ચોકી (નંદ) (૮) નવ ચોકીની બાજુમાં બે ચોકી (૧૧ પદ) સુદર્શન (૯) સુદર્શનના ૧૧ પદ આગળ એક ચોકી રમ્યક (૧૦) આગળ ત્રણ ચોકીના ૧૪ પદ સુનાભ (૧૧) સુનાભની પડખેની બે ચોકી ને પાછળ બે તરફ એકેક પદ વધારતા ૧૬ પદનો સિંહક

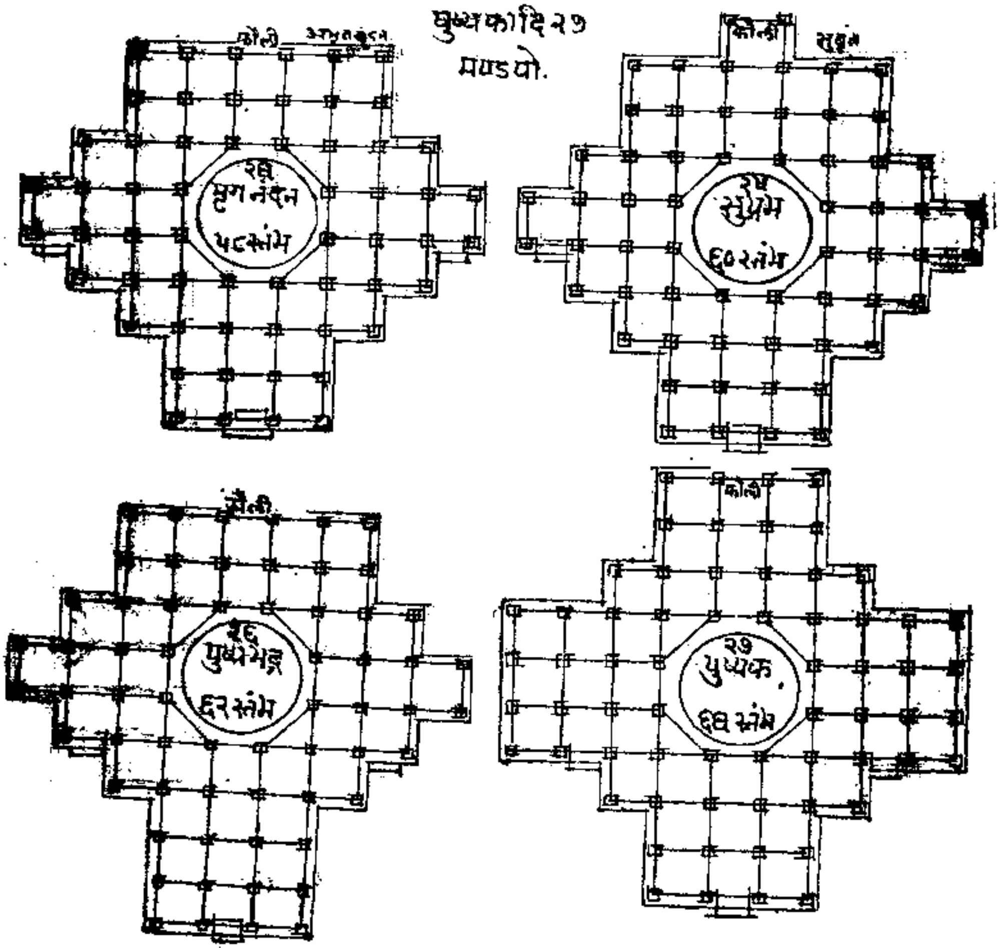

पुष्पकादि २७ मंडप स्वरूप (२४ से २७) (२)

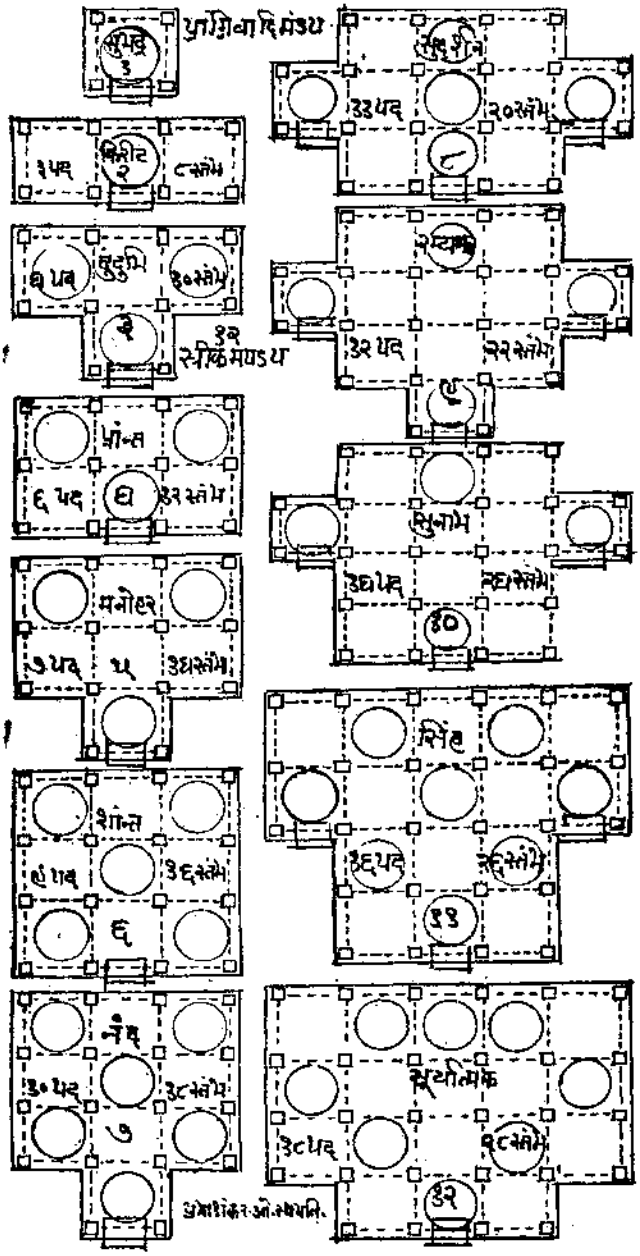

निगूढ आगे सुभद्रादि त्रीक द्वादश मंडप चोकी

(૧૨) પાંચ પદની ત્રણ પંક્તિ આગળ ત્રણ ચોકીના ૧૮ પદની સૂર્યાત્મક આ પ્રમાણે બાર પ્રકારના પ્રાગ્રિવ ચોકી મંડપ જાણવા. ૨૫-૨૬.

(१) एक पदकी चौकी सुभद्र (२) तीन पदका किरिट (३) तीन पदके आगे एक चौकी दुंदुभि (४) छः चौकी प्रांत (५) छः चौकीके आगेकी चौकी मनोहर (६) नौ चौकीका शान्त मंडप (७) नौ चौकीके आगेकी चौकी (नंद) (८) नौ चौकीकी बाजुमें दो चौकी (११ पद) सुदर्शन (९) सुदर्शनके ११ पदके आगे एक चौकी रम्यक (१०) आगे तीन चौकीके १४ पद सुनाभ (११) सुनाभकी बाजुकी चौकी और पीछे दो तरफ एक एक पद बढ़ाते १६ पदका सिंहक (१२) पाँच पदकी तीन पंक्तिके आगे तीन चौकीके १८ पदके सूर्यात्मक इस तरह बारह प्रकारके प्राग्रिव चौकी मंडप जानना। २५-२६.

सुभद्रस्तु किरीटं च दुन्दुभिः प्रान्त एव चः ।
मनोहरश्च शान्तश्च नन्दाख्याश्च सुदर्शनः ॥२७॥

रम्यकश्च सुनाभश्च सिंहः सूर्यात्मकस्तथा ।
निर्गूढाग्रे त्रिकेल्यातं द्वादश मुखमण्डपाः ॥२८॥

ઉપરનાં સ્વરૂપવાળા બાર મંડપોનાં નામ ૧. સુભદ્ર ૨. કિરીટ ૩. દુન્દુભિ ૪. પ્રાન્ત ૫. મનોહર ૬. શાંત ૭. નંદાખ્ય ૮. સુદર્શન ૯. રમ્યક ૧૦. સુનાભ ૧૧. સિંહ ૧૨. સૂર્યાત્મક એ બાર મુખમંડપ ગુઢ મંડપની આગળ ત્રીકરૂપ બાર મંડપ જાણવા. ૨૭–૨૮.

उपरके स्वरूपवाले बारह मंडपोंके नाम १ सुभद्र २ किरीट ३ दुंदुभि ४ प्रान्त ५ मनोहर ६ शांत ७ नंदाख्य ८ सुदर्शन ९ रम्दक १० सुनाभ ११ सिंह १२ सूर्यात्मक इन बारह मुखमंडपको गुढमंडपके आगे त्रीक रूप बार मंडप जानना । २७–२८.

क्षीरार्णवे समुद्भूता मेरवादि मंडपाः
मेरु त्र्यैलोक्य विजयांत् संख्यायां पंचविंशति ॥२९॥
भित्तिद्वार प्राग्रीवांश्च भूमिकां मांडमुच्छ्रयम् ।
समत्तावरणच्छाय संवरणं वितानकम् ॥३०॥

ક્ષીરાર્ણવથી ઉદ્ભવેલા એવા મેરવાદિ મંડપો મેરૂથી ત્ર્યૈલોક્ય વિજય સુધી પચ્ચીશ સંખ્યાના મંડપો છે. તે ભીંતોવાળા દ્વારવાળા પ્રાગ્રિવાદિરૂપ મજલાવાળા ઊંચા કરવા. તે કક્ષાસન યુક્ત મત્તવારણ વાળા વિતાન–ઘુમટ અને સંવરણાથી છાયેલા કરવા. ૨૯–૩૦.

क्षीरार्णवसे उत्पन्न मेरवादि मंडपां मेरूसे त्र्यैलोक्य विजय तक पच्चीस संख्याके मंडप हैं । उनको दिवारोंवाले द्वारवाले प्राग्रिवादिरूप मजलेवाले ऊँचे करना । उनको कक्षासन युक्त मत्तवारणवाले वितान–गुँबज और संवरणेसे छाये हुए करना । २९–३०.

मेरवादि मंडप लक्षण—लक्षणानि स प्रोक्तानि कथयामि समासतः ।
चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे अष्टधा प्रविभाजिते ॥३१॥
भवेन्मध्ये द्विभागस्तु चतुष्काः संवृतौ धरै ।
अलिंदं भागिकं कुर्याद् द्वादश स्तंभैः शोभित्तम् ॥३२॥

હવે હું મેરવાદિ મંડપનાં લક્ષણો કહું છું. સમચોરસ ક્ષેત્રને આઠ ભાગ કરવા એટલે ૪×૪ ભાગથી વિભાજિત કરવું. (એટલે ૧૬ પદ થયા) તેમાં વચલા ચાર વિભાગનું એક પદ કરી, ફરતી ચારે દિશામાં બબ્બે ભાગની પહોળી

ચતુષ્કિકા કરવી. અને તે ચતુષ્કિકા = અલિંદ એકેક ભાગ નીકળતી કરવી તે પહેલાં બાર સ્તંભનો મંડપ શોભતો કરવો. ૩૧–૩૨.

अब मैं मेरवादि मंडपके लक्षण कहता हूँ। समचोरस क्षेत्रको आठ भागसे अर्थात् ४ × ४ भागसे विभाजित करना। (सोलह (१६) पद हुए।) उसमें मध्यके चार विभागका एक पद कर फिरती चारों दिशाओंमें दो दो भागकी चौडी चतुष्किका करना। और वह चतुष्किका = आलिंद एक एक भाग नीकलती करना। उससे पहले बारह स्तंभका मंडप सुशोभित करना। ३१–३२.

द्वितियो विंशति स्तंभै रष्टाविंशतिः परैः।
भद्रं तु भाग निष्कांश षड् भागं चैव विस्तरे ॥३३॥

બીજો મંડપ વીશ સ્તભનો (એટલે ઉપરના બાર સ્તંભના સ્વરૂપને ફરતું ભદ્ર ચારે તરફ બબ્બે સ્તંભોનું ચોકીનું કરવું.) અને ત્રીજો મંડપ અઠ્ઠાવીશ સ્તંભોનો જાણવો. તેમાં એકેક પદ નિકળતું (ત્રણ પદ પહોળું) કરવું–આ મંડપ છ છ ભાગ વિસ્તારમાં (કુલ છત્રીશ ભાગમાં) કરવો–૩૩.

दूसरा मंडप बीस स्तंभका (अर्थात् उपरके बारह स्तंभके स्वरूपको फिरता भद्र चारों तरफ दो दो स्तंभोंका चौकीका करना। और तीसरा मंडप अट्ठाईस स्तंभोंका जानना। उसमें एक एक पद निकलता (तीन पद चौडा) करना। यह मंडप छः छः भाग विस्तारमें (कुल छत्तीस भागमें) करना। ३३.

प्रतिभद्रं ततो भागे चतुर्भागं विस्तरम्।
द्विभागायाम विस्तारः प्राग्रिवः स्याच्चतुर्दिशि ॥३४॥

(સોળ પદમાં બાર સ્તંભોવાળા મંડપને ચારે તરફ) ચાર ભાગ વિસ્તારનું (એક પદ નીકળતું) પ્રતિભદ્ર ચારે તરફ કરવું. તેનાથી આગળ (એક ભાગ) નીકળતી અને બે ભાગની લાંબી વિસ્તાર ચતુષ્કિકા–પ્રાગ્રિવ અલિંદ ચારે તરફ કરવી. આમ ચોથો મંડપ (છત્રીશ સ્તંભોનો) જાણવો. ૩૪.

(सोलह पदमें बारह स्तंभोंवाले मंडपको चारों ओर) चार भाग विस्तारका (एक पद नीकलता) प्रतिभद्र चारों ओर करना। उससे आगे (एक भाग) नीकलती और दो भागकी लम्बी विस्तार चतुष्किका–प्राग्रीव अलिंद चारों ओर करना। इस तरह चौथा मंडप (छत्तीस स्तंभोंका) जानना। ३४.

सूर्योत्तरशतंस्तंभा भूमिका पंचधोच्छिता।
मेरुमंडप उक्तश्च द्विभौमोर्ध्वे च मांडतः ॥३५॥
द्वौ द्वौ स्तंभौ ह्रस्व योगान्मंडपाः स्युरनुक्रमात्।
चतुषष्टि स्तंभ कान्त मंडपाः पंचविंशतिः ॥३६॥

એકસો બાર સ્તંભોનો બે મજલાથી પાંચભૂમિ મજલા સુધીનો મેરૂમંડપ જાણવો. એકસો બાર સ્તંભોથી બબ્બે સ્તંભોના ઓછા ઓછા ક્રમથી અનુક્રમે ચોસઠ સ્તંભો સુધીના પચ્ચીશ મંડપો જાણવા. (ચોસઠ સ્તંભોનો ત્રૈલોક્ય વિજય મંડપ બે ભૂમિનો જાણવો) ૩૫–૩૬.

एक सौ बारह स्तंभोंका दो मजलोंसे पाँच भूमि–मजले तकका मेरूमंडप जानना। एक सौ बारह स्तंभोंसे दो दो स्तंभोंके कम कम क्रमसे अनुक्रमसे चौसठ स्तंभों तकके पच्चीस मंडपों जानना। (चौसठ स्तंभोंका त्रैलोक्य विजय मंडप दो भूमिका जानना। ३५–३६.

एक भूम्यादि पंचभूम्या गर्भसूत्रानु सारतः।
[६]छायादर्धत्यं पदान तथावै पद्मसंभवा ॥ ३७॥
[७]जंघाकार्या सातस्या नवधा [८]पंचलक्षणं।
[९]जंघाछाद्य समोदधः षोडशांश [१०]मथोर्धत् ॥ ३८॥
उत्तरंगोतर सूत्रेण बाह्य पट्टानसंशयः।
गर्भछाद्यं तुलाधस्ता[११] शाखोत्सशचोर्ध्वत् ॥ ३९॥
एतत् क्षेत्रस्य मित्युक्तं श्राद्यपदं न संशय।
मंडपाग्रे द्वितीयांश्च[१२] युग्मपदं यदा भवेत् ॥ ४०॥
द्वार चानिक्रमं यत्र[१३] भारपट्टं न संशयः।
द्वारस्या यत[१४] त्रिभागं च [१५]पद दशांश विधियते ॥४१॥
न दोषो समाख्यातो स्ताल भेदो न योजयेत्।
अलिंदास्यैवलिंदस्य [१६]सम सूत्रानुसारतः ॥ ४२॥
बाह्यलिंदं च कर्तव्यं किंचिन्मूलाधिकं शुभं।
गभसूत्रानुसारेण [१७]मध्यदेवा चतुष्किदा ॥ ४३॥[१८]

(६) छायादूर्ध्वद्विपदंरयात् (७) जंघोऽर्धेतु तथा कार्या (८) पद (९) जंघोत्सेधंसमोदयं (१०) समोधंतः (११) तत्सेधस्था (१२) तृतीयस्तु (१३) यस्यद्वारपट्ट (१४) द्वारस्या (१५) यावद् (१६) भ्रम (१७) मंडपंकास्यदे बुधः

(१) શ્લોક ૩૭ થી ૪૩ સુધીનાં સાત શ્લોકના પાઠ ભેદની સ્પષ્ટતા કોઈ વિદ્વાન શિલ્પી દ્વારા થશે તો તે નવી આવૃત્તિમાં સાભાર સ્વીકારીશું. અશુદ્ધ પાઠોવાળી પ્રતો પરથી અમે જે આપી શક્યા છીએ તેનાથી અમે સંતુષ્ઠ નથી.

(१८) श्लोक ३७ से ४३ तकके सात श्लोकके पाठ भेदकी स्पष्टता कोई विद्वान शिल्पीके द्वारा होगी तो उसे नये संस्करणमें साभार स्वीकारेंगे। हमको अशुद्ध पाठोंवाली प्रतों परसे जो पता चला है उससे हम संतुष्ठ नहीं है।

पंचभूमियुक्त मेरवादि २५ मंडप रचना

क्रमांक	मंडपों के नाम	स्तंभ संख्या	भूमि	प्रथम भूमि	द्वितिय भूमि	तृतिय भूमि	चतुर्थ भूमि	पंचम भूमि
१	त्र्यैलोक्य विजय	६४	प्रथम	३६	२८			
२	लक्ष्मीविलास	६६		३६	३०			
३	पद्म संभव	६८	द्वितिय भूमि	३६	३२			
४	विमान	७०		३६	३४			
५	तेजवर्धन	७२		३६	३६			
६	प्रताप	७४		३६	२८	१०		
७	सुर्यांग	७६		३६	२८	१२		
८	भुर्भुवा	७८		३६	२८	१४		
९	पुण्यात्मा	८०	तृतिय भूमि	३६	२८	१६		
१०	शान्तिदेह	८२		३६	२८	१८		
११	सुरवल्लभ	८४		३६	२८	२०		
१२	शतश्रृङ्ग	८६		३६	२८	२२		
१३	पूर्णाख्य	८८		३६	२८	१४	१०	
१४	कीर्तिपताक	९०		३६	२८	२०	६	
१५	महापद्म	९२	चतुर्थ भूमि	३६	२८	२०	८	
१६	पद्मराग	९४		३६	२८	२०	१०	
१७	इंद्रनील	९६		३६	२८	२०	१२	
१८	शृंङ्गचा	९८		३६	२८	२०	१४	
१९	रत्नकूट	१००		३६	२८	२०	१२	४
२०	हेमकूट	१०२		३६	२८	२०	१२	६
२१	गंधमादन	१०४		३६	२८	२०	१२	८
२२	हिमवान	१०६	पंचम भूमि	३६	२८	२०	१२	१०
२३	कैलास	१०८		३६	२८	२०	१२	१२
२४	मंदार	११०		३६	२८	२०	१२	१४
२५	मेरु	११२		३६	२८	२०	१२	१६

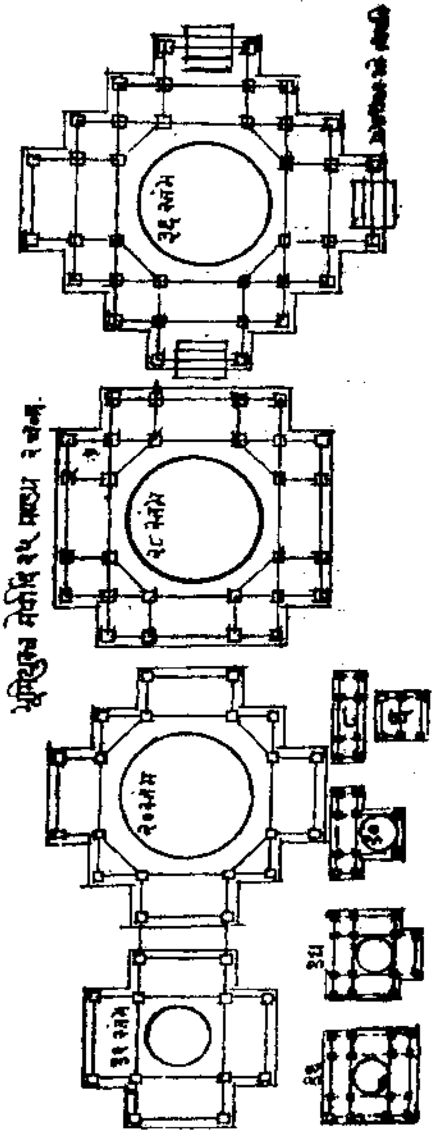

ભાવાર્થ–એક ભૂમિથી પાંચભૂમિ મજલાના મંડપો ઊભા બ્રહ્મગર્ભને અનુસરીને કરવા. છજા ઉપર (બે) પદની નીકળતી ચતુષ્કિકાની રચનાવાળા મંડપનું નામ **'પદ્મસંભવ'** જાણવું. જંઘાના નવ વિભાગમાંના પાંચ લક્ષણ જાણવા. જંઘાની છાજલી બરાબરથી નીચે સોળમો અંશ ઉપર લઈ જવા. ઉત્તરંગના ઉત્તર સૂત્રની બહાર પટ્ટનો સંશય ન રાખવો....ગભારાની છાજલીના તળાંચા નીચે શાખો.... (૩૯) એ રીતે ક્ષેત્રના બાહ્યપદ....સંશય....મંડપની આગળ બીજું અને ત્રીજું પદ....૪૦) દ્વારના....ભારપટ્ટ એક સૂત્રમાં રાખવા. દ્વારના ત્રીજાભાગે....દશાંશ પદ....(૪૧) દોષ વગરનું કાર્ય કરવું. તાલભેદ થવા ન દેવો. અલિંદ–ચોકી ઉપર ચોકી સમસૂત્ર અને ગર્ભસૂત્રાનુસાર કરવી. બહારના અલિંદ = ચોકી કંઈક મૂળથી અધિક કરવી તે શુભ જાણવું. મધ્યની ચોકી ગર્ભ સૂત્રને અનુસરીને કરવી. ૩૭ થી ૪૭.

भावार्थ–एक भूमिसे पाँच भूमि–मजलेके मंडपों खडे ब्रह्मगर्भको अनुसरके करना। छज्जेके उपर (दो) पदकी निकलती चतुष्किकाकी रचनावाले मंडपका नाम "पद्म संभव" जानना। जंघाके......लकमें नौ बिभागमें पाँच लक्षण जानना। जंघाकी छाजली बराबरसे नीचे सोलहवाँ अंश उपर लेजाना। उत्तरंगके उत्तर सूत्रकी बाहर पट्टका संशय न रखना।...गर्भगृहकी छाजलीके तलांचेके नीचे शाखों... इस तरह क्षेत्रके बाह्य पद...संशय...मंडपके आगे दूसरा और तीसरा पद... द्वारके...भारपट्ट एक सूत्रमें रखना। द्वारके तीसरे भागमें...दशांशपद...दोष रहित कार्य करना। तालभेद न होने देना। अलिंद–चौकीके उपर चौकी सम-सूत्र और गर्भसूत्रानुसार करना। बाहरके अलिंद=चौकी कुछ मूलसे अधिक करना। वह शुभ समझना। मध्यकी चौकी गर्भसूत्रको अनुसरके करना। ३७ से ४२

मेरुमंदर कैलासः हिमवान् गंधमादनः।
हेमकूटो रत्नकूटाख्य श्चैते भृङ्गमेत्र च ॥४४॥
इंद्रनीलः पद्मरागः महापद्मस्तथा परः।
कीर्तिपताक–पूर्णास्यो–शतभृङ्ग सुरवल्लभ ॥४५॥
शांति देहो पुन्यात्म भूर्भुवः स्वः स्वर्योग स्तथा।
प्रताप तेजवर्द्धन विमानः पद्मसंभवः ॥४६॥
लक्ष्मीविलासो विज्ञेय स्त्रैलोक्यविजयस्तथा।
पंचविंशति संप्रोक्ता मंडपा मेरुादिका ॥४७॥

મેરવાદિ પચ્ચીશ મંડપનાં નામો કહે છે. ૧ મેરૂ ૨ મંદર ૩ કૈલાસ

૪ હિમવાન ૫ ગંધમાદન ૬ હેમકૂટ ૭ રત્નકૂટ ૮ શ્રૃંગવા ૯ ઇંદ્રનીલ ૧૦ પદ્મરાગ ૧૧ મહાપદ્મ ૧૨ કીર્તિપતાક ૧૩ પુર્ણાખ્ય ૧૪ શતશ્રૃંગ ૧૫ સુર-વલ્લભ ૧૬ શાંતિદેહ ૧૭ પુણ્યાત્મા ૧૮ ભુર્ભુવ ૧૯ સૂર્યાંગ ૨૦ પ્રતાપ ૨૧. તેજવર્ધન ૨૨ વિમાન ૨૩ પદ્મ સંભવ ૨૪ લક્ષ્મી વિલાસ ૨૫ ત્ર્યૈલોક્ય વિજય એમ મેરવાદિ પચ્ચીશ મંડપોનાં નામો કહ્યાં. ૪૪ થી ૪૭.

मेरवादि पच्चीश मंडपके नामों कहते हैं। १ मेरू २ मंदर ३ कैलास ४ हिमवान ५ गंधमादन ६ हेमकूट ७ रत्नकूट ८ वैश्रृंग ९ इंद्रनील १० पद्मराग ११ महापद्म १२ कीर्तिपताक १३ पूर्णाख्य १४ शतश्रृंग १५ सुखवल्लभ १६ शांतिदेह १७. पूण्यात्मा १८ भुर्भुव १९ सूर्यांग २० प्रताप २१ तेजवर्धन २२ विमान २३ पद्म संभव २४ लक्ष्मी विलास २५ त्र्यैलोक्य विजय–इस तरह मेरवादि पच्चीस मंडपोंके नाम कहे। ४४ से ४७.

अत: प्रासादतुल्याच द्वितीया भूमिरुच्छ्रित: ।
तृतीया च प्रकर्तव्या प्रासाद स्कंधहीनक ॥ ४८ ॥
मत्तवारणच्छाद्यं च संवरणाः वितानकम् ।
प्रासादस्याग्रतः कार्या बलाणकस्य चोपरि ॥ ४९ ॥

હવે પ્રાસાદના પ્રમાણથી ઊંચી બીજી ભૂમિની ઉપર ત્રીજી ભૂમિ મજલો પણ તે પ્રાસાદના સ્કંધથી નીચા કરવા. મંડપોને કક્ષાસન વેદિકાયુક્ત કરી ઢાંકી અંદર વિતાન ઘુમટ અને ઉપર શામરણ કરવી. આવા મેરવાદિ મંડપો પ્રાસાદ આગળ અને બલાણક ઉપર પણ કરવા. ૪૮–૪૯.

अब प्रासादके प्रमाणेसे ऊँची दूसरी भूमिके उपर तीसरी भूमिके मजले भी उस प्रासादके स्कंधसे नीचे करना। मंडपोंको कक्षासन वेदिका युक्त कर ढँक कर अंदर वितान गुँबज और उपर शामरण करना। इस तरह मेरवादि मंडपों प्रासादके आगे और बलाणकके उपर भी करना। ४८–४९.

प्रांगणे माढरूपाढ्य: कर्तव्य: शुभलक्षण: ।
राजवेदिकासनश्च कक्षासन विभूषित: ॥ ५० ॥ ॥ इति मेरवादि मंडपा: ॥

શુભ લક્ષણવાળા આ મેરવાદિ પચ્ચીશ મંડપો આગળ પ્રવેશદ્વાર પર બલાણક કે માઢ કરી વેદિકા આસનપટ અને કક્ષાસનથી વિભૂષિત કરવા. ૫૦.

इति मेरवादि २७ मंडप शुभ लक्षणवाले इन मेरवादि पचीस मंडपोंको आगे

૧૯. મેરવાદિ મંડપના સ્વરૂપ અને તેના સામાન્ય સ્વરૂપો अपराजितसूत्र ૧૮૮ માં કહ્યાં છે. એ સિવાય સૂત્ર ૧૮૬માં પુષ્પકાદિ સત્તાવીશ મંડપ લક્ષણ સાથે આપેલાં છે. સૂત્ર ૧૮૭માં વર્ધમાનાદિ આઠ ગૂઢ મંડપો તથા સુભદ્રાદિક બાર મંડપો સૂત્ર ૧૮૮માં પ્રગ્રિવાદિ ષોડશ મંડપ સુરાલય ૫ મંડપો, યજ્ઞાર્થ ૫ મંડપો, સભા મંડપો પાંચ, રાજ ભુપણાર્થ પાંચ, નૃપ ભોજનાર્થ પાંચ એમ પચ્ચીશ મંડપો સ્તંભ સંખ્યા સાથે કહ્યા છે. ઉપરાંત નંદનાદિ આઠ મંડપો પણ કહ્યા છે.

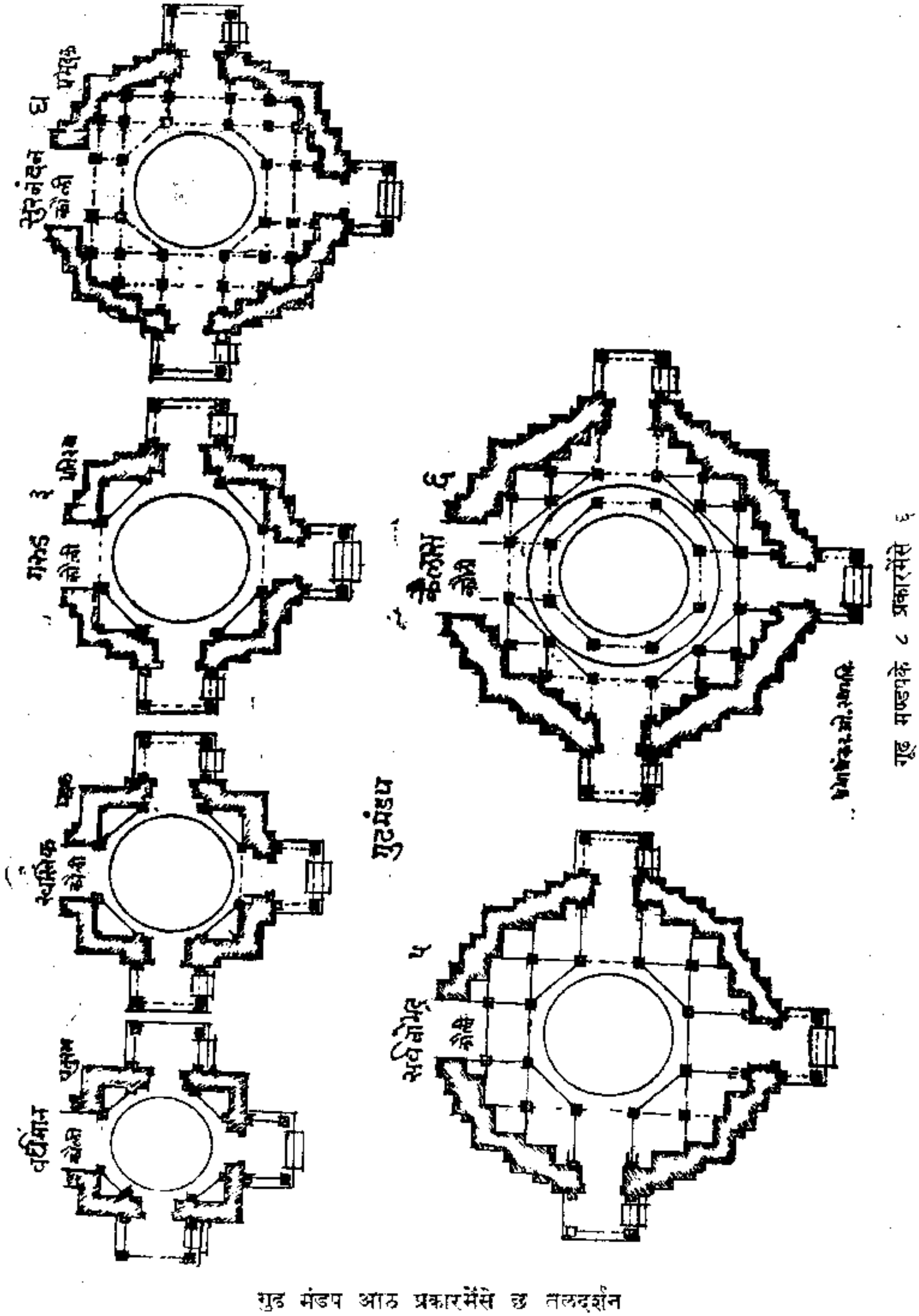

गुढ मंडप आठ प्रकारमेंसे छ तलदर्शन

प्रवेश द्वार पर बलाणक घर माढ कर राजसेनक वेदिका आसनपट और कक्षा-सनसे विभूषित करना । ५० इति मेरवादि २७ मंडप ।

वर्धमानः स्वस्तिकाख्यौ गरुडः सुरनंदनः ।
सर्वतोभद्र कैलासेन्द्रनीला रत्नसंभव ॥५१॥
इत्यष्टौच समाख्याता वर्धमानादि मंडपाः ।
सपीठ मंडोवरादि प्रासादाकृति मेखला ॥५२॥
एकं वा त्रीणि वा कुर्याद् द्वाराणि कामदायकः ।
चतुष्किका याम्योत्तरे अग्रे वा वामदक्षिणे ॥५३॥

रत्नसंभव ८

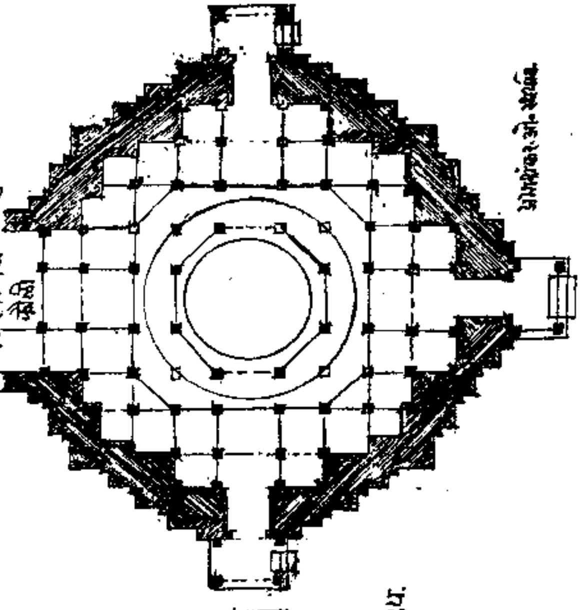

इंद्रनील ७

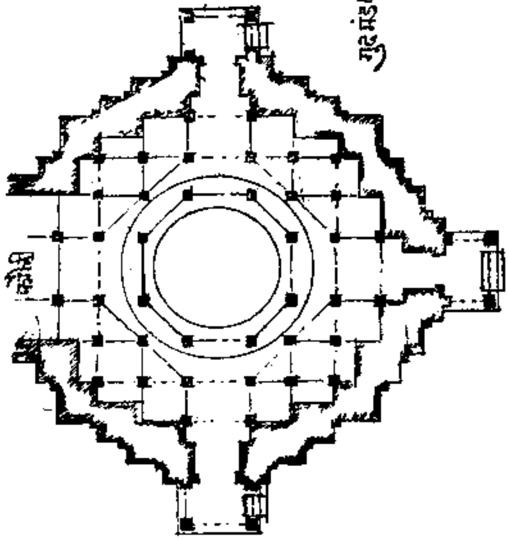

गूढ मण्डपके ८ प्रकारमेंसे अंतिम दो प्रकार

આઠ ગૂઢ મંડપનાં નામ કહે છે. ૧ વર્ધમાન (ચોરસ) ૨ સ્વસ્તિક (ભદ્રયુક્ત) ૩ ગરૂડ (પ્રતિરથયુક્ત) ૪ સુરનંદન (પ્રભદ્રવાળો) ૫ સર્વતોભદ્ર (કોણીકાયુક્ત ખુણીઓ કરવી.) ૬ કૈલાસ (અધિક ભદ્રવાળો = મુખ ભદ્રયુક્ત) ૭ ઇંદ્રનીલ (બે પ્રતિ રથ વાળો) ૮ રત્ન સંભવ (ત્રણ પ્રતિ રથવાળો) એમ આઠ ગૂઢ મંડપોનાં નામ જાણવાં. તે ગૂઢ મંડપોને પ્રાસાદના સ્વરૂપ જેવા પીઠ મંડોવર જેવા થરો કરવા. તેવા મંડપોને એક સન્મુખ દ્વાર અગર ત્રણ એમ બાજુના દ્વારો કરવાથી તે કામનાને આપે છે. આગળના દ્વારે એક અને ડાબી જમણી તરફના મંડપના દ્વારાએ આગળ ચોકીયો કરવી. (આનાં સ્વરૂપો દીપાર્ણવ અને અપરા-જિતમાં આપેલાં છે.) ૫૧–૫૨–૫૩.

आठ गूढ मंडपके नाम कहते है। १ वर्धमान (चोरस) २ स्वस्तिक (भद्र युक्त) ३ गरूड (प्रतिरथ युक्त) ४ सुरनंदन (प्रभद्रवाला) ५ सर्वतोभद्र (कोणीका युक कोना करना।) ६ कैलास (अधिक भद्रवाला = मुखभद्र युक्त) ७ इंद्रनील (दो प्रतिरथवाला) ८ रत्न संभव (तीन प्रतिरथवाला) इस तरह आठ गूढ मंडपके नाम जानना। उन गूढ मंडपोंको प्रासादके स्वरूप जैसे पीठ मंडोवर जैसे थरों करना। वैसे मंडपोंको एक सन्मुख द्वार अगर तीन बाजु द्वारों करनेसे ये कामनाओंको देते हैं। आगेके द्वारको एक और बाई दाहिनी तरफके मंडपके द्वारोंके आगे चौकियाँ करना। ५१–५२–५३. (इनके स्वरूपों दीपार्णव और अपराजितमें दिये हैं।)

अत: परं प्रवक्ष्यामि मंडपानां यथाक्रमम्।
नामस्वरूपं मानं च प्रयुक्तं वृक्षराजसु ॥५४॥
शिवनाद हरिनादो ब्रह्मनाद स्तथैव च।
रविनादो सिंहनाद: षष्टको मेघनादक: ॥५५॥
शिवनादा षण्मंडपा द्विसार्द्धा स्त्रयभूमिका।
सर्वदेवेषु कर्तव्या स्व नाम्ना च विशेषत: ॥५६॥
मध्य स्तंभाष्टके गडदी तोरणानि प्रदक्षिण।
रथयुक्ताश्च प्रासादा वेदियुक्ताश्च मंडपा: ॥५७॥

હવે હું છ મહામંડપોનાં નામ ક્રમથી કહું છું. જે વૃક્ષાર્ણવમાં તેના માન અને સ્વરૂપો કહેલાં છે. ૧. શિવનાદ ૨. હરિનાદ ૩. બ્રહ્મનાદ ૪. રવિનાદ ૫. સિંહનાદ ૬. મેઘનાદ એમ છ મહામંડપો જાણવા. આ શિવનાદાદિ છ મહામંડપો જાણવા. આ શિવનાદાદિ છ મંડપો અઢી કે ત્રણ ભૂમિ ઉદયના વિશેષ કરીને કરવા. (તેથી પણ ઉંચા થાય છે.) આ મંડપો સર્વ દેવોને કરવા પરંતુ વિશેષ કરી જેના જેવા નામના દેવોને કરવા. તે પ્રાસાદની જેમ ભદ્ર-રથાદિ અંગવાળા (ખુલ્લા મંડપ) કરવા. આ મંડપને પ્રાસાદના જેવું પીઠ કરી તે પર વેદિકા કક્ષાસનયુક્ત કે ખુલ્લા સ્તંભો પણ કરી શકાય. મંડપના મધ્યના

(१९) मेरुआदि मंडपके स्वरूप और उनके सामान्य स्वरूपों अपराजित सूत्र १८८ में कहे हैं। जिनके सिवा सूत्र १८६ में पुष्पकादि सत्ताईस मंडपों लक्षणके साथ दिये हैं। सूत्र १८७में वर्धमानादि आठ गूढमंडपों, तथा सुभद्रादि त्रिक बारह मंडपों सूत्र १८८में प्राग्रीव आदि षोडश मंडप सुरालय ५ मंडपों यज्ञार्थ ५ मंडपों, सभा मंडपों ५, राजभूषणार्थ ५, नृपभोजनार्थ ५ जिस तरह पच्चीस मंडपों स्तंभ संख्याके साथ कहे हैं। उपरांत नंदनादि आठ मंडपों भी कहे हैं।

આઠ સ્તંભોને ઠેકી ચઢાવીને દોઢીયા ઉદયવાળા મંડપ કરવા. તેને ફરતા આઠ તોરણો કરવા.[२०]. ૪૭ થી ૫૪.

अब मैं छः महामंडपोंके नाम क्रमसे कहता हूँ जो वृक्षार्णवमें उनके मान स्वरूपों कहे हुए हैं। १ शिवनाद २ हरिनाद ३ ब्रह्मनाद ४ रविनाद ५ सिंह-नाद ६ मेघनाद इस तरह छः महामंडपोंको जानना। इन शिवनादादि मंडपोंको ढाई या तीन भूमि उदयके विशेष करके करना (इससे भी ऊँचे होते हैं।) इन मंडपों सर्व देवोंको करना। परंतु विशेष-कर जिसके जैसे नामके देवोंको करना। उस प्रासादकी तरह भद्ररथादि अंगवाले (खुले मंडप) करना। इन मंडपोंको प्रासादके जैसा पीठकर उसके पर वेदिका कक्षासनयुक्त या खुले स्तंभ भी कर सकते हैं। मंडपके मध्यके आठ आठ स्तंभोंको

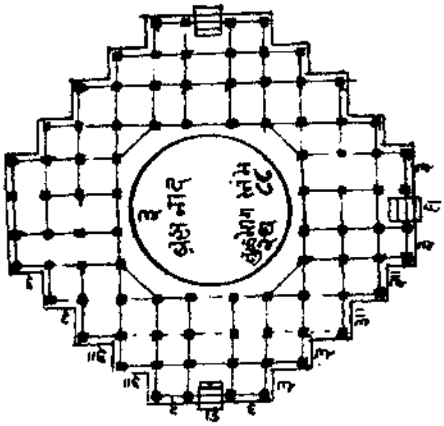

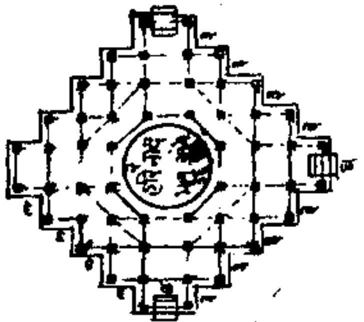

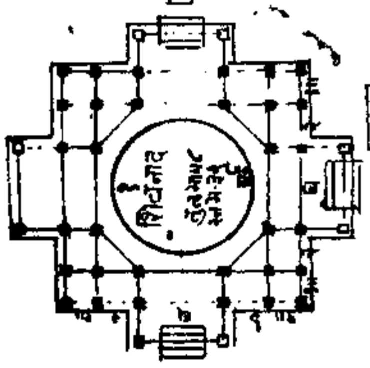

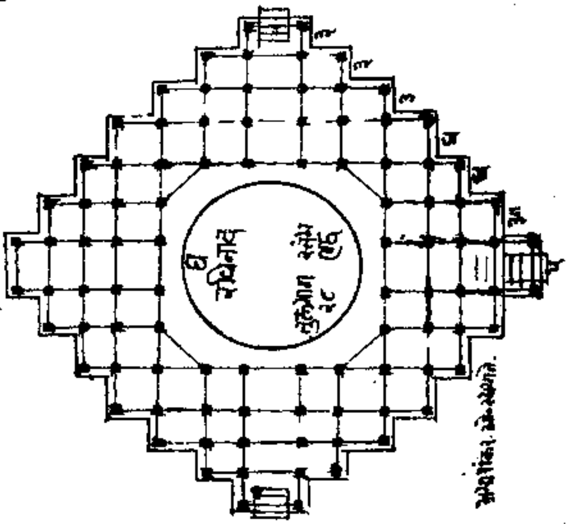

मेघनादादि षड् महामंडप

(२०) આ છ એ મહામંડપોનું વિશેષ વિભાગથી ભદ્ર પ્રતિભદ્ર રથ ઉપરથાદિ અંગ સાથે શિલ્પના મહાગ્રંથ વૃક્ષાર્ણવના અધ્યાય ૧૦૨ માં વિગતથી આપેલું છે. અહીં સંક્ષિપ્ત છે. શિવનાદ ભાગ આઠ સ્તંભ ૨૮, હરિનાદ ભાગ ૧૬, સ્તંભો ૫૬, બ્રહ્મનાદ ભાગ ૨૪,

ठेकी चढ़ाकर डेढ़िया उदयवाले मंडप करना। उनके फिरता तोरण झूल करना । २° ५४ से ५७.

समतलं च विषमं संघाटो मुखमंडपः ।
भित्यंतरे यदा स्तंभ पट्टादौ नेव दूषणम् ॥५८॥
क्षणमध्येसु सर्वेषु पट्टमेकं न दापयेत् ।
युग्मंच दापयेत्तत्र वेधदोष विवर्जयेत् ॥५९॥

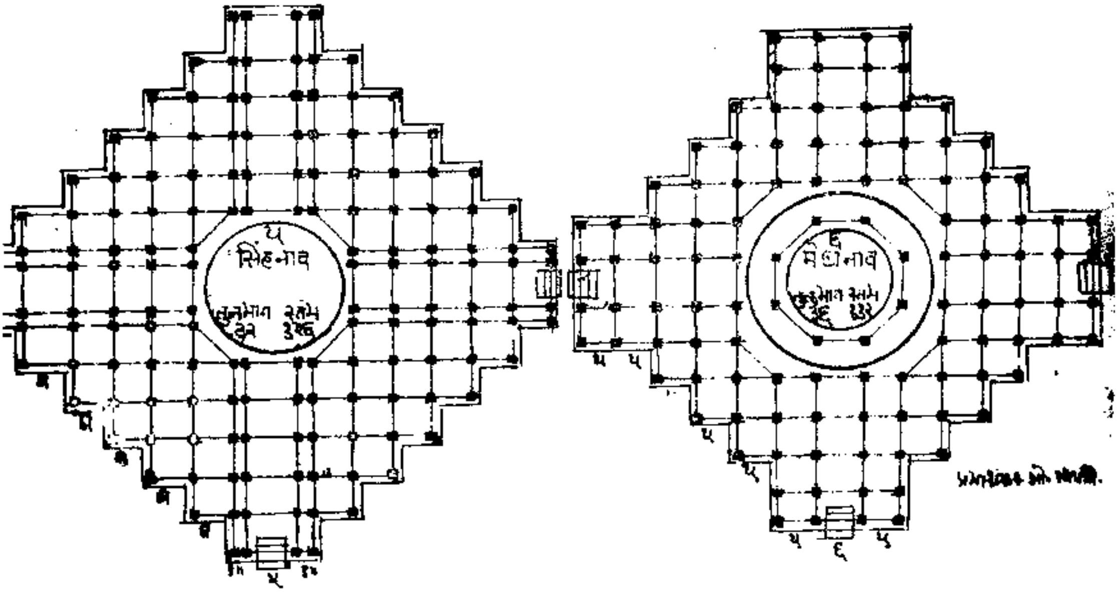

मेघनादादि षड् णहामंडप

એકથી બીજો મંડપ જોડતાં જો ભિતીનું અંતર હોય તો જો ભૂમિનું ઊંચાનીચું તળ હોય અગર સ્તંભ કે પાટ આઘા પાછા હોય (એટલે કે એક

સ્તંભો ૧૦૦, રવિનાદ ભાગ ૨૮, સ્તંભો ૧૦૪, સિંહનાદ ભાગ ૩૨, સ્તંભો ૧૩૬, મેઘનાદ ભાગ ૩૬, સ્તંભો ૧૦૮ની રચનાનાં કહ્યા છે. આવા મોટા મહામંડપોને વચલી અષ્ટાંશ કેટલાકમાં ઘણા મોટા વર્તુલમાં થાય છે. ડબલ અષ્ટાંશ પાડે છે. ઉપરના મજલે વચ્ચેની અષ્ટાંશ પર બીજી અષ્ટાંશના થર પરના કોલ કાચલાના થરો ભળી જાય છે.

(२०) यह छ महामंडपका विशेष विभाग (भद्र, प्राप्त भद्र, रथ, उपरथादि अङ्ग सहित शिल्पका महाग्रंथ " **वृक्षार्णव** " अ. १०२में सविस्तर दीया है । यहां संक्षिप्तमें है। शिवनाद भाग ८ स्तंभ २८। हरिनाद भाग १६ स्तंभ ५६। ब्रह्मनाद भाग २४ स्तंभ १००। रविनाद भाग २८ स्तंम्भ १०४। सिंहनाद भाग ३२ स्तंम्भ १३६। मेघनाद भाग ३६ स्तंम्भ १०८की रचनाका कहा है । एसे बडा महामंडपोंके मध्यमे अष्ठाश्रमें कीतनेमें बडा वर्तुल होता है। कीतनेमें डबल अष्टाश्र बी बराते है। उपरकी भूमिमें अष्टाश्र पर दुसरी अष्टांश्रका थरके उपर कौल काचला गवाक्षका थरो मील जाता है।

સૂત્રમાં લેવલમાં ન હોય) તો પણ દોષ લાગતો નથી. ક્ષણુ એટલે ખંડ-પદમાં વચ્ચે એક પાટ ન મૂકવો. પણ બેકી સ્તંભ કે પાટ મુકીને દોષ તજવા. ૫૮-૫૯.

एकसे दूसरे मंडपको जोडते जो इसीका अंतर हो तो जो भूमिका ऊँचा नीचा तल हो या स्तंभ या पाट आगे पीछे हो (अर्थात् एक सूत्रमें न हो) तो भी दोष लगता नहीं है। क्षण अर्थात् खंड-पदमें बिचमें एक पाट नहीं रखना लेकिन सम स्तंभ या पाटको रखकर दोषको तजना। ५८-५९.

तलैस्तु विषमा स्तुलैय: क्षणै: स्तंभै: समैस्तथा।
उदुम्बरार्धे त्र्यंशे वा पादे गर्भभूमिके ॥६०॥
मंडपेषु च सर्वेषु पीठान्ते रङ्गभूमिका।
कूर्याद् वै द्वित्री पट्टेन चित्रपाषाण जै नवा ॥६१॥

મંડપની રચના વિષમ એકીપદ વિભાગના તળ ઉપર સમ બેકી સ્તંભોથી કરવી. પ્રાસાદના ગર્ભગૃહના ઉંબરાની ઉંચાઈના અર્ધાભાગે, ત્રીજાભાગે કે ચોથા

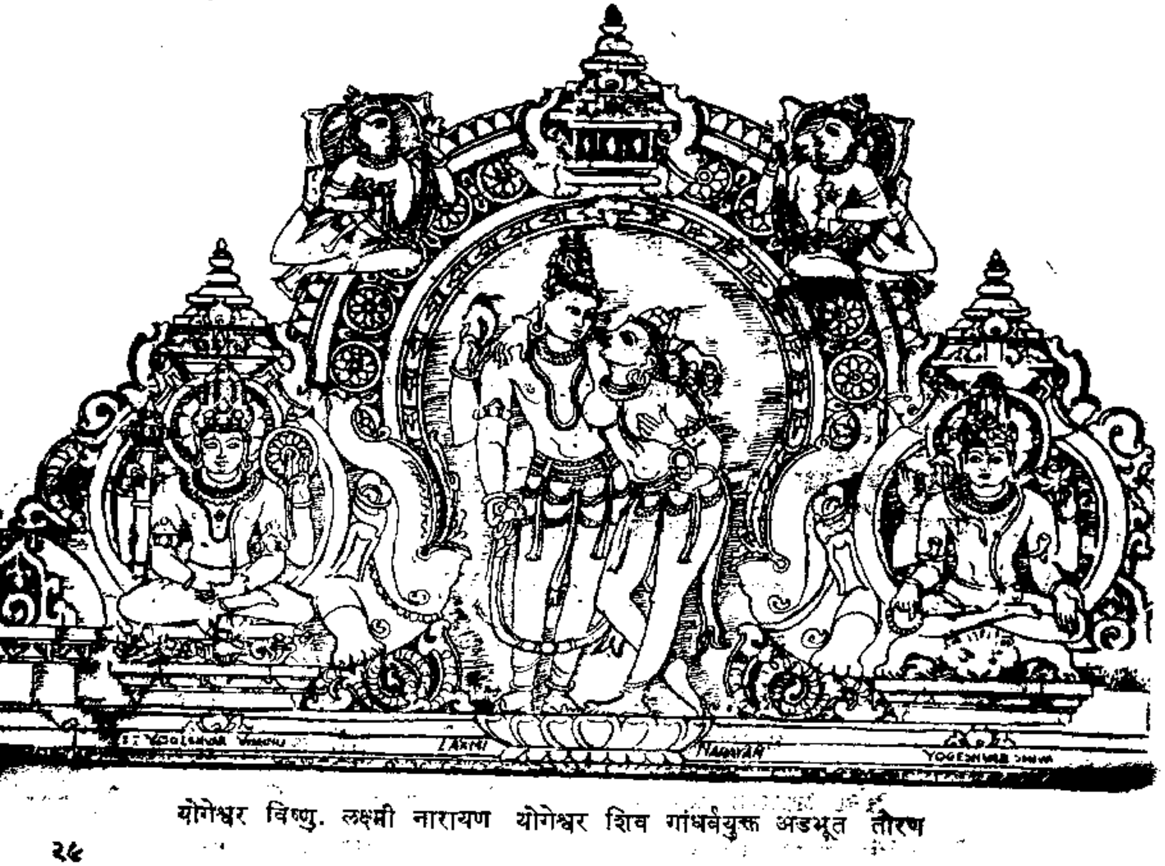

योगेश्वर विष्णु. लक्ष्मी नारायण योगेश्वर शिव गांधर्वयुक्त अद्भूत तोरण

ભાગે નીચું ગર્ભગૃહનું ભૂમિતલ રાખવું. રંગ મંડપનું તળ પીઠના મથાળા બરાબર રાખવું રંગમંડપનું તળીયું આરસના ચિત્ર વિચિત્ર પાષાણોવાળું રંગીન પટ્ટીઓથી શોભતું કરવું (ગર્ભગૃહથી મંડપ નીચો તેનાથી નીચી ચોકી એમ ઉત્તરોત્તર નીચું રાખવું. ઉંચું રાખે તો દોષ જાણવો. ૬૦–૬૧.

मंडपकी रचना विषम पद विभाग के तलके उपर सम स्तंभो से करना। प्रासादके गर्भगृहके ऊँबरेकी ऊँचाईके आधे भागमें, तीसरे भागमें या चौथे भागमें नीचे गर्भगृह के तलको रखना। मंडप रंगमंडप के तल—पीठके शीर्षकपर रखना। रंगमंडप का तल आरस के चित्र विचित्र पाषाणवाला रंगीन पट्टियों से शोभित करना। (गर्भगृहसे मंडप नीचा उससे चौकी नीची इस तरह उत्तरोत्तर नीचा रखना, ऊचा रखनेसे दोष होता है। ६०–६१.

अथात्कथित रिषि ! बलाणकस्य लक्षणम्।
प्रासाद व्यासमानेन गर्भमानेन चाऽथवा ॥ ६२॥
शालालिंद मानेन त्रिविध मानलक्षणम्।
अन्यच्च युक्ति भेदैन पुरतः पृष्ठतोऽथवा ॥ ६३॥

હે! ઋષિ હવે હું બલાણકનાં લક્ષણ કહું છું. (૧) પ્રાસાદની પહોળાઇના માનથી (૨) ગર્ભગૃહના માને (૩) શાલા આલિંદ ચોકીના પ્રમાણથી બલાણકનો વિસ્તાર રાખવાના આ ત્રણ માન જાણવા અન્ય યુક્તિ ભેદે કરીને પૂર્વ અને પશ્ચિમ આગળ પાછળ એમ ચતુમુખ પ્રાસાદને ચારે તરફ બલાણક કરવા. એક મુખના પ્રાસાદને આગળ એક બલાણક કરવું. ૬૨–૬૩.

हे ऋषि, अब मैं बलाणकके लक्षण बताता हूँ। (१) प्रासादकी चौडाई के मानसे (२) गर्भगृह के मानसे (३) शाला अलिंद चौकी के प्रमाण से बलाणक विस्तार रखने के ये तीन मान जानना। अन्य युक्तिभेदे कर पूर्व और पश्चिम आगे पीछे इस तरह चतुर्मुख प्रासादको चारों तरफ बलाणक करना। एक मुखके प्रासादको आगे एक बलाणक करना। ६२–६३.

वामनश्च विमानश्च हर्म्यशालश्च पुष्करः।
तथा चोत्तुंगनामा च पंचैते च बलाणकाः ॥ ६४॥
वर्तनं कथयिष्यामि पदं संस्थानमानतः।
प्रासादग्रे च प्राकारे मंदिरे वारिमध्यतः ॥ ६५॥

પંચ પ્રકારના બલાણકનાં નામો કહે છે. ૧ વામન ૨ વિમાન ૩ હર્મ્યશાલ ૪ પુષ્કર અને ૫ ઉત્તુંગ એમ પાંચે બલાણકના વર્તન સ્વરૂપ પદ સંસ્થાનના માનથી ક્યાં

ક્યાં કરવા તે હું કહું છું. દેવમંદિર આગળ પ્રાસાદ (રાજમહેલ) આગળ, નગરના કિલ્લા આગળ, જળાશ્રયની મધ્યમાં કે આગળ એમ બલાણકના પદ સ્થાન જાણવા. ૬૪–૬૫.

पाँच प्रकारके वलाणकके नामों कहते हैं। १. वामन २. विमान ३. हर्म्य शाल ४. पुष्कर ५. उत्तुंग। इस तरह पाँचों बलाणकके वर्तन स्वरूपपद संस्थान के मानसे कहाँ कहाँ करना वह कहता हूँ। देव मंदिर आगे प्रासाद (राजमहल) के आगे; नगर के कोटके आगे; जलाश्रय के मध्यमें या आगे इस तरह बलाणक के पद स्थान जानना। ६४–६५.

वामनो देवताग्रे च विमानोतुङ्गै राजवेश्मनि।
हर्म्यशाले गृहे वाऽपि प्रासादे नगरानने ॥६६॥

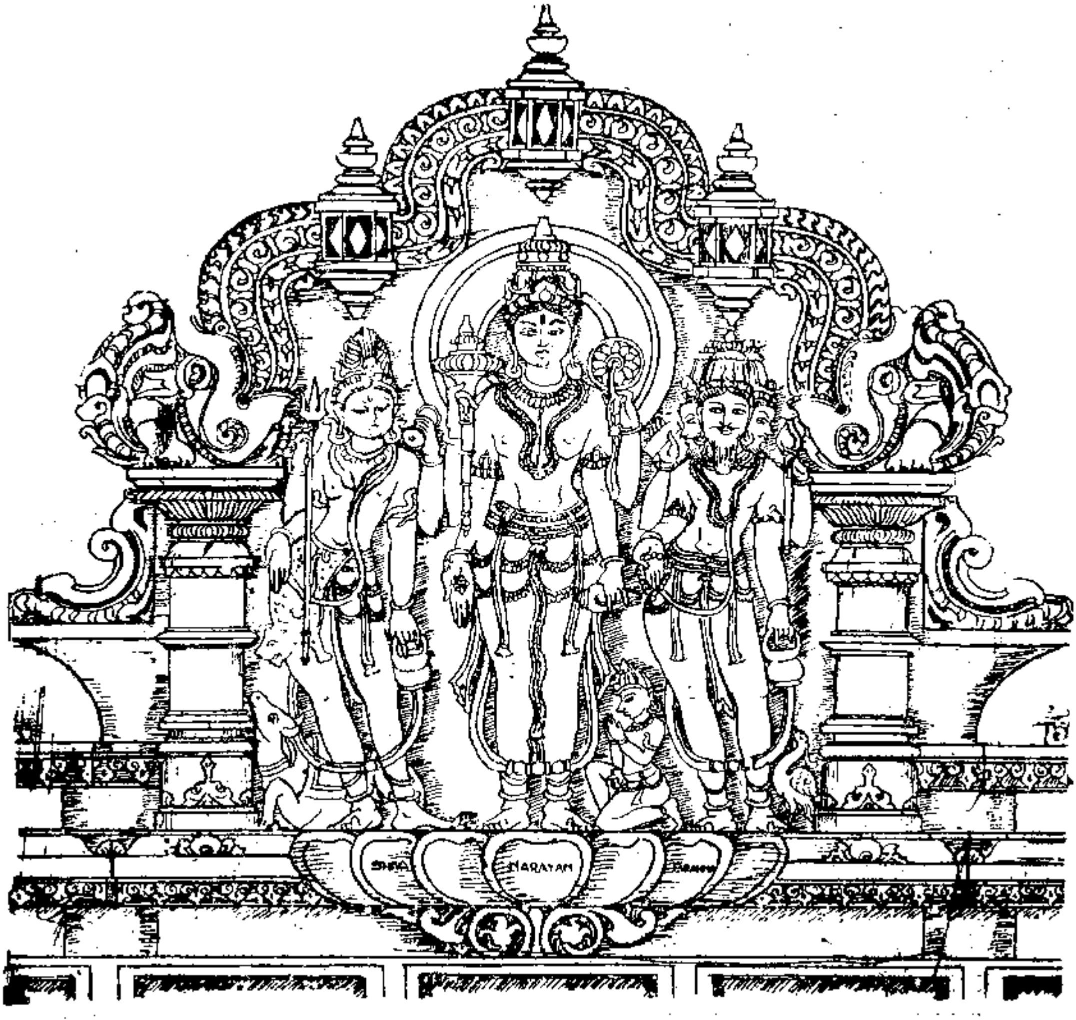

शिव–विष्णु और ब्रह्मा–त्रिमूर्तिका तोरण युक्त गेबलं

पुष्करं वारिमध्यस्थं मग्रतश्चैव भूषितम् ।
सप्त नव भूम्युत्तुंङ्ग मत उर्ध्वेन कारयेत् ॥६७॥

દેવ પ્રાસાદની આગળ જે બલાણક કરવામાં આવે તેનું ૧ वामन નામ જાણવું: રાજમહેલ આગળના બલાણકને ૨ विमान નામ જાણવું; અગર તેને ૩ उत्तुङ्ग નામ પણ કહ્યું છે. ઘરોના આગળ ડેલી કે નગર આગળના બલાણકને ૪ हर्म्यशाल નામ જાણવું. જળાશ્રયના મધ્યમાં કે જળાશ્રયના મુખ આગળ શોભિતું ૫ पुष्कर નામનું બલાણક જાણવું[૩] ઉત્તુઙ્ગ નામનો બલાણક સાતથી નવ માળ સૂધીનો ઉંચો (કીર્તિસ્તંભ જેવો) કરવો તેથી વધુ ઊંચો ન કરવો (૨૧) ૬૬–૬૭.

देवप्रासाद के आगे जो बलाणक करने में आवे उसका १ वामन नाम जानना । राजमहल के आगेके बलाणक का २ विमान नाम जानना । अगर उसका ३ उत्तुंग नाम भी कहते हैं। घरोंके आगे खिड़की या नगरमुखके आगे के बलाणकका ४ हर्म्यशाल नाम जानना । जलाश्रय के मध्यमें या जलाश्रय के मुखके आगे शोभता पुष्कर नामका बलाणक जानना । उत्तुंग नामका बलाणक सात से नव मालभूमि तकका ऊँचा (कीर्तिस्थम्भ जैसा) करना । इससे ज्यादा ऊँचा न करना[२१] । ६६–६७.

प्रासादाग्रे जगत्यग्रे ग्रस्तः स्यान्मुखमंडपः ।
उर्ध्वभूमिः प्रकर्तव्या नृत्यमंडप सूत्रतः ॥६८॥
लक्षणं तस्य वक्ष्यामि स्थानमानं च भूमिकाम् ।
एक द्वित्रि चतुः पंच रस सप्ताष्टभिस्तथा ॥६९॥

પ્રાસાદની આગળ, જગતીની આગળ કે જગતીથી અંદર સમય તેવો આગળ મુખ મંડપ કરવો જગતીનો ભૂમિમંડપ નૃત્યમંડપના ગર્ભસૂત્રે કરવો.

---

૨૧ બલાણક વિશે અન્ય મત પણ છે. પ્રાસાદની જગતી આગળ જગતીમાં સમાય તેવી ચોકી કે મંડપ કરવો તેને ૧ वामन નામનું બલાણક કહે છે. રાજમહેલ આગળ ૨ विमान કે પાંચ સાત ભૂમિ ઊંચું એવું બલાણક उत्तुङ्ग કહે છે. ઘર આગળના દ્વાર પર ગોપુરાકૃતિ એક કે બે ત્રણ માળની ડેલી ને હર્મ્યશાલ બલાણક કહે છે. અહીં જળાશ્રય આગળ પુષ્કળ બલાણક કહ્યો તેથી જળાશ્રય આગળ ઉત્તુંગ કીર્તિ સ્તંભ જેવો અને મંદિર આગળ ગોપુર કહે છે.

२१. बलाणकके बारेमें अन्यमत भी है। प्रासाद की जगती आगे जगतीमें समास के ऐसी चौकी या मंडप करना। उसकी १ वामन नामका बलाणक कहते है। राजमहल के आगे २ विमान या पाँच सात भूमि ऊँचा ऐसा बलाणक उत्तुंग कहा जाता है। घरके पासके द्वारपर गोपुराकृति एक या दो तीन मजलेके प्रवेशद्वार को हर्म्यशाल बलाणक कहते हैं। यहाँ जलाश्रय आगेका पुष्कर बलाणक नहीं कहा है अपूर्ण है। उत्तुङ्ग जलाश्रयके पास कीर्तिस्तम्भ जैसा होता है। मन्दिरके आगे गोपुर भी होता है।

તેનાં લક્ષણુ કહું છું. આ બલાણુક પ્રાસાદથી જગતીથી એક બે ત્રણુ પાંચ છ સાત કે આઠ પદ છેટે સ્થાન માનનો આશ્રય જાણીને ભૂમિ છોડીને કરવો. ૬૮–૬૯.

प्रासादके आगे, जगतीके आगे या जगतीके अंदर समास के एसे आगे मुख मंडप करना । जगतीका भूमि मंडप नृत्य मंडप के गर्भसूत्र में करना । उसके लक्षण कहता हूँ । यह बलाणक प्रासादसे या जगतीसे एक दो तीन पाँच छः सात या आठ पद दूर स्थान मानका आश्रय जानकर भूमि को छोड़कर करना । ६८–६९.

तोरण परिकार साथ नृत्यशिव का गेबल

जगती तु शिरोदेशे जठरे चोत्तरङ्गकम् ।
अधस्तुलोदये भूमिर्घटनादि च तत्समम् ॥७०॥
तत्समं तु प्रकतव्य मुत्तरङ्गं सपट्टकम् ।
उदयोन्नतमानेन सोपानं तुलामध्यतः ॥७१॥

જગતીના મથાળા સુધીમાં એટલે કે તેના જઠરના દ્વારના ઉત્તરંગનો સમાસ કરવો. (જગતી નીચે પ્રવેશ મંડપ કે ચોકીના) તુલા પાટડાનો ઉદય ભૂમિદય કે કુંભા બરાબરમાં કે નીચે સમાવવો. જગતીની ચોકીના પાટ બરાબર પ્રવેશ દ્વારનો ઉત્તરંગ રાખવો. જગતીના ઉદયના માનમાં પાટડાની અંદર ઉપર ચડવાનાં પગથિયાં કરવાં. [२२]. ૭૦–૭૧.

जगतीके शीर्षक तकमें अर्थात् उसके जठरमें द्वारके उत्तुंगका समास करना। (जगतीके नीचे प्रवेश मंडप या चौकीके) तुला पाटडेका उदय भूमिदय या कुंभे के बराबरमें या नीचे समाना। जगती की चौकी के पाट बराबर प्रवेश द्वारका उत्तरंग रखना। जगतीके उदयके मानमें पाटडे के अंदर ऊपर चढ़नेके पगथिये करना। [२२] ७०–७१.

कुंभीस्तंभ शिरः पट्टं पृथक् सूत्र तुलादिकम् ।
भूमिं तु भूमि मानेन समसूत्रै विचक्षणाः ॥७२॥

બલાણકના કુંભી સ્તંભ સરાપાટ આદિ મૂળ પ્રાસાદના સ્તંભના છોડ પ્રમાણે સમસૂત્રે કરવા પ્રત્યેક મજલના ઉદય પ્રમાણે વિચક્ષણ શિલ્પીએ સમસૂત્રે રાખવા. ૭૨.

૨૨=બલાણક એટલે લૌકિક ભાષામાં ડેલી–પ્રવેશ દ્વાર પરનો ભાગ જાણવો દેવ પ્રાસાદમાં આવા બલાણક બનાવવાને ભૂમિતળથી એક મજલા જેટલી જગતી ઉંચી કરી તે પર પ્રાસાદ કરેલ હોય તો જ દેવપ્રાસાદ સામે બલાણક કરવું યોગ્ય થાય છે. જો કે જગતીના બરાબર ઉંચાઈ બરાબર પણ આગળ જે મંડપ કરવામાં આવે છે તેને પણ 'વામન' નામનું બલાણક કહ્યું છે. જૈનોમાં દેવ સ્થાપના પ્રલોભને બલાણકમાં પ્રાસાદની બરાબર સામે ગર્ભગૃહ કરી તે પર શામરણ કે ત્રિપટ કરે છે. એટલે મૂળ મંદિરથી નીચું કરવાના હેતુથી તેમ કહે છે. કારણ કે મૂળ પ્રાસાદ કે મૂળ ભવન કે મૂળ ઘરની ડેલી રૂપ આ બલાણક હંમેશાં નીચું રહેવું જ જોઈએ. ઓછા ઉદયવાળી જગતીમાં શ્લોક ૭૦–૭૧ પ્રમાણે નીચેના મુખમંડપ કે ચોકીના પાટ અને તે પરના ભૂમિ દળ (છાતીયા રણ થાળ) લાદી–ફ્લોર) નો સમાસ મૂળ પ્રાસાદના ઉમ્બરની અંદર એટલે કુભાની અંદર સમાવે છે તેનાથી નીચું થાય તો ઉત્તમ ગણાય. જગતી બરાબર ના મુખ મંડપ કે ચોકીનો પાટ મુખ્ય પ્રવેશ દ્વારના ઉત્તરંગ ઉપર હોય છે. આ વિષય સ્થાન માન અને ભૂમિતળના જગતીના ઉદય પર આધાર રાખે છે. ઉત્તુંગ નામનો બલાણક દ્રવિડના ગોપુર જેવો અગર રાજ પ્રાસાદ આગળ ટાવર જેવો જાણવો કીર્તિસ્તંભ એ આ ઉત્તુંગના સહોદર જેવો જાણવો.

२२. बलानक=अर्थात् लौकिक भाषामें डहली=प्रवेश द्वारके उपरका भाग समजना। देव प्रासादमें ऐसे बलाणक बनानेमें भूमितलसे एक भूमि जातिनी जगती ऊँची करके प्रासादका

बलाणक के कुम्भी स्तंभ सरापाट आदि मूल प्रासाद के स्तंभ के छोडके अनुसार समसूत्रमें रखना । ७२.

बलाणकस्तत्तदग्रेतोरणभद्रमस्तके ।
तद् बाह्ये मत्तावरणं सन्मुख वामदक्षिणे ॥७३॥
इति पंचविध बलाणक

બલાણકના આગળ ભદ્રભાગના સ્તંભોને તોરણ કરવું. તેની બહાર સન્મુખ અને બાજુમાં જમણી ડાબી તરફ મત્તવારણ કક્ષાસન કરવાં. ૭૩.

बलाणके आगे भद्र भागके स्तम्भों को झूल करना । उसके बाहर सन्मुख और बाजुमें दाहिनी बायीं तरफ मत्तवारण–कक्षासन करना । ७३.

अथ संवरणा—संवरणाश्च प्रवक्ष्यामि प्रथमं पंचघंटन् ।
चतुर्घंटाभिर्वृध्ध्या च यावदेकोत्तरं शतम् ॥७४॥
पंचविंशतिरित्युक्ता विभक्तिर्भाग संख्यया ।
विभक्ति रष्टभागाद्या यावद् वेदोत्तरं शतम् ॥७५॥

હવે હું સંવરણા વિશે કહું છું. શરૂમાં પાંચ ઘંટાથી ચચ્ચાર ઘંટાની વૃદ્ધિએ એકસો એક ઘંટા સુધીની તેમ ભાગ સંખ્યાથી પચ્ચીસ સંવરણા કહી છે. વિભકિત ભાગ સંખ્યાએ પહેલી આઠ ભાગની સામરણથી એક સો ચાર ભાગ સુધીની એમ પચ્ચીશ સંવરણા ચચ્ચાર ભાગની વૃદ્ધિથી કરતા જવું. ૭૪–૭૫.

अब मैं संवरणाके बारेमें कहता हूँ । शुरूमें पाँच घंण्टेसे चार चार घंटे की घृद्धि पर एकसौ एक घण्टे तककी उस भाग संख्या से पच्चीश संवरणा कही गयी है । विभक्ति भाग संख्यासे पहली आठ भागकी शामरणसे एक सौ

निर्माण कीया हो तो ज देव प्रासादके सामने बलाणक हो सकता है । जगतीका उदय सम आगे जो मंडप बनाते हैं उनको **"वामन"** नामक बलाणक कहते हैं । जैनोंमें देव स्थापनका प्रलोभनसे बलाणक प्रासादकी बराबर सामने गर्भगृह करके उसकी पर संवरणा या त्रिषट बनाते हैं । शिखर नहि करता ! मूल मंदिरसे नीचा रखनेका हेतुसे अैसा करता है । मूल प्रासाद या मूल भवन या मूल घरसे डहली बलाणक हमेशा नीचा होना चाहीये । कम उदय वाली जगतीमें, श्लोक ७०–७१ का प्रमाणसे नीचेका मुखमंडप=चोकीका पाट=बीम और ते परकी भूमिदल (छालिया–रणथल=लादी=फलोर) का समास मूल प्रासादके उदम्बकी अंदर होना चाहीये । उससे ऊँचा नहिं मगर नीचा रखना उत्तम है । जगती बराबर मुख मंडप= चोकीका पाट=बीम मुख प्रवेश द्वारका उत्तरङ्ग उपर होना चाहिये ! यह विषय स्थान मान और भूमितलका जगतीका उदय पर आधार रखता है । उत्तुंग नामका बलाणक द्रविडका गोपुरम् जैसे अगर राजप्रासाद आगे टावर जैसे समजना । कीर्ति स्तम्भ ये उत्तुङ्ग का सहोदय जैसा समझना ।

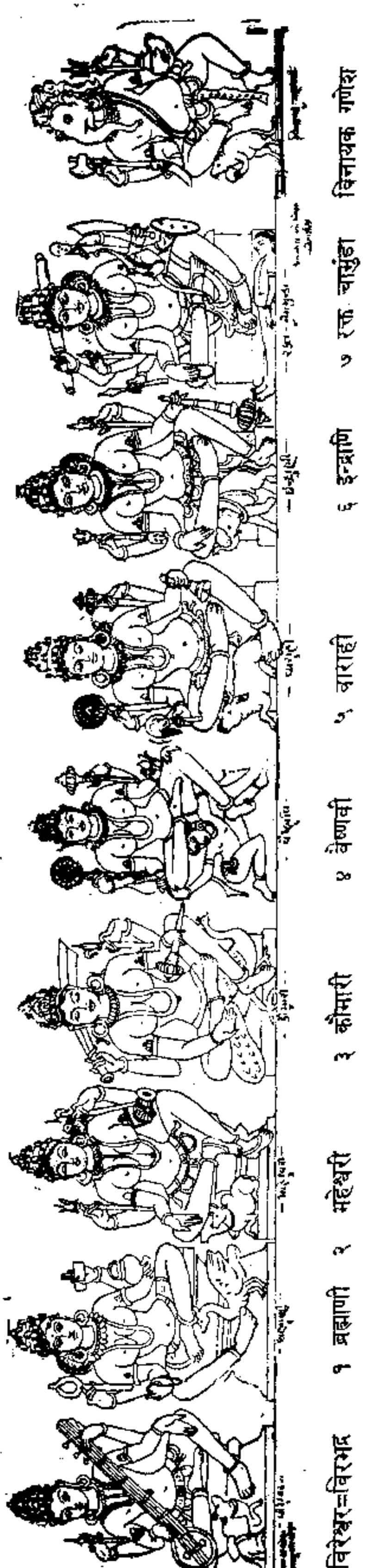

सप्त मातृका

સંવરણાને શિલ્પીઓની ભાષામાં શામરણ કહે છે. અહીં મંડપ પર શામરણ કરવાનું કહે છે. પરંતુ ગર્ભગૃહ પર પણ જ્યાં શિખર કરવાની દુષ્કરતા હોય અગર અલ્પ દ્રવ્ય વ્યયના કારણે ગર્ભગૃહ પર શામરણ કરે છે. આબુના મહામુલા મંદિરો પર શામરણ, ઓરિસાકલિંગ દેશમાં ઓરીસા કોલગ અને ખજુરાહોમાં શિખર અને શામરણ બેઉ જોવામાં આવે છે. શામરણનો બીજો પ્રકાર ત્રિષટા છે. કલિંગાદિ દેશોના જુના કામોમાં જોવામાં આવે છે. આપણા સૌરાષ્ટ્ર ગુજરાતને કચ્છ રાજ-સ્થાનના જૂના કામોમાં ત્રિષટ જોવામાં આવે છે. એક પર બીજી છાજલી પાછી મારી સંકોતી ઉપર આમલસારો ઘંટા કરી કળશ ચડાવે છે. ત્રિષટાનો નાગરાદિ શિલ્પમાં શાસ્ત્રોક્ત પાઠ હજુ જોવામાં આવેલ નથી. ૧. શિખર ૨. શામરણ ૩. ત્રિષટા. એમ ત્રણ સર્વોચ્ચ શિલ્પ મનાય છે. ત્રિષટાએ થોડા ફેરફાર સાથે શામરણનું સંક્ષિપ્ત સ્વરૂપ છે. સંવરણાને શિલ્પમાં નારિજાતિથી સંબોધાય છે. શામરણ વિસ્તારથી અર્ધ ઉંચી કહી છે. પરંતુ શિલ્પીઓ પોતાની કળાનું પ્રદર્શન કરવા પ્રત્યેક થરે જાંગી ચડાવી ઊંચી કરે છે. જેસલમેરમાં તેવું છે. વર્તમાનકાળમાં શામરણ ચડાવવાની જે પ્રથા શિલ્પીઓમાં છે તે બસોક વર્ષથી ચાલી આવી છે. છાજલી ફૂટએ ઘંટા પ્રત્યેક થરમાં કરવાનું શાસ્ત્રકાર કહે છે. જ્યારે વર્તમાન કાળની શામરણમાં એકલી ઘંટા-આમસાના થર પર થર ચડાવે છે. જો કે આ રીત અશાસ્ત્રી તો ન કહી શકાય. જ્યારે ગર્ભગૃહ પર સંવરણા કરવાની હોય છે ત્યારે ઉપર મૂળ ઘંટાના સ્થાને આમલસારો જ કરવાની ફરજ પડે છે કારણ કે ધ્વજાદંડ ઊભો કરવાનું મૂળ ઘંટામાં બની શકતું નથી. પરંતુ આમલ સારામાં સાલ રાખીને દંડ સ્થાપન કરી શકાય છે.

अथ संवरणा—संवरणाश्च प्रवक्ष्यामि प्रथमं पंचघंटन् ।
चतुर्घंटाभिर्वृध्या च यावदेकोत्तरं शतम् ॥७४॥
पंचविंशतिरित्युक्ता विभक्तिर्भाग संख्यया ।
विभक्ति रष्टभागाद्या यावद् वेदोत्तरं शतम् ॥७५॥

હવે હું સંવરણા વિશે કહું છું. શરૂમાં પાંચ ઘંટાથી ચચ્ચાર ઘંટાની વૃદ્ધિએ એકસો એક ઘંટા સુધીની તેમ ભાગ સંખ્યાથી પચ્ચીસ સંવરણા કહી છે. વિભક્તિ ભાગ સંખ્યાએ પહેલી આઠ ભાગની સામરણથી એક સો ચાર ભાગ સુધીની એમ પચ્ચીશ સંવરણા ચચ્ચાર ભાગની વૃદ્ધિથી કરતા જવું. ૭૪–૭૫.

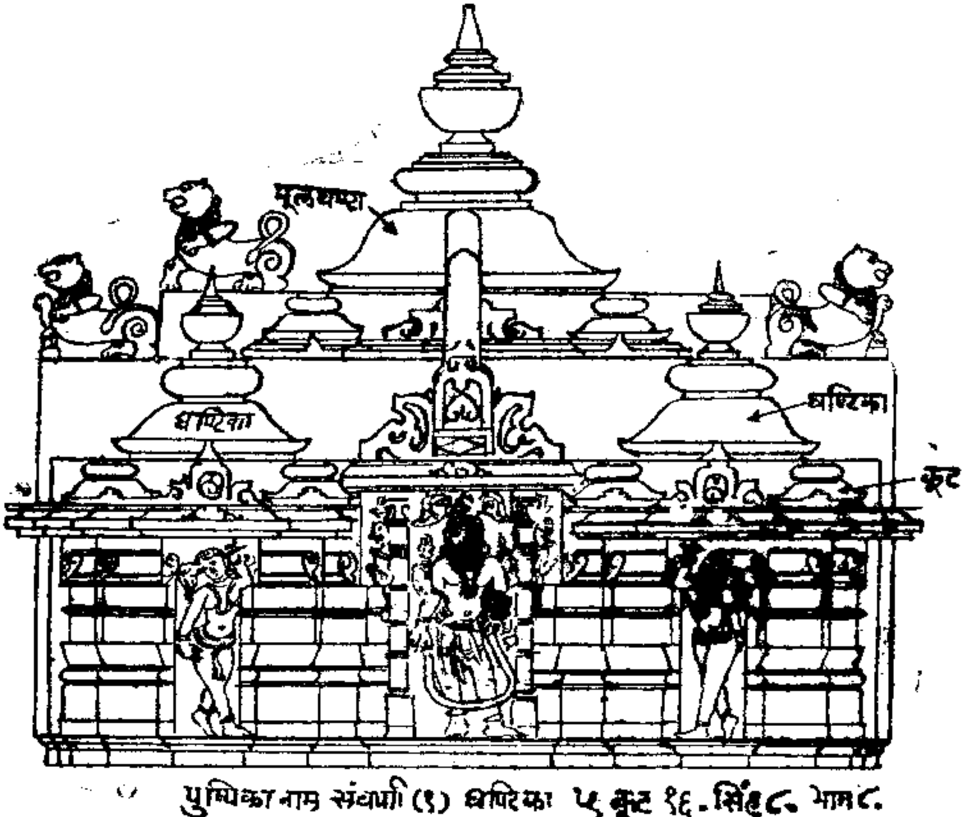

पुष्पिका नाम संवर्णा (१) घण्टिका ५ कूट १६-सिंह ८- भाग ८.
प्रभाशंकर. ओ. स्थपति.

अब मैं संवरणाके बारेमें कहता हूँ । शुरूमें पाँच घण्टेसे चार चार घंटे की वृद्धि पर एकसौ एक घण्टे तककी उस भाग संख्या से पच्चीश संवरणा कही गयी है । विभक्ति भाग संख्यासे पहली आठ भागकी शामरणसे एक सौ

चार भाग तक की इस तरह पच्चीस संवरणा चार चार भाग की वृद्धि से करते जाना। ७४-७५.

चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे अष्टभाग विभाजिते।
भागौ द्वौ रथिका कार्या चतुर्दिक्षु व्यवस्थिता ॥७६॥
कर्णे घंटिकाद्विभागा तदधः कूट कोणतः।
मूल घंटा त्रयोभागा भागैकं कलशं भवेत् ॥७७॥
उदयं च प्रवक्ष्यामि भागाश्चत्वार एव च।
छाद्योद्गमास्तरकूटः तदूर्ध्वं घंटिका भवेत् ॥७८॥

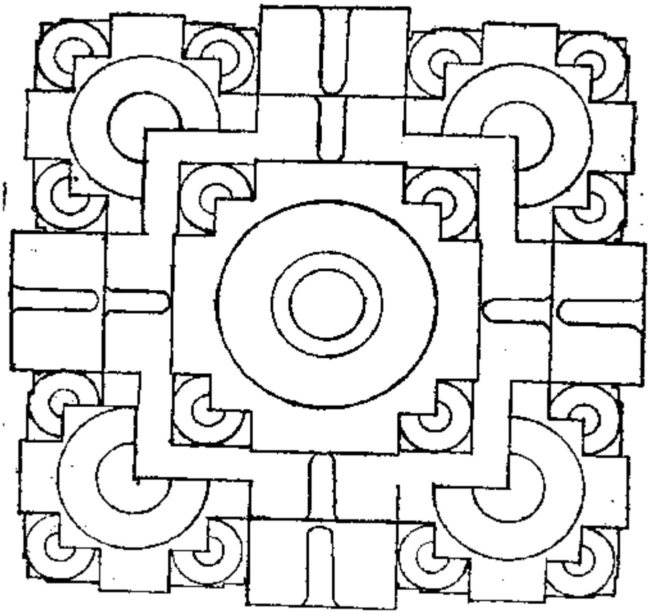

१ पुष्पिका नाम संवर्णा तल दर्शन (उपर सन्मुख दर्शन)

ચોરસ ક્ષેત્રના આઠ વિભાગ કરવા. તેમાં ગર્ભે મધ્યમાં બે ભાગની રથિકા (ભદ્ર) અને ત્રણ ત્રણ ભાગની રેખા કરવી તે રીતે ચારે બાજુએ વિભાગની વ્યવસ્થા કરવી. રેખાયે બે ભાગની પહોળી ઘંટિકા કરી તેની નીચે ખુણે કૂટ કરવા. સર્વોપરિ મૂળ ઘંટ ત્રણ ભાગની કૂટ સાથે ચાર ભાગની પહોળી કરી તે ઉપર એક ભાગનો કળશ કરવો. આમ તળવિભાગ કહ્યા હવે ઉદય ઉભણી ચાર ભાગની કરવાનું કહું છું. પ્રત્યેક ઘંટા નીચે છાજલી તે પર કૂટ કરવું કૂટના થરમાં ઘંટિકાના ગર્ભે ઉદ્ગમઃ દોઢીયા કરવા. તે કૂટ ઉપર ઘંટિકા કરવી.

આ રીતે શામરણ–પચ્ચીશ ચડાવવી. શામરણના પ્રત્યેક ઘરમાં નીચે છાજલી કૂટ ઉદ્ગમ અને તે પર ઘંટીકા ચડાવવાં આમ શામરણના પ્રત્યેક થરેનો ક્રમ જાણવો આ રીતે કરતાં જેમ શિખરને ઉરુ શૃંગ ચડે છે તેમ શામરણને ગર્ભે ઉરુઘંટા ચડે તે પર સિંહ બેસે છે. મધ્યની સર્વોપરિને મૂળ ઘંટા કહે છે. અને તેના પર મોટો કળશ સ્થાપન થાય. જોકે પ્રત્યેક ઘંટા પર કળશ. ઇંડા મૂકવાં. ૭૬–૭૭–૭૮.

चोरस क्षेत्रके आठ विभाग करना । उसमें गर्भमें मध्य में दो भाग की रथिका (भद्र) और तीन तीन भाग की रेखा करना । इस तरफ चारों बाजु विभाग की व्यवस्था करना । रेखापर दो भागकी चौडी घंटिका कर उसके नीचे कोनेमें कूट करना । सर्वोपरि मूल घण्टा तीन भागकी कूटके साथ चार भाग की चौडी करसे उसके ऊपर एक भागका कलश करना । इस तरह तलविभाग कहे । अब उदय चार भागका करने के लिये कहता हूँ । प्रत्येक घण्टा के नीचे छाजली उसके ऊपर कूट करना । कूटके थरमें घंटिका के गर्भमें उदय डेढिया करना । उस कूटके ऊपर घंटिका करना ।

संवरणाको शिल्पीओंकी भाषामें शामरण कहते हैं । यहाँ मंडप पर शामरण करने के लिये कहा है । परंतु गर्भगृह पर भी जहाँ शिखर करनेकी दुष्करता हो अगर अल्प द्रव्य व्ययके कारण गर्भगृह पर शामरण करते हैं । आबूके महामूले मंदिरों पर शामरण ओरिसा–कलिंग और खजुराहोमें शिखर और शामरण दोनों देखनेमें आते हैं । शामरण का दूसरा प्रकार त्रिषट है । और कलिंगादि देशोंके पुराने कामोंमें देखनेमें आते हैं । अपने सौराष्ट्र, गुजरात और कच्छ, राजस्थान के पुराने कामोंमें त्रिषट देखनेको मिलता है । एक पर दूसरी छाजली पीछे मारकर संकोचकर उपर आमलसाराघंटा कर कलश चढाते हैं । त्रिसटाका नागरादि शिल्पमें शास्त्रोक्त पाठ अभी देखनेमें आया नहीं है : (१) शिखर (२) शामरण (३) त्रिषटा इस तरह तीन सर्वोच्च शिल्प होता है । :त्रिषटा थोड़े फेरफारके साथ शामरणका संक्षिप्त स्वरूप है । संवरणा को शिल्पमें नारी जातिसे संबोधन किया जाता है । शामरण विस्तार से अर्ध ऊँची कही गई है । परंतु शिल्पीओं अपनी कलाका प्रदर्शन करनेके लिये प्रत्येक थर पर जांगी चढकर ऊँची करते हैं । जेसलमेरमें वैसा है । वर्तमानकालमें शामरण चढानेकी जो प्रथा शिल्पियोंमें है, वह करीब दो सौ सालसे चली आयी है । छाजली कूट घंटा प्रत्येक थरमें करनेका शास्त्रकारका विधान है । और वर्तमानकाल की शामरणमें अकेली घंटा लामसाके थर पर थर चढाते हैं । यद्यपि यह रीत अशास्त्रीय नहीं कही जाती । जब गर्भगृह पर संवरणा करनेकी होती है तब उपर मूल घंटाके स्थान पर आमल सारा ही करनेका फर्ज पड़ता है, क्योंकि ध्वजा दंड खडा करनेका कारण मूल घंटेमें बनता नहीं है । परंतु आमलसारेमें साल रखकर ध्वजा दंड स्थापन किया जा सकता है ।

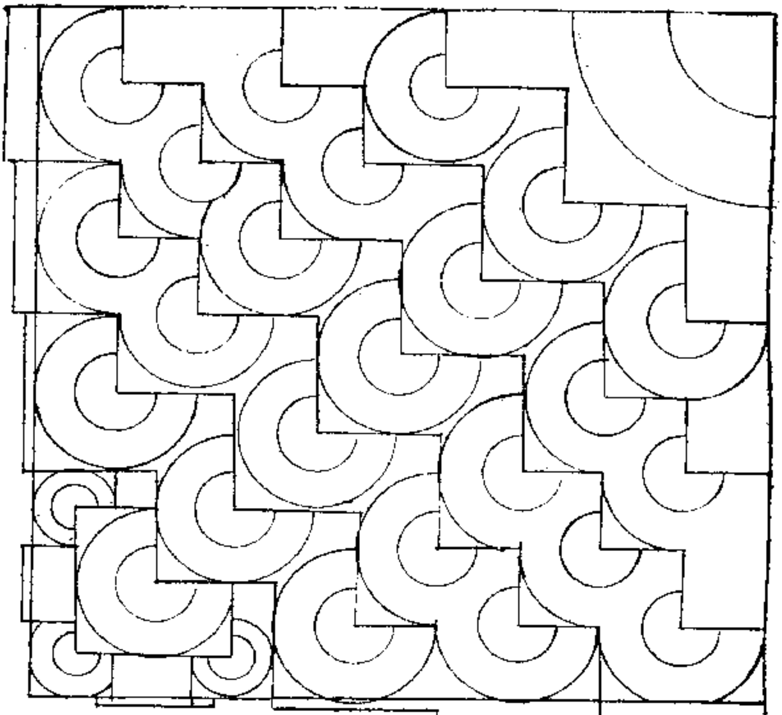

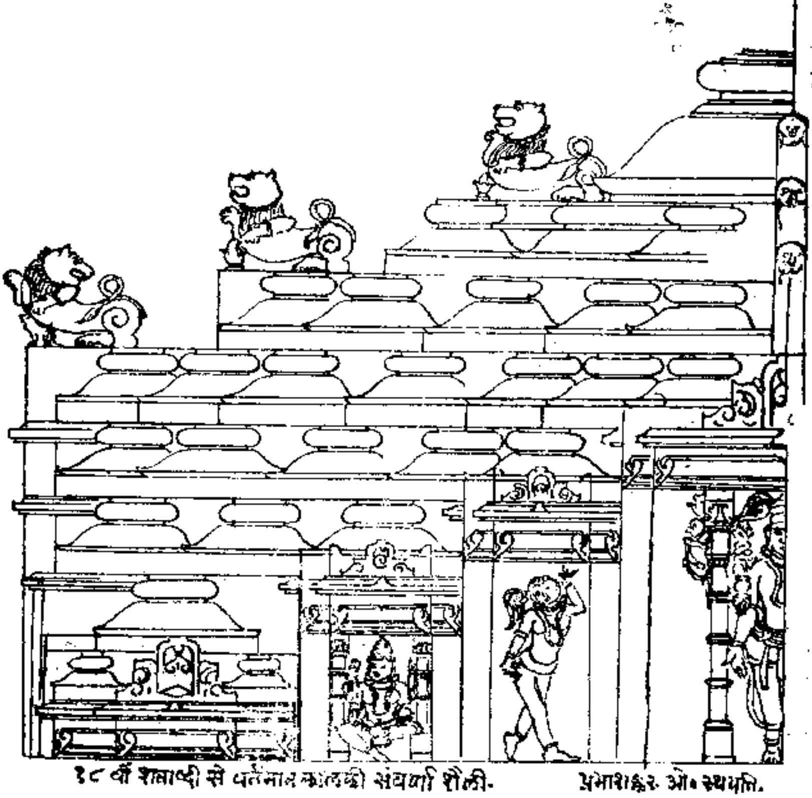

१८ वीं शताब्दी से वर्तमान कालकी संवर्णा शैली. प्रभाशङ्कर ओ. स्थपति.

वर्तमान कालसे शिल्पीओं की शामरण की प्रथा

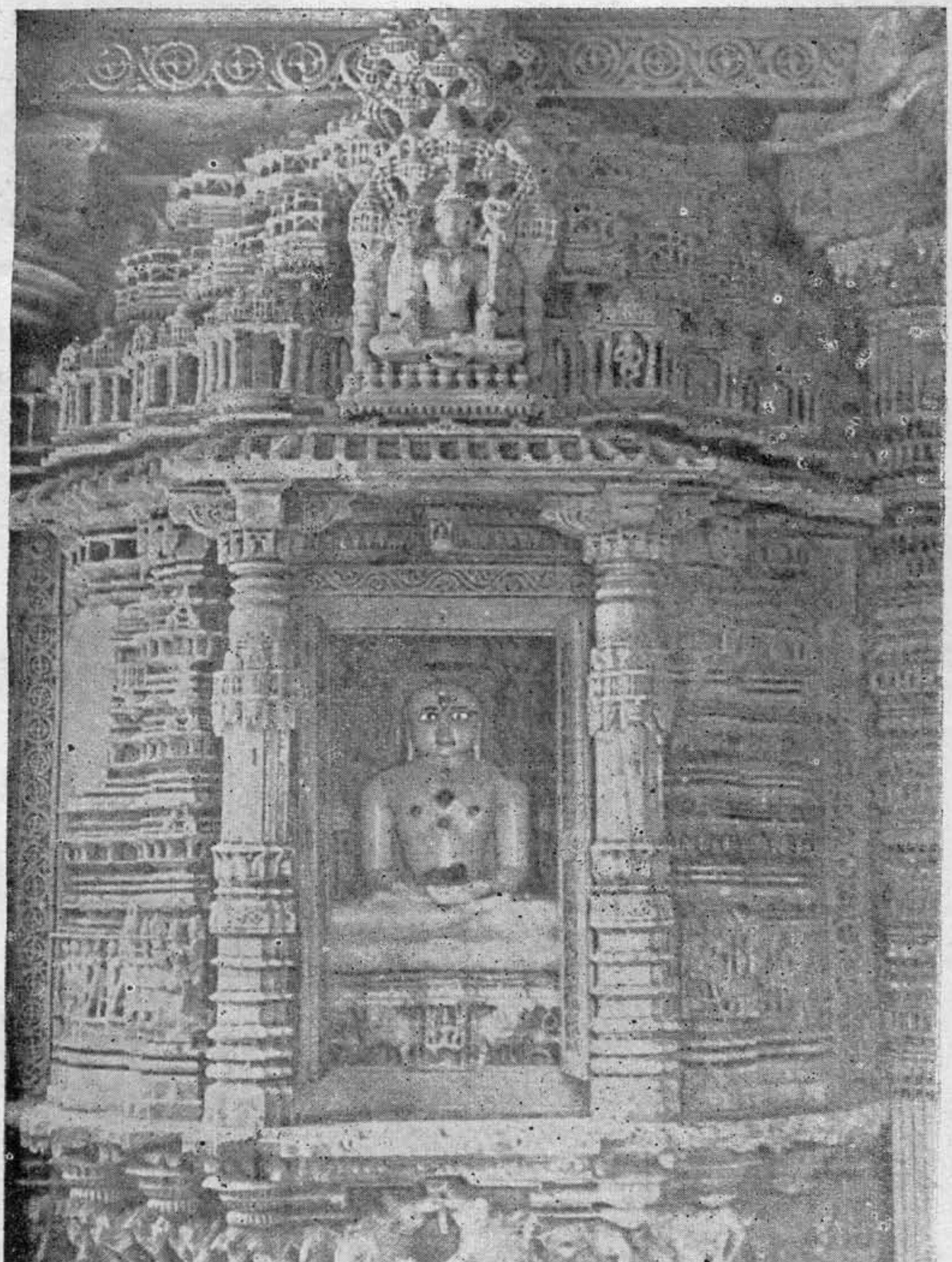

देवराणी जेठाणी के स्पर्धाका सुंदर कलामय गोखला–लुणिग वसही (देलवाडा आबु)

देलवाडा आबु के विमल वसही मंडप के स्तम्भ देवाङ्गना और ईलिका तोरण

इस तरह शामरण पच्चीस चढ़ाना—शामरणके प्रत्येक थरमें नीचे छाजली कूट–उद्‌गम और उसके पर घण्टीका चढ़ाना। इस करह शामरणका प्रत्येक थरका क्रम जानना। इस तरह करते जिस तरह शिखर को उरुशृंग चढ़ता है इस तरह शामरण के गर्भमें उरुघण्टा चढे उसके पर सिंह बैठता है। मध्य की सर्वोपरि को मूल घण्टा कहता हैं और उसके पर बड़ा कलश स्थापित होता है। यद्यपि प्रत्येक घण्टा पर कलश–अंडा रखा गया है। ७६–७७–७८.

इति श्री विश्वकर्मा कृतायां क्षीरार्णवे नारदपृच्छायां मंडपाधिकारे शताग्रे षड्दशमोऽध्याय ॥ ११६॥ (क्रमांक अ० १८)

ઈતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિય ક્ષીરાર્ણવ શ્રી નારદજીએ પૂછેલ મંડપાધિકારના શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકા સાથેનો એકસો સોળમો અધ્યાય (૧૧૬) (ક્રમાંક અ૦ ૧૮)

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णवमें श्री नारदजीके पूछे हुए मंडपाधिकारके शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुराकी रचि हुई सुप्रभा नाम्नी भाषाटीका का एकसौ सोलहवाँ अध्याय। ११६) (क्रमांक अ० १८)

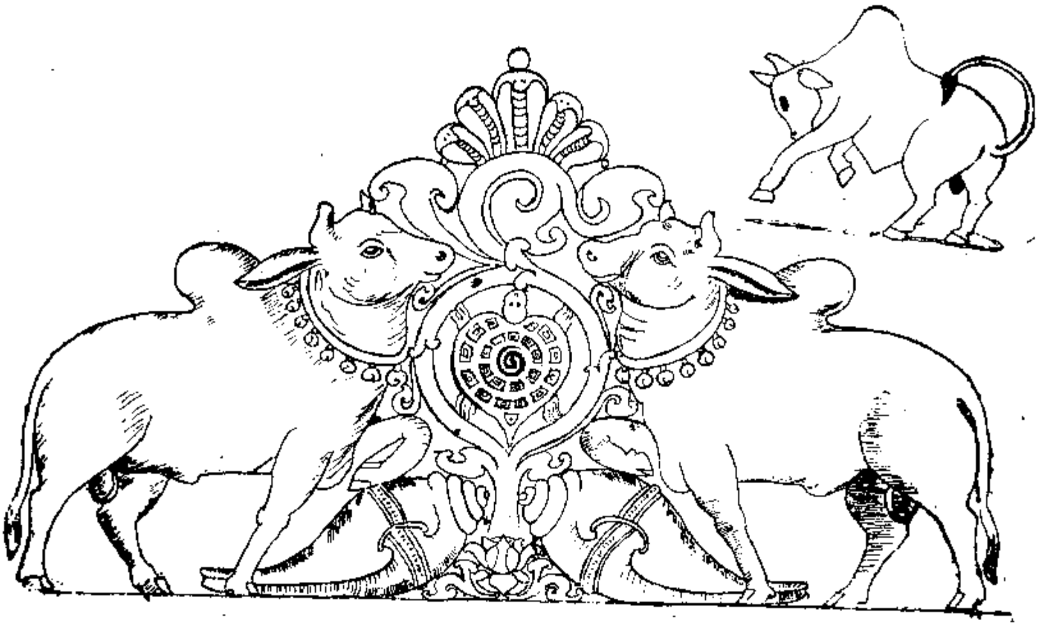

॥ अथ सांधार भ्रम निरूपणाध्याय ॥

क्षीरार्णव अ० ॥ ११७ ॥ क्रमांक १९

श्री विश्वकर्मा उवाच

भ्रमभित्ति प्रवक्ष्यामि प्रासाद मानतां बुध: ।
दशहस्तोत्तरा यावत्प्रासादा: सभ्रमा भवेत् ॥ १ ॥
दशोर्ध्वे च शतपादे भ्रममेकं प्रकीर्तितम् ।
सप्तविंशे द्वयं चैव अष्टमांशे तथा पुन: ॥ २ ॥
सप्तपादे तु चत्वारि षड्षष्टैं पंचसीयुते ।
भ्रमभित्ति विभागानि श्रुत्वात्वेकाग्रतो मुनि: ! ॥ ३ ॥
प्रासाद द्वादशभागा गर्भेषड् सार्द्ध मध्ये ।
[1]सार्द्ध द्वयो द्वयभित्ति शेषं च भ्रम विस्तरे ॥ ४ ॥

इति एक भ्रममान

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. બુદ્ધિમાન શિલ્પીઓ ? પ્રાસાદના માનથી સાંધાર પ્રાસાદના ભ્રમ અને ભિત્તિના માન પ્રમાણ હવે હું તમોને કહું છું દશ હાથ ઉપરના પ્રાસાદને ભ્રમ કરવો. દશથી પચ્ચીશ હાથના પ્રાસાદને એક ભ્રમ કરવો. સત્તાવીશ હાથના પ્રસાદને બે ભ્રમ કરવા અને આઠમા ભાગે ભ્રમભિત્તિ કરવી. ....એમ ભ્રમ અને ભિત્તિના વિભાગ રાખવા. હે મુનિ, હવે એકાગ્રતાથી સાંભળો. પ્રાસાદ બહાર રેખાયે હોય તેના બાર ભાગ કરી વચલો સ્તૂપ–ગર્ભગૃહ ભિત્તિ સાથે સાડા છ ભાગનો રાખવો અને બે છેડાની બહારની બેઉ ભીંતો અઢી ભાગની જાડી રાખવી. (એટલે સવા ભાગની એકેક ભીંત જાડી) બાકીના ત્રણ ભાગમાંથી દોઢ દોઢ ભાગનો ભ્રમનો વિસ્તાર જાણવો. ૧–૨–૩–૪.

एकभ्रम (सांधारप्रासाद)

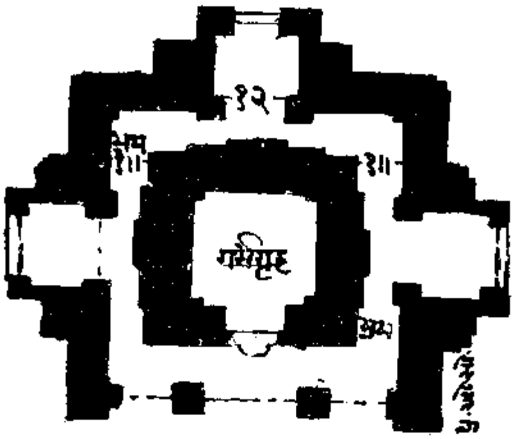

एक भ्रम तलदर्शन

श्री विश्वकर्माजी कहते हैं । हे ! बुद्धिमान शिल्पि ! प्रासादके मानसे भ्रम

और भित्तिमान सांधार प्रासादके मान प्रमाण अब मैं तुम्हें कहता हूँ। दश हाथके उपरके प्रासादको भ्रम करना। दशसे पच्चीस हाथके प्रासादको एक भ्रम करना। सत्ताईश हाथके प्रासाद को दो भ्रम करना और आठवें भागमें भ्रमभित्ति करना।

.........इस तरह भ्रम और भित्ति के विभाग करना। हे मुनि! अब एकाग्रतासे सुनो। प्रासाद बाहर रेखाके पर हो उसके बारह भाग कर बिचका स्तूप–गर्भगृह भित्तिके साथ साढे छः भागका रखना और दो अंतकी बाहर की दोनों दिवारें ढाई भाग की मोटी रखना। (अर्थात् सवा सवा भागकी एकेक दिवार मोटी) बाकीके तीन भागमें से डेढ डेढ भागका भ्रमका विस्तार जानना। १–२–३–४. इति एक भित्तिमान।

> द्विभ्रमं च प्रवक्ष्यामि यथा शास्त्रे न संभवः।
> चतुर्विंश कृते क्षेत्रे द्वादश लिङ्ग पीठयोः॥५॥
> चतुर्भिभित्ति त्रिभागानि शेषं च भ्रम मुत्तमम्।
> स्तंभः श्रेणि यदा सूत्र भ्रमद्वय विराजिता॥६॥
> कर्ण मध्ये प्रकर्तव्या मंडपा महता श्रता।

॥ इति भ्रमद्वयं मध्यमान॥

હવે બે ભ્રમનું શાસ્ત્રોક્ત માન સંશય વગરનું કહું છું સાંધાર પ્રાસાદની બહારની રેખાએ ચોવીશ ભાગ કરી વચલું લિંગપીઠ= સ્તૂપ–ભિત્તિ સાથે ગર્ભગૃહ –બાર ભાગનો રાખવો ચાર ભીંતો ત્રણ ભાગની એટલે પોણા પોણા ભાગની પ્રત્યેક ભિંત જાડી રાખવી. બાકીના બેઉ ભ્રમો બબ્બે ભાગના રાખવા ભ્રમની ભિંતોના સ્થાને સ્તંભોની શ્રેણી ભીંતનો સૂત્રના સ્થાને રાખવી: આ ગલી કર્ણ–રેખા–મંડપમાં સ્તંભોની શ્રેણીથી જાણવી.

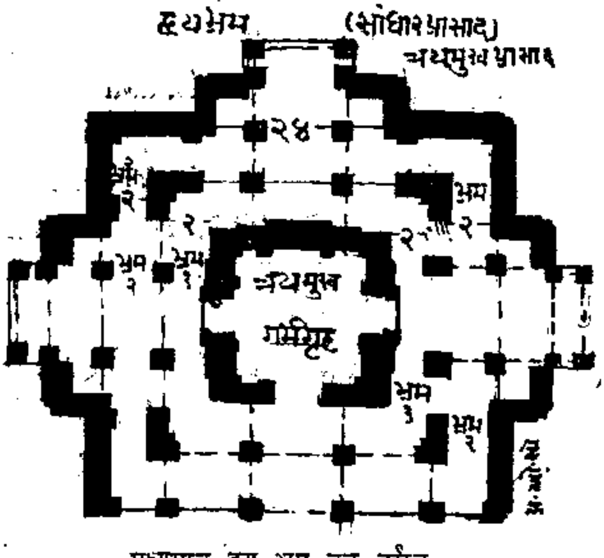

मध्यमान द्वय भ्रम तल दर्शन

अब दो भ्रमका शास्त्रोक्त मान असंशय कहता हूँ। सांधार प्रासाद की

बाहर की रेखाके पर चौवीस भागकर बिचका लिंगपीठ–स्तूप–भित्ति के साथ गर्भगृह–बारह भागका रखना। चार दिवारें तीन भागकी अर्थात् पौने पौने भाग की प्रत्येक दीवार मोटी रखना। बाकीके दोनों भ्रम दो द्रो भागके रखना। भ्रम की दिवारोके स्थानपर स्तम्भों की श्रेणी भींतके सूत्रके स्थानपर रखना। आगेकी कर्णरेखा–मंडपमें स्तम्भों की श्रेणीसे जानना।

षड्त्रिंश कृते क्षेत्रे लिङ्ग पीठ दशाष्टकम् ॥ ७ ॥
भित्तिषड् सार्द्धश्च चत्वारिभ्रम कन्यसेत्।
रूद्रसार्द्ध चतुभ्रम स्तंभ युक्तं न संशय ॥ ८ ॥
एवं विभक्ति मादाय भ्रमाद्वय विराजिते।
(भ्रमा त्रीणि विराजित) इति भ्रमद्वय कनिष्ठमान

હવે કનીષ્ઠ માનના બે ભ્રમવાળા પ્રાસાદોના ભાગો કહે છે. બહાર રેખાયે છત્રીશ ભાગ કરવા. તેમાં વચલો લિંગપીઠ (સ્તૂપ) ભિતિ સહિત ગર્ભગૃહ–અઢાર ભાગનો રાખવો. તેની ચાર ભીંતો સાડા છ ભાગની (એટલે ૧॥=ભાગની એકેક કરવી) કનીષ્ઠ માનના દ્વય ભ્રમ ની રાખવી સાડા અગ્યાર ભાગના ચાર ભ્રમો (૨॥ = ભાગની એકેક) = પ્રદક્ષિણા રાખવી. ભિંતોના સ્થાને (ભ્રમના ભદ્રોમાં) સ્તંભો મૂકી શકાય. તેમાં સંશય ન કરવો એ રીતે બે ભ્રમના પ્રાસાદના વિભાગ કનીષ્ઠમાનના જાણવા ૭–૮

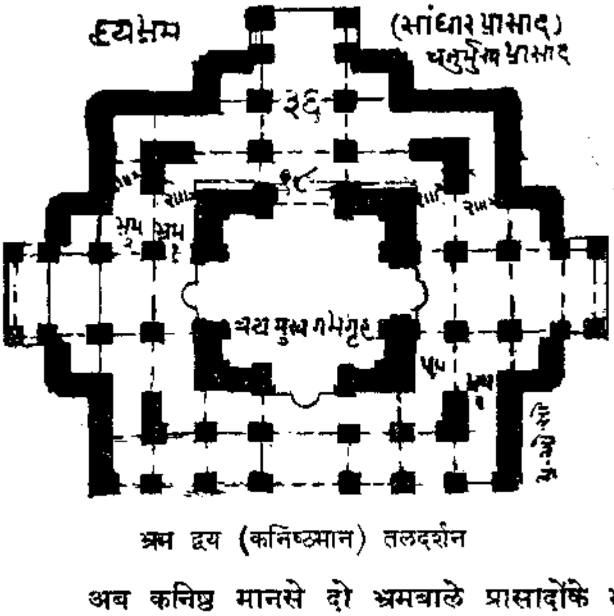

भ्रम द्वय (कनिष्ठमान) तलदर्शन

अब कनिष्ठ मानसे दो भ्रमवाले प्रासादोंके भागों कहते हैं। बाहर रेखाके पर छत्तीस भाग करना। उसमें बिचका लिंगापीठ (स्तूप) (भित्तिसहित) गर्भगृह अठारह भागका रखना। उसकी चार दिवारें साढ़े छः भागकी (अर्थात् १॥= भागकी एक करना) कनिष्ठमान के द्वय भ्रमकी रखना। साढे ग्यारह भाग के चार भ्रमों (२॥= भागकी एक एक प्रदक्षिणा रखना। भिंतोंके स्थानपर (भ्रम के

२. द्वयाश्रीशेत् पंच भ्रमविस्तरे–पाठांतर।

भद्रोमें) स्तम्भों रख सकते हैं। उसमें संशय न करना, इस तरह दो भ्रम के प्रासादके विभागों कनिष्ठमान के जानना। ७–८.

यथा एवं विभागं च जेष्ठत्वेष्टादश: शुभं ॥९॥
सर्वभित्ति भवेद्भागं भागैकं भ्रमणद्वयं।
द्विभागं द्विभ्रमजेष्ठं शेषं गर्भगृहं भवेत् ॥१०॥
॥ इति भ्रमद्वय ज्येष्ठमान ॥

હવે જ્યેષ્ઠમાનના બે ભ્રમની વિધિ કહે છે. અઢાર ભાગ રેખાયે કરવા સર્વ ભીતો એકેક ભાગની અને બે ભ્રમ એકેક ભાગના રાખવા એટલે એક તરફ બે ભ્રમ બે ભાગના જાણવા. અને બાકી દશ ભાગનો (ગર્ભગૃહ–(સાથે સ્તૂપ) રાખવો. ૯–૧૦.

अब ज्येष्ठमान के दो भ्रमकी विधि कहते हैं। अठारह भाग रेखाके पर करना। सर्व दिवारें एक एक भागकी और दो भ्रम एक एक भागके रखना। अर्थात् एक तरफ दो भ्रम दो भागके जानना और बाकी दश भागका (गर्भगृह स्तूप साथका रखना। ९=१०.

क्षेत्राष्ट दशभिर्भागं षड्भागं लिङ्गपीठके।
भागैकं षटभित्ति च भाग भागं भ्रमत्रय ॥११॥
स्तंभा श्रेणि युतां तंश्च भ्रमांश्चत्वारि धीमतांम्।
मध्यवेदिककृते गभ (क्षेत्र) सभ्रमं च करोटकः ॥१२॥
ज्ञायते तद् भ्रमं पंच महामेरूप्रसिद्धयेत्।
कवलिका सभ्रमाख्याता भाषितं विश्वकर्मणा ॥१३॥

સાંધાર પ્રાસાદના બહાર રેખાયે હોય તેના અઢાર ભાગ કરવા. તેમાંથી વચ્ચે છ ભાગનું લિઙ્ગપીઠ સ્તૂપ ભિતિ સાથે ગર્ભગૃહ–રાખવો. તેની છ ભિંતો એકેક ભાગની અને ત્રણ ત્રણ ભ્રમ પણ એકેક ભાગના કરવા. (એ રીતે ભ્રમનું પ્રમાણ જાણવું.) ૧૧–૧૨–૧૩.

सांधार प्रासादके बाहर रेखाके हो उसके अठारह भाग करना। उनमें से बिचमें छः भागका लिङ्गपीठ–स्तूप–मित्ति के साथ गर्भगृह रखना। उसकी छः

(२) શ્લોક ૭–૮ ના પાઠો ઘણા જ અશુદ્ધ અને ગણત્રી બહારનાં વિભાગ અશુદ્ધ હતા. શુદ્ધ પાઠો મળશે તો નવી આવૃત્તિ શુદ્ધ પાઠ મુકીશું.

२. श्लोक ७–८ के पाठो अशुद्ध है। शुद्ध मिलनेसे नया संस्करणमें शुद्ध पाठ रखेंगे।

दिवारें एक एक भागकी और तीन तीन भ्रम भी एक एक भाग के करना। (इस तरह तीन भ्रमका प्रमाण जानना। ११–१२–१३.

ભ્રમની ભીંતોમાં મધ્યભાગમાં ચચ્ચાર શ્રેણીના સ્તંભો બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ

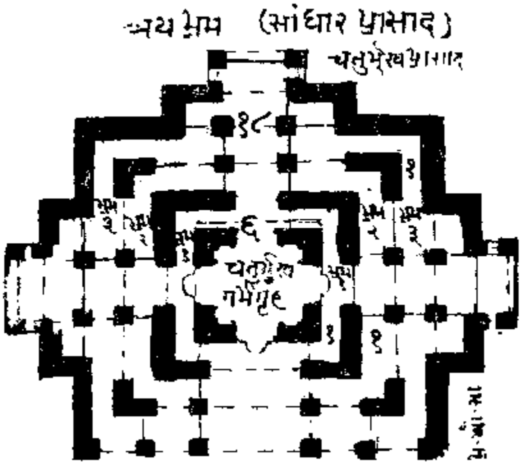

भ्रमत्रय–तलदर्शन

કરવા. (તેવું બબ્બે એટલે ચાર ભ્રમના પ્રાસાદને કરવું.) મધ્યમાં વેદીકા કરી ગર્ભગૃહને ઘુમટી–કલાડીયા–કરોકટ કરવો. પ્રસિદ્ધ એવા મહામેરૂને પાંચ ભ્રમ કરવા. (અથવા પંચ મેરૂને આ રીતે ભ્રમ કરવા!) આગળ કોલીકા ભ્રમના વિભાગમાં શ્રી વિશ્વકર્માએ કહી છે.

भ्रमकी दिवारोंमें मध्यभागमें चार चार श्रेणीके स्तंभ बुद्धिमान शिल्पी को करना। (वैसा दो दो अर्थात चार भ्रमके प्रासादको करना। मध्यमें वेदीका कर गर्भगृहको घुमटी कलाडिया–करोटक करना। प्रसिद्ध ऐसे महामेरूको पाँच भ्रम करना। (अथवा पंचमेरू को इस तरह भ्रम करना?) आगे कोलीका भ्रम के विभागमें श्री विश्वकर्माने कही है।

एक द्विर्द्वयो त्रीणि तृतीये चतुपंचके।
मध्य वेदी समायुक्त भ्रमस्तैतालिलक्षणम् ॥ १४॥
भ्रमश्च भ्रमयोंमध्ये यदाभित्ति निवेशितम्।
सषष्ट तसोत्परे प्राज्ञ क्रमशा क्रमणान्तके (?) ॥ १५॥

સાંધાર પ્રાસાદને એક ભ્રમ બેને બે ત્રણના ત્રણ અને ચાર અને પાંચ ભ્રમો કરવાં વચ્ચે વેદી (ભદ્રમાં) ભ્રમની તાલીકાનાં લક્ષણો જાણવાં ભ્રમ અને બીજા ભ્રમની વચ્ચે ભિતી કરવી. ભ્રમના મધ્યના ભાગમાં સ્તંભોની શ્રેણી કરવી. એ રીતે ડાહ્યા શિલ્પીએ ક્રમ પર ક્રમથી ભ્રમો કરવાં. ૧૪–૧૫.

सांधार प्रासादको एक भ्रम दो को दो, तीनके तीन और चार और पाँच भ्रमों करना। बिचमें वेदी (भद्रमें) भ्रमकी तालिकाके लक्षण जानना। भ्रम और दूसरे भ्रमके बीच भिती करना। भ्रमके मध्य भागमें स्तंभों की श्रेणी करना। इस तरह बुद्धिमान शिल्पीको क्रमपरक्रमसे भ्रमों करना चाहिये। १४–१५

शिवेच देवता उक्ता आगमस्ता पुनः पुनः ।
एहि–उक्ता ग्रहासर्वे तत्सर्वेभ्रममध्यनः ॥ १६ ॥

भवाज्ञा रुप संयुक्ता गणपति विविधानि च ।
नकुलिशो शेषरामाश्चभ्रमस्तुयलंकृते ॥ १७ ॥

प्रवेक्ष्यं यदा सूर्ये सौम्यादि नवमेव च ।
भ्रमस्थाने प्रदातव्या पूजिता च सुखावहा ॥ १८ ॥

ब्रह्मा

महिषासुरमर्दिनी

सूर्य

विष्णु

उर्ध्वे पृथक् पृथक् पक्ष तोरण पक्षे विरालिका स्तंभिका आदि परिकर युक्त

આવા સાંધાર ભ્રમયુક્ત પ્રાસાદોમાં શિવઆદિ દેવો જે આગમોમાં તેની અંગ સંખ્યા ફરી ફરીને કહી છે..........તે સર્વે તથા સર્વ ગ્રહો ફરતા ભ્રમની ભીંતોના મધ્યમાં કરવા....ગણપતિના જુદા જુદા બત્રીશ સ્વરૂપો (મુદ્‌ગલ પુરાણમાં કહ્યા છે તે નકુલીશ ભગવાન શેષનારાયણ રામ આદિ સ્વરૂપો ભ્રમ પ્રદક્ષિણામાં કરી અલંકૃત કરવા...સૂર્ય અને ચંદ્રાદિ નવ ગ્રહો ભ્રમના સ્થાનમાં તેનાં સ્વરૂપો કરી પૂજવાથી સુખને આપનારા જાણવા, ૧૬–૧૭–૧૮.

ऐसे सांधार भ्रमयुक्त प्रासादो में शिव आदि देवों जो आगमों में उनकी अंग संख्या बार बार कही गई है......उन सब तथा सब ग्रहोंके चारों ओर भ्रमकी दिवारों के नकुलीश भगवान शेषनारायण राम आदि स्वरूपों भ्रम प्रदक्षिणामें कर अलंकृत करना...सूर्य और चन्द्रादि नौ ग्रहों भ्रमके स्थानमें उनके स्वरूपों कर पूजन करनेसे सुखके देनेवाले हैं । १६–१७–१८.

श्रुतदेवी–शारदा

सरस्वती का १२ स्वरूप

१ महाधेनु

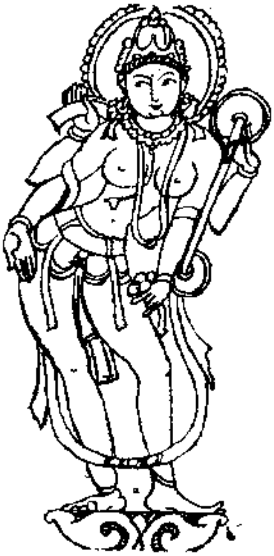

२ वेदगर्भा

३ ईश्वरी

४ जयादेवी

५ विजयादेवी

६ सारंङ्गदेवी

७ तुंबरीदेवी

८ नारदीदेवी

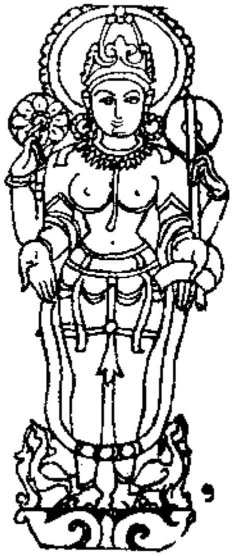

९ सर्वमंगला

नारदादि रिषि सर्वे पांडवाद्यायुधिष्ठिरः ।
प्रासादे भ्रम संस्थाने स्वस्थाने भ्रम प्रदक्षिणे ॥ १९ ॥
स्वच्छंद भैरवाद्यं च आनंदो प्रति भैरव ।
मुक्ति उक्ता यथा देव्या भ्रम स्थाने सुखावहा ॥ २० ॥

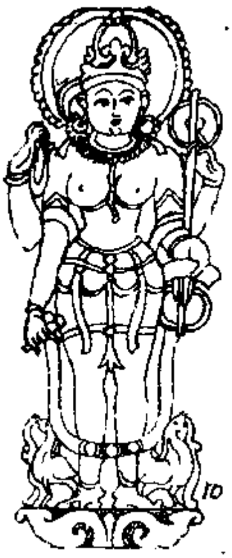

१० विद्याधरी

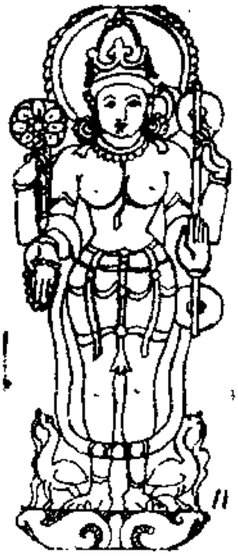

११ सर्वविद्या

१२ सर्वप्रसन्ना नारदीय

अष्टाशिति सहस्त्राणि ऋषिराज सुखावहा।
ब्रह्मणे भ्रमसंस्थाने वसिष्ठाद्य प्रदक्षिणे ॥२१॥

નારદ આદિ સર્વ ઋષિઓ અને યુધિષ્ઠિરાદિ પાંડવો પ્રાસાદના ભ્રમના પોત પોતાના સ્થાને ફરતા કરવા. તેમાં સ્વચ્છંદ ભૈરવાદિ આનંદ ભૈરવ પ્રતિ ભૈરવ તથા મુક્તિને દેનારા એવા દેવો અને દેવીઓને પ્રદક્ષિણામાં સ્થાપવા તે સુખને આપનારા જાણવા ભ્રમમાં અઠ્યાશી હજાર ઋષિ વસિષ્ઠાદિનાં સ્વરૂપો બ્રાહ્મના મહા પ્રાસાદના ભ્રમની પ્રદક્ષિણામાં કરવા. ૧૯–૨૦–૨૧.

दक्षिण दिग्पाल यम

भैरव-क्षेत्रपाल
नीरुती

उमामहेश—आसनस्थ

उर्ध्व नृत्य—ललाट तिलक
शिव

नारद आदि सर्व ऋषियों और युधिष्ठिरादि पाँडवों को प्रासादके भ्रमके अपने अपने स्थानपर फिरते करना। उनमें स्वच्छंद भैरवादि. आनन्द भैरव, प्रति भैरव तथा मुक्तिदाता ऐसे देवों और देवियों को प्रदक्षिणा में स्थापना वे सुखके देनेवाले हैं। भ्रममें अट्ठासी हजार ऋषि वसिष्ठादि के स्वरूपों ब्रह्मा के स्वरूपों ब्रह्माके महाप्रासादके भ्रमकी प्रदक्षिणामें करना। १९–२०–२१.

इतिश्री विश्वकर्माकृतायां क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां सांधार भ्रम निरुपणाधिकारे शताग्रे सप्तदशाधिकारे ॥ ११७ ॥ क्रमांक अ० १९

ઇતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ શ્રી નારદઋષિએ પૂછેલા સાંધાર ભ્રમ નિરૂપણ અધિકાર પર શિલ્પ વિશારદ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઇ સોમપુરાએ રચેલી સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો સત્તરમો અધ્યાય. ૧૧૭, (ક્રમાંક અ० ૧૯)

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णवमें नारदजीके पूछे हुए सांधार भ्रम निरूपण अधिकार का शिल्प विशारद श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुराकी रचि हुओ सुप्रभा नामकी भाषाटीका एकसौ सत्रहवाँ अध्याय ॥११७॥ (क्रमांक अ० १९)

शिव - तांडवनृत्य

॥ अथ सांधार चतुर्मुख प्रासाद वर्णन ॥

क्षीरार्णव अ० ११८ क्रमांक २०

श्री नारदोवाच–

स्वर्ग[1] स्थानार्चितं पूर्वं शिवस्थानं चतुर्मुखः ।
जिनभवन देवलोके ममश्रुत्वा मुहुर्मुहुः ॥१॥
पुनः कांच विशिष्ट[2] च मानतुङ्गे[3] महीतले ।
उक्ता चातुर्मुखा सर्वे कथितं मम सांप्रत ॥२॥

શ્રી નારદજી કહે છે. ચાતુર્મુખ એવો શિવસ્થાન પ્રાસાદ સ્વર્ગમાં પૂજાય તેવો આપે આગળ કહ્યો, તેવો દેવલોકમાં પૂજાય તેવા જીન ભવનનો મર્મ મને કહો. મૃત્યુ લોકમાં પૃથ્વીને વિશે વિશિષ્ઠ એવો કાંચન જેવા પ્રાસાદ ચાતુર્મુખ હવે મને કહો. ૧–૨.

श्री नारदजी कहते हैं—चातुर्मुख ऐसा शिवस्थान प्रासाद स्वर्गमें भी पूजनीय होवे वैसा आपने आगे कहा, वैसा ही देवलोक से पूज्य होवे वैसा जिनभवन का मर्म मुझे बताओ । १–२.

श्री विश्वकर्मा उवाच–

* उक्तं माहवमितिश्च क्षेत्रे[4] चातुर्मुखं वंदिते ।
प्रासाद ब्रह्मसूत्रे सरथर[5] युक्तेन च ॥३॥
नंदकोष्ट[6] प्रतिष्ठे त्याद्यततः वेदि भ्रमति परिधा ।
मंडपा तस्य चाग्रेण त्रिभिः[7] कर्णं षड्रियता वेदिका ॥४॥
तेषां युक्ति विधातन सुरे जैनेंद्र[8] पुर्वोत्तरे[9] ।
युक्ताकोष्ट प्रमाण विवरे आयामां विस्तीर्णा कोष्टे ॥५॥
उपसिविटपे (?) आयामं त्रिंश गृह्यंति कोष्टा ।
विधेभ्य श्रति, मेघा रचति मेघस्वरानि[10] सिंहश्रिते ॥६॥

पाठान्तर १. स्वचित पूर्वं चतुर्मुख, २. विसिष्टं, ३. मातलोगे, ४. ब्येत्रे, ५. सरबयुक्तेन ६. नंदाकाष्टे, ७. कर्णे कर्णे त्रिभिः, ८. नेनेंद्र, ९. पूणोत्तरे, १०. मेघध्वरानि ।

* શ્લોક ૩ થી ૧૦ માં ઘણી અશુદ્ધિઓ હોવાથી અનુવાદ થઈ શક્યો નથી.

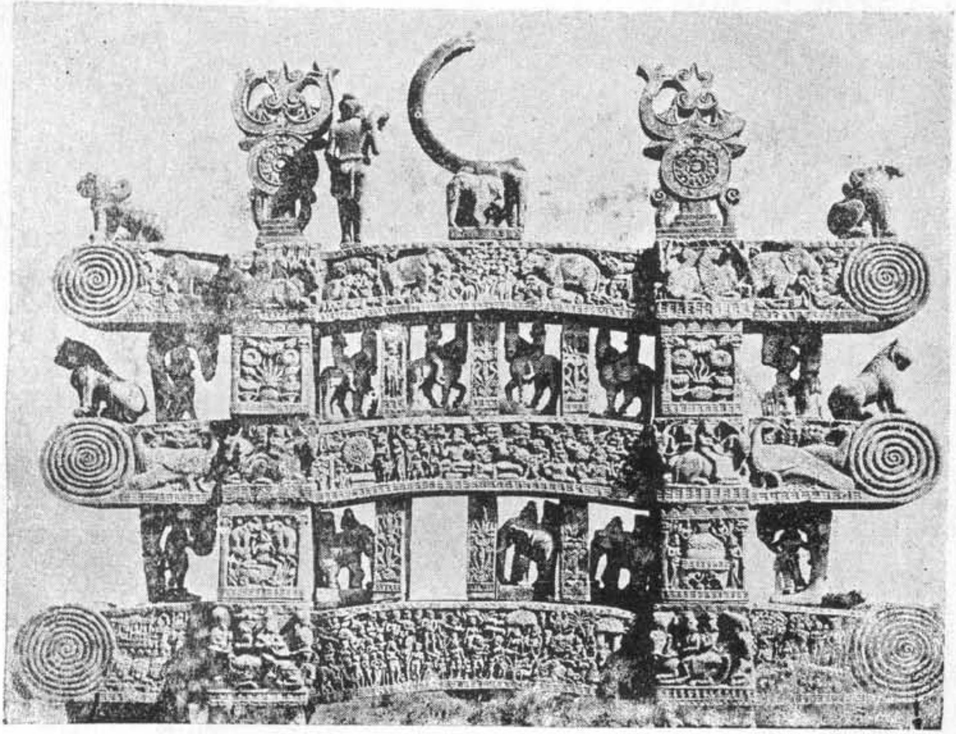

त्रिताल तोरण सांचीस्तूप ईस. पूर्वे दुसरी शताब्दी

कच्छामय हींडोलक (आंदोलक) तोरण सोमनाथ (प्रभासपाटण)

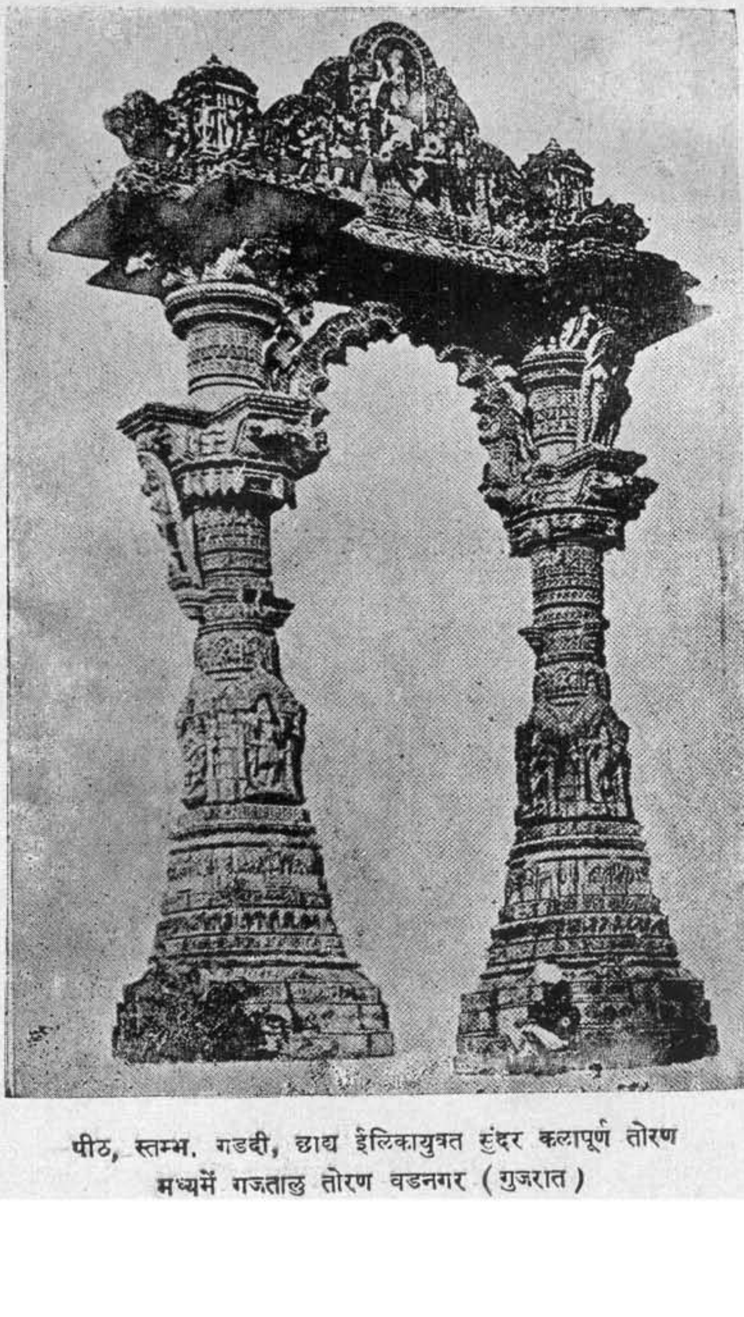

पीठ, स्तम्भ, गडदी, छाद्य ईलिकायुक्त सुंदर कलापूर्ण तोरण
मध्यमें गजतालु तोरण वडनगर (गुजरात)

तथाग्रि मेघारचंति सार्ध्वं नाल्योपरिः संक्रमे ।
अधरः स्वभूमिकृते नंदवेदी कक्षान्तरे ॥७॥
वर्तने त्यावच्छादनं [11]भूमति चेइ चातुर्दक्षु निर्भिता ।
द्वौ कोष्टो भ्रमण रहितं त्रिविदिस्तु मे संचयम् ॥८॥
प्रासाद [12]पक्षे भ्रम वेदि उच्छालयं उत्तमं ।
संलग्नं स्तंभत्यजे भिति त्यजेत्............... ॥९॥
लग्नापुटं उछालने रुपमनेक चित्रे प्रासादानां सन्मुखम् ।
च्छादंति छानिरुपा: प्रसिद्ध: सूर्यादि ताराउली ॥१०॥
रथोपरथ निष्कान्ते माने कवली सदा ।
निर्भितं गवाक्ष मदलै[13] स्तंभस्य सहित पदभ्यं पटान्तरे ॥११॥
द्वारश्च द्वारे[14] शाखा प्रशाखे उपर्यु परि भूमिके ।
पुनः पुनः कपोताली जंघा प्रजंघा कपोल[15] छाद्यके ॥१२॥

ભાવાર્થ–રથ ઉપરથના ઉપાંગોના નિકાળાના માનથી કોળીનું નિર્માણ હંમેશાં કરવું ગોખ જરૂખા મદન સ્તંભો સહિત સુશોભિત કરવું–પદના પાટ સુધી....દ્વાર ઉપર દ્વાર દ્વારની શાખા ઉપશાખા ઉપરાઉપર કરવી. ઉપલી ભૂમિને ફરી કેવાળ જંઘા તે પર ફરી જંઘા કરી કેવાળ પર છજું કરવું ૨૯–૩૦

भावार्थ—रथ उपरथके उपांगोंके निकालेके मानसे कोलिका निर्माण हमेशां करना । गोख, झरोखा महल स्तंभों के सहित सुशोभित करना । पदके पाट तक... ...द्वारके ऊपर द्वार द्वारकी शाखा उपशाखा उपरापर करना । उपरकी भूमि को फिर केवाल जंघा, उसके पर फिर जंघा कर केवाल–पर छज्जा करना । २९–३०

मानतुङ्गो विराजितः सदा जिनेंद्र उक्ता शुभा ।
त्यात्र जगती भ्रमती परिधी लुब्ध मानतुङ्गा ईता ॥१३॥
ज्ञाति वैरादिच्छंदर्विमाने मञ्जर्य रेखा निजः ।
श्री भद्रागतश्च क्रियते अक्षय पदं लभ्यते (?) ॥१४॥

ભાવાર્થ—માનતુંગ પ્રાસાદ જ્યાં છે ત્યાં સદા શુભ એવા જિનેન્દ્ર પ્રભુ વિરાજે છે, તેની જગતી પરિધી–ભ્રમવાળી છે. માનતુંગ પ્રાસાદ વૈરાટી જ્ઞાતિ છંદ કે વિમાન જાતિમાં મંજરી રેખાવાળું શિખર કરવું. આવો પ્રાસાદ કરાવનારને અક્ષય પદના લાભની પ્રાપ્તિ થાય છે. ૩૧–૩૨

पाठान्तर ११. भ्रमतिः, १२. प्रासाद क्षेत्रभ्रमवेदिः, १३. मदलैर्धभस्या, १४. द्वैर भ्रद्धारे, १५. कपोत ।

भावार्थ—मानतुंग प्रासाद जहाँ है वहाँ सदा शुभ ऐसे जिनेन्द्र प्रभु बिराजते हैं। उसकी जगती परिघी–भ्रमवाली है। मानतुंग प्रासाद वैराटी जाति छंद या विमान जातिमें मंजरी रेखावाला शिखर करना। ऐसा प्रासाद करानेवाले को अक्षयपद के लाभकी प्राप्ति होती है। ३१–३२.

शिखरोर्ध्वे पंचदंड स्कंधे कुर्यादि जिनेश्वरम्।

ઉપલા ચાર ઉરુશ્રૃંગોના આમલસારામાં ચાર અને મૂળ શિખરને મળી પાંચ ધ્વજાદંડ ચૌમુખને કરવા અને શિખરના બાંધણા ઉપર જિનેશ્વરની મૂર્તિ કરવી. ૩૩.

उपरके चार उरुश्रृंगोंका आमलसारेमें चार और मूल शिखर सब मिलकर पाँच ध्वजादण्ड चौमुखको करना और शिखरके स्कंधके ऊपर जिनेश्वरकी मूर्ति करना। ३३.

चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे अष्टादश विभाजिते।
कर्ण त्रिभाग विस्तारं पल्लवी पदमेव च ॥१५॥
निर्गमंतत्समंकार्यं प्रतिकर्णद्वयो भवेत्।
निष्क्रांत समंवक्ष्ये कर्णि भागाश्च विस्तरः ॥१६॥
निवेशं च समं कुर्यात् भद्रार्धं भाग द्वयो भवेत्।
निर्गमं पद सार्द्धे च उभयो वामदक्षिणे ॥१७॥

३	કર્ણ
१	પલ્લવી
२	પ્રતિરથ
१	નંદી
२	ભદ્ર
૯	ભાગ
૯	ભાગ
१८	

પ્રાસાદના ચોરસ ક્ષેત્રના અઢાર ભાગ કરવા કરવા. તેમાં રેખા ત્રણ ભાગની પલ્લવી (નંદી) એક ભાગની સમદલ, એવા બે પ્રતિકર્ણ બબ્બે ભાગના તે પણ સમદલ કરવાં. નંદી–ખૂણી એક ભાગની સમદલ અરધું ભદ્ર બે ભાગનું અને તેનો નીકાળો દોઢ ભાગનો રાખવો એમ બે ઉત્તર ડાબી જમણી તરફ એમ ચારે તરફ કરવું. ૧૫–૧૬–૧૭

प्रासादके चोरस क्षेत्रके अठारह भाग करना। उनमें रेखा तीन भाग की पल्लवी (नंदी) एक भागकी समदल, ऐसे दो प्रतिकर्ण दो दो भाग के, वे भी समदल करना। नंदी कोनी एक भाग की शमअर्धा भद्र दो भागका और उसका निकाला डेढ़ भागका रखना। इस तरह दो उत्तर बायीं दायीं तरफ ऐसे चारों तरफ करना। १५–१६–१७.

कर्णे नन्दनं सर्वेषां नवश्रृङ्गैः रथोपरि।
नंन्दि श्रीवत्समेकैकं रथिका भद्रभूषितं ॥१८॥
रथे कर्ण पुनः कार्यं नव पश्च परि भ्रमं।
कर्णि तिलकं प्रदातव्यं कूटकारादिकं[१७] क्रमात् ॥१९॥

पाठान्तर १७ कंटकारादिकं

केसरी कर्ण संस्थाने रथे श्रीवत्सदापयेत् ।
मञ्जरी मूल रेखा च षट्श्रृंगसतुला (!) ॥२०॥
ऊरु ङ्गं प्रत्यांङ्गे सरतरा सर्वकामदा ।
नागेषवेद युक्ताश्च श्रृङ्गवत्
पूरितांन्तरै ॥२१॥
तिलकं षड्त्रिंशोक्तं[१८] मानंतुङ्ग
विराजिते ।
तेषा लक्ष मातंगैश्च रिषिराज
श्रृणोत्तमम् ॥२२॥ इति मानतुङ्ग

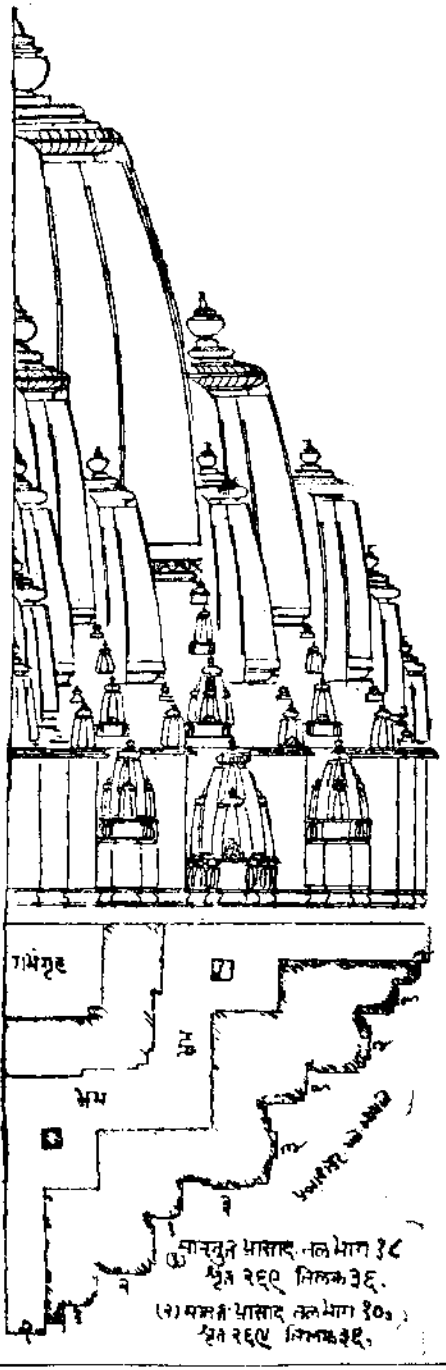

(१) मानतुंग प्रसाद तल भाग १४ श्रृङ्ग २६९ तिलक ३६ (२) मातङ्ग प्रासाद तल भाग १० श्रृङ्ग २६९

રેખા કર્ણે તેર અંડકનું નંદન કર્મ પહેલું ચડાવવું. પઢરે નવ અંડકનું સર્વતોભદ્ર ચડાવવું. ભદ્રની બેઉ ખૂણીઓ પર એકેક શ્રૃંગ ચડાવવું. ફરી રેખા પર નવ શ્રૃંગનું સર્વતોભદ્ર અને પ્રતિરથ પર પાંચ અંડકનું કેસરી ચડાવવું. ખૂણીઓ પર તિલક ફૂટ ચડાવવા. રેખા પર ત્રીજું કર્મ કેસરી પાંચ અંડકનું અને પ્રતિરથ પર શ્રીવત્સ-શ્રૃંગ ચડાવવું. મૂળ રેખા પર મંજરી (તિલક ચડાવવું.) ....(ભદ્રના ખૂણે એક તિલક ચડાવવું) ઉરુશ્રૃંગ સોળ અને આઠ પ્રત્યાઙ્ગ ચડાવવાથી બસો ઓગણસીત્તેર ૨૬૯ શ્રૃંગ અને છત્રીશ તિલક ચડે ત્યારે ઇતિ માનતુંગ નામનો પ્રાસાદ થયો ૪-૫ જાણવો. હવે માતંગ પ્રાસાદના લક્ષણ હે ઋષિરાજ ! કહું તે સાંભળો. ૧૮ થી ૨૨.

कर्ण पर तेरह श्रृङ्गका नंदन कर्म प्रथम चढ़ाना। प्रतिरथ पर ९ सर्वतोभद्र

१८ तिलकं विंशोक्त

भद्रके कोणी पर एकेक श्रृङ्ग चड़ाना--फिर कर्ण पर नौ शृङ्गका सर्वतोभद्र, और

४८॥ भागका कनिष्ठमानका मंडोवर

प्रतिरथ पर केसरी चड़ाना। कौने पर तिलक कूट रखना--कर्ण उपरे तीसरा कर्मे केसरी पाँच शृङ्गका चड़ाना और प्रतिरथे एक श्रृङ्ग चड़ाना। मूल रेखा पर मञ्जरी-तिलक चड़ाना......... ...भद्रके कौने पर तिलक रखना। उरुशृङ्ग सोलह और प्रत्यांग आठ चड़ानेसे दोसौ उनसित्तर श्रृङ्ग और छत्तीस तिलक चड़ानेसे मानतुङ्ग नामक प्रासाद समजना। अब हे ऋषिराज! मातङ्ग प्रासाद का लक्षण मैं कहता हुँ वो सुनो। १८ से २२ इति मानतुङ्ग

दशधात यदा क्षेत्रं चेइ आणे निवेशितं।
मानतुङ्गश्च यदाङ्गा शिखर सर्व कामदम् ॥२३॥
अन्यत्रांङ्ग न कर्तव्यं प्रासादादि संयुतम्।
चेइआणे विशेषण शोक सन्ताप कारितः ॥२४॥
यादशं मूल प्रासाद तादश[१९] जगतीः क्रम।
रथेयुक्ते विभागं च समेश्रृङ्ग समाकुलम् ॥२५॥
इति मातङ्ग

ભાવાર્થ-માતંગ પ્રાસાદ ચેઇયાણુના ક્ષેત્રના દશ ભાગકરવા તેમાં અંગ ફાલના માનતુંગ પ્રાસાદ જેટલા (અઢારના દશભાગે) કરવા અને શિખર પણ એવા જ પ્રકારનું કર્મશ્રૃંગવાળું કરવાથી સર્વ કામનાને આપનારૂં જાણવું. તે પ્રાસાદ અંગ વિભાગ બીજા ન કરવા. જો બીજા કરે તો શોક સંતાપને આપે. જ્યાં સુધી મૂળ પ્રાસાદના રથ આદિ અંગ વિભાગ કરવા અને શ્રૃંગો પણ એમ તેટલા જ ચડાવવા (રેખા બે ભાગ, બે નંદી અરધા અરધા ભાગની, પ્રતિરથ અને ભદ્ર એકેક ભાગના મળી દશ ભાગ કરવા.) ઇતિ માતંગ. ૨૩-૨૪-૨૫.

मातङ्ग प्रासादका क्षेत्रका दश भाग करना (२ भाग रेखा दो नंदी आधा आधा भाग। प्रतिरथ और भद्रार्ध एकैक भाग) उनका फालना मानतुङ्ग जीतना

१९ तादशं चतुर्दिश्यो।

प्रमाणसे रखना। शिखर उसी प्रकारका कर्म श्रृंग युक्त करना यह सर्व कामना दायक समजना। प्रासादका अङ्गविभाग और श्रृङ्गादि अन्य प्रकारका करना नहि यदी करे तो शोक संतापकारक समजना। २३–२४–२५

इति मातङ्ग

तथा मंडोवरे रिषि विभागं श्रृणु सांप्रतम्।
पीठं पूर्व प्रमाणेन कुबेर कुमुदोद्भवम् ॥२६॥
खुरकं द्वयं भागानी कुंभकं पंच मेव च।
कलशं त्रिभागमुत्सेधं रन्तरपत्रं पदार्धत ॥२७॥
कपोताली त्रिभागेन [20]मञ्चिका त्रिणि वे रिषि।
[21]चतुर्दश्योच्छिता जंघा सार्धचत्वारि उद्गमम् ॥२८॥
भरणी गुण विचारेण द्विपदंउर्ध्वकपोतिका।
छादनं पदमेकेन कपोताली च पूर्वतः ॥२९॥
अर्धयान्तर पत्रं च चत्वारि कूट छाद्यकं।
कन्यसं च अतः प्रोक्तं मध्यमानं च कथ्यते ॥३०॥

२	खरो
५	कुंभो
३	कलसा
०॥	अंतरपत्र
३	केवाल
३	मंचिका
१४	जंघा
४॥	उद्गम
३	भरणी
२	ऊर्ध्वकथो
१	छादन
३	केवाल
०॥	अंतराल
४	छजु
४८॥	भाग

હે ઋષિરાજ! હવે મંડોવરના વિભાગ સાંભળો. પીઠ આગળ કહ્યા પ્રમાણે કુબેર કે કુમુદોદ્ભવ પ્રકારનું કરવું. ખરો બે ભાગ, કુંભો પાંચ ભાગનો, કળશો ત્રણ ભાગનો, અંતરપત્ર અરધા ભાગનું, કેવાળ ત્રણ ભાગનો, માચી ત્રણ ભાગની, જંઘા ચૌદ ભાગની, ઉદ્ગમ દોઢીયો સાડા ચાર ભાગનો, ભરણી ત્રણ ભાગની, (૩૮ ભાગ) તે પર ઉર્ધ્વ કેવાળ બે ભાગનો, છાદન એક ભાગનું, કેવાળ ત્રણ ભાગનો, અંતરપત્ર અરધા ભાગનો, ચાર ભાગનું છજું. એ રીતે ૪૮॥ ભાગના કનીષ્ઠ માનના મંડોવરના ભાગ કહ્યા. હવે મધ્યમાનના મંડોવરના વિભાગ કહું છું.

हे ऋषिराज! अब मंडोवर का विभाग सुनाता हुँ। पीठ आगे कहा ऐसा कुबेर–या कुमुदोद्भव प्रकारका करना। खुरो–दो भाग, कुंभक पाँच भाग, कलशा तीन भाग, अंतराल आधा भागका, केवाल कनिष्ठमान और माची तीन तीन भागकी जंघा चौदा भागका, देढीया साढा चार भागका, भरणी तीन भाककी, (३८ भाग) उसकी पर अर्ध्व केवाल दो भागका, छादन एक भागका, केवाल तीन भागका, अंधारी आधे भागकी, और छज्जा चार भागका। ऐसे कनीष्ठ माकका मंडोवर ४८॥ भागका कहा, अब मध्य मानका मंडोवर कहता हुँ। २६ से ३०

पाठान्तर २० मंचिका स्तंभवेद्धिमि २१ चतुर्दश

भरणी मस्तके प्राज्ञ चतुर्भागा शिरावटिः ।
छादनं कथ्यते पूर्वं कपोतालि च पूर्वतः[22] ॥३१॥
पुनः कपोताली त्रिभागेन अर्धे चांन्तरपत्रय ।
कूट छाद्यं भवेत्पूर्वं मध्यमानंतु निश्चयं ॥३२॥

ઉપર કહેલા કનિષ્ઠમાનના મંડોવરમાં ત્રણ ભાગની ભરણી (સુધીના ૩૮ ભાગ) ઉપર ચાર ભાગની શિરાવટી અને આગળ કહ્યા તે પ્રમાણે છાદન એક ભાગ, કેવાળ ત્રણ ભાગ ફરી કેવાળ ત્રણ ભાગનો, અંધારી અર્ધ ભાગની, છજુ ચાર ભાગનું કરવું. એ રીતે ૫૩॥ ભાગનો મધ્યમાનનો મંડોવર જાણવો. ૩૧-૩૨.

૩ ભરણી
૩૮ ભાગ આગળ
૪ શીરાવટી
૧ છારન
૩ કેવાલ
૩ કેવાલ
૦॥ અંધારી
૪ છજુ
ભાગ ૫૩॥
મધ્યમાન

૪૬
૯ જંઘા
૪॥ દોઢીયો
૩ ભરણી
૩ કેવાલ
૦॥ અંધારી
૪ છજુ
ભાગ ૭૦
જેષ્ઠમાન

आगे कहा हुआ कनिष्ठमान का मंडोवर में तीन भागकी भरणी (थर्यतका ३८ भाग) उपर चार भागकी शिरावटी, एक भागका छादन, तीन भागका केवाल फीर तीन भागका केवाल, आधे भागकी अंधारी, चार भागका छज्जा करना । ऐसे ५३॥ भागका मध्यमानका मंडोवर समजना ।

कपोताली बभूमध्ये जंघा भाग नव स्तथा ।
[23]उपरे छाद्य प्रधानं च ज्येष्ठ मानं च सिद्धति[24] ॥३३॥

ઉપર કહ્યા મધ્યમાનના ૫૩॥ ભાગમાં બે કેવાળ વચ્ચે ૪૬ ભાગ પર જંઘા નવ ભાગની કરવી. તે ઉપારના થરો આગળ કહ્યા. દોઢીયો ૪॥ ભાગ, ભરણી ત્રણ ભાગ, કેવાળ ત્રણ ભાગનો, અંધારી અરધો ભાગ અને ચાર ભાગનું છજુ મળી કુલ ૭૦ ભાગનો જેષ્ઠ માનનો મંડોવર સિદ્ધિને આપનાર જાણવો. (બે ભૂમિ એક છાદ્ય) ૩૩.

आगे मध्यमानका ५३॥ भागमें दो केवालकी बिचमें ४६ भाग, उपर जंघा नव भागकी ते उपरके थरों आगे कहा उद्गम ४॥ भाग, भरणी तीन भाग, केवाल तीन भाग, अंधारी आधा भाग उपर मुख्य छाद्य चार भागका मीलके ७० भागका ज्येष्ठमानका मंडोवर (दो भूमि एक छाद्यका) सिद्धि दायक जानना । ३३

२२ पूर्वक २३ थरे छाद्यं २४ सिद्धिमि ।

विश्वकर्मा उवाच —

५३॥ भागका मध्यमानका मंडोवर

[1]तथा जगती कोष्ठेन आयामं[25] च विस्तीर्णम् ।
कोष्ठे वेदि च त्रयोविंशे [26]मुखायते च त्रिंशतिः ॥३४॥
ततो कोष्टान मध्ये चैई मेकोन विंशतिः ।
पंचविंशति मुखायते [27]त्रयमाने विधीयते ॥३५॥
त्रयो [28] कोष्टान्तरे अष्टत्रयो भद्रे च षोडशः ।
सिंहद्वार[29] बभ्रुपक्षे द्वांत्रिंशैव सिद्धयति ॥३६॥
भद्रपक्षे भवेत्त्रीणी कक्षान्तरे प्रवेष्टितं ।
[30](अष्टमत्वधू प्रविष्ठस्य भद्रे भद्रे जिनालयं) ॥३७॥
जिनालये वरश्रेष्ठः सर्वक्षेत्रे च बावन ।
.... ॥३८॥

(ભાવાર્થ) શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે....જિનાયતનની જગતીનો કોઠો લાંબો પહોળો કરવો. તે કોઠાના વેદિ ૨૩ ભાગ અને ઉંડાઈ ત્રીશ ભાગ તે કોઠામાં મૂળ પ્રાસાદ ચેંઈઆણુ (૧) ઓગણીશ ભાગ અને પચ્ચીશ ભાગ લાંબો ઉંડાઈમાં વિધિથી કરવો. ત્રણુ કોઠાના અંતરે આઠ એવા ત્રણુ ભદ્રે....સોળ.... મધ્યગર્ભથી બેઉ પડખે બત્રીશ....ભદ્રના પડખે પણુ....ત્રણુ ત્રણુ પડખાના અંતરે પ્રવિષ્ઠ કરવા. આઠ....ઊંડા પ્રવિષ્ઠ....ભદ્રે ભદ્રે જિનાલય કરવાં જિનાલયમાં બાવન જિનાલય સર્વમાં શ્રેષ્ઠ છે. ૩૪–૩૫–૩૬–૩૭–૩૮

(૧) અહીં આપેલો અધ્યાય ૧૧૮ મો કેટલીક જૂની પ્રતોમાંતે ને અ ૧૪૭મો ગણ્યો છે. એટલે તે કદાચ પાછળના ભાગમાં હોય ! આ ગ્રંથના કેટલાક પાછલા અધ્યાયો વૃક્ષાર્ણવ ગ્રંથને મળતા તેના કેટલાકના ભાગ અને પાઠો છે.

१. यहाँ दिया हुआ अध्याय ११८ वाँ कहीं पुरानी प्रतोंमें अ० १४७ वाँ गिना गया है। इससे हो सकता है वह पीछेके भागमें भी हो। इस ग्रन्थके कहीं पीछले अध्याय के वृक्षार्णव ग्रन्थसे मिलते जुलते उनके कहीं भाग या पाठों हैं।

पाठान्तर २५ आयामंत्र विस्तृतम्, २६ आयमं च त्रिंशति, २७ क्रियमान, २८ कक्षान्तरे २९ सिद्धा बभूपक्षे ३० ( ) करेल छे ते आ बे पदो केटलीक प्रतोमां नथी.

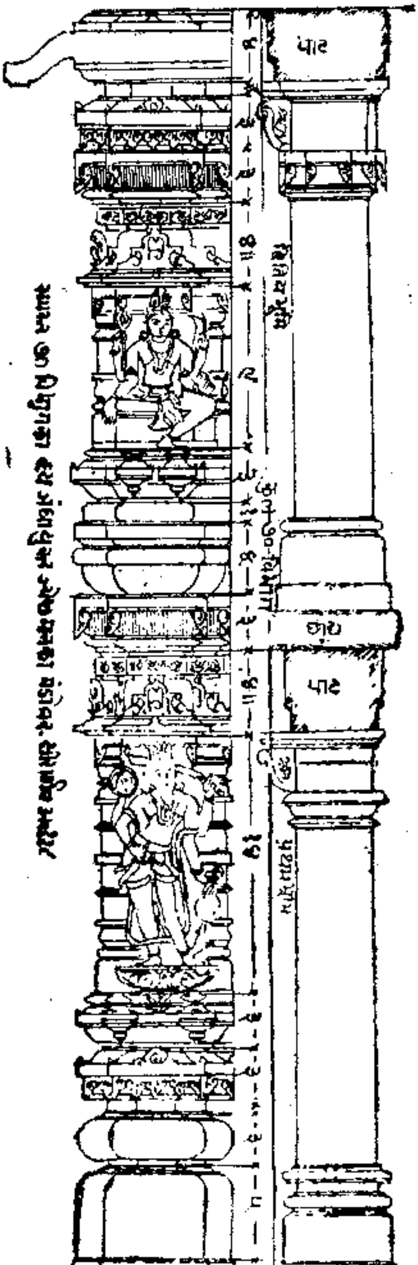

ज्येष्ठ मानका महामंडोवर एक छज्जा उदय भूमि-उदयंजघा युक्त मंडोवर समस्त भाग ७०

(भावार्थ) विश्वकर्मा कहते है... जिनायत की जगतीका कोष्ठ लम्बा चोडा करना। उस कोष्ठके वेंद २३ भाग और गहराई तीस भाग। उस कोठे में मूल प्रासाद=चेइयाण उन्नीस भाग और पच्चीस भाग लम्बा गहराईमें विधि से रखना। तीन कोठे के अंतरे आठ ऐसे तीन भद्रे ...सोलह...मध्यगर्भ से दोनु ओर बत्तीस...भद्रके बगलमें भी...तीन तीन बाजुके अंतरमें प्रविष्ठ करना। आठ ...गहरा प्रविष्ठ...भद्रे भद्रे जीनालय करना। जिनायतमें बावन जिनायतन सर्वमें श्रेष्ठ हैं। ३४-३५-३६-३७-३८.

दिग्पाल तांडवनाद्यं लास्यं
लोके वैतालश्च ॥३९॥
[३१]प्रकृते षु पुनर्निमिक्षु (?)
नृत्य कूर्याच्चतुर्मुखे[३२]।
स्तर स्थाने विशेषण शाखे
स्तंभे निरंतरे[३४] ॥४०॥
यावज्जीवानि सर्वाणि नृत्यकुर्वंति
मे सदा।
प्रासाद मानतुङ्गश्च [३५]द्विपंचाश
जिनालयः ॥४१॥
छंद नागर मादाय
सर्वछंदानिमाश्रितम्।
[३६]येनपीठ विरंचितम्
मंडोवर विशेषतः ॥४२॥
चातुर्मुखे च दातव्या पुनर्दद्या चतुर्मुखे।
इति मातग (मानतुङ्गप्रासाद)

---

३१ प्रकृत्ये न कृत्य चातुर्मुख, ३२ चातुर्दशै।
पाठान्तर ३३ पदस्थाने, ३४ विस्तरे, ३५ दिपत्रिंश बावन, ३६ जीतपिराज्यते।

ભાવાર્થ–ચાતુર્મુખ જિનાયતનને ફરતા તાંડવ લાસ્યાદિ નૃત્ય કરતા દિગ્પાલ લોકપાલ વૈતાલાદિનાં સ્વરૂપ કરવા. અને વિશેષે કરીને થરના સ્થાને, શાખાઓમાં અને સ્તંભના વિસ્તારમાં હંમેશાં સ્વરૂપો કરવાં. જ્યાં સુધી જીવોનું અસ્તિત્વ છે ત્યાં સુધી જાણે તે સર્વ હંમેશાં નૃત્ય કરતા રહે. તેવો માનતુંગ પ્રાસાદ (૩૫) બાવન....જિનાલયવાળો કરવો. પ્રાસાદના સર્વ છંદમાં નાગરછંદના આશ્રયે એટલે પ્રાધાન્ય રૂપે જાણવો. તેના પીઠ પર મંડોવર કરવો. ચતુર્મુખના ઉપર ફરી ચોમુખ એમ કરવા. ૪૦–૪૧–૪૨. ઈતિ માતંગ (માનતુઙ્ગ) પ્રાસાદ

भावार्थ—जिनालय के चारों ओर तांडव लास्यादि नृत्य करते दिग्पाल लोकपाल, वैतालादि के स्वरूप करना और विशेषकर थरके स्थानपर, शाखाओंमें और स्तंभके विस्तारमें हमेशां रूपों करना। जहाँतक जीवोंका अस्तित्व है वहाँ तक वे सब जाने हमेशां नृत्य करते रहते हो ऐसा मानतुंग प्रासाद (३५) बावन...जिनालयवाला करना। प्रासादके सर्व छंदमें नागरछंद के आश्रयपर अर्थात प्राधान्य रूपसे जानना। उसके पीठपर मंडोवर करना। चतुर्मुख के ऊपर फिर चोमुख ऐसे करना। ४०–४१–४२. इति मातङ्ग (मानतुङ्ग) प्रासाद।

जगती प्रदीया क्षेत्रे महावेदे[३७]प्रदीया[३८]जिन ॥४३॥
प्रदीया जिन संस्थाने जिणमाला[३९] मूर्ध्वनाय।
वामदक्षे तथा पृष्ठाग्र मंडपा रंङ्गमण्डपे ॥४४॥
पंचविंशति विस्तार अष्टाविंश मुखायतम्।
[४०]भागैक लोपयेत्कर्ण चतुराशिति जिणालयम् ॥४५॥
विंश विंशाग्र[४१] पृष्ठे (चतु) चत्वारिं मुखायते।
[४२]जिणमाला स्तदानाम सर्वकल्याण कारिणी ॥४६॥

१ चतुर्मुख
७६ देवकलोका
८ महधर
८४
८ मंडप
४ बलाणक
स्तंभ संख्या
४२०
३३६ देरी ८४में
१२ मूळगर्भगृह
गर्भगृह
स्तंभ ७६८ प्रथम भूमि

ભાવાર્થ–જગતીના ક્ષેત્રના....સંસ્થાનમાં જીણમાલાની વૃદ્ધિ કરવી. ડાબી જમણી તરફ અને આગળ તથા પાછળ રંગમંડપો (ફરતા ચોમુખને) કરવા. ક્ષેત્રના પચ્ચીશ ભાગ પહોળાઈ અને અઠ્ઠાવીશ ભાગ (મુખાયત=ઊંડા) લંબાઈમાં કરી ચાર ખુણે એકેક ભાગ લોપવો. એ રીતે ચોરાશી જીણાલય વીશ વીશ આગળ પાછળ અને પડખે બાવીશ બાવીશ એટલે ચુમાલીશ મુખાયતમાં જીનાયત કરવાં. એવું ચોરાશી જીણાયતન સર્વનું કલ્યાણ કરનારૂં એવું "जिणमाला" નામ જાણવું. ૪૩–૪૪–૪૫–૪૬.

३७ महाविद्ये, ३८ प्रतिमादिच, ३९ विवर्द्धनीय, ४० भागै लोपये, ४१ विंशविंशकृतेक्षेत्रे पृष्ठे चत्वारिंश मुखायतो, ४२ जिणाद्रष्टि बिचार कृतै पृष्ठे।

जीणमाला तलदर्शन

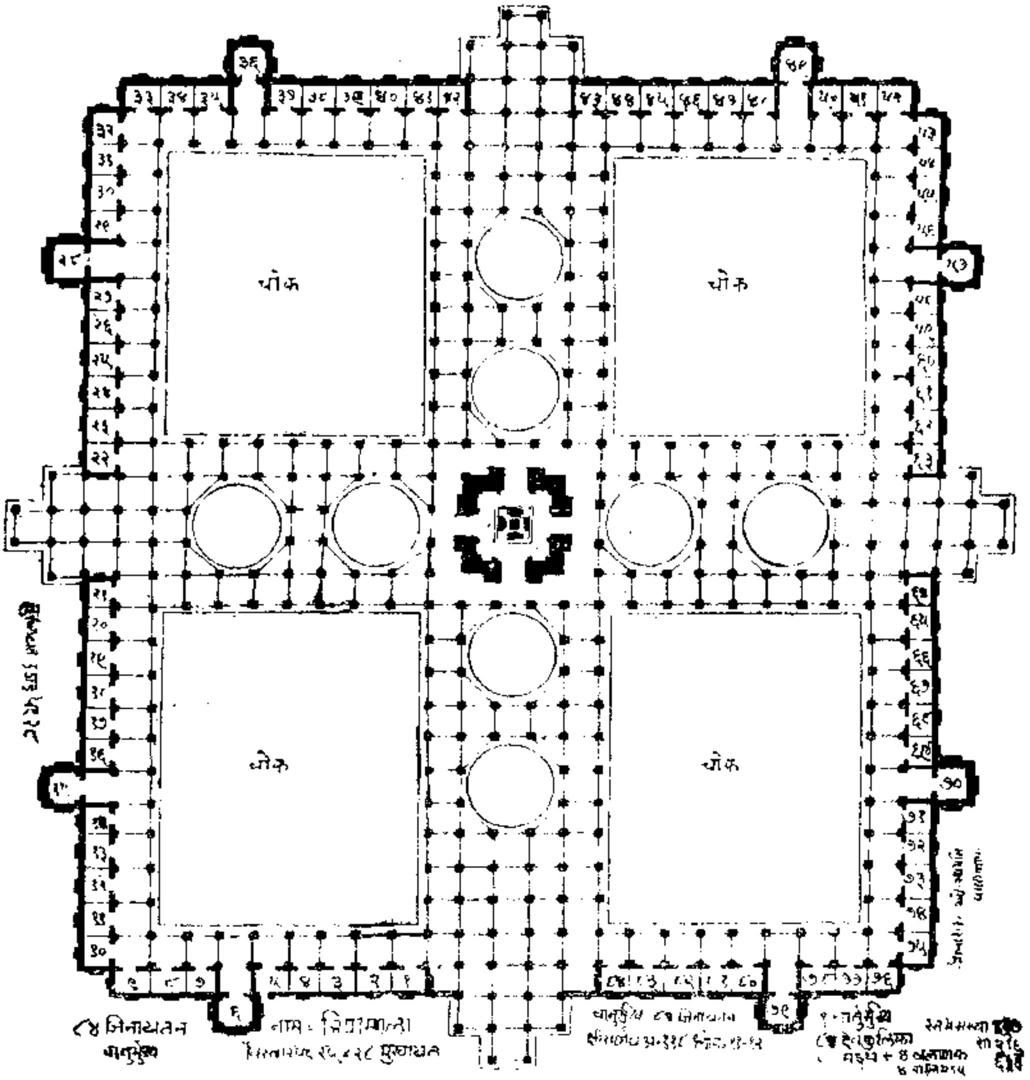

२८×२५=खण्ड=विभागका ८४ जिनायतनके चतुर्मुख **"जिणमाला"**

૧ ચતુર્મુખ	મંડપ–૮
૭૬ દેવકુલિકા	બલાણક–૪
૮ મહાધર	નાલીમંડપ–૪
૮૪	
સ્તંભ સંખ્યા	૪૨૦
દેરી ૮૪ના	૩૩૬
મૂલ ગર્ભગૃહ	૧૨
	૭૬૮

जगतीके क्षेत्रके...संस्थान के जिनमालाकी वृद्धि ...करना बाओं दायीं तरफ और आगे तथा पीछे रंगमण्डपों (फिरते चोमुख के) करना। क्षेत्रके पच्चीश भाग चौडाई और अट्ठाईश भाग (मुखायत गहरे) लम्बाई में कर चारों कोनोंमें एक एक भाग लोपना। इस तरह चोराशी जिनालय बीस बीस आगे पीछे और बाजुमें बाईस

बाईस अर्थात चुमालीश मुखायतमें जिनायत करना । ऐसा चोर्याशी जिनायतन सर्वका कल्याणकर ऐसा "जिणमाला" नाम जानना । ४३–४४–४५–४६.

द्वारस्य विस्तरंगृह्य अष्टमांशानि मध्यत: ।
ज्येष्ठमध्या कनिष्ठं वा अर्चामानं चतुर्मुखे ॥४७॥
द्वारस्य विस्तरं ग्राह्यं द्विधा भक्तं च कारयेत् ।
वीतरागो स्तथा कृष्ण अर्चामानं च सर्वतः ॥४८॥
हीने हानि प्रकुर्वित अधिके स्वजनक्षयम् ।
रेखामानं भवेदर्चा सर्वकामर्थकारिणी ॥४९॥

ગર્ભગૃહના દ્વારના વિસ્તાર જેટલી પ્રતિમા કરવી. તે મધ્યમાન–તેનો આઠમો ભાગ હીન કરવાથી કનીષ્ઠમાન અને આઠમો ભાગ અધિક કરવાથી જેષ્ઠ માન તે ચાતુર્મુખ પ્રતિમાનું માન જાણવું. દ્વાર વિસ્તારના બે ભાગ કરી એક ભાગની જિન પ્રતિમા અને કૃષ્ણ તથા લક્ષ્મીની પૂજનીક મૂર્તિનું માન જાણવું. કહેલા માનથી હીન કરવાથી હાનિ થાય અને વધુ મોટી કરવાથી પોતાના સ્વજનનો નાશ થાય. કહેલા આમ રેખા માનથી પ્રતિમા કરાવવાથી કામ અર્થનો લાભ થાય છે. ૪૭–૪૮–૪૯.

गर्भगृहके द्वारके विस्तारके बराबर प्रतिमा करना । उस मध्यमानका; आठवाँ भाग हीन करनेसे कनिष्ठमान और आठवाँ भाग अधिक करने से ज्येष्ठमान ...चातुर्मुख प्रतिमाका मान जानना । द्वार विस्तार के दो भाग कर एक भागकी जिन प्रतिमा और कृष्ण तथा लक्ष्मी की पूजनीक मूर्तिका मान जानना । कहे हुए मानसे हीन करनेसे हानि होती है, और ज्यादा बड़ी करनेसे अपने स्वजन का नाश होता है । कहे हुए ऐसे रेखामान से प्रतिमा करने से काम अर्थका लाभ होता है । ४७–४८–४९.

द्वारोछ्रयष्टधा भक्ते भागमेकं परित्यजेत् ।
सप्तमाष्टमे सप्तम देवद्रष्टि नियोजयेत् ॥५०॥
उर्ध्वं द्रष्टि द्रव्यनाशाय अधस्ते भोगहानि च ।
रेखा द्रष्टि यदाप्राज्ञ दानपुण्य विवर्धनम् ॥५१॥
अर्चाद्रष्टि स्तर स्तंभं पीठ मंडोवरं स्तथा ।
* वालाग्र लोपयेदूयत्र निष्कलं तत्पूजायते ॥५२॥

* કેટલીક જુની પ્રતોમાં શ્લોક ૪૭ થી ૫૨ ના પાઠો નથી.

जिन प्रतिमा अंग विभाग

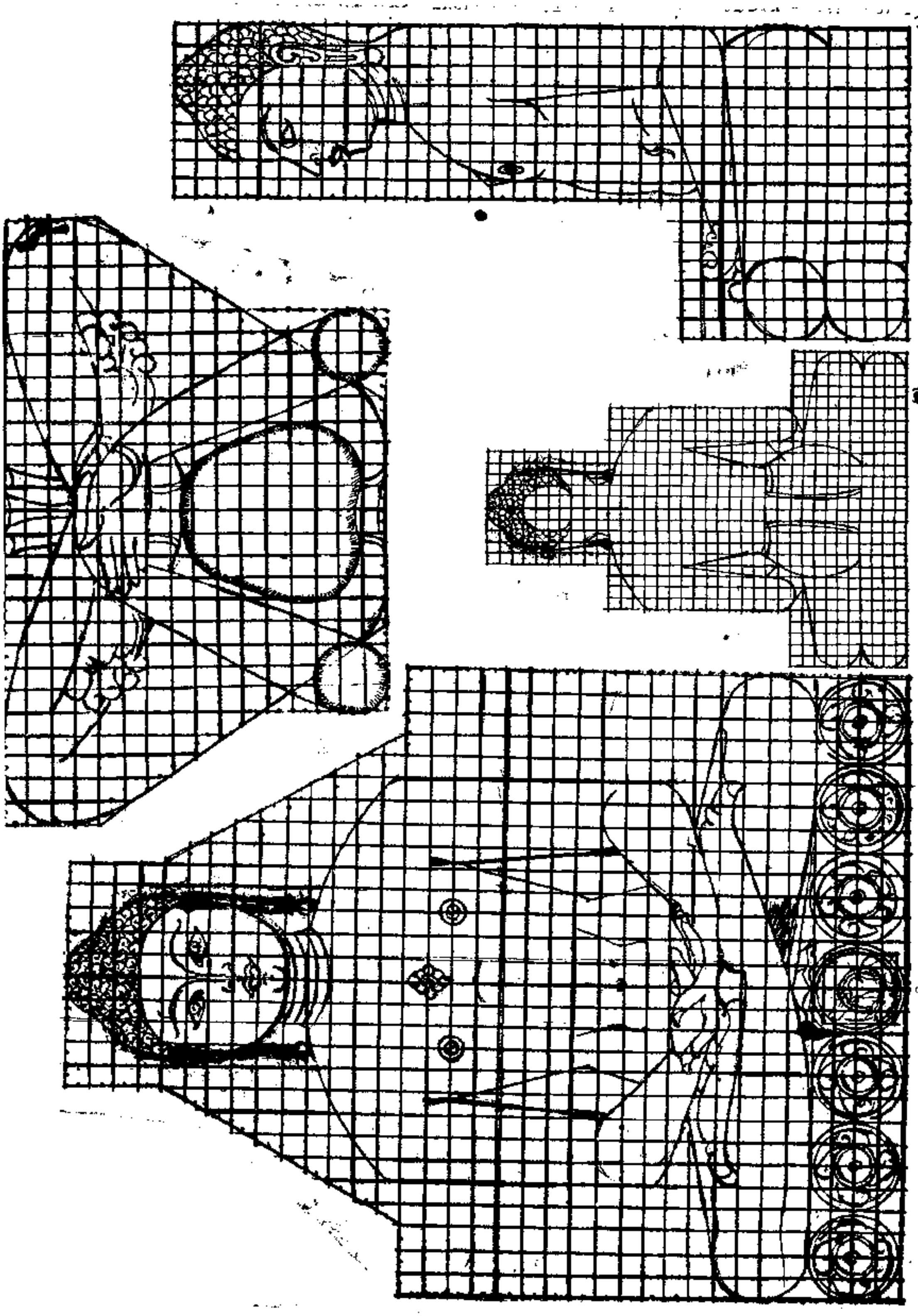

जैन प्रतिमा पक्ष विभाग

जैन प्रतिमा पृष्ठ विभाग

जैन प्रतिमा सन्मुख विभाग

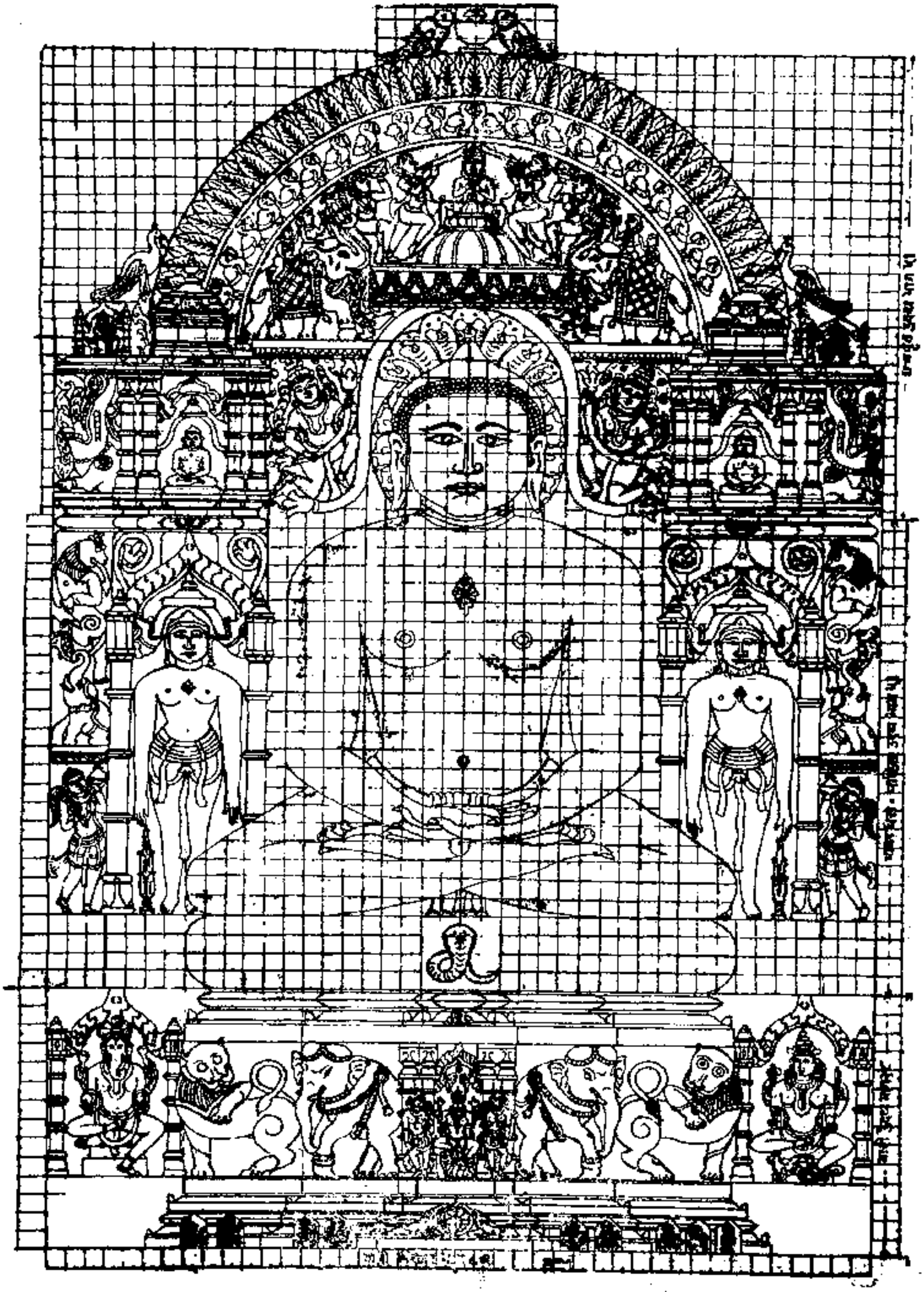

जैन प्रतिमा और परिकर विभाग

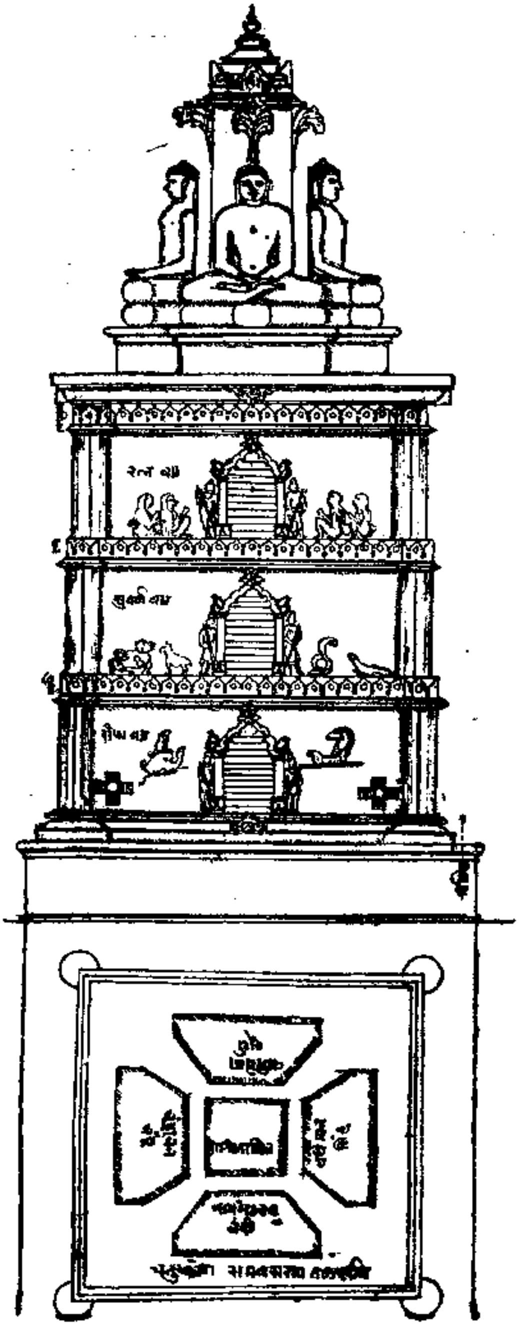

जैन समवसरण

ગર્ભગૃહના દ્વારની ઊંચાઈના આઠ ભાગ કરી તેનો ઉપલો ભાગ તજી. નીચેના સાતમા ભાગના આઠ ભાગ કરવા. તેના સાતમા ભાગે દેવદૃષ્ટિ રાખવી. કહેલા માનથી જો દૃષ્ટિ ઊંચી રાખે તો ધનનો નાશ થાય અગર જો નીચી રાખે તો સમૃદ્ધિનો નાશ થાય. માટે ડાહ્યા પુરુષોએ રેખા પ્રમાણે જ્યાં રેખા આવી હોય ત્યાંજ દૃષ્ટિ રાખવાથી દાન પુણ્યની વૃદ્ધિ થાય છે. પ્રતિમા દૃષ્ટિ થર, સ્તંભ, પીઠ અને મંડોવર તેના માનથી જો એક વાળ જેટલો પણ ઊંચા નીચે લોપથાય તો તે કાર્ય ફળને આપનારૂં ન જાણવું. પૂજા નિષ્ફળ જાય. ૫૦-૫૧-૫૨.

गर्भगृहके द्वारकी ऊँचाईके आठ भाग कर उसका उपर का भाग आठवाँ तज कर सातवें भागका आठ भाग करना। उसके सातवें भागमें देवदृष्टि रखना। कहे हुए मानसे जो दृष्टि ऊँची रखे तो धनका नाश होता है अगर जो नीची रखे तो समृद्धिका नाश होता है। इस लिये सुज्ञ पुरुषोंको चाहिये कि रेखाके बराबर जहाँ रेखा आयी हो वहाँ ही दृष्टि रखना, इससे दान पुण्य की वृद्धि होती है। प्रतिमा दृष्टि थर, स्तंभ, पीठ और मंडोवर उसके मानसे जो एक बाल जितना भी ऊँचा नीचा लोप हो तो उसे फल प्रदकार्य न जानना। ५०-५१-५२.

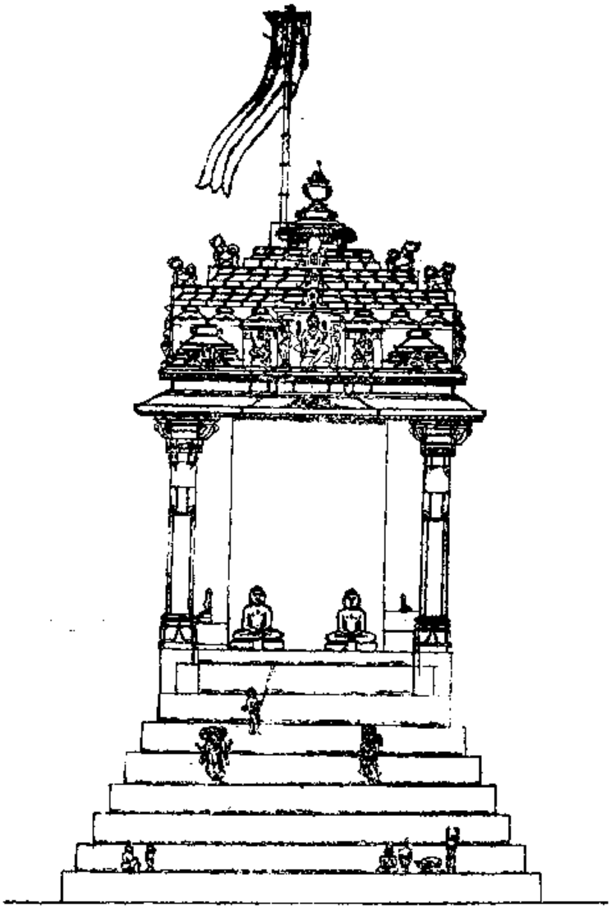

अष्टापद.

इतिश्री विश्वकर्मा कृतायां क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां सांधार चातुर्मुख प्रासाद मंडोवरादि लक्षणं नाम शताग्रे अष्टादश मोऽध्याय ॥ ११८ ॥ क्रमांक अ० २०

ઈતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ શ્રી નારદજીએ પૂછેલા સાંધાર ચાતુર્મુખ પ્રાસાદ અને મંડોવરાદિ લક્ષણના શિલ્પ વિશારદ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈએ રચેલ સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો અઢારમો અધ્યાય. ૧૧૮. ક્રમાંક અ० ૨૦

इतिश्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णव श्री नारदजीके पूछे हुए सांधार चातुर्मुख प्रासाद और मंडोवरादि लक्षणके शिल्प विशारद श्री प्रभाशंकर ओघडभाईकी रची हुई सुप्रभा नाम्नी भाषा टीकाका एक सौ अठारहवाँ अध्याय ॥११८॥ क्रमांक अ० ॥२०॥

संवरणा के कोष्टक. अ–११६ के श्लोक ७४ से ७८ का स्पष्टीकरण

क्रम	संवरणानु नाम	विभक्ति भाग	घंटिका संख्या	फूट संख्या	सिंह संख्या	क्रम	संवरणानु नाम	विभक्ति भाग	घंटिका संख्या	फूट संख्या	सिंह संख्या
१	पुष्टिका	८	५	१६	८	१४	देव गांधारी	६०	५७	—	६०
२	नंदिनी	१२	९	४८	१२	१५	रत्नगर्भा	६४	६१	—	६४
३	दशाक्षा	१६	१३	—	१६	१६	चूडामणि	६८	६५	—	६८
४	देवसुंदरी	२०	१७	—	२०	१७	हेम रत्ना	७२	६९	—	७२
५	कुल तिलक	२४	२१	—	२४	१८	चित्र कूट	७६	७३	—	७६
६	रम्या	२८	२५	—	२८	१९	हिमा	८०	७७	—	८०
७	उद्भिन्ना	३२	२९	—	३२	२०	गंध माधनी	८४	८१	—	८४
८	नारायणी	३६	३३	—	३६	२१	मंदरा	८८	८५	—	८८
९	नलिका	४०	३७	—	४०	२२	मेदिनी	९२	८९	—	९२
१०	चंपका	४४	४१	—	४४	२३	कैलासा	९६	९३	—	९६
११	पद्मा	४८	४५	—	४८	२४	रत्न संभवा	१००	९७	—	१००
१२	समुद्भवा	५२	४९	—	५२	२५	मेरु कूट	१०४	१०१	—	१०४
१३	त्रिदशा	५६	५३	—	५६						

॥ अथ केशरादि वैराग्यकूलप्रासाद ॥

क्षीरार्णव (अ० ११९) क्रमांक २१

श्री नारदोवाच-

प्रणपत्यमिंद वक्ष्ये यावन्मे धारणामतः ।
कथियामि न संदेहो शिखरं सर्वकामदम् ॥ १ ॥
कस्मिनाकारे समुत्पन्ना प्रासाद शिखरोत्तमं ।
किं दलं किं विभक्तेन किंमा शृंगे विभागतः ॥ २ ॥

શ્રી નારદજી કહે છે હું પ્રણામ કરીને કહું છું કે મને પ્રાસાદના શિખરો કે જે સર્વ-કામનાને પૂરનાર છે તેના વિષે સંદેહ વગર કહો. તે કેવા આકારના ઉત્પન્ન થયા, તેના દલ અને શ્રૃંગના વિભાગ આદિ મને કહો. ૧-૨

श्री नारदजी कहते हैं— मैं प्रणाम कर कहता हूँ कि मुझे प्रासाद के शिखरों के बारेमें कि जो सब कामनाओं को पूरने वाले हैं, उनके बारेमें निःसन्देह कहो। वे कैसे आकार के उत्पन्न हुए, उनके दल विभाग और श्रृंग के विभाग आदि मुझे कहो। १-२.

किं मे अष्ट विभक्तं च तेषां स्कंध कितां भवेत् ।
दशधा स्कंध रेषा च स्कंधमान कितां भवेत् ॥ ३ ॥
मम वालंजरं श्रुत्वा सरतरकं हेतवे ।
किं विभागे समोत्पन्ना कथय ममसांप्रतं ॥ ४ ॥

આઠ વિભાગ કેમ કરવા શિખરનું સ્કંધ બાંધણું કેટલા ભાગે કેવું કરવું, શિખરના બાંધણાની રેખા સ્કંધનું માન કેવું રાખવું, વાલંજરના ભાગ તથા પાણીતાર કેમ કરવા....વિભાગોની ઉત્પત્તિ કેવી રીતે થઈ? તે મને હવે કહો. ૩-૪

आठ विभाग कैसे करना, शिखर का स्कंध कितने भागपर कैसे करना, शिखरके स्कंध की रेखा-स्कंधका मान कैसे रखना, वालंजरके भाग तथा पानीतार कैसे करना...विभागोंकी उत्पत्ति कैसे हुई?-यह मुझे अब बताओ। ३=४.

विश्वकर्मा उवाच-

यत्त्वया पृच्छते चैव शृणुत्वेकाग्रतो मुने ।
शिखरं विविधाकाराः अनेकाकारमुद्रितः ॥ ५ ॥
उक्तं च प्रवक्ष्यामि श्रेष्ठानां वैराज्य कुल सभवेत् ।
केसरादि विधिस्तेषां तथा क्षीरार्णवे स्मृते ॥ ६ ॥
द्विमान मधुरे प्रोक्ता! कस्यमेनफलेथवा ।
शिखरो पुष्करे विद्यात् विमाना रूह देवता ॥ ७ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. તમો પૂછો છો હે મુનિ, હવે એકાગ્ર મનથી સાંભળો. શિખરોના અનેક વિધ આકારોના અને અનેક આકારના કહ્યા છે, તે હું તમોને શ્રેષ્ઠ એવા વૈરાજ્ય-કુળના કેશરાદિ પ્રાસાદનો વિધી તે ક્ષીરાર્ણવમાં (તથા વૃક્ષાર્ણવમાં પણ) કહું છું. ૫–૬–૭

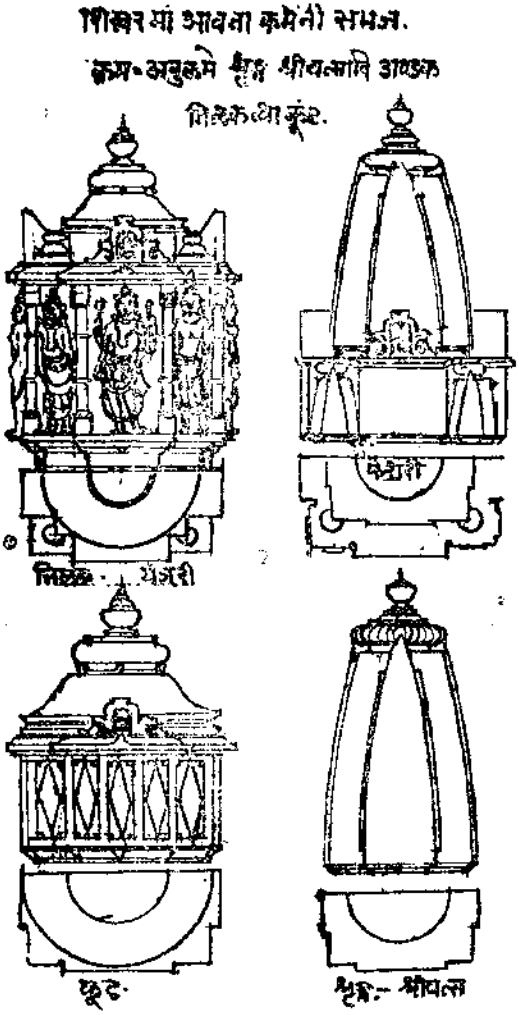

तिलक मजरी कूट—शृङ्ग श्रीवत्स केसरी

श्री विश्वकर्मा कहते हैं—तुम पूछते हो तो हे मुनि, अब एकाग्रता से सुनो। शिखरों के अनेकविध आकारों और अनेक आकारके शिखर कहे हैं। वह मैं तुम्हें श्रेष्ठ वैराग्यकुल के केशरादि प्रासाद का विधि मैं क्षीरार्णव में भी कहता हूँ। ५–६–७.

[1]वज्र पद्मराग वैडूर्य रत्नकोट विमानकः।
भूधरो च महानीलं ईन्द्रनीलो पृथ्वीजयः ॥८॥
कैलास हेमकूट श्चामृतोद्भव मंदिरं तथा।
नंदशाली नंदनं च हयेते त्रिभक्ति दशतलम् ॥९॥

વૈરાગ્યકુળના ૨૫ પ્રાસાદોના ૧૧ થી ૨૫ શિખરો દશાર્ધતળનાં નામ કહે

(૧) મૂળ જૂની પ્રતોમાં ઉપરોક્ત આપેલા શ્લોક ૮ થી ૧૧ ના પાઠોનાં નામ અને તળ વિભક્તિ અને શ્રૃંગની સંખ્યાનો ક્યાંય મેળ ખાતો નથી. તેથી ઉપર આપેલ ક્રમ પ્રમાણે મળે છે. પરંતુ અષ્ટાર્ધ અને દશાર્ધ તળના ૭ નામો બંને વિભક્તિનાં એવડાય છે. કોઈની શુદ્ધ પ્રતની પ્રાપ્તિથી આ અધ્યાય સ્પષ્ટ થઈ શકે. અમને મળેલી ગુજરાત સૌરાષ્ટ્રની દશ બાર પ્રતોમાં આવાજ પ્રકારની અશુદ્ધિ છે. અપરાજિત સૂત્ર ૧૫૪ થી ૫૭ ના

છે. ૨૫ વજ્ર ૨૪ પદ્મરાગ, ૨૩ વૈડૂર્ય, ૨૨ રત્નકૂટ, ૨૧ વિમાન, ૨૦ ભૂધર, ૧૯ મહાનીલ, ૧૮ ઇંદ્રનીલ, ૧૭ પૃથ્વીજય ૧૬ કૈલાસ, ૧૫ હેમકૂટ, ૧૪ અમૃતોદ્ભવ, ૧૩ મંદિર, ૧૨ નંદશાળી અને ૧૧ નંદન એ પંદર પ્રાસાદોના શીખરોની દશાઇતળની વિભક્તિ જાણવી. ૮-૯.

वैराज्यकुलके २५ प्रासादोंके ११ से २५ शिखरों दशाई तलके नाम कहते हैं। २५ वज्र, २४ पद्मराग, २३ वैडूर्य, २२ रत्नकूटी, २१ विमान, २० भूधर

ચાર અધ્યાયો વૈરાજ્યાદિ પ્રાસાદોના છે. તેના સાથે અહીં આપેલાં નામ કે વિભાગનો પણ મેળ ખાતો નથી. કોઈ ગ્રંથનો આધાર હશે.

મૂળ જૂની પ્રતોમાં આ પ્રમાણે ક્રમ વગરના નામો આપેલાં છે. તે મૂળ પાઠ આ નીચે આપીએ છીએ.

> २५ वज्र २३ वैडूर्यं मुक्तं वाइद्रंमणि भूतिलकं।
> २४ पुष्परागं च गोमेधं प्रवालं शृङ्गं भूषणं ॥ ८ ॥
> तथा शृङ्गतलं विद्यादष्ट भागं च लक्षणम्।
> १ केसरी २ सर्वतोभद्र नंदनस्य विशेषतः ॥ ९ ॥
> ३ मंदिरो ७ हेमकूटश्च १६ कैलासो १४ भृतोद्भवः।
> ४ श्रीवृक्षो विजयं श्चैव अष्टधा च निश्चलम् ॥१०॥
> १२ नंदशाल ६ हेमवांश्च नंदिश्यो १८ इंद्रनीलकम्।
> ४ श्रीवत्साद्यो मनेकाश्च दशधा तलं दीयते ॥११॥

મૂળ પ્રતમાં આ આપેલ પાઠો અસ્તવ્યસ્ત છે તેથી સુધારીને ઉપર ૮ થી ૧૧ શ્લોક ક્રમબદ્ધ આપવામાં આવ્યા છે. તેજ પ્રમાણે આગળ આપેલી વિભક્તિ તળ અને શ્રૃંગ સંખ્યા અને નામનો ક્રમ બરાબર મળી રહે છે. ઉપરના ચાર શ્લોક સુધારીને મૂકવાની ધૃષ્ટતા કરવા બદલ વિદ્વાનો ક્ષમા આપશે અગર...

(१) मूल पुरानी प्रतोंमें उपरोक्त दिये हुए श्लोक ८ से ११ के पाठोंके नाम और तल तल विभक्ति और शृङ्गकी संख्याका कहीं भी पता नहीं लगता है। इससे उपर दिये हुए क्रमके अनुसार मिले, लेकिन अठ्ठाई और दशाई तलके छः नामों दोनों विभक्तिमें दुने होते हैं। किसी प्राचीन शुद्ध प्रतकी प्राप्तिसे यह अध्याय स्पष्ट हो सके। हमें मिली हुई गुजरात सौराष्ट्रकी दस बारह प्रतोंमें ऐसे ही प्रकारकी अशुद्धि है। अपराजित सूत्र १५४ से ५७ के चार अध्यायों वैराज्यादि प्रासादोंके हैं। उनके साथ यहाँ दिये हुए नामों या विभागका भी मेल नहीं मिलता है। किस ग्रंथका आधार होगा?

मूल पुरागी प्रतोंमें क्रमके बिना अस्तव्यस्त क्रमसे नामों दिये हैं। वह मूलपाठ (श्लोक ८ से ११) उपर लिखा गया हैं।

१९ महानील, १८ इन्द्रनील, १७ पृथ्वीजय, १६ कैलास, १५ हेमकूट, १४ अमृतोद्भव, १३ मन्दिर, १२ नंदशाली और ११ नंन्दन इन पन्द्रह प्रासादों के शिखरों की दशाईतल की विभक्ति जानना। ८–९.

रत्नकूट भूधराख्य महानीलं हेमकूटकू।
हेमवर्णाऽमृतोद्भवो श्रीवत्सं मंदिरं स्तथो ॥१०॥
सर्वतो भद्र केशरीं च ह्यते चाष्ट विभक्तितलम्।
तथा शृङ्गतल विद्यात् दशाष्ट भागं च लक्षणम् ॥ ११ ॥

તે પછી ૧૦ રત્નકૂટ, ૯ ભૂધર, ૮ મહાનીલ, ૭ હેમકૂટ, ૬ હેમવર્ણ, ૫ અમૃતોદ્ભવ, ૪ શ્રીવત્સ, ૩ મંદિર, (નંદન) ૨ સર્વતોભદ્ર અને ૧ કેશરી એમ દશ પ્રાસાદોના શિખરની અઠ્ઠાઈ તલ વિભક્તિ જાણવી. એ રીતે કુલ પચ્ચીશ પ્રાસાદો અઠ્ઠાઈ અને દશાઈ તલ અને શૃઙ્ગનાં લક્ષણો હવે કહે છે. ૧૦–૧૧.

उसके बाद १० रत्नकूट, ९ भूधर, ८ महानील, ७ हेमकूट, ६ हेमवर्णे, ५ अमृतोद्भव, ४ श्रीवत्स, ३ मन्दिर, २ सर्वतोभद्र और १ केशरी। इस तरह दस प्रासादों के शिखर की अट्ठाई तल विभक्ति जानना। इस तरह कुल पच्चीस प्रासादो अट्ठाई और दशाई तल और शृंगके लक्षणों अब कहते हैं। १०–११.

संक्षेप्तं कथितं चैव तथा विस्तरशृणु।
क्षेत्रांधे च भवेद्भद्रे भद्रार्द्ध कर्ण विस्तरम् ॥१२॥
कर्णार्द्धेन प्रयत्नेन कर्तव्यं भद्र निर्गमम्।
श्रीवत्स कर्ण संस्थाने भद्रे च उद्गमोत्तमम् ॥ १३ ॥
पंचशृङ्गं प्रदातव्यं केसरी शिखरान्वितं।
भद्रे शृङ्ग प्रदातव्यं सर्वतोभद्र नामतः ॥ १४ ॥

सांधार केशरी प्रासाद १ तलभाग ८ शृंग ५

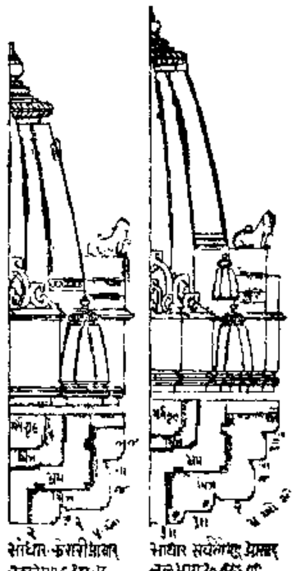

सांधार सर्वतो भद्र प्रासाद २ तलभाग ८ शृंग ९

પ્રાસાદોનાં નામ અને વિભક્તિ સંક્ષિપ્તમાં કહ્યાં. હવે વિસ્તારથી સાંભળો. પ્રાસાદના ક્ષેત્રના (આઠ) વિભાગ કરવા. તેમાં ક્ષેત્રના અર્ધમાં આખું ભદ્ર પહોળું કરવું અને ભદ્રનું અર્ધ કર્ણ રેખા પહોળી કરવી. એટલે બે ભાગની રેખા અને અરધું ભદ્ર બે ભાગનું કુલ આઠ ભાગ રેખાનું અર્ધ એટલે એક ભાગનો ભદ્રનો નિકાલો રાખવો. કર્ણ-રેખા પર શ્રીવત્સ શ્રૃંગ ચડાવી ભદ્રે દોઢીયો કરવો તેવો

પાંચ શ્રૃંગનો ૧ **કેસરી** નામનો પ્રાસાદ જાણવો. જો કેશરીના સ્થાને ભદ્રે ઉરુશ્રૃંગ ચડાવે તો ૨ **સર્વતોભદ્ર** નામનું નવ અંડકનું બીજું શિખર જાણવું. ૧૨-૧૩-૧૪.

प्रासादों के नाम और विभक्ति संक्षिप्तमें कहे गये, अब विस्तारसे सुनो। प्रासाद के क्षेत्रके (आठ) विभाग करना। उसमें क्षेत्रके अर्धमें पूरा भद्र चौडा करना और भद्रका अर्ध कर्ण = रेखा चौडी करना। अर्थात् दो भाग की रेखा और आधा भद्र दो भागका, कुल भाग आठ, रेखाका अर्ध अर्थात एक भागका भद्रका निकाला रखना। कर्ण-रेखा के पर श्रीवत्स=श्रृंग चढ़ाकर भद्र पर डेढिया करना, वैसा पाँच श्रृंगका केसरी नामका प्रासाद जानना। जो केशरी के स्थानपर भद्र पर उरुशृंग चढाया जाय तो सर्वतोभद्र नामका नव अंडक का दूसरा शिखर जानना। १२-१३-१४.

कर्णे केसरी सर्वेण भद्रे शृंग चतुर्भवेत् ।
भद्रकर्णकृते कूटं गवाक्षं मध्यदापयेत् ॥ १५ ॥
उरुश्रृङ्ग तथा मध्ये शिखरं सर्वकामदं ।
अन्य श्रृङ्ग च संस्थाने मंदिरं सौश्रमानकं ॥ १६ ॥

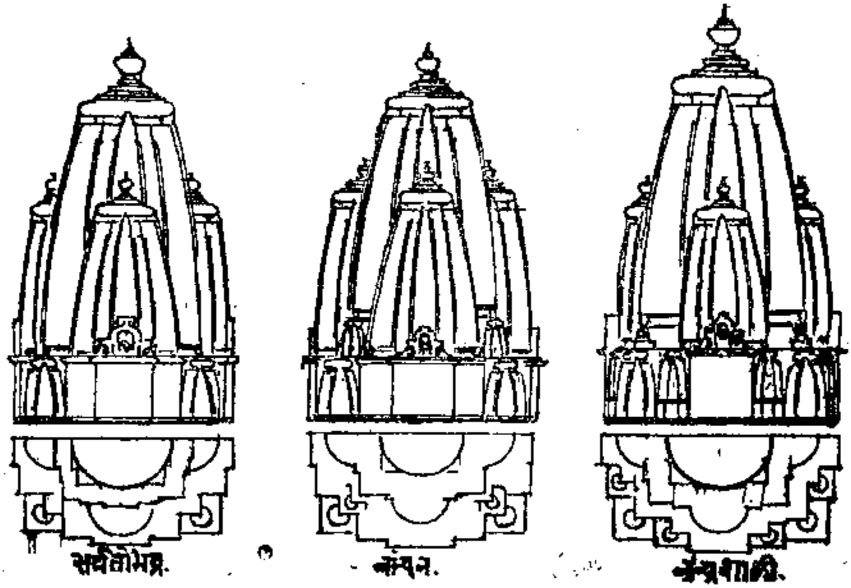

सावंधारादि केशरी प्रासाद

હવે પચ્ચીશ શ્રૃંગનું મંદિર શીખર હવે સાંભળો. ઉપરના અઠ્ઠાઈતળના ચારે કર્ણે—કેસરી કર્મ (પાંચ અંડકનું) ચડાવવું અને ભદ્રે એકેક એમ ચાર ઉરુશ્રૃંગ ચડાવવા અને ભદ્રના ખૂણે કૂટ ચડાવવા. ભદ્રના વચ્ચે ગવાક્ષ કરવો. આથી

સર્વ કામનાને આપનારું એવું અન્યશ્રૃંગના સ્થાનરૂપ **મંદિર** નામનું ત્રીજું શિખર પચ્ચીશ અંડકનું જાણવું. ૧૫–૧૬.

अब पच्चीस शृंगका मन्दिर शिखर सुना। ऊपर के अढ़ाई तलके चारों कर्णों पर केसरी कर्म (पाँच अंडक का) चढाना और भद्र पर एक एक इस तरह चार उरुशृंग चढाना और भद्रके कोने पर कूट चढाना। भद्रके बिचके गवाक्ष करना। इस सर्व कामना को देनेवाला ऐसा अन्य शृंगका स्थानरूप मंदिर नामका तीसरा शिखर पच्चीस अंडकका जानना। १५–१६.

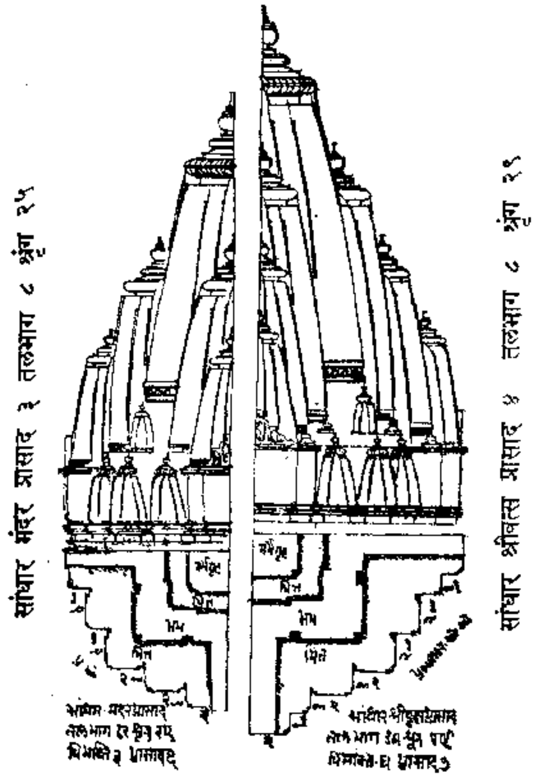

कर्ण शृङ्ग द्वितीयं च श्रीवत्सं सर्वकामदं।
सर्वे भद्रे उरुशृङ्गं अमृतोद्भव संज्ञकः ॥१७॥

મંદિર શિખરની રેખાયે એક બીજું શ્રૃંગ ચડાવવાથી સર્વ કામનાને દેનારું ચોથું **શ્રીવત્સ** શિખર ૨૯ અંડકનું જાણવું. અને શ્રીવત્સ શિખરના ચારે ભદ્રે અંડક ઉરુશ્રૃંગ ચડાવવાથી ૩૩ અંડકનું **અમૃતોદ્ભવ** નામનું પાંચમું શિખર જાણવું. ૧૭.

मन्दिर शिखर की रेखापर एक दूसरा शृंग चढानेसे सर्व कामनाओं को देनेवाला चोथा श्रीवत्स शिखर २९ अंडकका जानना और श्रीवत्स शिखर के चारों भद्रके पर अंडक उरुशृंग चढाने से ३३ अंडकका अमृतोद्भव नामका शिखर पाँचवा जानना। १७.

सर्वतोभद्रं च कर्णेषु भद्र शृङ्गततोष्टमि।
हेमवर्णं च माक्षातं हेमकूटं च अतः शृणु ॥१८॥

मूल प्रतमें इन दिये हुए पाठोंको सुधारकर उपर ८ से ११ श्लोक क्रमबद्ध दिये गये हैं। उसी तरह आगे दि हुई विभक्ति तल और शृङ्ग संख्या और नामका क्रम बराबर मिलता है। उपरके चार श्लोक सुधारकर रखनेकी धृष्टता करनेके लिये विद्वानों हमको क्षमा करें।...

ચારે ભદ્રના ખુણા પર (કૂટના બદલે) એકેક એમ આઠ શ્રૃંગ ચડાવવાથી એકતાલીશ અંડકનો સાક્ષાત્ **હેમવર્ણ** નામનો છઠ્ઠો પ્રાસાદ જાણવો. હવે હેમકૂટ પ્રાસાદનું સ્વરૂપ સાંભળો. ૧૮.

चारों भद्रके कोनेपर (कूटके बदले) एकेक इस तरह आठ श्रृंग चढाने से इक्यालिश अंडकका साक्षात हेमवर्ण नामका छठ्ठा प्रासाद जानना । अब हेमकूट प्रासाद का स्वरूप सुनो । १८.

कर्णे श्रृङ्ग प्रदातव्यं तथा नवमालय उच्यते ।
कर्ण ते अंडकः प्रोक्त भद्रे श्रृङ्ग प्रदापयेत् ॥ १९ ॥
श्रृङ्ग संभावर श्चैव महानीलं च मिश्रकं ।
पुनः श्रृङ्गं तदा भद्रे भूधरो मिश्रकान्वितः ॥ २० ॥

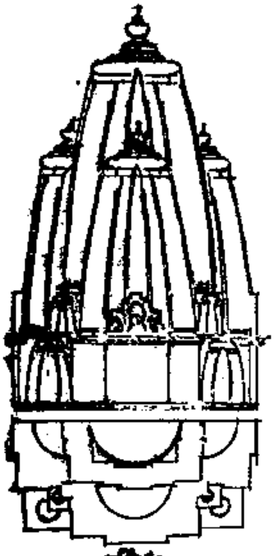
नंदिश.

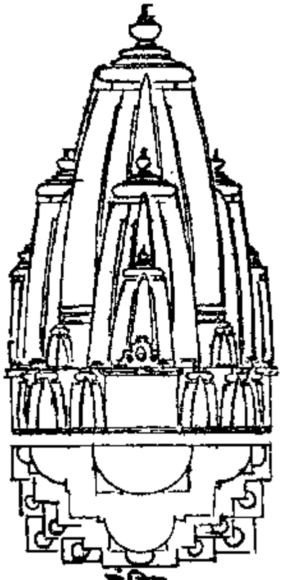
मंदिर.

सावंधारादि केशरी नन्दिश मंदिर

હેમવર્ણને રેખા પર એકેક શ્રૃંગ ચડાવવાથી ૪૫ અંડકનું નવમાલ્ય એવું **હેમકૂટ** શિખર સાતમું જાણવું. રેખાયે એકેક અને ભદ્રે એકેક ઉરુશ્રૃંગ ચડાવવાથી ૫૩ અંડકનો એવો મિશ્રક **મહાનીલ** પ્રાસાદ આઠમો જાણવો. ફરી વળી એક ઉરુશ્રૃંગ ભદ્રે વધારવાથી ૫૭ અંડકનો **ભુધર** મિશ્રક નવમો પ્રાસાદ જાણવો. [२]

हेमवर्णकी हर रेखापर एकेक श्रृंग चढानेसे ४५ अंडकका नवमाल्य ऐसा हेमकूट शिखर सातवां जानना । रेखाके पर एकैक और भद्रपर एकैक उरुश्रृंग चढानेमें ५३ अंडकका महानील मिश्रक प्रासाद आठवाँ जानना । फिर एक उरुश्रृंगको भद्र पर बढानेसे भूधर नामक मिश्रक प्रासाद नवमाँ जानना । [२]

(૨) ઉપર કહેલા ૧ કેસરી ૨ સર્વતોભદ્ર ૩ મંદિર ૪ શ્રીવત્સ અને વધુમાં ૫ અમૃતોદ્‌ભવ—એમ પાંચ પ્રાસાદ મૂળ અઠ્ઠાઈતળ પર આ પાંચ શિખરો ચડી શકે તે પછીના પાંચ હેમવર્ણથી રત્નકૂટ સુધીના પાંચ પ્રાસાદના શિખરો અઠ્ઠાઈ તળ પર ચડાવવાનું ઘણું મુશ્કેલ છે. અગર અહીં પાઠ ત્રુટક છે. જો કે અમોએ પાંચ સાત પ્રતો મેળવીને પ્રયાસ કરી

कर्णे शृङ्गं द्वितियं च रत्नकूटं प्रणष्टकम् ।
एकाशी अंडकै चैव कर्णे द्वितिय केसरी ॥ २१ ॥

ભુદર શિખરની રેખાયે એક વધુ શ્રૃંગ શ્રીવત્સ અને એક બીજું પંચાંડી કેસરી કર્મ ચડાવવાથી એકાશી શ્રૃંગનો પાપનાશક એવો **રત્નકૂટ** નામનો **પ્રાસાદ** દશમો જાણવો. એ રીતે અઠ્ઠાઈ વિભક્તિ ઉપર દશ ભેદ કહ્યા. ૨૧.

भुदर शिखर की रेखा पर एक ज्यादा शृंग श्रीवत्स और एक दूसरा पंचांडी केसरी कर्म चढानेसे इक्याशी शृंगको पापनाशक ऐसा रत्नकूट नामका प्रासाद दशवाँ जानना । इस प्रकार अट्ठाई विभक्तिके उपर दस भेद कहे । २१.

तथा च दशमीक्षेत्रं कर्णस्य पंचमांशकः ।
तस्यार्द्धं रथंकार्यं शेषं भद्रस्य विस्तरम् ॥ २२ ॥
भाग भागं च निष्कान्तं उर्ध्वमानं अतः शृणुः ।
कर्णे द्वयं कार्यं भद्र शृङ्गं च मेव च ॥ २३ ॥
मध्ये गवाक्ष प्रदातव्यं सर्वकामदा ।
भद्रे शृङ्ग प्रदातव्यं नंदशाली मनोहर ॥ २४ ॥

હવે દશાઈતળના પ્રાસાદો કહે છે. પ્રાસાદના ક્ષેત્રના દશ ભાગ કરવા. તેમાં રેખા-કર્ણ પાંચમો ભાગ એટલે બે બે ભાગની કરવી. એક ભાગનો પ્રતિરથ અને બાકીના ચાર ભાગનું ભદ્ર પહોળું જાણવું. તે ઉપાંગોના નીકાળા એકેક ભાગના રાખવા. અને ઉપરના શિખરનું માન સાંભળો. ૨૨.

अब दशाईतल के प्रासादोंके बारेमें कहते हैं । प्रासादके क्षेत्रके दस भाग करना । उसमें रेखा=कर्ण पाँचवा भाग अर्थात् दो दो भागकी करनी । एकेक भागका प्रतिरथ और बाकीके चार भागका भद्र चौडा जानना । इन उपांगों के नीकाले एकेक भागके रखना और ऊपरके शिखरका मान सुनो । २२.

રેખાયે બબ્બે શ્રૃંગ અને ભદ્રે એકેક ઉરુશ્રૃંગ ચડાવવાથી ને ભદ્રે ગોખ કરવાથી તેર અંડકનો નામનો અગ્યારમો **નંદન** પ્રાસાદ સર્વ કામનાને દેનારો જાણવો.

જોયો છે. પરંતુ અમને મળતી બધી પ્રતોમાં આવા સરખા જ પાઠો મલ્યા છે તેથી જેવું અમને મળ્યું તેવું અહીં રજુ કરીયે છીએ.

(२) उपर कहे हुए १ केसरी २ सर्वतो भद्र ३ मंदिर ४ श्री वत्स और ज्यादा से ज्यादा ५ अमृतोद्भव-इस तरह पाँच प्रासाद तक अट्ठाई तल पर ये पाँच शिखरों चढ सके उसके बादके पाँच हेमवर्णसे रत्नकूट तकके पाँच प्रासादके शिखरों अट्ठाई तल पर चढ़नेका काम मुश्किल है, या तो यहाँ पाठ त्रुटक है । जो कि हमने पाँच सात प्रतों मिलाकर प्रयास किया है, परंतु सब प्रतोंमें अैसे समान ही पाठों है इससे जैसा हमें मिला वैसा यहाँ रखते हैं ।

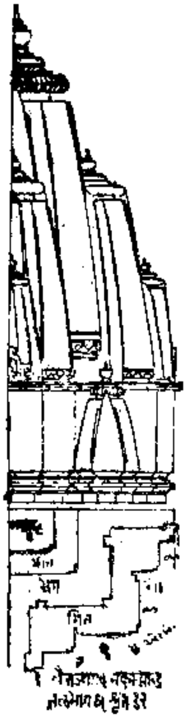

वैराज्यादि–नंदन प्रासाद ११ तलभाग १० श्रृंग १७

નંદનશિખરમાં જો એકના બદલે બબ્બે ઉરુશ્રૃંગ ચડાવે તો મનોહર એવો સત્તર અંડકનો બારસો **નંદશાલી** પ્રાસાદ જાણવો. ૨૩–૨૪.

रेखाके पर दो दो शृंग और भद्रके पर एक उरुश्रृंग चढ़ानेसे औरभद्रपर गोख करनेसे तेरह अंडकका नंदन ११वा नामका प्रासाद सर्व कामना का देनेवाला जानना। नंदन शिखरमें जो एक के बदले दो दो उरुश्रृंग चढ़ाया जाय तो मनोहर ऐसा सत्रह अंडकका नंदशाली प्रासाद बारवाँ जानना। २३–२४.

रथे भृङ्गप्रदातव्यं उरुभृंङ्ग तथोपरि।
मंदिरख्यातं भृंङ्गस्यात्पंचविंशतिः ॥ २५॥

પઢરાએ એક શ્રૃંગ મૂકવું. જેની પર ઉરુશ્રૃંગ છે ત્યાં ત્યારે તે પચ્ચીશ શ્રૃંગનું **મંદિર** શિખર તેરમું જાણવું. ૨૫.

प्रतिरथ के पर एक श्रृंग रखना। जिसके पर उरुश्रृंग है वहाँ तब उसे पच्चीस श्रृंगका मंदिर शिखर तेरहवाँ जानना। २५.

कर्णे केसरी सर्वे रथकूटं प्रदीयते।
अमृतोद्भव नामाख्यं वल्लभं सर्व देवता ॥ २६॥

રેખાયે બે શ્રૃંગ છે ત્યાં એક પંચાંડી કેસરી કર્મ રેખાપર વધારે મૂકવું અને પઢરા પર કૂટ ચડાવવાથી સર્વ દેવોને વલ્લભ એવો **અમૃતોદ્ભવ** નામનો (૪૫ શ્રૃંગનો) ચૌદમો પ્રાસાદ થાય. ૨૬.

रेखाके पर दो श्रृंग जहाँ है वहाँ एक पंचांडी केसरी कर्म रेखापर ज्यादा रखना और पढ़रेपर कूट चढ़ानेसे सर्वे देवोंको वल्लभ ऐसा अमृतोद्भव नामका (४५ श्रृंगका) चौदवाँ प्रासाद होता है। २६.

रथे शृंगप्रदातव्यं हेमकूट स उच्यते।
मुखभद्रे शृंगमेकं कैलास सर्वकामदं ॥ २७॥

પઢરે એક શ્રૃંગ ચડાવવાથી (૫૩ શ્રૃંગનું) હેમકૂટ પંદરમું શિખર થાય, અને જો ભદ્ર ઉપર બે ઉરશ્રૃંગના બદલે ત્રણ ઉરુશ્રૃંગ ચડાવીએ તો ૫૭ શ્રૃંગનું સોળમું **કૈલાસ** નામનું શિખર (૧૬) જાણવું. ૨૭.

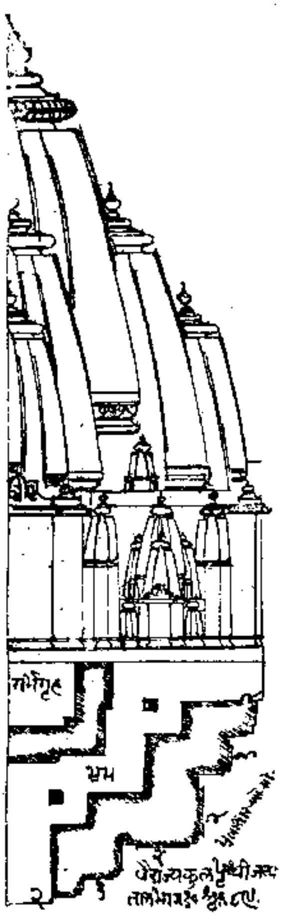

श्रेयुक्त वैराज्यकुल—पृथ्वीजय प्रासाद (१७) तलभाग १० श्रृंग ९७

पढ़रेपर एक श्रृंग चढानेसे (५३ श्रृंगका) हेमकूट पंदरवाँ शिखर होता है, और जो भद्र के पर दो उरुश्रृंग बदले तीन उरुश्रृंग चढायें तो ५७ श्रृंगका कैलास नामका शिखर (१६) जानना। २७.

कर्णे च नंदन सर्वे रथे शृङ्गपरित्यजेत् ।
उरुशृङ्गाष्ट कर्तव्यं पृथ्वीजयं च मुत्तमम् ॥ २८॥

રેખાયે ચારે ખુણે એકેક તેર અંડકનું નંદન કર્મ ચઢાવવું અને પઢરે બે શ્રૃંગ છે તે એક તજવાથી અને ઉરુશ્રૃંગ આઠ કરવાથી **પૃથ્વીજય** નામનું ૯૭ શ્રૃંગ શિખર જાણવું. ૨૮.

रेखाके पर चारों कोनेमें एक एक तेरह अंडकका नंदनकर्म चढाना और पढरे पर दो श्रृंग है वह एक तजने से ओर उरुश्रृंग आठ करनेसे ९७ श्रृंगका पृथ्वीजय नामका १७ मा शिखर जानना। २८.

इंद्रनीलं च प्रासादे उरुशृङ्गानी द्वादश ।
उरुश्रृंग परित्यज्यं रथेश्रृंग प्रदापयेत् ॥ २९॥
महानीलं च विज्ञेयं सर्व मनोरथदायक ।

પૃથ્વીજયના સ્થાને આઠને બદલે બાર ઉરુશ્રૃંગ ચડાવવાથી (૧૦૧ શ્રૃગનું) **ઈન્દ્રનીલ** નામનું અઢારમું શિખર થાય. ઈંદ્રનીલના સ્થાને ભદ્રનું એક ઉરુશ્રૃંગ તજીને પઢરાપર એકના બદલે બે શ્રૃંગ ચડાવવાથી ૧૦૫ શ્રૃંગનું **મહાનીલ** (૧૯) નામનું સર્વ પ્રકારના મનોરથને આપનારું શિખર જાણવું. ૨૯.

पृथ्वीजय के स्थानपर आठके बदले बारह उरुश्रृंग चढानेसे (१०१ श्रृंग) इंद्रनील नामका शिखर होता है। इन्द्रनील के स्थानपर भद्रका एक उरुश्रृंग तजकर पढरेपर एकके बदले दो श्रृंग चढानेसे १०५ श्रृंगका महानील (१९) सर्व प्रकारका मनोरथ देनेवाला शिखर जानना। २९.

उरुशृङ्गार्क शेषं च भूधर सुरवल्लभ ॥३०॥
केसरी सर्वतोभद्रं कर्णस्थाने प्रदापयेत् ।
*** रथशृङ्गश्च संस्थाने त्रिमानं च विचक्षणं रथशृङ्गे प्रयोजयेत् ॥३१॥**
उरुश्रृङ्गाष्ट कर्तव्या रत्नकोटि यथाविधि ।

* પાઠાન્તર रथशृङ्ग संस्थाने विमाने त्त द्विचक्षणात् ॥३१॥ આ પાઠ ફેર છે. વિમાન શિખર ઉપજાવ્યા પછી રત્નકોટિ ઉપજે.

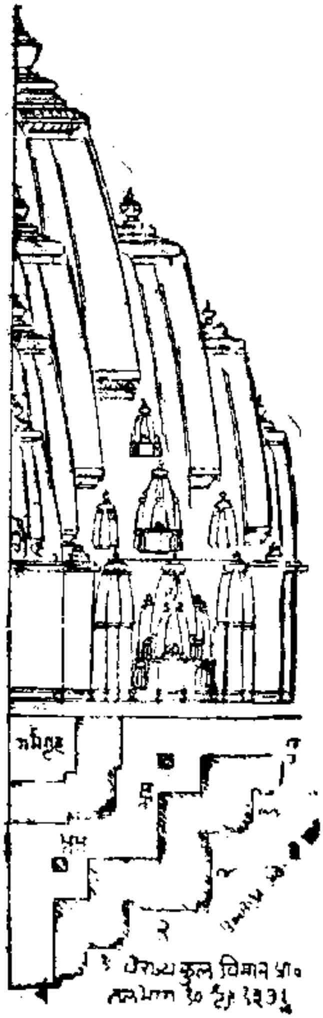

भ्रमयुक्त वैराज्यकुल विमान प्रासाद (२१) तलभाग १० शृंग १४५

મહાનીલ શિખરના સ્થાને આઠને બદલે બાર ઉરુશ્રૃંગ ચડાવવાથી દેવોને દુર્લભ એવું (૧૦૯ શ્રૃંગનું) **ભૂધર** નામનું વીશમું શિખર જાણવું. ભૂધરના સ્થાને રેખાયે ૯ શ્રૃંગનું સર્વતોભદ્ર કર્મ ચડાવવાથી ૨૧મું **વિમાન** નામનું ૧૪૫ શ્રૃંગનું શિખર જાણવું. વિમાન શિખરના સ્થાને પઢરાપર એક શ્રૃંગ ચડાવવું અને ભદ્રે આઠ ઉરુશ્રૃંગ કરવાથી (૧૪૯ શ્રૃંગનું) (૨૨) **રત્નકોટિ** નામનું શિખર જાણવું. ૩૦-૩૧.

महानील शिखरके स्थानपर आठके बदले बारह उरुश्रृंग चढानेसे देवों को दुर्लभ ऐसा (१०९ श्रृंगका) (२०) भुधर नामका शिखर जानना। भूधर के स्थान पर रेखा के पर ९ श्रृंगका सर्वतोभद्र कर्म चढानेसे (२१) विमान नामका (१४५ श्रृंगका) शिखर जानना। विमान शिखरके स्थानपर पढरेपर एक श्रृंग चढाना और भद्रके पर आठ उरुश्रृंग करने से (१४९ श्रृंगका) (२२) रत्नकोटि नामका शिखर जानना। ३०-३१

तथा वैडूर्य प्रासादो उरुश्रृंगानि द्वादश ॥३२॥
भद्रे श्रृंग परित्यज्य रथे श्रृंग प्रदापयेत् ।
पद्मरागं च नामाख्यं प्रासादा सर्वकामदम् ॥३३॥

રત્ન કોટિ શિખરના સ્થાને બાર ઉરુશ્રૃંગ ચડાવે તો ૧૫૩ શ્રૃંગનું (૨૩) **વૈડૂર્ય** નામનું શિખર જાણવું. તે પછી જો ભદ્રનું એક ઉરુશ્રૃંગ તજીને પઢરે એક શ્રૃંગ ચડાવે તો સર્વ કામનાને દેનારું એવું ૧૫૭ શ્રૃંગનું ૨૪મું **પદ્મરાગ** નામનું શિખર થાય. ૩૨-૩૩.

रत्नकोटि शिखरके स्थानपर बारह उरुश्रृंग चढावें तो १५३ श्रृंगका २३वाँ वैडूर्य नामका शिखर जानना। उसके बाद जो भद्रका एक उरुश्रृंग तजकर पढरे पर एक श्रृंग चढावें तो सर्व कामना को देनेवाला ऐसा १५७ श्रृंगका २४वां पद्मराग नामका शिखर होता है। ३२-३३.

भद्रेश्रृंग प्रदातव्यं वज्रकर्म मुमुक्षुका ।
मुकुटोज्वल प्रासादं उरुश्रृंगार्के भूषिते ॥ ३४ ॥
तन्वधा जायते प्राज्ञ आदि मध्या च सानकं ।

પદ્મરાગ શિખરને ભદ્રે શ્રૃંગ ચડાવી કુલ બાર ઉરુશ્રૃંગથી શોભતું શિખર (૨૫) વજ્ર કર્મના મુમુક્ષુને....વજ્રક નામનું (૧૬૧ શ્રૃંગનું) શિખર જાણવું તે રીતે....[૪].

पद्मराग शिखरको भद्रपर एक श्रृंग चढ़ाकर कुल बारह उरुश्रृङ्गसे शोभित शिखर (२५) वज्रकर्मके मुमुक्षुको...दुर्लभ ऐसे १६१ श्रृङ्गका वज्रक नामका शिखर जानना, इस तरह...[४].

[४]अष्टधा दशधा क्षेत्रं केशरी पंच विंशति ॥३५॥
तथा मृक्षके च ज्ञात्वा त्रिविधं च विशेषत् ।

વૈરાજ્ય કુળના કેશરાદિ પચ્ચીશ પ્રાસાદના શિખરો અઢાઇ અને દશાઇ તળ ક્ષેત્રના કહ્યા. આવા પ્રાસાદો કરાવવાથી ત્રિવિધ ધર્મ અર્થને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. ૩૫.

वैराज्यकुलके केशरादि पच्चीस प्रासाद के शिखरों अढ्राई और दशाई तल क्षेत्रके कहे । ऐसे प्रासादों बनवाने से त्रिविध धर्म अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति होती है । ३५.

(૪) વૈરાજ્યકુળના કેશરાદિ ૨૫ પ્રાસાદોનો પાઠમાં આપેલ ક્રમ અને શ્રૃગ સંખ્યા–

अढ्राईतल विभक्ति दशाईतल विभक्ति

	क्रम	प्रासाद	श्रृङ्ग		क्रम	प्रासाद	श्रृङ्ग		क्रम	प्रासाद	श्रृङ्ग
	१	केसरी	५		११	नन्दन	१३	*	१९	महानील	१०५
	२	सर्वतोभद्र	१३		१२	नन्दशाली	१७		२०	भूधर	१०९
*	३	मन्दिर	२५	*	१३	मन्दिर	२५		२१	विमान	१४५
	४	श्रीवत्स	२९	*	१४	अमृतोद्भव	४५	*	२२	रत्नकूट	१४९
*	५	अमृतोद्भव	३३	*	१५	हेमकूट	५३		२३	वैडूर्य	१५३
	६	हेमवर्ण	४१		१६	कैलास	५७		२४	पद्मराग	१५७
*	७	हेमकूट	४५		१७	पृथ्वीजय	९७		२५	वज्रक	१६१
*	८	महानील	५३	*	१८	इन्द्रनील	१०१				
*	९	भूधर	५७								
*	१०	रत्नकूट	८१								

અહીં આપેલા પચીસ પ્રાસાદોના શિખરો અઢાઇતળ વિભક્તિના દશ ભેદ અને દશાઈ તળ વિભક્તિના પંદર ભેદ મળી કુલ પચીસ શિખરો કહ્યા છે. તે બેઉ વિભક્તિના પ્રાસાદના ફૂલવાળા નામો દશાઈ અઢાઇમાં એક જ આવે છે. એ વિચિત્ર છે.

તેના શ્રૃંગની વિધિનાં ૧ કેશરાદિથી વધુમાં વધુ પાંચમા અમૃતોદ્ભવ સુધી શ્રૃંગો અઢાઇતળ

श्रृङ्ग मिश्रधा रुचकं (भद्रे) मिश्रके तिलकोत्तम् ॥ ३६ ॥
कर्णे तिलक प्रदातव्या :स्थत्वरुचकोत्तमा ।
श्रृङ्गमध्ये गतं श्रृङ्ग तन्मध्ये शिखरं भवेत् ॥ ३७ ॥
(इति) मिश्रक सर्वतोभद्रं कर्णे तिलक द्वितीयकम् ।

ભાવાર્થ—શ્રૃંગ મિશ્રક-રૂચક અને ભદ્રે મિશ્રને તિલક........કર્ણ-રેખાયે

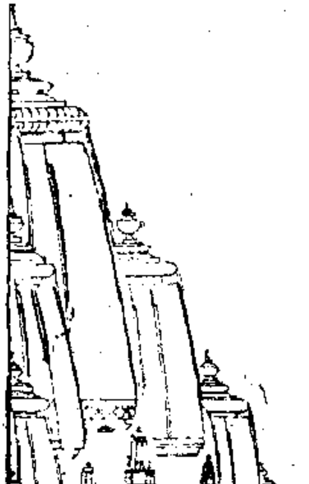

પ્રસંગયુક્ત વૈરાજ્યકુલ વર્ગક પ્રાસાદ (२९) तलभाग १० श्रृंग १६१

પર શિલ્પીઓ પોતાની બુદ્ધિથી અંડક ચઢાવી શકે પરંતુ પાછળના ૬ થી ૧૦ સુધીના પાંચ શિખરોના શ્રૃગ ચડાવવા એ ઘણું મુસ્કેલ છે. અન્ય ગ્રંથોની સાથે સરખાવતાં બીજા કોઈ ગ્રંથમાં આને મળતા પાઠો કે નામ પણ નથી. સંશોધન પાછળ યથામતિશ્રમ લીધો છે, જો કે અમુક પાઠોમાં શક્ય હોય ત્યાં ક્રમને અબાધિત રાખીને સંશોધન કરી શ્રૃંગોના ક્રમ મેળવવા પ્રયાસ કર્યો છે.

वैराज्य कुलके केशरादि पच्चीस प्रासादोंका पाठमें दिया हुआ क्रम और उनकी क्रमसंख्या—(उपर देखिये।)

यहाँ दिये हुए पच्चीस प्रासादोंके शिखरों–अठ्ठाईतल विभक्तिके दश भेद और दशाईतल विभक्तिके पंद्रह भेद मिलकर कुल पच्चीश शिखरों कहे हुए हैं। वे दोनों विभक्तिके प्रासादके फूलवाले नामों दशाई अठाईमें एक ही आते हैं ।

उसके श्रृङ्गकी विधिके १ केशरादि ज्यादासे ज्यादा पाँचवाँ अमृतोद्भव तक श्रृङ्गो अठ्ठाई तल पर शिल्पीओं स्वबुद्धिसे अंडक चढ़ा सके, परंतु पीछेके ६ से १० तकके पाँच शिखरोंके श्रृङ्ग चढ़ाना यह बहुत मुश्किल है। अन्य ग्रंथोंके साथ मिलाते दूसरे किसी ग्रंथमें इससे मिलते जुलते पाठों या नाम भी नहीं है। संशोधन के पीछे यथामति श्रम लिया है। जो कि अमुक पाठोंमें शक्य हो वहाँ क्रमको अबाधित रखकर संशोधन कर श्रृङ्गोंका क्रम मिलानेका प्रयास किया है।

(५) અહીં શ્લોકો ૩૬ થી મિશ્રક રૂચકાદિ જાતના પ્રાસાદના હોય તેમ જણાય છે. પરંતુ અપરાજિત સૂત્ર ૧૬૮માં તે પાઠો આપેલ છે પરંતુ અહીં પાઠોમાં ઘણી અશુદ્ધિ હોઈ બંધ બેસતું નથી.

(५) यहाँ श्लोकों ३६ से मिश्रक सूचकादि जगतिके प्रासादके हो ऐसा दिखता है। परंतु अपराजित सूत्र १६८ में वे पाठो दिये हैं, लेकिन यहाँ पाठोंमें बहुत अशुद्धि होनेसे मिलता जुलता नहीं है।

તિલક ચડાવવું અને રથ-પઢરા પર ઉત્તમ એવું રૂચક ચડાવવું. શ્રૃંગની ઉપર શ્રૃંગ અને તે ઉપર શિખર.......મિશ્રક સર્વતો ભદ્રને કર્ણ રેખાયે બીજું તિલક ચડાવવું. ૩૬-૩૭.

भावार्थ—श्रृंग मिश्रक-रूचक और भद्र पर मिश्रको तिलक......कर्णरेखा के पर तिलक चढाना और रथ-पढरेपर उत्तम ऐसा सूचक चढाना। श्रृंग के उपर श्रृंग और उसके उपर शिखर.........मिश्रक सर्वतोभद्र को कर्णरेखा पर दूसरा तिलक चढाना। ३६-३७.

कर्णे तिलकं मेकं श्री वत्सं च तथोपरि ? ॥ ३८ ॥
माल्यातकं च कर्तव्यं ऊरुश्रृङ्गे विभूषितं ।
केसरी मिश्रकं विद्या तिलकः श्रृङ्ग समाकुलम् ॥ ३९ ॥
तथा च सर्व क्षेत्राणां मिश्रकं सर्व कामदं ।
केशराद्यं प्रयोज्यते यावत्कैलासमिश्रकं ॥ ४० ॥

રેખાયે બીજું તિલક શ્રી વત્સ ઉપર ચડાવવું........ઉરુશ્રૃંગથી શોભતો માલ્યાતલ.......પ્રાસાદ જાણવો. મિશ્રક કેસરી પ્રાસાદો તિલક અને શ્રૃંગો ચડાવીને પોતાના સર્વ ક્ષેત્રે (અઠ્ઠાઈ દશાઈ) સર્વ કામનાને દેનારા એવા મિશ્રક કેસરાદિથી મિશ્રક કૈલાસ સુધીના (પચ્ચીશ પ્રાસાદો) જાણવા. ૪૦.

रेखाके पर दूसरा तिलक श्रीवत्स उपर चढाना।......उरुश्रृंग से शोभता माल्यातल...प्रासाद जानना। मिश्रक केसरी प्रासादों तिलक और श्रृंगों चढाकर अपने सर्व क्षेत्रपर (अट्ठाई दशाई) सर्व कामनाको देनेवाले ऐसे मिश्रक केसरादि से मिश्रक कैलासतक के (पच्चीस प्रासादों) जानना। ४०.

इति श्री विश्वकर्मा कृतायां क्षीरार्णवे नारद पृच्छते केसरादि वैराज्यकूल मिश्रक प्रासादाधिकारे शताग्रेएकोविंशतेऽध्याय ॥११९॥ क्रमांक अ० २१

ઈતિશ્રી વિશ્વકર્મા કૃતાયા ક્ષીરાર્ણવે નારદે પૂછેલ કેસરાદિ વૈરાજ્ય કુલ મિશ્રક પ્રાસાદનો અધિકાર શિલ્પ વિશારદ પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરાએ રચેલી ગુર્જર ભાષામાં સુપ્રભા નામની ટીકાનો એક સો ઓગણીસમો અધ્યાય ૧૧૯. ક્રમાંક અ૦ ૨૧

इति श्री विश्वकर्माकृते क्षीरार्णवे में नारदपृच्छा में वैराज्यकूल मिश्रक प्रासादाधिकार शिल्प विशारद प्रभाशंकर ओघडभाई की रची हुई भाषामें सुप्रभा नामकी भाषा टीकाका एकसौ उन्नीसवाँ अध्याय ११९ क्रमांक अध्याय २१

अथ चातुर्मुख प्रासाद स्वरुप लक्षणम्

क्षीरार्णव अ० १२० क्रमांक २२

श्री नारद उवाच—

स्वर्गे देवलोके च मघवन्स्थानमुत्तमम् ।
अन्यच्च किं विशिष्ठं स्यात् कथय मम साम्प्रतम् ॥ १ ॥
यावत् सप्तपातालं ब्रह्मांड सप्तसंख्यया ।
चतुर्मुखो हि प्रासादो कथय परमेश्वर ॥ २ ॥

શ્રી નારદજી કહે છે. જેમ સ્વર્ગમાં દેવલોક વિશે ઇંદ્રનું સ્થાન ઉત્તમ છે તેમ બીજું શું ઉત્તમ છે તે મને હમણાં કહો. સાત પાતાળ અને સાત બ્રહ્માંડ એ ચૌદ લોકમાં એવું ચતુર્મુખ પ્રાસાદનું વર્ણન હે પરમેશ્વર, મને કહો. ૧–૨.

श्री नारदजी कहते हैं—जिस तरह स्वर्गमें, देवलोकमें इंद्रका स्थान उत्तम है इस तरह दूसरा क्या उत्तम है, वह मुझे अब कहो । सात पाताल और सात ब्रह्मांड इन चौदह लोकमें ऐसे चतुर्मुख प्रासादका वर्णन हे परमेश्वर मुझे कहो । १–२.

विश्वकर्मोवाच—

क्षीरार्णवे समुत्पन्नाः प्रासादाश्च अनेकधा ।
तन्मध्ये श्रेष्ठप्रासादः चतुर्मुखः सुशोभनः ॥ ३ ॥

શ્રી વિશ્વકર્મા કહે છે. ક્ષીરાર્ણવમાં અનેક પ્રકારના પ્રાસાદો ઉત્પન્ન થયેલા છે તેમાં સર્વોત્તમ એવો શ્રેષ્ઠ શ્રેણીનો ચતુર્મુખ પ્રાસાદ સુંદર શોભનીક છે. ૩.

श्री विश्वकर्मा कहते हैं—क्षीरार्णवमें अनेक प्रकारके प्रासादों उत्पन्न हुए है । उनमें सर्वोत्तम ऐसा श्रेष्ठ श्रेणीका चतुर्मुख प्रासाद सुंदर शोभनीक है । ३.

---

(૧) આ અધ્યાય સં. ૧૭૬૭ આસો શુકલ ૧૫ ભોમવારની પ્રત પરથી ઉતારેલ છે આજ અધ્યાય વૃક્ષાર્ણવમાં સંપૂર્ણ છે જ્યારે ક્ષીરાર્ણવમાં શ્લોક ૯૨ સુધીનો અપૂર્ણ ગુજરાત સૌરાષ્ટ્રની પ્રતોમાં મળે છે. શ્લોક ૪ થી ૧૦ સુધીનો અનુવાદ અમારી મતિ પ્રમાણે બંધ બેસતો કરવા પ્રયત્ન કર્યો છે. શુદ્ધિ પ્રાપ્ત થયેલી અમારી કોઈ ક્ષતિ હશે તો તે સુધારીશું અગર કોઈ વિદ્વાન અમારું લક્ષ્ય દોરશે તો અમે આભારી થઈશું.

(१) इस अध्यायको सं. १७६७ आसो शुक्ला १५ भोमवारकी प्रत परसे उतारा है । वृक्षार्णवमें यही अध्याय संपूर्ण है और क्षीरार्णव श्लोक ९२ तकका अपूर्ण गुजरात सौराष्ट्रकी प्रतोंमें मिलता है । श्लोक ४ से २० तकका अनुवाद हमारी मतिके अनुसार योग्य रूपमें लागु करनेका प्रयत्न किया है । शुद्धि प्राप्त होके हमारी कोई क्षति होगी तो उसे हम सुधारेंगे । या कोई विद्वान हमारा लक्ष्य खिंचेगा तो हम उसके ऋणी बनेंगे ।

चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे सर्वक्षेत्रास्यमध्यतः ।
निर्गमो वेदिवैर्युक्त त्रयोविंशति विस्तरे ॥ ४ ॥
आयामे षट् विंशति निरंधारं च सिद्धयति ।
शरंध्रं नवकोष्टानि ब्रह्मस्थानं विचक्षणः ॥ ५ ॥
पंचयं कोष्टकं ज्येष्ट सार्द्धत्रयं च मध्यमम् ।
त्रिपदं कन्यसं वक्षे किंचिदाऽयामते गृहे ॥ ६ ॥
षड् चत्वारिंशत्कोष्ठ उत्तमोत्तमं आयते ।
कोष्टं तथैव चत्वारी जायते स्थान मानकम् ॥ ७ ॥
दशपंच हस्त मध्ये शरंध्रं नव कोष्ठके ।
षोडशैव यदा हस्ते कर्णांते नव कोष्टभिः ॥ ८ ॥
तस्योर्ध्वं षट् त्रिंशान्तं शरंध्रं पंचविंशतिः ।
कर्णात्पंचविंशत्या शतार्धे हस्त मानयोः ॥ ९ ॥
तथा च नवकोष्टेन ब्रह्मस्थानं प्रजायते ।

ભાવાર્થ—પ્રાસાદના ચોરસ ક્ષેત્રના સર્વની મધ્યમાં નીકળતી વેદી સાથે ત્રેવીશ પદ પહોળાઈના કરવા. લંબાઈમાં છત્રીશ પદ નિરંધાર પ્રાસાદના નવ કોઠાનો મૂળ $\frac{\text{શરંધ્ર}}{\text{ગર્ભગૃહ}}$ બ્રહ્મસ્થાન સાથે વિચક્ષણ શિલ્પીએ કરવા. તેમાં પાંચ કોઠા જ્યેષ્ઠમાન—સાડાત્રણ કોઠા મધ્યમાન અને ત્રણ કોઠા—કનિષ્ઠમાન કંઈક લાંબા (ગર્ભગૃહ) કરવા (૬) છેંતાલીશ પદના ગૃહમાં ઉત્તમોત્તમ સ્થાન માન પ્રમાણે ચાર કોઠા કરવા. પંદર હાથના ગૃહમાં શરંધ્રં (   ) નવ કોઠાનો—સોળ હાથ સુધીમાં પણ નવ કોઠાનો શરંધ્ર (   ) કરવો. તે પર છત્રીશ સુધીમાં શરંધ્રં (   ) પચ્ચીશ પદના કરવા. તે પચાસ હાથ સુધીના ને કર્ણાંત પંચવિશ સુધી બ્રહ્મ સ્થાનમાં નવ કોઠા કરવા.

भावार्थ—प्रासादके चोरस क्षेत्रके सबकी मध्यमें नीकलती वेदीके साथ तेईश भाग चौडाईके करना । लम्बाईमें छत्तीस पद निरंधार प्रासादके नौ कोठेका मूल $\frac{\text{शरंध्र}}{\text{गर्भगृह}}$ ब्रह्मस्थानके साथ विचक्षण शिल्पिको करना । उसमें पाँच कोठे जेष्ठमान—साढेतीन कोठे मध्यमान और तीन कोठे कनिष्ठमान कुछ लंम्बा (गर्भगृह) करना । (६) छयालीश पदके गृहमें उत्तमोत्तम स्थानमान के अनुसार चार कोठे करना । पंद्रह हाथके गृहमें शरंध्रं (   ) नौ कोठेका सोलह हाथ तकमें भी

नौ कोठेका शरंध्र (   ) करना। उसके पर छत्तीस तकमें शरंध्र (   ) पच्चीश पदके करना। उस पच्चास हाथ तकके को कर्णातं पंचविश तक ब्रह्म स्थानमें नौ कोठे करना।

द्विचत्वारशदतक्षेत्रे सप्तधाकर्ण विस्तरे ॥ १० ॥
द्विपदं समसूत्रेण कर्णिका सर्वकामदा।
अनुगश्चतुरो भागे निर्गमं च समं भवेत् ॥ ११ ॥
नन्दी भागद्वयं कार्या समनिष्कांशमेव च।
शेषंभद्र विस्तार स्त्रय निष्कांशं वर्त्तये ॥ १२ ॥

મહા ચાતુર્મુખ પ્રાસાદના ક્ષેત્રના બેતાળીશ ભાગ કરવા. તેમાં રેખા સાત ભાગની. બે ભાગની કર્ણિકા સમદલ-અનુગ (પ્રતિરથ) ચાર ભાગનો સમદલ, નંદી બે ભાગની સમદલ નીકળતી, બાકીનું આખું ભદ્ર (બાર ભાગ પહોળું) અને ત્રણ ભાગ નીકળતું કરવું. ૧૦-૧૧-૧૨.

महा चातुर्मुख प्रासादके क्षेत्रके बयालीश भाग करना। उसमें रेखा सात भागकी. दो भागकी कर्णिका समदल, अनुग (प्रतिरथ चार भागका समदल नीकलती, बाकीका पूरा भद्र (बारह भाग चौडा) और तीन भाग नीकलता करना। १०-११-१२.

तथा षर्णं भ्रमं तेन पदं पंच दशस्तथा।
नन्दन स्थापयेत्कर्णे सर्वतोभद्र चानुगे ॥ १३ ॥
नंदिके केसरीं देयं भद्रे द्वारं च धीमताम्।
गवाक्षेः परिवेष्टितं इलिका तौरणैर्युतम् ॥ १४ ॥
अनुगे दापयेत्कर्णे नन्दयो च उत्तमोपरि।
तिलकं पल्लवी स्त्राङ्गं उरुप्रत्याङ्ग भूषणम् ॥ १५ ॥
कर्णे केसरीं चैव तिलकं रथिकोपरि।
मंजरी मूलरेखा च च षडम् (?) शृङ्गभूषितं ॥ १६ ॥
पंचचत्वारिंशतत्रया उरु शृङ्गानि द्वादश।
प्रत्याङ्गस्तु भवेदष्टौ तिलके सर्वदापयेत् ॥ १७ ॥

ભ્રમ ભાગ પાંચનો અને (બે ઓસાર) દશ ભાગના (અને મધ્યનો સ્તૂપ-લિંગ-બાવીશ ભાગના તેના ઓસાર પાંચ પાંચ ભાગના) જાણવા. રેખાયે

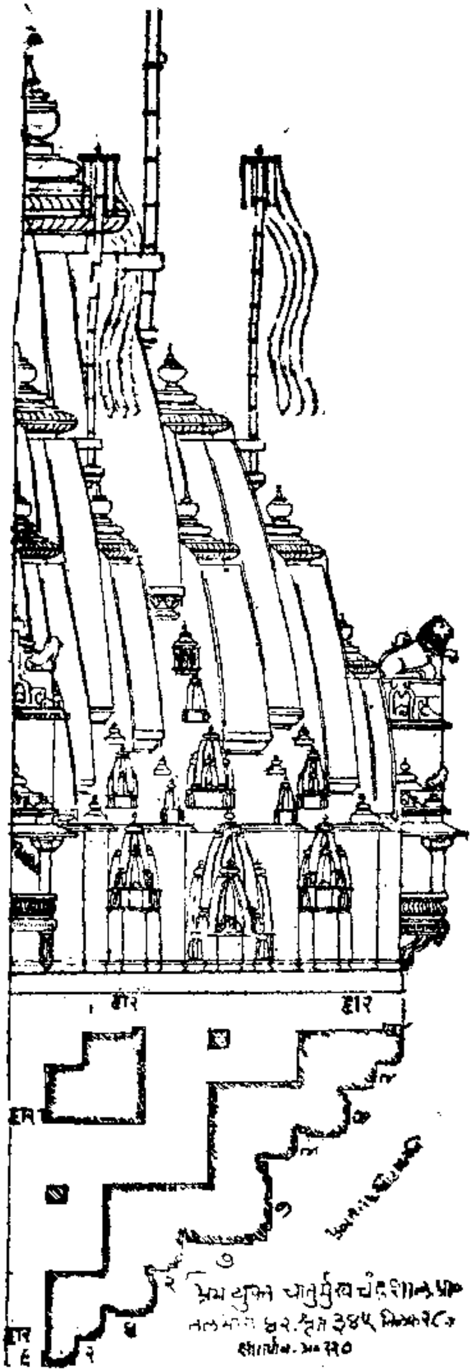

क्रमयुक्त चातुर्मुख चंद्रशाल प्रासाद भाग ४२ शृंग ३४५ तिलक २८

તેર અંડકનું નંદન કર્મ ચડાવવું. અનુગ–પઢરે નવ અંડકનું સર્વતોભદ્ર કર્મ ચડાવવું. રેખા પાસેની નંદી પર પાંચ અંડકનું કેસરી કર્મ ચડાવવું અને બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ ચારે ભદ્રમાં દ્વાર મુકવા. તે પર ચારે તરફ ગવાક્ષ–ગોખ, ઝરુખા અને ઇલીકા–તોરણાદિથી શુભોભિત ભદ્ર કરવું. બીજા થરમાં અનુગ પઢરે રેખાની જેમ તેર અંડકનું નંદન કર્મ (અને ૯ અંડકનું સર્વતોભદ્ર કર્મ) ચડાવવાં. ભદ્ર પાસેની નંદી પર એક તિલક ચડાવવું. (રેખા પાસેની નંદી પર) પ્રત્યાંગ ચડાવી શુભોભિત કરવું. રેખાયે ત્રીજું પાંચ અંડકનું ચડાવવું. પઢરા પર (બલકૂટ) તિલક ચડાવવું અને મૂળ રેખા પાયચા નીચે કૂટ યુક્ત મંજરી ચડાવવું અને બાર ઉરુશ્રૃંગ અને આઠ પ્રત્યાંગ ચડાવી કુલ ત્રણસો પીસ્તાળીશ અંડકનો પ્રાસાદ જાણવો. અને તિલક (૨૮) સર્વ સ્થાને ચડાવવાં.

क्रम भाग पाँचका और (दो ओसार) दश भागके (और मध्यका स्तूप–लिंग बाईस भागके, उनके ओसार पाँच पाँच भागके) जानना। रेखा पर तेरह अंडक का नंदन कर्म चढ़ाना। अनुग–पढरा नौ अंडका सर्वतोभद्र कर्म चढ़ाना। रेखाके पासकी नंदी पर पाँच अंडकका केसरी कर्म चढ़ाना। और

बुद्धिमान शिल्पीको चारों भद्रमें द्वार रखना। उस पर चारों और गवाक्ष–गोख, झरोखा और इलिका तोरणादिसे शुशोभित भद्र करना। दूसरा थरमें अनुग=प्रतिरथ पर रेखाकी तरह तेरह अंडकका नंदन कर्म (और नौ अंडकका सर्वतोभद्र कर्म) चढ़ाना। भद्रके पासकी नंदी पर एक तिलक चढ़ाना (रेखाके पासकी नंदी पर) प्रत्यंग चढ़ाकर सुशोभित करना। रेखा पर तीसरा पाँच अंडकका चढ़ाना। पढरे पर (बलकूट) तिलक चढ़ाना। और मूल रेखा पायचेके नीचे कूटयुक्त मंजरी चढ़ाना। और बारह उरुश्रृङ्ग और आठ प्रत्यंग चढ़ाकर कुल तीनसौ पैंतालीश अंडकका प्रासाद जानना। और तिलक (२८) सर्व स्थानों पर चढ़ाना। १३–१४–१५–१६–१७.

अर्चाश्च वीतरागाणां तिलकं त्रिभुवनस्य च।
एभि स्तगैर्युक्ताश्चंद्रशालं चतुर्मुखे ॥१८॥

इति चंद्रशाल चातुर्मुख प्रासाद भाग–४२, अंडक ३४५

વીતરાગ જિન ભગવાનની મૂર્તિ જે ત્રણ ભુવનમાં તિલક સમાન છે તેનો ચંદ્રશાલ નામનો ચતુર્મુખ પ્રાસાદ તે જાણવો. ઇતિ ચંદ્રશાલ પ્રાસાદ–ભાગ–૪૨, શ્રૃઙ્ગ ૩૪૫ અને તિલક + ૨૮.

वीतराग जिन भगवानकी मूर्ति जो तीन भुवनमें तिलक समान है, उसका चँद्रशाल नामका चतुर्मुख प्रासाद जानना। इति चँद्रशाल, प्रासाद भाग–४२ श्रृंग ३४५. और तिलक २८.

तथा पीठं च विस्तारं चत्वारो मंडपैर्युतैः।
पणमेकं भवेत्कर्ण प्रतिकर्ण स्तथैव च ॥१९॥
कर्णे च सपाद निष्क्रांतं अनुगे भद्रे मंडपाः।
भद्रं त्रिणि पणं प्राज्ञ पणमेकं तु निर्गमम् ॥२०॥
सिंहद्वार विशेषेण अनुगे सह संयुतम्।
पणपंचैव विस्तारं यावत् त्रयमंडपाः ॥२१॥
चत्वारि च पुनर्वेदा स्त्रीणि त्रीणि पदा नपि।
अष्टाविंशं सिंहद्वारे अष्टस्थानं अतः श्रृणु ॥२२॥

પ્રાસાદને ચારે તરફ મંડપો પીઠ સહિત વિસ્તારથી કરવા તેને એક ભાગ રેખા પ્રતિરથ એક ભાગ તે રેખાથી સવાયો નીકળતો અનુગ (પરોઢ) અને ભદ્રનો રાખવો. ભદ્ર ત્રણ ભાગનું ચતુર શિલ્પીએ રાખવું. નીકાળો એક ભાગ

તેનું (નીચે) બહારનું સિંહ દ્વારની (ચતુષ્કિકા) અનુગ પઢરા સહિતના વિસ્તાર જેટલું રાખવું. ત્રણે મંડપના પાંચ પદ જેટલું રાખવું.

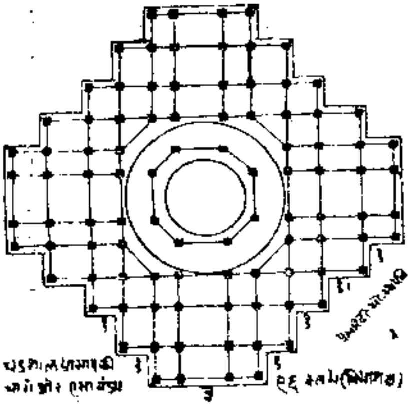

चंद्रशाल प्रासादकी चारो और ऐसा मंडप–९६–९६ स्तंभोंका करना

ચાર ભાગ રેખા, ચાર ભાગ અનુગ, ત્રણ ભાગ પ્રતિરથ અને ત્રણ ભાગ (અર્ધ-ભદ્ર) એમ બેઉ બાજુના મળી એટલે અઠ્ઠાવીશ ભાગ સિંહ દ્વાર સાથે મંડપ કરવા. આઠ સ્થાનનું હવે સાંભળો. ૧૯–૨૦–૨૧–૨૨.

प्रासादकी चारों तरफ मंडपों पीठ सहित विस्तारसे करना। उसको एक भाग रेखा प्रतिरथ एक भाग उस रेखासे सवागुना नीकलता अनुग (पढरा) और भद्रका रखना। भद्र तीन भागका चतुर शिल्पीको रखना। नीकाला एक भाग–उसका (नीचे) बारहका सिंह द्वारकी (चतुष्किका) अनुग पढरा सहितके विस्तार जितना रखना। तीन मंडपके पाँच पद्के जितना रखना।

चार भाग रेखा, चार भाग अनुग, तीन भाग प्रतिरथ और तीन भाग (अर्ध भद्र) इस तरह दोनों बाजुके मिलकर अर्थात् अट्ठाईस भाग सिंह द्वारके साथ मंडप करना। आठ स्थानका अब सुनो। १९–२०–२१–२२.

त्रीणि व त्रीणि चाष्टस्थाने चतुर्विंशति धीमता।
चंद्रीआणाश्च सिध्यंन्ति द्विपंचाशद् मनोहरा ॥२३॥

रथयुक्ता: च प्रासादा चन्द्रिआण सनिर्मिता।
चंद्रवक्त्रस्य नामानि विभागं शिखर सह ॥२४॥

एतःक्षेत्रान मध्यं च चतु:कर्ण वर्जिताम्।
बावनो जिन अर्चाणी उक्ता क्षीरार्णवे शुभे ॥२५॥

આઠ સ્થાને ત્રણ ત્રણ (   ) એમ ચોવીશ ચંદ્રીયાણ (પ્રમુખ મંદિર સહિત અને મનોહર એવા બાવન જિનાલય ચંદ્રીઆણ પ્રાસાદના રથભદ્રાદિ યુક્તનું નિર્મિત કરવું. શિખરના વિભાગ સાથે चंद्रवक्त्र નામ જાણવું. એવા ક્ષેત્રના ચારે કર્ણ ખુણા વગરના (ચાર ખુણે ખાંચા પાડેલ) ચોરસ બાવન જિનમૂર્તિના બાવન જિનાલય ક્ષીરાર્ણવમાં શુભ કહ્યો છે. ૨૩–૨૪–૨૫.

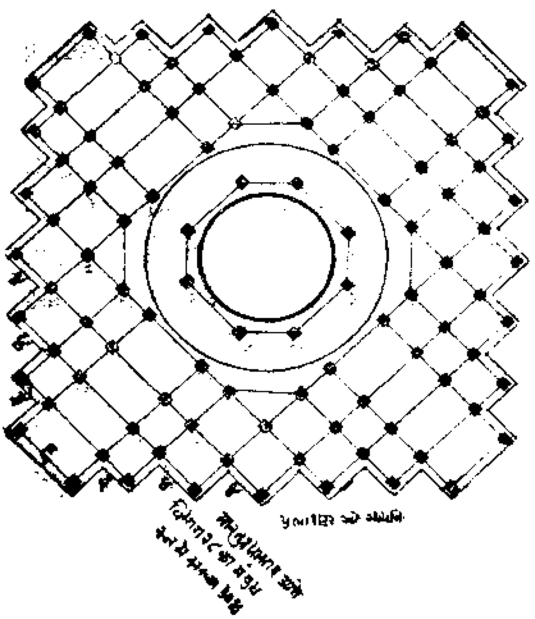

मानतुङ्ग प्रासादके आगे
२८ विभागका मंडप. स्तंभ १०४

आठ स्थानों पर तीन तीन ( ) इस तरह चौवीश चँद्री-आण (प्रमुख मंदिर सहित) और मनोहर ऐसे बावन जिनालय चँद्रीआण प्रासादके रथ भद्रादि युक्तका निर्मित करना। शिखरके विभागके साथ चँद्रवक्र नाम जानना। ऐसे क्षेत्रकी मध्यमें चार कर्ण कौने विनाका चोरस बावन जिनमूर्तिका बावन लिनालय क्षीरार्णवमें शुभ कहा है। २३–२४–३५.

बावनासेन भद्रा च बासठि
श्रीणि कर्णिका।
महामान जगतीनां विचित्रै
र्विधि भूषणै ॥२६॥

तथाश्च सिंह द्वारेण बभूव पक्षे नवस्तथा।
ते नालग्रे त्रयो दश चत्वारिंशन्मुखायते ॥ २७॥
सिंहद्वारे पराङ्गामुखे चतुःस्थाने शुभं भवेत्।
अशीति चतुराग्रेण चेन्द्रियाणां च सिध्यति ॥ २८॥
सिंहद्वारे विचारेण ब्रह्मस्थाने अतः शृणु।
प्रासादे नवकोष्ठेन षणमेकं प्रदक्षिणे ॥ २९॥
श्रीमंवृष षण: पंच मेघनादे तु पंचके।
त्रिके नालित्परिश्चैव नववेदाभद्राग्रत ॥ ३०॥

ભાવાર્થ—બાવન જિનાયતના ભદ્ર ભાગ........ત્રણ કર્ણિકા........વિચિત્ર એવી જગતી વિધિથી શોભતી કરવી (૨૬) સિંહ દ્વારની બેઉ બાજુ નવ.... ....નાલ (મંડપની) આગળ પહોળા તેર ભાગ અને ચાલીશ ભાગ ઉંડા........ કરવો. સિંહ દ્વારની પાછળ મુખે પશ્ચિમે અને ચારે સ્થાનમાં શુભ........... (એવા મહાધર કરવા ?) ફરતા ચોરાશી જિનાયતનની દેવ કુલિકાઓ સિદ્ધ કરવી. સિંહ દ્વારનો વિચાર કરીને શુભ એવું મધ્યનું બ્રહ્મ સ્થાનનું સાંભળો. પ્રાસાદના નવ કોઠાને એક ભાગ પ્રદક્ષિણાનો રાખવો. તેવા પાંચ વર્ણ (?) શ્રીમવૃષ.

(ચોમુખ!) થાય તે પાંચને મેઘનાદ મંડપો કરવા. તેના નીચે સિંહ દ્વારે નાલિ (મંડપ) તેના ઉપર પાંચ કે નવ પદ ભદ્રનો આગળ (મંડપ)....
૨૬–૨૭–૨૮–૨૯–૩૦

भावार्थ—बावन जिनायतनके भद्र भाग......तीन कर्णिका......विचित्र ऐसी जगती विधिसे शोभती करना। (२६) सिंह द्वारकी दोनों बाजु नौ...... ताल (मंडपकी) आगे गहरा तेरह भाग और चालीश भाग चौड़ा......करना। सिंह द्वारकी पीछे मुख पर पश्चिममें और चारों स्थानोंमें शुभ......(ऐसे महाधर करना!) फिरते चौरासी जिनायनकी देवकुलिकाओं सिद्ध करना। सिंह द्वारका विचार कर शुभ ऐसा मध्यके ब्रह्मस्थानके बारेमें सुनो। प्रासादके नौ कोठेको एक भाग प्रदक्षिणाका रखना। वैसे पाँच वर्ण (?) श्रीमघृष (चौमुख!) होवे उन पाँचको मेघनाद मंडपों करना। उनके नीचे सिंह द्वार पर नालि (मंडप) उसके पर पंच या नौ भद्रका आगे (मंडप)...२६–२७–२८–२९–३०.

ब्रह्मस्थाने त्रय: पक्षे निर्गमं च विशेषतः।
त्रयो मंडपा न मध्ये षण द्वयं प्रदापयेत् ॥ ३१ ॥
मंडपै नालिकैर्वक्ष्ये षणमेकेन बाह्यते:।
निर्गमो वेदिका बाह्ये अथ च योणि वेदिका ॥३२॥
तेषां प्रस्तार भागेन सर्वालंकार संयुता।
... ...नाम मानतुङ्गना ॥ ३३ ॥

ભાવાર્થ—બ્રહ્મ સ્થાન (મધ્ય ચોમુખ!) ના ત્રણે બાજુ નિકાળો વિશેષ કરીને રાખવો. ત્રણે તરફના મંડપના મધ્યમાં બબ્બે પદ ભાગનું (અંતર!) રાખવું. નાલિમંડપ ઉપર કહું છું એક પદ બહાર બાજુમાં અને ચાર પદ આગળ નીકળતા નીચે રાખવા. બાકી અંદર જિનાયતનને ફરતો પ્રસ્તાર ચોકીયાળા કરવાથી તે સર્વ અલંકારયુક્ત એવો માનતુઙ્ગ નામનો ચતુર્મુખ પ્રાસાદ જાણવો. ૩૧–૩૨–૩૩

ब्रह्मस्थान (मध्य चौमुख) के तीनों बाजु निकाला विशेषकर रखना। तीनों तरफके मंडपके मध्यमें दो दो पद भागका (अंतर) रखना। नालि मंडप उपर कहता हूँ। एक पद बाहर बाजुमें और चार पद आगे नीकलतेके नीचे रखना। बाकी अंदर जिनायतनके चारों और प्रस्तार—चौकीयाले करनेसे उसे सर्व अलंकारसे युक्त ऐसा मानतुङ्ग नामका चतुर्मुख प्रासाद जानना। ३१–३२–३३.

सौभाग्यानि प्रवक्ष्यामि तथा किरणावली शुभा।
प्रासादं ब्रह्मसूत्रेश शरध्रं नव कोष्टके ॥ ३४ ॥

त्रिसंधाट समाकीर्णो कवली रथसूत्रके ।
चतुर्मुखमतां चंद्रो सभ्रमा वर्जितागता ॥ ३५ ॥
गवालुका छादनं रम्यं गर्भमंडपस्यान्तरे ।

ભાવાર્થ—હવે હું તમને સૌભાગ્યાનિ અને શુભ એવી કિરણાવલી કહું છું. પ્રાસાદના બ્રહ્મસૂત્રના શરંધ્ર નવ કોઠા કરવા. રથ (પ્રતિરથ)ના સૂત્રે કોળી........ત્રણ પદ જોડતી કરવી. ચતુર્મુખના ભ્રમવાળા કે ભ્રમ વગરના પ્રાસાદને ....જોડતો ગર્ભ મંડપને ગવાલુકાના થરોથી રમ્ય એવો છાજેલ કરવો. ૩૪-૩૫

अब मैं तुम्हें सौभाग्यानि और शुभ ऐसी किरणावली कहता हूँ। प्रासाद के ब्रह्मसूत्रके शरंध्र नौ कोठे करना। रथ प्रतिरथके सूत्र पर कोली...तीन पद जोडती करना। चतुर्मुखके भ्रमवाले या भ्रम बिनाके प्रासादको......जोडता गर्भ मंडपको गवालुकाके थरोंसे रम्य ऐसा छाजेल करना। ३४-३५.

अथ: मंडोवरे प्राज्ञ: नागरं द्राविड श्रृणु ॥ ३६ ॥
तल छंदानुसारेण कवलीहीनं न कारयेत् ।
अज्ञाने कुरुते प्राज्ञ प्रासाद पुण्यवर्जितम् ॥ ३७ ॥
असि स्तम्भ समाकर्णे भ्रमंते च प्रदक्षिणे ।
चतुर्विंश चैत्यकानां मध्येपंक्तिश्च दापयेत् ॥ ३८ ॥
त्रयोदश चतु:कर्णे द्विपंचाशस्य क्षेत्रके ।
मंडपाश्च द्वयो मध्ये पणमेकां च सिध्यति ॥ ३९ ॥
अध: पीठं भवेच्चैत्ये प्रासादे ज्येष्ठ पीठकम् ।
कर्ण कक्षान्तरे कृत्वा षट: चैत्य प्रदक्षीणे ॥ ४० ॥

ભાવાર્થ—નાગરાદિ અને દ્રવિડાદિ છંદના મંડોવર ડાહ્યા પુરુષોએ કહ્યા છે, તે સાંભળો. તળે છંદને અનુસરીને........કોળી હીન ન કરવું. જો અજ્ઞાનતાથી તેમ કરે તો પ્રાસાદ બાંધવાનું પુણ્ય વર્જિત થાય........એંશી સ્તંભો ફરતા પ્રદક્ષિણાએ ભ્રમમાં કરવા. ચોવીશ જિનાલયની મધ્ય પંક્તિમાં તેર તેર ચારખૂણે કરી બાવન જીનાયતના ક્ષેત્રમાં તેમ કરવું. બે મંડપો જોડાતા હોય તો વચ્ચે એક પદ જેટલું અંતર ચોકીનું રાખવું. ચૈત્યને નીચે પીઠ કરવું. મૂળ પ્રાસાદને જેષ્ઠ માનનું પીઠ કરવું. જિનાયતનની ફરતી પંક્તિમાં ખુણે અને વચ્ચે કક્ષમાં છ ચૈત્ય ફરતા કરવા. (તેને મહાધર કહે છે.)

नागरादि और द्राविडादि छंदके मंडोवर बुद्धिमानोंने कहे हैं वे सुनो। तलच्छंदको अनुसरके...कोलीहीन न करना। जो अज्ञानतासे ऐसा किया जाय

तो प्रासाद बाँधनेका पुण्य वर्जित होता है।...अस्सी स्तंभोंको फिरते प्रदक्षिणामें भ्रममें करना। चौवीस जिनालयकी मध्य पंक्तिमें तेरह तेरह चार कोनेमें कर बावनके क्षेत्रमें वैसा करना। दो मंडपों मिलते हो तो बिचमें एक पद जितना अंतर चौकीका रखना। चैत्यके नीचे पीठ करना। मूल प्रासादको जेष्ठमानका

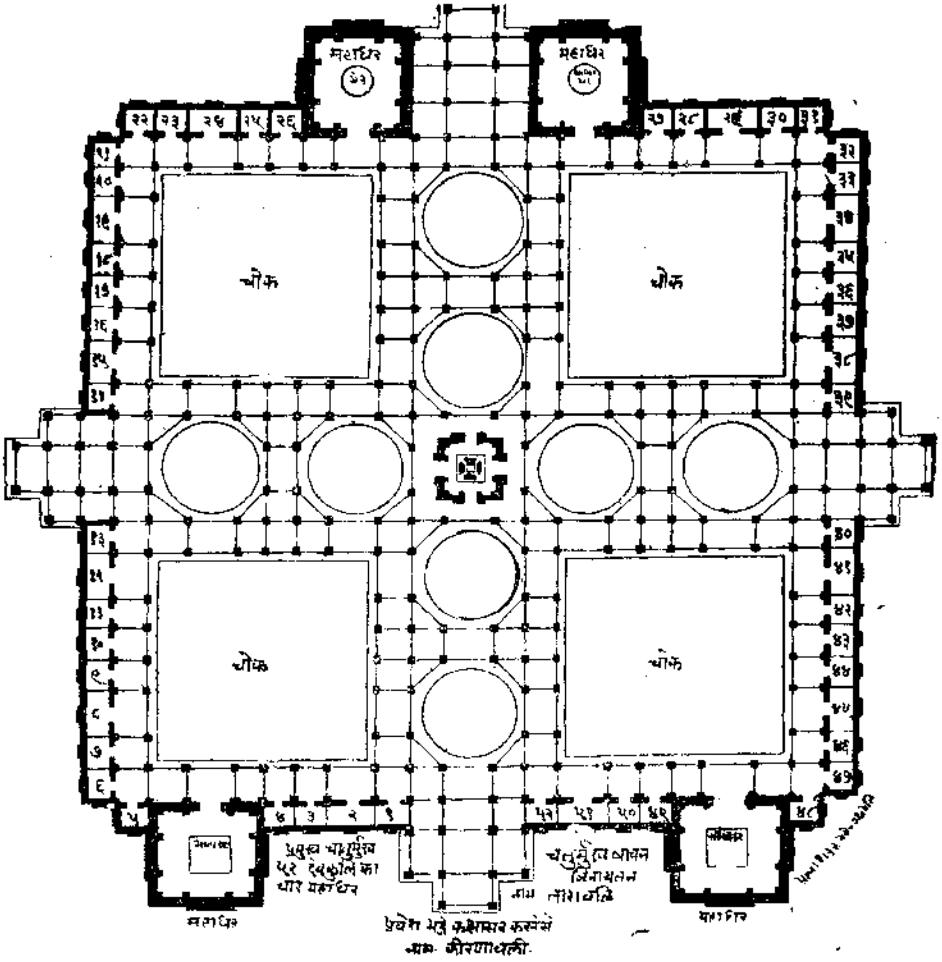

३५६ स्तंभ संख्या
४८ महाधर ४
१२ मूळ चोमुख
२०८ देरी पर
६२४ कुल स्तंभ

बावन देवकुलिका सहित चतुर्मुख
नाम **"ताराउली"**
प्रवेश भद्रे कक्षासन करनेसे
"किरणाउली"

१ चतुर्मुख
५२ देवकुलिका
४ महाधर
५७
४ मेघनाद मंडप
४ मंडप
४ बलाणक
६९

पीठ करना। जिनायतन की फिरती पंक्तिमें कोने पर और बिचमें कक्षमें छः चैत्यों फिरने करना। (उसे महाधर कहते हैं।)

भद्रस्य कोष्टकं वक्ष्ये मुखभद्रे त्रीणिभवेत्।
तत्स्थाने वेदिका रम्या सुभद्रा सर्वकामदा ॥४१॥

॥ इति किरणावली ॥

ભદ્રના કોઠાનું કહું છું. મુખ ભદ્રને ત્રણે સ્થાને રમ્ય એવી વેદિકા–સુભદ્રા સર્વ કામનાને દેનારી કરવી તે **કિરણાવલી** જાણવી. ૪૧.

इति किरणावली=भद्रके कोठेके बारेमें कहता हूँ। मुख भद्रके तीनों स्थान पर रम्य ऐसी वेदिका सुभद्रा सर्व कामनाको देनेवाली करना। उसे किरणावली जानना। ४१.

कीरणावली—सौभाग्यानी

कीरणाउली मंडप—मुख मंडप वेदिका कक्षासन युक्त और निम्न नाली मंडप करनेसे **सौभाग्यानि** नाम पंदरा विभागका ९६ स्तंभका मंडप

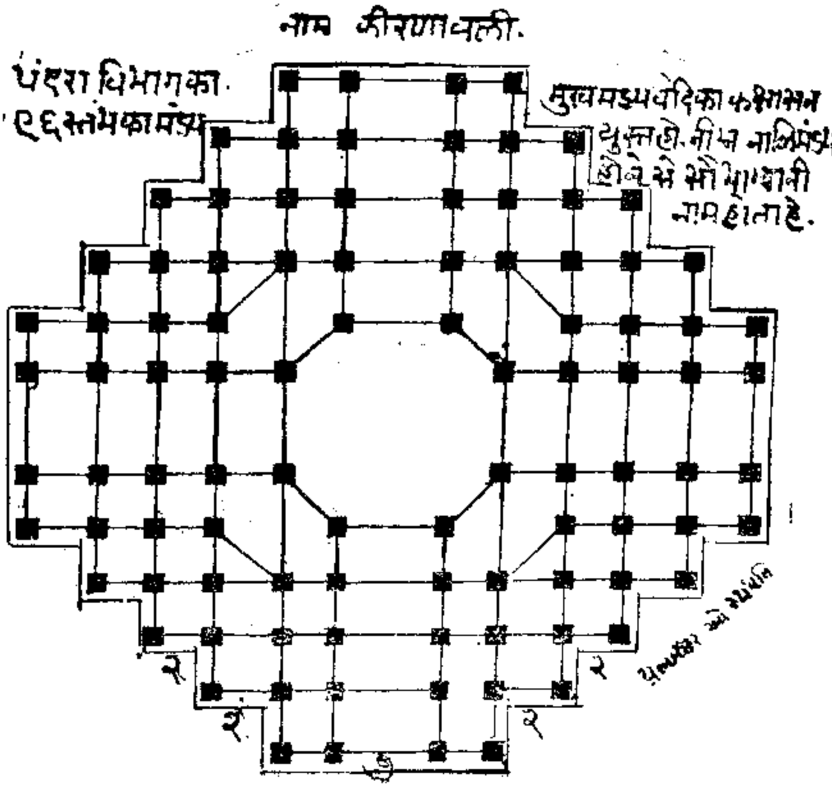

दिपंचाशज्जिनालये स्तम्भको मंडपद्वयम् ।
तस्याग्रे वेदिकास्यात् पंक्ति सोपान संचयः ॥४२॥
द्विसप्तति जिनावासे मंडपे मध्यवेदिका ।
नाली मंडप समाख्याता वेदिकासनमंडिताः ॥४३॥

બાવન જિનાલયમાં આગળ ફરતા સ્તંભો અને તેને બે મંડપો કરવા. તેનાથી આગળ પગથિયાની પંક્તિ કરવી. બહોંતેર જિનાયતનને મધ્યમાં મંડપ વેદિકાયુક્ત કરવો. નીચે નાલી મંડપનો આગળનો ભાગ વેદિકા આસન પટ્ટથી શોભતો કરવો. ૪૨–૪૩.

बावन जिनालयमें आगे फिरते स्तंभों और उसे दो मंडपों करना । उससे आगेके भागमें (स्तंभोंको कक्षासन युक्त) वेदिका और उससे आगे पगथियेकी पंक्ति करना । बहोत्तर जिनायतनके मध्यमें मंडप वेदिका युक्त करना । नीचे नाली मंडपका आगेका भाग वेदिका आसनपट्टसे शोभता करना । ४२–४३.

कर्ण भाग द्वयं कार्य प्रतिकर्णद्वयं भवेत् ।
सप्तभागायतं भद्रं मुख भद्रं त्रयं कारयेत् ॥४४॥
निष्कांशो भाग भागेन वेदिका मुखमंडनी ।
नाली मंडप सौभाग्यं स्वरूपो लक्षणान्वितं ॥४५॥

॥ इति सौभाग्यानी ॥

મંડપના તળ વિભાગ કહે છે. કર્ણ રેખા બે ભાગ, પ્રતિરથ પણ બે ભાગનો સાત ભાગનું ભદ્ર તેને ત્રણે તરફ મુખ મંડપ કરવા (ભદ્રમાંથી ત્રણ ભાગનુ મુખભદ્ર) તેમાં નીકાલા એકેક ભાગના રાખવા મુખ મંડપને વેદિકા કક્ષાસન કરવુ એવા સ્વરૂપ અને લક્ષણવાળો સૌભાગ્યાની નામનો નાલી મંડપ જાણવો. ૪૪–૪૫. ઇતિ **સૌભાગ્યની.**

मंडपका विभाग कहते हैं कर्ण=रेखा और प्रतिरथ दो दो भागका सात भागका भद्र रखना उसके तीनों बाजु मुख भद्र करना (भद्रसे तीन भाग मुख भद्र ?) उसका निकाला एकेक भागका रखना । मुख भद्रके वेदिका कक्षासन करना ऐसे स्वरूप और लक्षणवाला सौभाग्यनी नामके नालिमंडप जानना । ४४–४५.

नववेद षट्कोष्टेन प्रासादा जिनचरिताः ।
तन्मध्ये मेघनादः स्यात् स्थापने पुण्यसागरः ॥४६॥

૭ × ૭ = ઓગણ પચાસ પદમાં ૭ કોષ્ટકના પદના જિનનો પ્રાસાદ રથ સાથે વચ્ચે કરી તેમાં મધ્યમાં મેઘનાદ નામનો મંડપ સ્થાપન કરવાથી અનેક સાગરોપમ ગણું પુણ્ય પ્રાપ્ત થાય. ૪૬.

उनचास पदमें छः कोष्टकके पदके जिनके प्रासाद रथ के साथ बिचमें कर उनमें मध्यमें मेघनाद नामका मंडप स्थापन करनेसे अनेक सागरोपम गुना पुण्य प्राप्त होता है। ४६.

तारका पंच भूत्कार्यं जूईईये वृषभंगयणा सई जिणालय होइशो सहीपुणे कजेणा उदकारस्य पंचभूइ जुइ पदउयपगणणो सेइ जिणालयं इसो सो ही पुण्य कालेन ? (?) ४७

.... (४७)

मध्य परिध्य वेदी सा वेदी चेइआणादि देय अर्द्ध चतुर्मुखे यनरौर बावन ? ।४८।

.... (४८)

षड्षष्ठि शतत्रीणि कोष्ठका याम विस्तरे। आवर्जित ग्रयत्नेन चौकाग्रेवा शतत्रय ॥ ४९ ॥

ત્રણુસોને સાઠ પદના વિસ્તારવાળા કોઠામાં........એકસો ત્રણુ પદ....(૪૯)

तीनसौ साठ पदके विस्तारवाले कोठेमें......एक सौ तीन पद......४९

ब्रह्मस्थाने च संस्थाप्य पंचविंशा चतुर्मुखे।
त्रिपंचषट् संघाटाः प्रासादा रथ संयुताः ॥५०॥
शतकोष्टस्य तन्मध्ये च मेघनादश्चतुर्दिशि।
रथयुक्ताश्च प्रासादा वेदियुक्ताश्च मंडपाः ॥५१॥
क्षेत्रस्यायाम विस्तीर्ण योगकोष्टाः सप्तदशः।
चतुरस्त्रे षोडश स्तंभा दिशिबाह्यमुत्तरमेश्च च ॥५२॥
... ... ।
चतुर्मुखे युक्तिकरै......निरन्तरे ... ... ॥५३॥
द्विभूमि रचिता पुंसि! मेघनाद स्वच्छंद ज्ञाति वर्णाभिरंतरं।
चतुर्दिशी स्वमुखे मंडित शुभ सहिश कार्यमुख पंक्ति प्रदायनी ॥५४॥

ભાવાર્થ—ક્ષેત્રના બ્રહ્મસ્થાનમાં પચ્ચીશ ખંડ પદમાં ચોમુખની રચના કરવી. ત્રણુ પાંચ છ એમ જોડતા પ્રાસાદો રથ સાથે અંગો યોજવા. સો પદના કોઠાના મધ્યમાં ચારે દિશાએ મેઘનાદ મંડપની રચના કરવી. પ્રાસાદ જેમ રથાદિ અંગ યુક્ત કરવા. તેમ મંડપો વેદિ કક્ષાસન યુક્ત કરવા. (૫૧) ક્ષેત્રની લંબાઇ અને પહોળાઇના યોગે કરીને સત્તર કોઠા કરવા. તેમાં ચોરસાઇમાં સોળ સ્તંભો બહારની (ઉત્તર) દિશામાં કરવા !........યુક્તિથી ચતુર્મુખમાં હમેંશા

યોજવા (૫૩) પોતાની જાતી અને વર્ણ છંદનો મેઘનાદ મંડપ બે ભૂમિનો રચવો. તે ચારે દિશાએ પોતાના મુખથી શોભતો.......(૫૪).

क्षेत्रके ब्रह्मस्थानमें पच्चीश खंड–पदमें चोमुखकी रचना करना। तीन पाँच छ इस तरह जोडते प्रासादों रथके साथ अंगोंको योजना। सो पदके कोठेके मध्यमें चारों दिशामें मेघनाद मंडपकी रचना करना। जिसे तरह प्रासाद को रथादि अंग युक्त करना इस तरह मंडपों वेदि कक्षासन युक्त करना। (५१) क्षेत्रकी लम्बाई और चौडाईके योगसे सत्रह कोठे करना। उसमें चौरसाइमें सोलह स्तंभ बाहरकी (उत्तर) दिशामें करना।

.... युक्तिसे चतुर्मुख हमेशा....योजना ५३

अपनी जाती और वर्णोके छंदका मेघनाद मंडप दो भूमिका रचना। वह चारों दिशामें अपने मुखसे शोभता .... ५०–५१–५२–५३–५४.

द्विसप्तति जिनान्यक्षे नालिमंडप जिनविर।
रचिताम्यमत्त मेरुकृतेशृपला भास्करेक्ति कारका सदा पदतश्चले ॥५५॥

બહોતેર જિનાયતનમાં નીચે નાલિ મંડપ...........ઉપર બાર સ્તંભના મંડપમાં રમ્ય એવા "મેરૂ" ની રચના કરવી.... .... ૫૫

बहोतर जिनायतमें नीचे नालि मंडप .... उपर बारह स्तंभका मंडप से रम्य ऐसे "मेरु" की रचना करनी ५५

प्रासाद भवने चैव आयामे विस्तरे शुभम्।
भागैकं च भवेत्कर्ण पंचाशिति शतद्वयम् ॥५६॥
युक्ति बाह्यं प्रकर्तव्यं चतुष्कोष्टा मुखाग्रे च।
जलांन्तरं गतं द्वारं वेदिका मुखमंडितम् ॥५७॥
चँद्ररेखा च संस्थाने भद्रं च नवभागिकाम्।
निष्कांश भागमेकेन चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ॥५८॥
त्रीणि त्रीणि भवेत्वेदी स्थापदैनं न नाभं च षोडश!
जिनशाचं वरमुच्यते! चतुर्भूमियदानि च ॥५९॥
पदैकं षोडश पदे च मध्यस्तु पद (वेद) मुखै।
इलिका तौरणैर्युक्तं रवि रेखा विराजितं ॥६०॥
नालिमंडप संयुक्ता द्वित्रिभूमि समाकुलाः।
वेदिकासन पट्टेश्च पंक्ति सोपान संचयः ॥६१॥

ભાવાર્થ—પ્રાસાદ ભવનના ક્ષેત્રની લંબાઈ પહોળાઈના બસો પંચાશી વિભાગના કોઠામાં ચાર ખુણે એકેક ભાગનો કર્ણ રાખવો. યુક્તિથી બહાર ચાર કોઠા મુખના અગ્રે કરવાં. જલાન્તર!........માં દ્વાર કરી વેદિકાદિથી મુખ શોભિત કરવું. ચંદ્રરેખા! (   ) ના સ્થાને નવ ભાગનું ભદ્ર કરવું. તેનો નિકાળો એકેક ભાગનો એમ ચારે તરફ કરવું. ત્રણ ત્રણ પદની વેદી.... ....ચાર ભૂમિ ઊંચા........(૫૬-૫૯)

એકેક પદ એમ સોળ પદના મધ્યે......કરવું. તેને ઇલિકા તોરણથી યુક્ત....રવિરેખા! (   )........તેને નાલિમંડપ સાથે બે ત્રણ ભૂમિવાળો કરવો. તેને રાજસેનક વેદિકા આસનપટ્ટાદિ કરવા અને આગળ પગથિયાની પંક્તિ કરવી. ૫૬ થી ૬૧.

प्रासाद भवनके क्षेत्रकी लम्बाई चौडाईके दोसौ पंचाशी विभाग–कोठेके चार कोनेमें एक एक भागका कर्ण रखना। युक्तिसे बाहर चार कोठे मुखके अगले भागमें करना। जलान्तर!....में द्वार कर वेदिकासे मुखको शोभित करना। चँद्र रेखा! (   ) के स्थान पर नौ भागका भद्र करना। उसका निकाला एक एक भागका इस तरह चारों ओर करना। तीन तीन पदकी वेदी ......चार भूमि ऊँचे.......एकेक पद इस तरह सोलह पदका मध्यमें........ करना। उसे इलिका तोरणसे युक्त........रवि रेखा! (   )........उसे नालि मंडपके साथ दो तीन भूमिवाला करना। उसे राजसेनक वेदिका आसन पट्टादि करना और आगे पगथियेकी पंक्ति करना। ५६ से ६१.

मेघनादैश्चसंयुक्ता द्वैश मृदा मेघनाश्रितं।
मदलैमंडिता जाती इलिकाकुश नालिकाः ॥६२॥
पुनः प्रासाद विधिपूर्वा नारदः श्रृणु सांप्रतम्।
सभ्रमाय भ्रमं हीन (पूर्वा) द्रव्यहीना धिकं स्तथा ॥६३॥
गतोऽयं दिव्यलोकेनं पुनः क्षीरार्णवे शृभे।
क्षेत्रं मंदातिः प्राज्ञः नैव चिंतति मानुषैः ॥६४॥
तथा वेध रहितानि सिंह द्वाराणि सर्वतः।
सभ्रमं तत्र कार्यं च सिंह दारे च मंडपे ॥६५॥

ભાવાર્થ—........ના આશ્રિત મેઘનાદ સહિત મંડપ મદળો–ઇલિકા તોરણાદિથી સુશોભિત કરવો. હે નારદ, હવે ફરી પ્રાસાદની વિધિ સાંભળો ભ્રમયુક્ત કે ભ્રમ વગરનો તે તો દ્રવ્યની હીન અધિકતા પ્રમાણે કરવું. તેથી

मोढेरा के कलामय सूर्यमंदिर के मंडपद्वार स्तंभ और गजतालुयुक्त तोरण

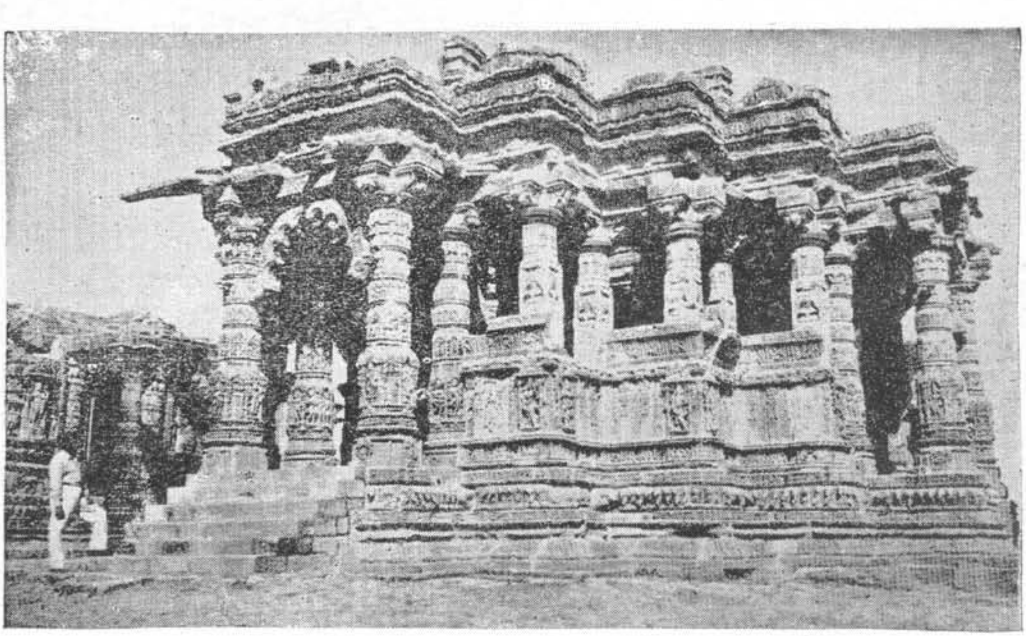

मोढेरा के कलामय सूर्यमंदिर के नृत्यमंडप का बाह्य दर्शन–पीठ, कक्षासन स्तंभादि

તેવો પ્રાસાદ કરાવનાર દિવ્યલોકમાં જઈ વિષ્ણુના શુભ એવા ક્ષીરાર્ણવમાં જાય. ક્ષેત્રની મંદતા નાના મોટાની ડાહ્યા મનુષ્યે ચિંતા ન કરવી. (સ્થાન પ્રમાણે ભ્રમવાળો કે ભ્રમ વગરનો એવો પ્રાસાદ કરવો.) પરંતુ તે વેધ રહિત કરવો. ચારે બાજુ સિંહ દ્વારો (પ્રવેશ) કરવા. તે ભ્રમવાળા પ્રાસાદને મંડપ સિંહ દ્વાર વાળા કરવા. ૬૨–૬૩–૬૪–૬૫.

........के आश्रित मेघनादके साथ मंडप–मदलो–इलिका तोरणादिसे सुशोभित करना। हे नारद, अब फिर प्रासादकी विधि सुनो। भ्रमयुक्त या भ्रमके बिनाका वह तो द्रव्यकी हीनाधिकताके अनुसार करना। इससे वैसा प्रासाद करनेवाला दिव्यलोकमें जाकर विष्णुके शुभ ऐसे क्षीरार्णवमें जाता है। क्षेत्रकी मंदता छोटे बडेकी सुज्ञ मनुष्यको चिंता न करनी चाहिये। (स्थानके अनुसार भ्रमवाला या भ्रमके बिनाका प्रासाद करना।) परंतु उसे वेध रहित करना। चारों तरफ सिंह द्वारों (प्रवेश) करना। उस भ्रमवाले प्रासादको सिंह मंडप द्वारवाले करना। ६२–६३–६४–६५.

एकजंघा नवद्यंतं प्रासादस्य श्चतुर्मुखे।
तथा भ्रमश्च निर्वाण द्वयो जंघ नियोजयेत् ॥६६॥
ततः कुर्यात्प्रयत्नेन सिंहद्वारं विशेषतः।
पुष्परागश्च सर्वेशं सर्वविस्तर प्रजायते ॥६७॥
मिश्र मेघं प्रकर्तव्यं सिंहनादस्तथा भवेत्।
सर्व मेघ स्ततो वक्ष्ये उक्तं प्रासादमुत्तमम् ॥६८॥

મહાચાતુર્મુખ પ્રાસાદના મંડોવરને એકથી નવ જંઘા ચડાવવી. ફરતો ભ્રમ હોય તો બે જંઘા ચડાવવાની યોજના (તો જરૂર). તેને પ્રયત્ને કરીને સિંહ દ્વાર તો વિશેષે કરીને કરવું. પુષ્પરાગ આદિ સર્વ પ્રાસાદો પહોળાઈ વાળા કરવા. તેને મિશ્ર મેઘનાદ કે સિંહનાદ મંડપો કરવા. તેવા ઉત્તમ પ્રાસાદોને સર્વેને મેઘનાદાદિ મંડપો કરવાનું કહ્યું છે. ૬૬–૬૭–૬૮.

महा चातुर्मुख प्रासादके मंडोवरको एकसे नौ जंघा चढ़ाना। फिरता हुआ भ्रम हो तो दो जंघा चढ़ानेकी योजना (जरूर) करना। उसे यत्न करके सिंह द्वार तो विशेष कर करना। पुष्पराग आदि सर्व प्रासादों चौडा ईवाले करना। उसे मिश्र मेघनाद या सिंहनाद मंडपों करना। वैसे उत्तम प्रासादोंको मेघनादादि मंडपों बनानेके लिये कहा है। ६६–६७–६८.

पूर्वे च पश्चिमे चैव उत्तरे दक्षिणे तथा ।
सर्वत्र मेघनादं च तत्पुण्यं सागरोपमम् ॥६९॥
प्रासादस्य छंन्देन मंडपस्य चतुर्दिशि ।
उत्तमं तद्भवे द्वास्तु इहलोके स्वयंभूवा ॥७०॥
प्रासादे ज्येष्ठमानं च मंडपं कन्यसं भवेत् ।
त्रयोद्वारा भवेत्यत्र सिंह द्वार विवर्जितम् ॥७१॥

મહાચાતુર્મુખ પ્રાસાદને પૂર્વ પશ્ચિમ ઉત્તર અને દક્ષિણે એમ ચારે દિશામાં મેઘનાદ મંડપોની રચના કરવાથી સાગરોપમ પુણ્યની પ્રાપ્તિ થાય છે. પ્રાસાદના પોતાના છંદનો મંડપ ચારે દિશાએ કરવો. તે ઉત્તમ વાસ્તુથી આ લોકમાંથી સ્વયં સ્વદેહે મોક્ષ જાય છે. આવા જ્યેષ્ઠ માનના પ્રાસાદોને કનિષ્ઠ માનનો મંડપ કરી શકાય તેને ત્રણ બાજુએ દ્વાર કરવામાં આવે તો એક તરફનું સિંહ દ્વાર ન કરવું. ૬૯–૭૦–૭૧.

महा चातुर्मुख प्रासादको पूर्व पश्चिम उत्तर और दक्षिण इस तरह चारों दिशाओंमें मेघनाद मंडपोंकी रचना करनेसे सागरोपम पुण्यकी प्राप्ति होती है। प्रासादके अपने छंदका मंडप चारों दिशाओंमें करना। वह उत्तम वास्तुसे स्वयं स्वदेहे मोक्षमें जाता है। ऐसे ज्येष्ठमानके प्रासादोंको कनिष्ठमानका मंडप कर सकते हैं। उसे तीनों तरफ द्वार किया जाय तो एक तरफका सिंह द्वार न करना। ६९–७०–७१.

अष्टहस्ते भवेत्पादौ यावद् दशपंचकम् ।
भ्रमोदयं च कर्तव्यं योजया द्वि भूमिका ॥७२॥
एक भूम्या द्वयो यत्र भूमि जंघा विधिक्रमाम् ।
मया प्रोक्त माक्षाता चैकादौ भास्करांत्तक्रम् ॥७३॥

આઠ હાથના પ્રાસાદથી પંદર હાથના ભ્રમવાળા પ્રાસાદને ભ્રમના ઉદયમાં બે ભૂમિ કરવી એ એક ભૂમિ (ના સાંધાર મહાપ્રાસાદના મેરૂ મંડોવર) ને બે જંઘા કરવી એમ ક્રમે વિધિથી મેં એકથી બાર જંઘાની ભૂમિનું મેં કહ્યું છે. ૭૨–૭૩.

आठ हाथके प्रासादसे पंदरा हाथके भ्रमवाले प्रासादको भ्रमके उदयमें दो भूमि करना यह एक भूमि (के सांधार महाप्रासादके मेरू मंडोवर) को दो जंघा करना। ईस तरह क्रमसे विधिसे मैंने एकसे बारह जंघाकी भूमिका मैंने कहा है। ७२–७३.

तथा पीठस्ततोरिपि मानं मंडोवरं श्रृणु ।
क्षीरसागरमुत्पन्ना प्रासादास्युश्चतुर्मुखा: ॥७४॥
षड्भागं च भवेद् भिट्टं पंचभागं द्वितीयकम् ।
भाग भार्गं च निष्क्रांतं त्रिपदं च तृतीयक ॥७५॥
सप्तांश जाड्यकुंभं च त्रयोदश कणालिका ।
द्वादशयोच्छ्रिता हस्ति हयास्तु वसुभागिक: ॥७६॥
[२](सप्त भागां नरपीठं पीठं सप्त चत्वारिंशत:)[२] ।
तथा निष्कान्तं वक्ष्यामि द्विपदं भिट्टमेव च ॥७७॥
द्वितीयं तत्समं काय पदमेकं तृतीयकम् ।
वसुभि: जाड्य कुंभं च कणालिका षड्मेव च ॥७८॥
गजाश्चत्वारि भागानि त्रयं सार्द्धं तुरङ्गमा: ।
द्विपदं नरपीठं च शिरपट्टीनु मेकत: ॥७९॥
(द्वेहया च गजद्वेय उपटीया संपूजितं) ।

હે ઋષિરાજ, હવે ક્ષીર સાગરમાં ઉત્પન્ન થયેલ એવા ચતુર્મુખ મહાપ્રાસાદના પીઠ વિભાગ અને મંડોવર માન સાંભળો (૭૩) ત્રણ ભિટ્ટમાં પહેલું છ ભાગનું, બીજું પાંચ ભાગનું અને ત્રીજું ત્રણ ભાગનું (એમ જે માન આવ્યું હોય તેના ચૌદ ભાગ કરીને ત્રણભિટ્ટ કરવાં) અને તેના નિકાળા એક એક ભાગના રાખવા. સાત ભાગનો જાડંબો. તેર ભાગની કણી, (છાજલી અને ગ્રાસ પટ્ટી સાથે) કરવી. બાર ભાગનું ગજપીઠ, આઠ ભાગનું અશ્વપીઠ અને સાત ભાગનું નરપીઠ કરવું. એ રીતે મહાપીઠના ઉદયના સુડતાળીશ ભાગ જાણવા. ૭૪–૭૫–૭૬–૭૭.

હવે નિકાળા કહે છે. પહેલું અને બીજું ભિટ્ટ બબ્બે ભાગ અને ત્રીજું ભિટ્ટ એક ભાગના નિકાળાનું કરવું. જાડંબાનો આઠ ભાગ નિકાળો, કણીનો છ ભાગનો, ગજપીઠનો ચાર ભાગનો, અશ્વપીઠનો સાડા ત્રણ ભાગનો, અને નરપીઠનો બે ભાગનો નિકાળો રાખવો. માથાની પટ્ટીથી નરના રૂપ એક ભાગ

(૨) કૌંસમાં આપેલ શ્લોક ૭૭ ના બે પદો–સાત ભાગનું નરપીઠ અને કુલ ઉદય સુડતાલીશ દરેક પ્રતોમાં નથી. પરંતુ તે બે પદ હોય તો જ પીઠ વિભાગ પૂર્ણ થાય. તેથી તેની પૂર્તિ કરવા રજા લઉં છું.

(२) कौंसमें दिये हुए श्लोक ७७ के दो पदों सात भागका नरपीठ और कुल उदय सैंतालीश दरेक प्रतोंमें लहियेके दोषसे नहीं है। परंतु दो पद होनेसे ही पीठ विभाग पूर्ण होता है। इससे उसकी पूर्ति करनेके लिये क्षमा करना।

નીકળતા. પટ્ટીથી બે ભાગ અશ્વપીઠના રૂપ નીકળતા કરવા. ગજપીઠના રૂપો, નીચેની પટ્ટીથી બે ભાગ નીકળતા કરવા.

हे ऋषिराज, अब क्षीर सागरमें उत्पन्न हुए ऐसे चतुर्मुख महाप्रासादके और मंडोवरमान सुनो। तीन भिट्टमें पहला छः भागका, दूसरा पाँच भागका और तीसरा तीन भागका (इस तरह जो मान आया हो उसके चौदह भाग कर तीन भिट्ट करना। और उनके निकाले एक एक भागके रखना। सात भागका जाडंबा तेरह भागकी कणी, (छाजली और ग्रास पट्टीके साथ) करना। बारह भागका गजपीठ, आठ भागका अश्वपीठ और सात भागका नरपीठ करना। इस तरह महापीठके उदयके सुडतालीश भाग जानना। ७४-७५-७६-७७.

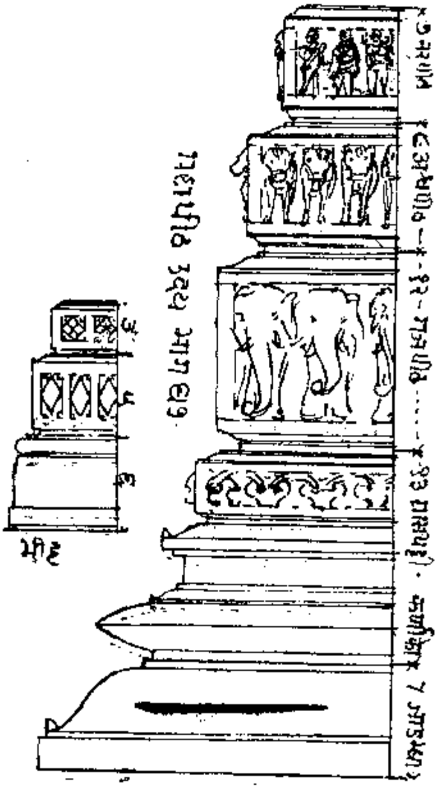

२ भिट्ट भाग १४ और महापीठ विभाग ४७

अब निकाले कहते हैं। पहला और दूसरा भिट्ट दो दो भाग और तीसरा भिट्ट एक भागके निकालेका करना। जाडंबाका आठ भाग निकाला, कणीका छः भागको, गजपीठका चार भागका, अश्वपीठका साढ़े तीन भागका, और नरपीठका दो भागका निकाला रखना। सरकी पट्टीसे नरके रूप एक भाग निकलते-पट्टीसे दो भाग अश्वपीठके रूप निकलते करना। गजपीठके रूपों-नीचेकी पट्टीसे दो भाग निकलते करना। ७८-७९.

तथा मंडोवरं वक्ष्ये खुरकं द्विपदं भवेत् ॥८०॥
कुंभकं पंचसार्द्धंच कलशं त्रिपदं शुभं।
अंतरपत्रं पद्मेकेन कपोतालि त्रयपदा ॥८१॥
मंचिका त्रयसार्द्धा चं जंघैकादशपंचके।

હવે મહાચોમુખના મંડોવરના ભાગ કહું છું. ખરો બે ભાગનો, કુંભો સાડાપાંચ ભાગનો, કળશો ત્રણ ભાગ, અંતરપત્ર એક ભાગ, કેવાળ ત્રણ ભાગ,

માચી સાડા ત્રણ ભાગ અને એક પહેલી જંઘા, પંદર ભાગની ઊંચી કરવી. (હવે તે જંઘામાં કરવાના જુદા જુદા દેવ દેવાંગના દિગ્પાલાદિના સ્વરૂપો કહે છે). ૮૦-૮૧.

अब महाचोमुखके मंडोवरके भाग कहता हूँ। खरा दो भागका, कुंभा साढ़े पाँच भागका, कलश तीन भागका, अंतरपत्र एक भाग, केवाल तीन भाग, माची, साढे तीन भाग और एक पहली जंघा, पंद्रह भागकी ऊँची करना। (अब उस जंघामें करनेके भिन्न भिन्न देव देवाङ्गना दिग्पालादिके स्वरूपों कहते हैं। ८०-८१.

लोकपालाश्च दिग्पाला: अतीवानन्दपूरिताः ॥८२॥
रथदेवादीनां तत्र नृत्यंवादित्र संयुता: ।
लास्यस्तांडव श्चैव तालानां च विशेषतः ॥८३॥
आयुधैर्वाहनैर्युक्ता नृत्यं कुर्वंति देवता: ।
उत्सवं जिनालये च विशेषेण चतुर्मुखे ॥८४॥
इंद्रनाद्यं प्रकुर्तितं गण सेव्यं पुरावृत्तं ।
अध: बाण कर तंच नृत्यमानादि हस्तकम् ॥८५॥
अधोद्रष्टि विशेषेण वामयान पदस्तलम् ।
षड्भुजा अष्टभुजा वा मूर्ति मानादि सयुतं ॥८६॥

મંડોવરની જંઘામાં લોકપાલ અને દિગ્પાલનાં સ્વરૂપો અતિ આનંદ ભાવયુક્ત ફરતા કરવા. રથ પ્રતિરથમાં દેવાંગનાનાં સ્વરૂપો વાજીંત્ર સાથે નૃત્ય કરતા જોડલાં રૂપો પણ કરવાં લાસ્ય અને તાંડવાદિ તાલથી નૃત્ય કરતા રૂપો વિશેષે કરીને કરવાં. આયુધ અને વાહનવાળા ઇંદ્રાદિ સ્વરૂપો ચતુર્મુખ જીનભવનમાં ઉત્સવ હોય તેમ નૃત્ય કરતા તેમ જ તાલ આપતા ગણ સેવકોના ફરતા સ્વરૂપો કરવાં. દેવાંગનાઓનાં સ્વરૂપોમાં કોઈ નીચે બાણ મારતા હાથવાળી-કોઈ નૃત્ય માનાદિ હાથ મુદ્રા યુક્ત કરવી. વિશેષે કરીને દેવાંગનાઓ નીચી દ્રષ્ટિવાળી કોઇ સમાન પદ તળવાળી કોઇ ડાબા ઉપડતા પદતાલવાળી એવી દેવાંગનાનાં સ્વરૂપો કરવાં. દેવોની મૂર્તિઓ, કોઈ (ચાર) છ કે આઠ હાથવાળી માનસૂત્ર પ્રમાણ સાથે સપ્રમાણ કરવી. ૮૨-૮૩-૮૪-૮૫-૮૬.

मंडोवरकी जंघामें लोकपाल और दिग्पालके स्वरूपों अति आनंद भावयुक्त करना। रथ प्रतिथरमें देवांगनाके स्वरूपों वाजिंत्रके साथ नृत्य करते युगल रूपों भी करना। लास्य और तांडवादि तालसे नृत्य करते रूपों विशेष करके करना।

आयुध और वाहनवाले इंद्रादि स्वरूपों चतुर्मुख जिन भवनमें उत्सवमें हो इस तरह नृत्य करते और ताल देते गण सेवकोंके फिरते स्वरूपों करना। देवाङ्गनाओंके स्वरूपोंमें कोई नीचे बाण मारते हाथवाली–कोई नृत्यमानादि हाथ मामादियुक्त करना। विशेषकर देवाङ्गनाओं नीची दृष्टिवाली कोई समान पद तलवाली कोई बाये उठाए हुए पदतलवाली ऐसी देवाङ्गनाके स्वरूपों करना। देवोंकी मूर्तियों कोई (चार) छः या आठ हाथवाली मान सूत्र प्रमाणके साथ–सप्रमाण करना। ८२–८३–८४–८५–८६.

तालमानाः समाख्याता नृत्यंति षोडशां कलाः।
षड्हस्ताश्च (सहिता) अग्निगणा ते चाप सव्यतावृतम् ॥८७॥
वामहस्तंश्च कर्णांते दक्षयान पद तलम्।
दक्षपादोत्वलं कृत्वा द्विधा वामांगसंयुतम् ॥८८॥
अधोकरश्च वामालिन्यो यमो दक्षिणनिरीक्ष्यते।
नैरुत्ये क्षेत्रपालश्च यक्षगण स्ततोपरं ॥८९॥
अधो हेतु तेजां ते (?) उत्तानं नृत्यकारक।
परावृत्य च वरुणं शिरं दक्षकरो भवेत् ॥९०॥
अधो दृष्टि प्रयत्नेन हृदये वामहस्तकम्।

સોળે કળાથી ખિલેલા તાલમાનથી નૃત્ય કરતી દેવાંગનાનાં સ્વરૂપો કરવાં. છ ભૂજાવાળા અગ્નિ ગણ સવ્યાપસવ્ય ગોળ અંગ મરોડવાળાં રૂપો કરવાં. દેવાંગનાઓમાં ડાબો હાથ કર્ણને સ્પર્શ કરતો જમણો હાથ પગ (પકડતો) કરવો. કેટલીક દેવાંગનાનો જમણો પગ કમળની જેવો બીજી વીધિથી ડાબા અંગ દેખાડતી એવી દેવાંગના કરવી. જેનો હાથ નીચે ડાબી તરફ ઢળતા નૃત્ય કરતો કરવો. દક્ષિણ દિશામાં યમ=ધર્મરાજ નિરીક્ષણ કરતા કરવા. નૈઋત્ય કોણમાં ક્ષેત્રપાળ (ભૈરવ નીરૂતિ) ના સ્વરૂપો કરવાં. યક્ષ અને ગણોનાં રૂપો પણ કરવાં ....શ્રેષ્ઠ (ઊંચી) એવી "ઉત્તાન" દેવાંગના નૃત્ય કરતી કરવી. પશ્ચિમ દિશામાં વરૂણ દેવનું સ્વરૂપ કરવું. દેવાંગનાઓના કેટલીકનો જમણો હાથ મસ્તકપર કરવો. નીચે દૃષ્ટિ રાખેલી અને ડાબો હાથ છાતીએ રાખીને નૃત્ય કરતી કરવી. ૮૭–૮૮–૮૯–૯૦.

सोलह कलाओंसे विकसे हुए तालमानसे नृत्य करती देवांगनाके स्वरूपों करना। छः भूजावाले अग्निगण सव्यापसव्य गोल अंग मरोड़दार रूपों करना। देवांगनाओंमें बायां हाथ कर्णको स्पर्श करता, दाहिना हाथ (पाँवको पकडता)

करना। कओं देवांगनाओंका दाहिना पाँव कमल जैसा, दूसरी विधिसे बाँया अंग बताती हुई देवांगना करना। जिसका हाथ नीचे बांओं तरफ ढलता नृत्य करता करना। दक्षिण दिशामें यमः धर्मराजको निरीक्षण करते करना। नैऋत्य कोणमें क्षेत्रपाल (भैरव–नीऋति) के स्वरूपों करना। यक्ष और गणोंके रूपों भी करना।........श्रेष्ठ (ऊँची) ऐसी उत्तान देवांगना नृत्य करती करना। पश्चिम दिशामें वरूणदेवका स्वरूप करना। देवांगनाओंमें से कितनीका दाहिना हाथ मस्तक पर करना। नीचे दृष्टि रखी हुई और बाँया हाथ वक्ष पर रखी हुई नृत्य करती करना। ८७–८८–८९–९०.

वायव्ये वैतालका वक्ष्ये पुनस्तांडव्य ताङ्गतः ॥९१॥
भ्रमरीयं च विशेषेण वस्त्रहस्तं विशेषतः।
कुबेरे पद्मिनीलिला गण इंद्रादि कोत्तमा ॥९२॥
प्रतांश्चान्ये दक्षहस्ते करैकं शिरभूषिता।
इशाने इश्वरंश्चैव भुजाष्टक संयुतः ॥९३॥
अभय प्रीवृतमुक्तिर्णं (?) वामहस्ते कारण (!)।[३]

વાયવ્ય કોણુમાં (વાયુદેવ કે) વૈતાલનું સ્વરૂપ કરવાનું કહ્યું છે–તે વિશેષ કરીને ભમરી ફરતા તાંડવ નૃત્ય કરતું હાથમાં વસ્ત્ર ધારણુ કરેલ કરવું ઉત્તરમાં કુબેરની સાથે પદ્મિની દેવાંગના લીલા કરતી ગણુ ઇંદ્રાદિ એવાં ઉત્તમ સ્વરૂપો શોભનાં કરવાં. પદ્મિનીનો નૃત્ય ગતિમાં નીચે જમણો પગ એક હાથ શિરપર શોભતો રાખવો. ઇશાન કોણુમાં ઇશનું સ્વરૂપ આઠ ભુજાવાળું અભયાદિ મુદ્રાવાળું અને ડાબો હાથ........૯૧–૯૨–૯૩.

वायव्य कोणमें (वायुदेव या) वैतालका स्वरूप करनेका कहा है। उसे विशेषकर भमरीके चारों तरफ तांडव नृत्य करता हाथमें वस्त्र धारण किया हुआ करना। उत्तरमें कुबेरकी साथ पद्मिनी लीला करते गण इंद्रादि ऐसे उत्तम स्वरूपों सुंदर शोभता करना। पद्मिनी नृत्य गतिमें नीचे पाउ दाहिना एक हाथ शिर

(૩) ગુજરાત સૌરાષ્ટ્રની ઘણી ખરી ક્ષીરાર્ણવની પ્રતો અહીં શ્લોક ૯૩ પછી સમાપ્ત થાય છે. આગળ નથી. પરંતુ અમારા સંગ્રહની એક પ્રતમાં અને આજ અધ્યાય વૃક્ષાર્ણવમાં સંપૂર્ણ મળતો હોવાથી અપૂર્ણતા દૂર કરી શકાઈ છે. એ સદ્ભાગ્ય.

(३) गुजरात सौराष्ट्रकी बहुत कुछ क्षीरार्णवकी प्रतें यहाँ श्लोक ९३ के बाद समाप्त होती है। आगे नहीं है। परंतु हमारे संग्रहकी एक प्रतमें और यही अध्याय वृक्षार्णवमें संपूर्ण मिलनेसे–अपूर्ण दूर हो सकी है। यह सद्भाग्य !

Z तिलोत्तमा (कामरुपा) तिलोत्त्मना।

पर शोभता रखना। इशान कोणमें ईशका स्वरूप आठ भुजावाला अभय आदि मुद्रावाला और बाँया हाथ।........९१-९२-९३.

करे दक्षे मते रिंद्र वामयान पदस्तले ॥९४॥
मेनका दक्षिणांगानि भूतले प्रतिधारिता।
रंभा इंद्रस्य संयोगे दक्ष याने पदस्तले ॥९५॥
बाण याम करे रम्या वीणा दक्षकरे पुरे।
अग्निर्दक्षे वंशहस्ते प्रावर्तस्या च उर्वशी ॥९६॥
तेनवृते पुनर्भावे देवता नृत्यकारिता।
यमे त्रिलोचन उक्ता तालमंजीर कंसिका ॥९७॥
नृत्य भावे समाख्याता कामरूपा पदस्तले।

જમણો હાથ·······ઈંદ્ર·······ડાબો પગ·······૯૪ મેનકા દક્ષિણાંગી સ્વર્ગમાંથી ભૂતલે આવેલ છે. રંભા અને ઈંદ્રના સંયોગી આલિંગન આપતું સ્વરૂપ કરતું. જમણો પગ·······ડાબા હાથમાં····રમ્ય····એવું બાણ છે જમણા હાથમાં વીણા છે. અગ્નિ કોણમાં····જમણા હાથમાં વાંસળીવાળી ઉર્વશી····એવા ભાવથી નૃત્ય કરતાં દેવોનાં સ્વરૂપો કરવાં. દક્ષિણ દિશામાં યમ સાથે તાલ મંજીરા અને કાંસીયા બજાવતી ત્રિલોચના કરવી····નૃત્ય ભાવવાળી કામ રૂપાના પગ····૯૪-૯૫-૯૬-૯૭.

दाहिना हाथ......इंद्र......बाँया हाथ......(९४) मेनका दक्षिणांगी स्वर्गमेंसे भूतलपर आयी हुई हैं। रंभा और इंद्रके संयोगी आलिंगन देते हुए स्वरूप करना। दाहिना पाँव....बाँये हाथमें रम्य बाण है, दाहिने हाथमें वीणा है। अग्निकोणमें...दाहिने हाथमें बाँसुरीवाली उर्वशी....ऐसे भावसे नृत्य करते देवोंके स्वरूप करना। दक्षिण दिशामें ताल-मंजीरे और कांसिया बजाती हुई त्रिलोचना करना।....नृत्य भाववाली कामरूपाके पांच...........९४-९५-९६-९७.

शची नैऋत्य संयोगे क्षेत्रपाल सदक्षिणे ॥९८॥
चंद्राउली दक्षकरं सो! गणातत्क्षेत्रपालका।
परम लोकौ सप्तवामाङ्गे वरुणदेव समास्मृता ॥९९॥
मर्दनानि समायुक्त बाणं रंभादिकोद्भव।
नृत्यंति वासुदेवं च मंजुघोषा सदक्षिणे ॥१००॥
वसुहस्ते खड्गाद्यंति दक्षयाने पदस्तलं।
रंभादि देवकन्या च दिग्पाला सहसंयुता ॥१०१॥

नृत्यंति इंद्ररंभा च देव* भवने चतुर्मुखे ।
मेनकादि ईशान्याथा तदस्थान प्रदक्षिणे ॥१०२॥

શચી નીરૂતી સહિત નૈઋત્યે દક્ષિણે ક્ષેત્રપાલ અને ચંદ્રાઉલી હાથ જોડતી ક્ષેત્રપાલ અને ગણો................

પશ્ચિમે વરુણ દેવ. કોઇ (શત્રુને) મર્દન કરતી. ધનુષ બાણવાળી. રંભા દેવાંગના કરવી. વાયવ્યે વાયુદેવતા નૃત્ય કરતા કરવા તેની દક્ષિણે મંજુઘોષા દેવાંગનાનું સ્વરૂપ કરવું. બેઉ હાથના.........જમણો.....પગ.........

જંઘામાં રંભાદિ દેવકન્યાઓ અને દિગ્પાલના સ્વરૂપો સાથે ઇંદ્ર અને રંભા સાથેના સ્વરૂપો દેવ ભવનના ચતુર્મુખમાં નૃત્ય કરતાં કરવાં. એ રીતે મેનકાદિ બત્રીશ દેવાંગનાઓનાં સ્વરૂપો ઈશાન કોણથી ફરતા પ્રદક્ષિણાએ તેના સ્થાને જંઘામાં કરવાં. ૯૮ થી ૧૦૨.

शचीनीरूतीके साथ नैऋत्यमें दक्षिणे क्षेत्रपाल और चंद्राउली हाथ जोड़ी क्षेत्रपाल और गणों............पश्चिममें वरुण देव कोई (शत्रुको) मर्दन करती धनुष–बाणवाली रंभा देवांगना करना। वायव्यमें वायुदेवताको नृत्य करते करना। उनकी दक्षिण दिशामें मंजुघोषा देवांगनाका स्वरूप करना। दोनों हाथके खड्ग धारण करती दाहिना पग खडा रखे........जंघामें रंभादि देवकन्याओं और दिग्पालके स्वरूपोंके साथ इंद्र और रंभाके युग्म स्वरूपों देव भवनके चतुर्मुखमें नृत्य करते करना। इस तरह मेनकादि बत्रीश देवांगनाओंके स्वरूपों ईशान कोणसे फिरते प्रदक्षिणामें उसके स्थान पर जंघामें करना। ९८ से १०२.

[४]मेनकादय ईशान्याद्या ततस्थाना चं प्रदक्षिणे ॥१०३॥
लीलावती[२] विधिश्रिता[३] सुंदरी[४] शुभभामिनी[५] ।

---

* पाठान्तरे जिनभवने।

(૪) ઉપરની બત્રીશ દેવાંગનાઓમાં કેટલાક ગ્રંથોમાં છે. કેટલાંકમાં ચોવીશ કહી છે. ઓરીસ્સા-ઉડીયા શિલ્પમાં સોળ કહી છે. વૃક્ષાર્ણવ: ક્ષીરાર્ણવ અને અમારા ગ્રંથસંગ્રહના ઓળીયામાં કેટલાકના નામ ભેદો પૃથક્ પૃથક્ કહ્યા છે. કોઇ રૂપ લક્ષણમાં ભીન્નતા છે એટલે ૫ સુસ્વભાવિની=સુભાંગીની. ૧૦ પદ્મનેત્ર=ગુઢશબ્દા. ૧૨ ચિત્રરૂપા=પુત્રવલ્લભા–ચિત્રવલ્લભા. ૧૮ ચંદ્રરેખા=પત્રલેખા ૨૪ ભાવચંદ્રા=ભાવમુદ્રા. ૨૮ મુજઘોષા=મંજુઘોષા. ૩૦ મોહિની=વિજયા ૩૧ ઉત્તાના=ચંદ્રવક્રા. ૩૨ તિલોત્તમા=ત્રિલોચના–કામરૂપા.

(४) उपरकी बत्तीस देवाङ्गनाएँ कई ग्रंथोंमें है। कईमें चोबिस कही है। वृक्षार्णव और क्षीरार्णव ग्रंथमें और हमारे पुराने ग्रंथ संग्रह के ओलियेमें नाम भेद पृथक् पृथक् कहे हैं। कोई कई रूप लक्षणमें भी भीन्नता है। सुखभाविनी=सुभांगिनी १० पद्मनेत्रा=गुढ शब्दा १२ चित्ररूपा पुत्रवल्लभ=चित्रवल्लभा १८ चन्द्ररेखा–पत्रलेखा २४ भावचन्द्रा–भावमुद्रा=२८ भुजघोषा=मंजुघोषा ३० मोहिनी=विजया ३१ उताना–चन्द्रवक्रा ३२ तिलोत्तमा=त्रिलोचना–कामरूपा।

हंसावली[६] सर्वकला[७] तथा कर्पूरमंजरी ॥१०४॥
[८]पद्मिनी गूढशब्दा[१०] च चित्रिणी[११] चित्रवल्लभा[१२] ।
गौरी[१३] गांधारिकाश्चैव[१४] देवशाखा[१५] मरीचिका[१६] ॥१०५॥
चँद्रावली[१७] चँद्ररेखा[१८] सुगंधा[१९] शत्रुमर्दनी[२०] ।
मानवी[२१] मानहंसा[२२] च स्वभावा[२३] भावमुद्रिका[२४] ॥१०६॥
मृगाक्षी[२५] उर्वशी[२६] रंभा[२७] मुजघोषा[२८] जया[२९] तथा ।
विजया[३०] चँद्रवक्रा[३१] च कामरूपा[३२] च संस्थिता ॥१०७॥

જંઘાની ફરતી પ્રદક્ષિણામાં પોતાના સ્થાને ઈશાન કોણથી ૧ મેનકા, ૨ લીલાવતી, ૩ વિધિચિતા, ૪ સુંદરી, ૫ શુભગામિની (સુભાગીની) ૬ હંસાવલી, ૭ સર્વકળા, ૮ કર્પૂરમંજરી, ૯ પદ્મિની ૧૦ ગુઢશબ્દા (પદ્મનેત્રા) ૧૧ ચિત્રણી ૧૨ ચિત્ર વલ્લભા (પુત્રવલ્લભા, ચિત્રરૂપા) ૧૩ ગૌરી ૧૪. ગાંધારી ૧૫ દેવશાખા ૧૬ મરિચિકા ૧૭ ચંદ્રાવલી ૧૮ ચંદ્રરેખા (પત્રલેખા) ૧૯ સુગંધા ૨૦ શત્રુમર્દિની ૨૧ માનવી (માનિની) ૨૨ માનહંસા ૨૩ સુસ્વભાવા ૨૪ ભાવમુદ્રિકા (ભાવચંદ્રા) ૨૫ મૃગાક્ષી ૨૬ ઉર્વશી ૨૭ રંભા ૨૮ મુજંઘોષા (મંજુઘોષા) ૨૯ જયા ૩૦ વિજ્યા (મોહીની) ૩૧ ચંદ્રવક્રા (ઉત્તાના) ૩૨ કામરૂપા એ રીતે નૃત્ય કરતી બત્રીશ દેવ કન્યાના નામ જાણવા. વિજ્યાનું મોહીની, ચંદ્રવક્રાનું ઉત્તાના અને કામરૂપાનું તિલોત્તમા એમ ત્રણેના અપરના નામ જાણવા.[४]) ૧૦૩ થી ૧૦૭

जंघाकी फिरती प्रदक्षिणामें अपने स्थानपर ईशान कोणसे १ मेनका, २ लीलावती, ३ विधिचिता, ४ सुंदरी, ५ शुभगामिनी (सुभागिनी), ६ हंसावली, ७ सर्वकला, ८ कर्पूरमंजरी, ९ पद्मिनी, १० गुढशब्दा, (पद्मनेत्रा) ११ चित्रणी, १२ चित्रवल्लभा, (पुत्रवल्लभा, चित्ररूपा) १३ गौरी, १४ गांधारी, १५ देवशाखा, १६ मरिचिका, १७ चंद्रावली, १८ चंद्ररेखा, (पत्रलेखा) १९ सुगंधा, २० शत्रुमर्दिनी, २१ मानवी, (मानिनी) २२ मानहंसा, २३ सुस्वभावा, २४ भावमुद्रिका, (भावचंद्रा) २५ मृगाक्षी, २६ उर्वशी, २७ रंभा, (उत्तान) २८ मुजघोषा, (मंजुघोषा) २९ जया, ३० विजया, (मोहिनी) ३१ चंद्रवक्रा, (उत्ताना) ३२ कामरूपा, (तिलोत्तमा)। इस तरह नृत्य करती बत्तीस देवांगना–देवकन्याका नाम जानना।[४] १०३ से १०७.

मंडोवर वितानाद्य त्रिपुरुष रविजिना ।
मंडपाश्चैव सोभाढ्या च गीतनृत्य समन्विता: ॥१०८॥

माह्वा स्थान मुत्कीर्णा द्वात्रिंशं च प्रदक्षिणे ।
स्वयं क्षीरार्णवे प्राज्ञ विशेषेण चतुर्मुखे ॥१०९॥
तथाश्च जंघामारुह्य रूपवत्योऽमराङ्गना ।
त्रय स्थाने भवेद्रंभा चतुःस्थाने च मेनका ॥११०॥
उर्वशी च द्विधास्थाना मरिची पंच भागतः ।
षड्विधा मुजघोषा च चत्वारं च तिलोत्तमा ॥१११॥
विष्णु दशावतारं च तथा सप्त प्रजापतिः ।
शिवं च पंचधा प्रोक्त तथा देवाङ्गनादिका ॥११२॥

બ્રહ્મા વિષ્ણુ અને રૂદ્ર, સૂર્ય અને જિન એ સર્વના પ્રાસાદો અને મંડપોમાં સુશોભનમાં ગીત અને નૃત્ય કરતાં દેવ દેવાંગનાઓ અને ઉત્તમ સ્થાનમાં ફરતી બત્રીશ દેવાંગનાઓ પ્રદક્ષિણાએ કરવી. સ્વયં ક્ષીરાર્ણવમાં ઉત્પન્ન થયેલ અને વિશેષે કરીને ચતુર્મુખ પ્રાસાદની જંઘામાં સ્વરૂપવાન એવી દેવાંગનાઓનાં સ્વરૂપો કરવાં. એક જ પ્રાસાદમાં રંભાના સ્વરૂપો ત્રણ સ્થળે કરી શકાય; મેનકા ચારે સ્થાને; ઉર્વશી બે સ્થળે; મરિચીકા પાંચ સ્થાને, મુજઘોષા છ સ્થાને અને તિલોત્તમા ચાર સ્થાને ફરી ફરીને કરી શકાય, જંઘામાં યથા-યોગ્ય પ્રાસાદમાં વિષ્ણુપ્રાસાદોમાં વિષ્ણુના દશ અવતારો, બ્રહ્માના પ્રાસાદોના સાત પ્રજાપતિ, શિવ પ્રાસાદમાં શિવના પાંચ સ્વરૂપો. (૧ સદ્યોજાત્ત ૨ વામદેવ ૩ અઘોર ૪ તત્પુરુષ ૫ ઈશાન.) કરવાં કહ્યાં છે. તે ઉપરાંત દેવાઙ્ગનાઓના સ્વરૂપો પણ ફરતાં કરવાં. ૧૦૮ થી ૧૧૨.

ब्रह्मा विष्णु और रूद्र, सूर्य और जिन इन सर्वके प्रासादों और मंडपोंमें सुशोभनमें गीत और नृत्य करते देव-देवांगनाओं और उत्तम स्थानमें फिरती बत्तीश देवांगनाओंको प्रदक्षिणामें करना । स्वयं क्षीरार्णवमें उत्पन्न हुई और विशेष करके चतुर्मुख प्रासादकी जंघामें स्वरूपवान ऐसी देवांगनाओंके स्वरूपों करना । एक ही प्रासादमें रंभाके स्वरूपों तीन स्थलों पर हो सकते हैं । मेनकाको चारों स्थानमें उर्वशी दो स्थल पर, मरिचीका पाँच स्थानों पर, मुंज-घोषा छः स्थानों पर, और तिलोत्तमा चार स्थानों पर फिर फिर करा सकते हैं । जंघामें यथायोग्य प्रासादमें, विष्णु प्रासादोंमें विष्णुके दश अवतारों, ब्रह्माके प्रासादोंके सात प्रजापति, शिव प्रासादमें शिवके पाँच स्वरूपों (१ सद्योजात्त२ वामदेव ३ अघोर ४ तत्पुरुष ५ ईशान) करनेके लिये कहा है । इसके अतिरिक्त देवांगनाओंके स्वरूपों भी फिरते करना । १०८ से ११२.

मेनका खड्गखेटं च नृत्यति च पदस्तले ।
आलस्या च लीलावती विधिच्चिता सदर्पणा ॥१३॥
सुंदरी नृत्य युक्ता च शुभा कंटक (गृक) निर्गता ।
पाद् भृङ्गार कर्त्री च हंसा कमल लोचना ॥११४॥
गाथा उच्चारणा वाथ सर्वकला अतः शृणु ।
[६]नृत्यंति च सर्वकला वरदादक्षपाणिना ॥११५॥
मस्तके वामहस्ते च चितनमुद्रा संयुतम् ।

१ मेनका २ लीलावती ३ विधिच्चिता ४ सुन्दरी

૧ **મેનકાનું** સ્વરૂપ હાથમાં ખડગ–ઢાલ ધારણ કરતી નૃત્ય કરતી (ડાબો પગ ઊંચો); ૨ આળસ મરડતી હોય તેવા સ્વરૂપવાળી **લીલાવતી;** ૩ દર્પણ ધારણ કરી (મુખ જોતી) કે ચાંદલો કરતી **વિધિચિતા** જાણવી; ૪ નૃત્ય કરતી એવી **સુંદરી** જાણવી. ૫ પગનો કાંટે કાઢતી એવી **સુસ્વભાવીની** (શુભાંગિની) જાણવી; ૬ પગનો શણગાર (ઝાંઝર) પહેરતી એવી કમળના લોચનવાળી ગાથાનો ઉચ્ચાર કરવી હોય તેવી **હંસાવલી** જાણવી ૭ નૃત્ય કરતી સર્વકલા જેનો જમણો હાથ વરદ મુદ્રાવાળો છે. અને ડાબો હાથ નૃત્ય કરતો મસ્તક ઉપર છે. તેવી ચિંતન મુદ્રાવાળી **સર્વકલા** જાણવી. ૧૧૩–૧૧૪–૧૧૫.

---

૫. पाठान्तर कर्णश्रृङ्गार भूषिता । ૬. જૂની પ્રતોમાં ते सह भूआणा मध्ये धिषु धिषु धिग् धिग् जायति । परंपुर बहि चतुर्मुखे द्विद्वा सुरनर नृत्यंति भावना सहजाम् । પાઠ છે. ६. पुरानी प्रतमें ते सह............सहजाम् । पाठ है ।

१ मेनकाका स्वरूप हाथमें खड्ग–ढाल धारण किया–नृत्य करना। (दाया पाँव ऊँचा।) २ आलसको व्यक्त करता स्वरूपवाली लीलावती। ३ दर्पण धारण कर (मुखको देखती) या तिलक करती विधिचिता जानना। ४ नृत्य करती ऐसी सुंदरी जानना। ५ पाँवसे काँटा निकालती ऐसी सुखभाविनी (शुभांगिनी) जानना। ६ पाँवका शृंगार (झाँझर) पहनती ऐसी कमल जैसे लोचनवाली शास्त्राका उद्धार करती हो वैसी हंसावली जानना। ७ नृत्य करती सर्वकला जिसका दाहिना हाथ वरदमुद्रावाला है, और बाँया हाथ नृत्य करता मस्तक पर है। वैसी चिंतन मुद्रावाली सर्वकला जानना। ११३–११४–११५.

५ शुभगामिनी　　६ हंसावली　　७ सर्वकला　　८ कर्पूरमंजरी

७नग्न भावे कृतस्नाना नाम्ना कर्पूरमंजरी ॥११६॥
पद्महस्ते च नृत्याङ्गी पट्टे पद्मं च पद्मिनी।
८अभयदा शिशुयुक्ता पद्मनेत्रा सा उच्यते ॥११७॥
९कपाले वामहस्ता च नृत्यभावा च चित्रिणी।
चित्ररूपा स पुत्राङ्गी गौरि च सिंहमर्दिनी ॥११८॥

(૮) નગ્ન (મગ્ન) ભાવથી સ્નાન કરતી અથવા ભાવમગ્ન નૃત્ય કરતી એવી કર્પૂરમંજરી જાણવી. (૯) જેના હાથમાં પદ્મ (કમળ) રાખીને નૃત્ય અંગવાળી કમળ–પદ્મના પટવાલી એવી **પદ્મિની** જાણવી) (૧૦) અભયમુદ્રાવાળી પડખે શિશુ બાળક છે એવી **પદ્મનેત્રા ગુરુશબ્દા** જાણવી (૧૧) નૃત્ય ભાવની જેનો

७. पाठान्तर—मग्नभावामलस्नान ८. चत्वारिबंधु युक्ता च ९. वामहस्ते शिरंदधात्।

ડાબો હાથ કપાળ (મસ્તકે) છે તેવી **ચિત્રિણી** જાણવી. (૧૨) જેણે અંગે પુત્ર ધારણ કરેલ તેડેલ છે એવી **ચિત્રરૂપા (ચિત્રવલ્લભા–પુત્રવલ્લભા)** જાણવી. (૧૩) સિંહનું મર્દન કરનારી એવી **ગૌરી** જાણવી. ૧૧૬–૧૧૭–૧૧૮.

९ पद्मिनी १० गूढशब्दा पद्मनेत्रा ११ चित्रिणी १२ चित्रवल्लभा=पुत्रवल्लभा चित्ररूपा

(८) नग्न (मग्न) भावसे स्नान करती अथवा भावमग्न नृत्य करती ऐसी कर्पूरमंजरी जानना। (९) जिसके हाथमें पद्म (कमल) रखकर नृत्य अंगवाली कमल–पद्मके पटवाली ऐसी पद्मिनी (गूढशब्दा) जानना। (१०) अभयमुद्रावाली पासमें शिशु बालक है वैसी पद्मनेत्रा जानना। (११) नृत्य भावसे जिसका बाँया हाथ भाल (मस्तक) पर है वैसी चित्रिणी जानना। (१२) जिसने अंग पर पुत्र धारण किया है ऐसी चित्ररूपा (चित्रवल्लभा–पुत्रवल्लभा) जानना। (१३) सिंहका मर्दन करनेवाली ऐसी गौरि जानना। ११६–११७–११८.

[10]उत्तमाङ्गे करन्यस्ता गांधारी नामनर्तिका।
गोलचक्रं नृत्यकर्त्री देवशाखा सा चोच्यते ॥११९॥
धनुर्बाणाभ्यं संघाता वामदृष्टि मरिचिका।
[11]अजंली बद्धा नर्तकी च चंद्रावली सुलोचना ॥१२०॥

(૧૪) ઉત્તમ અંગવાળી જમણો હાથ ઊંચો રાખી રમ્ય એવી નૃત્ય કરતી **ગાંધારી** જાણવી. (૧૫) ગોળચક્ર નૃત્ય કરતા અંગવાળીને **દેવશાખા**

१०. दक्षहस्तं शिर सिरम्या ११. सन्मुखा दृष्टिभावा च।

(દેવજ્ઞા) કહી છે. (૧૬) ડાબી તરફ દૃષ્ટિ રાખીને ધનુષ-બાણુ તાકતી એવી **મંરિચિકા** જાણવી. (૧૭) સન્મુખ દૃષ્ટિભાવવાળી અંજલી મુદ્રાવાળી એવી સુંદર લોચનવાળી નર્તકી **ચંદ્રાવલી** જાણવી. ૧૧૦-૧૨૦

१३ गौरी   १४ गांधारी   १५ देवशाखा=देवज्ञा   १६ मरिचिका

(१४) उत्तम अंगवाली दाहिने हाथको ऊँचा रखकर रम्य ऐसी नृत्य करती गांधारी जानना। (१५) गोलचक्र नृत्य करते अंगवालीको देवशाखा

१७ चन्द्रावली   १८ चन्द्ररेखा पत्रलेखा   १९ सुगंधा   २० शत्रुमर्दनी

(देवज्ञा) कही है। (१६) बांई तरफ दृष्टि रखकर धनुष—बाण ताकती ऐसी मरिचिका जानना। (१७) सन्मुख दृष्टिभाववाली अंजली मुद्रावाली ऐसी सुंदर लोचनवाली नर्तकी चँद्रावली जानना। ११९-१२०.

दक्षिण हस्तकमले ताडपत्रं च धरित्री।[१२]
ललाटे चँद्ररेखा च सनाम विस्तरे सदा ॥१२१॥
सुगंधा च चक्रधरा चक्र नृत्यं च कुर्वति[१३]।
[१४]असिपुत्र धरा नृत्या शोभते शत्रुमर्दिनी ॥१२२॥

જેના જમણા હાથમાં લેખિની છે. અને તાડપત્ર ધારણ કરી લેખન કરતી એવી, જેના લલાટમાં ચંદ્રની રેખા તેના નામ પ્રમાણે છે. એવી સદા વિસ્તારવાળી **ચંદ્રરેખા**=(પત્ર લેખા) જાણવી. (૧૯) ચક્રને માથે ધારણ કરીને ગોળ નૃત્ય કરતી એવી **સુગંધા** જાણવી. (૨૦) હાથમાં છરી ધારણ કરી નૃત્યથી શોભતી એવી **શત્રુમર્દિની** જાણવી. ૧૨૧-૧૨૨.

(१८) जिसके दाहिने हाथमें लेखिनी है, और ताडपत्र धारण कर लेखन करती ऐसी जिसके ललाटमें चँद्रकी रेखा उसके नामके अनुसार है ऐसी सदा विस्तारवाली चँद्ररेखा (पत्रलेखा) जानना। (१९) चँद्रको शिरपर धारण करके गोलाकार नृत्य करती ऐसी सुगंधा जानना। (२०) हाथमें छूरी धारण कर नृत्यसे शोभती ऐसी शत्रुमर्दिनी जानना। १२१-१२२.

एका स्वर्गस्य भवने द्वितिया द्योवने शुभे।
तृतीया च वसुधरे चतुर्मुखे क्षीरार्णवे ॥१२३॥

દેવાંગનાનું એક સ્વરૂપ સ્વર્ગ ભવનમાં છે. બીજું ઉદ્યોત એવા શુભ વનમાં છે. ત્રીજું આ પૃથ્વી પર છે. અને ચોથું ક્ષીરાર્ણવના આ ચતુર્મુખ પ્રાસાદને વિશે છે. ૧૨૩

देवांगनाका एक स्वरूप स्वर्ग भवनमें है। दूसरा उद्योत ऐसा शुभ वनमें है। तीसरा इस पृथ्वी पर है, और चौथा क्षीरार्णवके इस चतुर्मुख प्रासादके अंदर है। १२३.

हारहस्ता च नृत्याङ्गी मानवी कुल सुंदरी।
[१५]पृष्ठ वंशोद्भवा नृत्या मानहंसा च सुंदरी ॥१२४॥
[१६]ऊर्ध्वपादे चतुर्भुङ्गी स्वभावा करी मस्तके[१७]।
[१८]हस्तपादो योगमुद्रा भावचंद्रा सुनर्तकी ॥१२५॥

१२. सुलेखा १३. वक्रनृत्यं १४. छुरिकारसु नृत्याङ्गी। १५. सपृष्ठा पृष्ठि मुखा च उपदा मानहंसानी १६. स्वभावा द्विकरा शिरः। शिरसि करा। १७. १८. दक्षपादो।

(૨૧) બે હાથમાં હાર ધારણ કરીને નૃત્ય કરતા અંગવાળી એવી કળાની કુળ સુંદરી **માનવી** (માનની) જાણુવી. (૨૨) પોતાની પૂંઠે-વાંસો દર્શાવી નૃત્ય કરતી એવી જેનું મુખ પાછળ છે એવી સુંદરી **માનહંસા** જાણુવી. (૨૩) જેનો જમણો પગ ઊંચો રાખી બે હાથો મસ્તક પર રાખીને ચાર અંગથી મરોડવાળી એવી **સ્વભાવા** જાણુવી. (૨૪) જેના હાથ પગ યોગ મુદ્રા યુક્ત રહીને નૃત્ય કરતી એવી નર્તકી **ભાવચંદ્ર-ભાવમુદ્રિકા** જાણુવી. ૧૨૪-૧૨૫

२१ मानवी (माननी) २२ मानहंसा २३ सुस्वभावा २४ भावसुद्रिका=भावचंद्रा

(२१) दो हाथमें हार धारण करके नृत्य करते अंगवाली ऐसी कलाकी कुल सुंदरी मानवी (माननी) जानना। (२२) अपनी पीठ बताकर नृत्य करती ऐसी जिसका मुख पीछे है ऐसी सुंदरी मानहंसा जानना। (२३) दाहिना पाँव ऊँचा रखकर दो हाथी मस्तक पर रखकर चार अंगसे मरोडवाली ऐसी स्वभावा जानना। (२४) जिसके हाथ-पांव योगमुद्रा युक्त हो वैसी नर्तकी नृत्य करती भावचन्द्रा-भावमुद्रिका जानना। १२४-१२५.

मृगाक्षी सकला नृत्या तथोर्वशी अतः शृणुः[१९] ।
[२०]दशहस्ते दैत्यशिखा दैत्यखड्गेन हन्ति च ॥१२६॥

(૨૫) સર્વ કળાથી નૃત્ય કરતી એવી **મૃગાક્ષી** જાણુવી. (૨૬) હવે ઉર્વશીનું સ્વરૂપ સાંભળો. જમણા હાથે દૈત્યની શિખા ખેંચી ખડગથી મારતી એવી[૨૧] **ઉર્વશી** જાણુવી. ૧૨૬.

(२५) सर्व कलासे नृत्य करती ऐसी मृगाक्षी जानना। अब उर्वशीका स्वरूप सुनो। दाहिने हाथसे दैत्यकी शिखा खिचकर खडकसे मारती ऐसी[२१] उर्वशी जानना। १२६.

१९. तथा वाक्यं अतः शृणु २०. उर्वशी कोइल खड्ग प्रहारे दैत्यकं भवेत्।

विश्वकर्मण वदेत्वाक्यं जइको जानंति शिल्पिन ? ।
तेन वास्तु—तिष्ठति अपोदस्ते चतुरङ्गना ॥१२७॥

.... १२७
.... १२७

[२१]हस्तद्वयेन छूरिके धृत्वा नृत्यं च कुर्वते ।
ऊर्ध्वी कृत दक्षपादं नाम्ना रंम्भा नर्तकी ॥१२८॥
[२२]हस्तद्वयेन खड्गं च नृत्यावर्तं च कुर्वति ।
भुजघोषंति नामा सा नृत्यंकरोति सर्वदा ॥१२९॥

२५ मृगाक्षी २६ उर्वशी २७ रम्भा २८ भुजघोषा (मंजुघोषा)

(२७) બેઉ હાથમાં છૂરી ધારણ કરીને જમણો પગ ઉંચો રાખીને નૃત્ય કરતી એવી રંભા જાણવી. (२८) બે હાથોમાં ખડગ ધારણ કરીને હંમેશા ગોળ ભમતી નૃત્ય કરતી એવી ભુજઘોષા–મંજુઘોષા જાણવી. ૧૨૮–૧૨૯.

(२७) दोनों हाथमें छूरी धारण कर दाहिना पाँव ऊँचा रखकर नृत्य करती ऐसी रंम्भा जानना । (२८) दो हाथोंमें खडग धारण कर हंमेशा गोल फिरती नृत्य करती ऐसी भुजघोषा—मंजुघोषा जानना । १२८—१२९

(२१) बभ्रुहस्ते छुरीका (२१) बाण विणायुक्त रंभा ।
२२. धृताची कर्पूचिता च यानजाने च सपटी ।
द्वयो खड्गश्च सांधारैः (रंभा) भ्रमरी आवर्त संयुता ॥१२८॥

[23]शिरसिकलशं धृत्वा जयानृत्यं च कुर्वति ।
[24]पुरुषालिङ्गा नयुक्ता मोहिनी नाम्ना नर्तकी ॥१३०॥
[25]लसत्सुंदराङ्गी नृत्या चोर्ध्वं पादा तिलोत्तमा ।
काश्यमंजिवा पुष्पबाण कामरूपा पर तिलोत्तमा ॥१३१॥
कांस्य मंजि वंशी विणा शंख मृदंग खंजरी ।
विविधा वादित्र दश्याच क्वचित नृत्य नायक ॥१३२॥

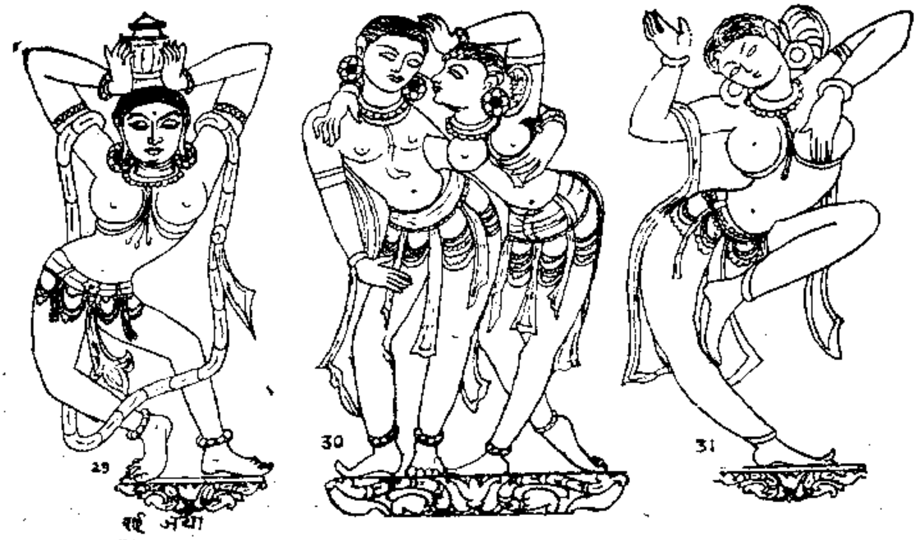

२९ जया   ३० मोहिनी=विजया   ३१ चन्द्रवक्रा उत्ताना

२४. જૂની પ્રતોમાં આ શ્લોક ૧૨૭ થી જે સ્થિતિમાં છે તેવો જ પાઠ આપેલ છે. તેમાં બે હાથમાં ખડગ ધારણ કરેલી રંભા કે મુંજઘોષાનું સ્વરૂપ જાણવું, વળી મોહિનીના આગળના પાઠમાં ઈંદ્ર અને રંભાનું સ્વરૂપ કહ્યું છે. પરંતુ અહીં શ્લોક ૧૩૦ ના છેલ્લા પદ પ્રમાણે મોહની સ્વરૂપ પુરુષ–નરને આલિંગન આપતું કરવાનું કહે છે. વળી એક બીજી પ્રતમાં "नरयुक्ता समोहिनी" એમ સ્પષ્ટ કહ્યું છે. જો કે અહીં મોહીનીના સ્વરુપના પાઠ ભેદ છે પરંતુ તે એક જ ભાવ દર્શાવે છે.

पुरानी प्रतोंमें यह श्लोअ १२७ के बाद जो स्थिति है वैसा ही पाठ दिया है। उसमें दो हाथमें खडग रखनेवाली रंभा या—मुंजघोषाका स्वरूप जानना। मोहिनीका और आगेके पाठमें इंद्र और रंभाका स्वरूप कहा गया है। परंतु यहाँ श्लोक १३० के अंतिम पदके अनुसार मोहनी स्वरूप पुरुष–नरको आलिंगन देता करनेका कहते हैं। और एक दूसरी प्रतमें "**नरयुक्ता समोहिनी**" इस तरह स्पष्ट कहा है। जो कि यहाँ मोहिनीके स्वरूपके पाठ भेद हैं परंतु वह एक ही भाव बताता है।

२३. જયાના સ્વરૂપના પાઠ ભેદો છે. गीरनडी कलश युक्ता બીજો એક પાઠ पादजंजरी जयाच એમ પણ પાઠ કોઈમાં મળે છે.

२३. जयाके स्वरूपके पाठ भेदो हैं। गीरनडी कलशंयुक्त, दूसरा एक पाठ पादजंजरी-जया च એમ પણ પાઠ કોઈમાં મળે છે.

२५. वासचिक (वालचीक) स्य संयुक्ता वदनेन तिलोत्तमा—पाठांन्तर।

(૨૯) મસ્તક પર કળશ ધારણુ કરીને નૃત્ય કરતી એવી જયા જાણુવી. (૩૦) પુરુષને આલિંગન કરતી એવી વિજયા=મોહિની નામની નર્તકી જાણુવી. (૩૧) એક પગ ઊંચો રાખીને લચેલા અંગથી નૃત્ય કરતી એવી (ઉત્તાના)-ચંદ્રવક્રા જાણુવી. (૩૨) કાંસીયા મંજીરા બજાવતી અથવા પુષ્પબાણુ ધારણુ કરેલી એવી કામરૂપા (તિલોત્તમા) જાણુવી. ૧૩૦-૧૩૧.

३२ कामरूपा (तिलोत्तमा)

કાંસા-મંજીરા-બંસરી-વીણુા-શંખ કે ઢોલ કે ખંજરી બજાવતી એવા વિવિધ વાજીંત્રવાદી દેવાંગનાઓ પણુ કોઈક પ્રાચિન શિલ્પમાં દેખાય છે.

कांस्य-मंजिरा, बंसरी, वीणा, शंख, ढोलक या खंजरी बजाती ऐसी विविध वाजिंत्र बजाती देवाङ्गनाओं कवचित पुराने शिल्पमें दिखाती है।

(२९) मस्तक पर कलश धारण कर नृत्य करती ऐसी जया जानना। (३०) पुरुषको आलिंगन करती ऐसी विजया—मोहिनी नामकी नर्तकी जानना। (३१) लचे हुए अंगसे नृत्य करती और एक पाँव ऊँचा रखकर नृत्य करती ऐसी उत्ताना-चँद्रवक्रा जानना। (३२) कांसीया मंजीरे बजाती अथवा पुष्पबाण धारण करती ऐसी कामरूपा (तिलोत्तमा) जानना। १३०-१३१

ढोल बजाती वीणा बजाती जांजरी बजाती कांसीया बजाती देवाङ्गनाओं

शास्त्रोंका पाठसे विशेष प्राचिन मंदिरोंमें देखनेमें आती पृथक पृथक स्वरूप, हावभाव, वाजित्रवाली देवाङ्गनाओंका स्वरूप।

अधोदृष्टि मताकार्या नृत्य भावेन नर्तकी ।
ज्ञायते सर्व लोकेऽस्मिन् स्थूलदेहा (च) महीतले ॥१३३॥
एते जंघा वितानादौ दिव्यस्थाने चतुर्मुखे ।
दिग्पाला यक्ष गंधर्व भास्करादि ग्रहस्तथा ॥१३४॥
मुनि तापसरुपश्च व्यालादि च जलांन्तरे ॥ इति देवाङ्गनादि जंघा स्वरूप ॥

સર્વ લોકમાં જાણીતી એવી દેવાંગનાઓ આ પૃથ્વી પર સ્થૂળ દેહ નૃત્ય ભાવવાળી નૃત્યાંગનાઓની દૃષ્ટિ નીચે રાખવી. પ્રાસાદના દિવ્ય સ્થાનમાં ચાતુર્મુખ પ્રાસાદની મંડોવરની જંઘા મંડપ ચોકી અને ઘૂમટો–વિતાન આદિમાં દિગ્પાલ લોકપાલ, યક્ષ, ગાંધર્વ અને સૂર્યાદિ નવ ગ્રહો ઇત્યાદિ સ્વરૂપો ફરતા કરવા. મુની તાપસ, વ્યાલ આદિના સ્વરૂપો પાણીતારમાં કરવા. ૧૩૩–૧૩૪. ॥ इति जंघास्वरुप ॥

शंख बजाती बाल गुंथती सरीवाली बंसरी और पात्रवाली

शास्त्रोंका पाठोंसे विशेष प्राचिन मंदिरोंमें देखनेमें आती पृथक पृथक स्वरुप, हावभाव और वार्जित्रवाली देवाङ्गनाओंका स्वरुप।

सर्वलोकमें विख्यात ऐसी देवाङ्गनाओं इस पृथ्वी पर स्थूल देहसे नृत्य भाववाली नृत्यांगनाओंकी दृष्टि नीचे रखना। प्रासादके दिव्य स्थानमें चतुर्मुख प्रासादकी मंडोवरकी जंघा मंडप चौकी और घुमट–वितान आदिमें दिग्पाल–लोकपाल यक्ष, गांधर्व और सूर्यादि नौ ग्रहों इत्यादि स्वरूपों फिरते करना। तापस व्याल आदि स्वरुप पानी तारमें करना। १३३–१३४ ॥ इति जंघा स्वरुप ॥

उद्गमं सार्द्धचत्वारि भरणी त्रिपदं भवेत् ।
उद्गमः कपि संयुक्तो भरणी पल्लवैर्युता ॥१३५॥
शिरावटी चतुर्भागा शिरपट्ट समाकुला ।
छादनं पद मेकेन कपोताली च पूर्वतः ॥१३६॥
त्रिपदं कपोताली च अंतरपदं मेव च ।
कूटछाद्यं चतुर्भागं प्रहारं तत्समं भवेत् ॥१३७॥

(આગળ જંઘા સુધીના ઉદયના ૩૩ ભાગ કહ્યા. તેમાં પંદર ભાગની જંઘા પર) સાડા ચાર ભાગનો દોઢિયો–ત્રણ ભાગની ભરણી–દોઢિયામાં આસપટ્ટી ઉપર રાખી ખૂણે ખૂણે કપિ–વાંદરાના સ્વરૂપો કરવા અને ભરણીને પણે પાંદડા કરી–(પ્રતિરથમાં નીચે ગોળ–વૃત કણીકા કરવી.) ચાર ભાગની શિરાવટી કરવી. તેના ઉપરની પટ્ટીનો સમાસ કરવો. એક ભાગનું છાદન; ત્રણ ભાગનો કેવાળ, ફરી ત્રણ ભાગનો બીજો કેવાળ, એક ભાગની અંધારી કરી ચાર ભાગનું છજ્જું કરવું. તે પર તેટલો જ એટલે ચાર ભાગના પ્રહારનો થર કરવો. ૧૩૫ થી ૧૩૭

(आगे जंघा तकके उदयके ३३ भाग कहे। उनमें पन्द्रह भागकी जंघा पर) साढे चार भागका डेढिया–तीन भागकी भरणी–डेढियेमें ग्रासपट्टी उपर रख कर कोने कोनेमें कपि–बंदरका स्वरूप करना। और भरणीको कोनेमें पत्र (प्रतिरथमें नीचे गोल वृत कणिका) करना। चार भागकी शिरावटी करना उसके उपरकी पट्टीका समास करना। एक भागका छादन, तीन भागका केवाल फिर तीन भागका दूसरा केवाल, एक भागकी अंधारी करके चार भागका छज्जा करना। उसके उपर इतने ही अर्थात् चार भागके प्रहारका थर करना। १३५ से १३७

छादने न भवेत्मंची प्रमाणं पूर्वमेव च ।
दिग् भागायुता जंघा भरणी पूर्ववत् क्रमे ॥१३८॥
कपोताली त्रयो भागा पदमेकं चान्तरं भवेत् ।
छाद्यं क्रियते पूर्वं प्रहारानि चतुष्पदम् ॥१३९॥

હવે બે જંઘાનો મંડોવર કહે છે. (છાદન સુધીના ૪૫ાા ભાગ ઉપર) સાડા ત્રણ ભાગની માચી, દશ ભાગની જંઘા, ત્રણ ભાગની ભરણી–કેવાળ ત્રણ ભાગનો, એક ભાગની અંધારી અને ચાર ભાગનું છજ્જું કરવું. (કુલ ૭૦ ભાગ બે મજલાની બે જંઘાના થયા) છજા પર ચાર ભાગનું પ્રહાર કરવું. ૧૩૮–૧૩૯.

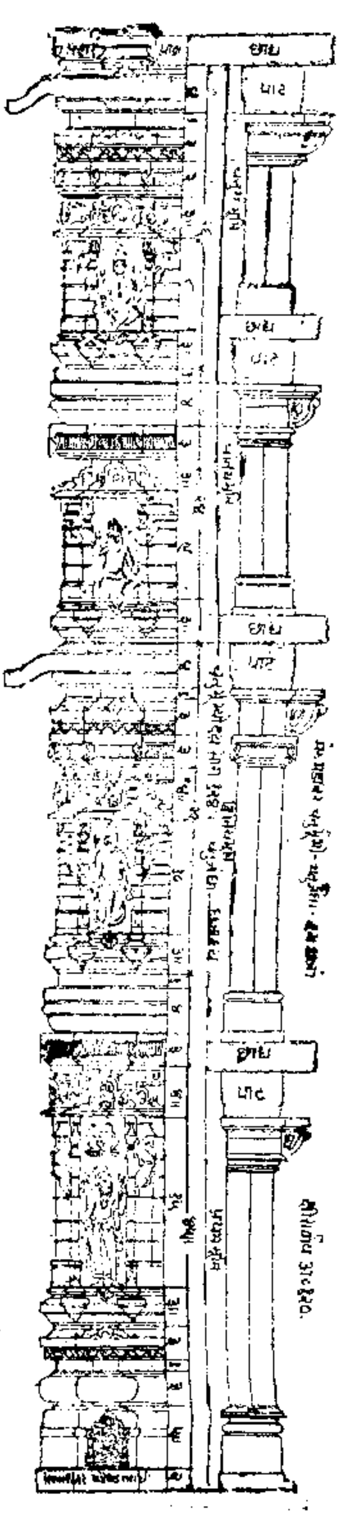

चार भूमि ४५॥+२६+२५+२६ (१२४॥) विभाग उदय—चार जंघा और दो छज्जावाला महामंडोवर

अब दो जंघाका मंडोवर कहते हैं। (छादन तकके ४५½ भाग पर) साढे तीन भाग की माची दश भागकी जंघा, तीन भागकी भरणी–केवाल तीन भागका–एक भागकी अंधारी और चार भागका छज्जा करना। (कुल ७० भाग दो मजलेकी दो जंघाके हुए) छज्जे पर चार भागका प्रहार करना। १३८–१३९

द्वादशी जेष्ठा जंघा च भरणीकोर्ध्वे मंचिका।
नवधा पुनर्जंघा च उद्गमं त्रय सार्द्धतः॥१४७॥
भरणी शिरावटी स्तत्र छादनं तु विशेषतः।
[२६]कपोताली भवेद्वे च कूटछाद्यं च मस्तके॥१४९॥

જ્યેષ્ઠ માનની બાર જંઘા સુધી ચડાવતાં બીજી જંઘાનું કહે છે. (ઉપરના છજા સુધી ૭૦ ભાગમાં) છજા પર માચી સાડા ત્રણ ભાગની, નવ ભાગની ત્રીજી જંઘા, સાડા ત્રણ ભાગનો દોઢીયો, ભરણી શિરાવટી છાદન બે કેવાળ (૩ ૪ ૧ ૩+૩) (કુલ ૩૦ ભાગ, એક ભાગ અંધારી) તે ઉપર છજું ચાર ભાગનું કરવું. (એટલે છજા સુધીના ૧૦૫ ભાગ થયા.) ૧૪૦–૧૪૧.

ज्येष्ठमानकी बारह जंघा तक चढ़ाते तीसरी जंघाका कहते हैं। छजातक ७० भागमें छज्जा उपर माची साढे तीन भागकी नौ भागकी तीसरी जंघा–साढे तीन भागका ढेढिया–भरणी शिरावटी छादन दो केवाल (४ १ ३+३) (कुल ३० भाग, एक भाग अंधारी) उसके पर छजा चार भागका करना। (इससे छजा तकके १०५ भाग हुए।) १४०–१४१

(૨૬) કેવાળ ઉપર અને કૂટછાદ્ય નીચે અંતરાળ આવવો જ જોઈએ. પરંતુ અહીં લહીયાના દોષે બે પદ અપૂર્ણ જણાય છે.

(२७) केवाल उपर और कूटछाद्य नीचे अंतराल आना ही चाहिये, यहाँ लहियाकी गलतीसे दो पद अपूर्ण हैं।

छादने मंचिका तत्र पुनर्जंघाष्ट भागका ।
भरणी कपोताली च छाद्यं च प्रहारकः ॥१४२॥

ચોથી જંઘા ચડાવવાનું કહે છે. (ઉપરના ૯૪ ભાગ છાદન સુધીના) છાદન ઉપર માચી ત્રણ ભાગની જંઘા આઠ ભાગની, ત્રણ ભાગની ભરણી, કેવાળ ત્રણ ભાગનો (અને એક ભાગનું અંતરાળ) પર છજું ચાર ભાગનું કરી તે પર પ્રહારનો થર કરવો. (એ રીતે ચાર જંઘાનો મહામંડોવર–બે છજા ને ચાર જંઘાનો ૧૧૬ ભાગનો જાણવો) ૧૪૧–૧૪૨.

चौथी जंघाको चढ़ानेके लिये कहते हैं। (उपरके ८४ भाग छादन तकके) छादनके उपर माची तीन भागकी जंघा आठ भागकी, तीन भागकी भरणी, केवाल तीन भागका (और एक भागके अंतराल) पर छज्जा चार भागका कर उसके पर प्रहारके थर करना। १४१. इस तरह चार जंघाका और २ छज्जाका महार्मंडोवर १२४॥ भागका कहा) १४२

अथ कवलीमान—तथा च गर्भमध्ये च विस्तारं कवलिकोत्तमम् ।
दीर्घमान स्ततो रिषि श्रृणुत्वेकाग्रतो मुनि ॥१४३॥
..................चित्रो[1] विचित्रा[2] चैव ।
तृतीया अभया[3] चित्र रूपचित्र[4] चतुर्दलम् ॥१४४॥
षणमेकं प्रासादं कवली चाऽभयाभयो ।
कर्णांते षण स्त्रिकवली षण मेव च ॥१४५॥
पंच विस्तार मासाद कवली विचित्रांतके ।
[28](षणमेकं च प्रासादं कवली त्रिषणान्तक)।
ना लंघयस्तत्रमानं च षण सप्तनतोत्पर ॥१४६॥
प्रासाद कर्ण सूत्रेण स्तूपस्तुर्ण विशेषतः ।
सिंहशाखा स्वल्वशाखा स्तेन स्तत्रे उदंबरः ॥१४७॥

હવે કવલીનું માન કહે છે. ગર્ભગૃહના જેટલા વિસ્તારની કોળી ઉત્તમ માનની જાણવી. તેની લંબાઈ એટલે નીકળતી કોળીનું માન હે ઋષિરાજ, હવે એકાગ્રતાથી સાંભળો. કોળીના ચાર માનનાં નામો. ૧. ચિત્રા ૨. વિચિત્રા ૩. અભયચિત્રા ૪. રૂપચિત્રા. એ ચાર નામો જાણવા. (૧) પ્રાસાદના જેટલી એક ખંડ જેટલી કોળી **અભય** નામે જાણવી. (૨) પ્રાસાદ રેખાયે હોય તેના

(૨૮) કૌંસમાં આપેલા બે પદો ઘણી પ્રતોમાં નથી.
कौसमें दीये दो पद कीतनी प्रतोंमें नहीं है।

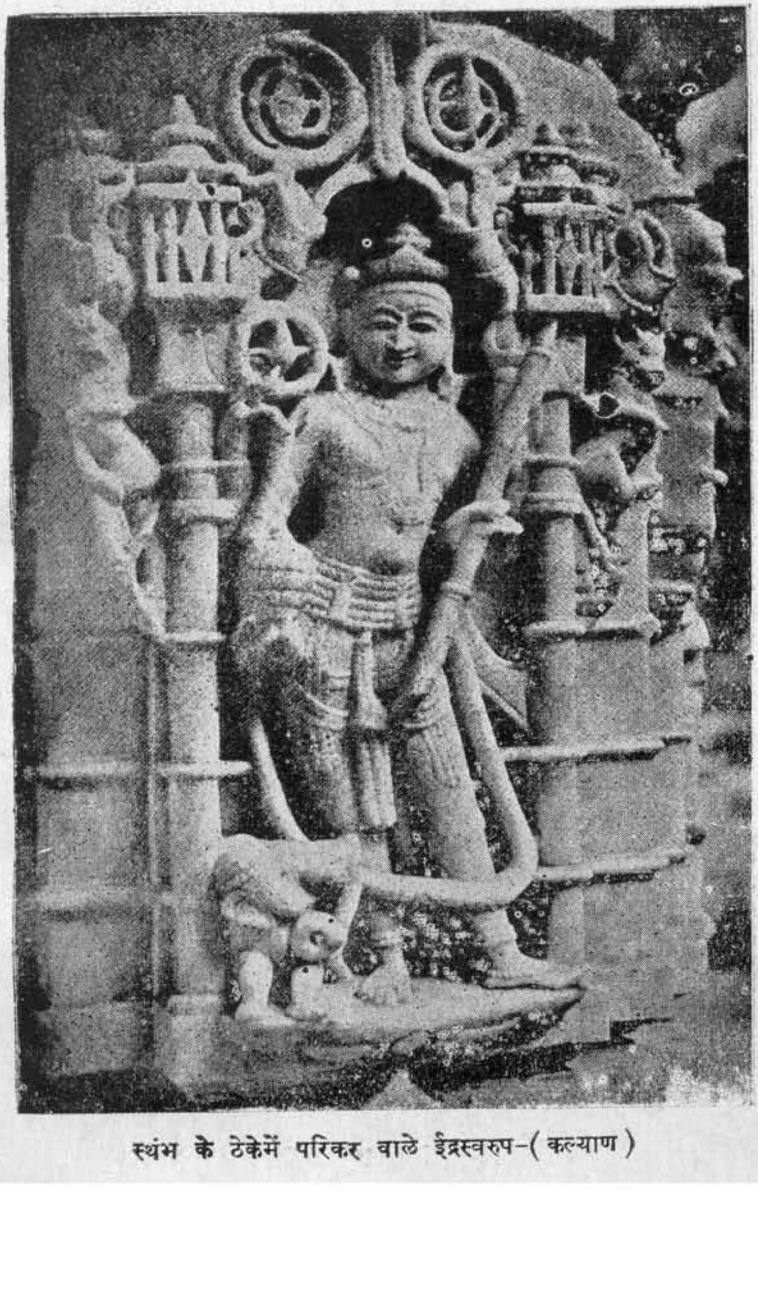

स्थंभ के ठेकेमें परिकर वाले ईंद्रस्वरुप-(कल्याण)

लक्ष्मी नारायण युग्मरुप कंडर्य महादेव मंदिर खजुराहो

कंडर्य महादेव मंदिर में जंधामें शिवपार्वती और देवाङ्गना के स्वरुप

ત્રીજા ભાગની **ચિત્રા** નામે જાણુવી. (૩) પ્રાસાદના પાંચ ભાગમાંના એક ભાગ જેટલી કોળી કરવી તે **વિચિત્રા** નામે જાણુવી. (૪) પ્રાસાદના પાંચ ભાગ ત્રણુ ભાગ જેટલી કોળી રાખવીને **રૂપચિત્રા** નામે જાણુવી. પ્રાસાદ રેખાયે હોય તેના સાતમા ભાગથી ઓછું માન-ઉલ્લંઘન કરી કોળી ન કરવી. સાંધાર પ્રાસાદના રેખા સૂત્રના પ્રમાણુથી મધ્યનો સ્તૂપ અરધાથી કંઈક વિશેષ રાખવો. પ્રાસાદના રેખા સૂત્ર બરાબર સિંહ શાખા અને પત્રશાખા અને ઉંબરો રાખવા. ૧૪૩ થી ૧૪૭.

अब कवलीका मान कहते हैं। गर्भगृहके विस्तारके बराबर कोली उत्तम मानकी जानना। उसकी लम्बाई अर्थात् निकलती कोलीका मान हे ऋषिराज ! अब एकाग्रतासे सुनो। कोलीके चार मानके नामों १ चित्रा २ विचित्रा ३ अभयचित्रा ४ रूपचित्रा। इन चार मानोंको जानना। १ प्रासादके बराबर एक खंडके बराबर कोली अभय। नामसे जानना। २. रेखा पर हो उसके तीसरे भागकी चित्रा नामसे जानना। ३ प्रासादके पाँच भागमेंसे एक भागके बराबर कोली करना। उसे विचित्रा नामसे जानना। प्रासादके पांच भाग करके तीसरा भागकी कोली रूपचित्रा जानना। प्रासाद रेखाके पर हो उसके सातवे भागसे कम मान-उल्लंघन कर कोली न करना। सांधार प्रासादके रेखा सूत्रके प्रमाणसे मध्यका स्तूप आधेसे कुछ ज्यादा रखना। प्रासादके रेखासूत्रके बराबर सिंह शाखा और पत्रशाखा और उंबरा रखना। १४३ से १४७

अथ भित्तिमान—दशहस्तोत्परे यत्र चतुर्दश यथा भवेत् ।
मध्यस्तूप न दातव्या वेदिका सर्वकामदां ॥१४८॥
दशमांशे यदा भित्ति द्वादशांशेन मध्यतः ।
त्रिविधं भित्तिमानं च ज्येष्ठमध्यकन्यसं ॥१४९॥
मध्य स्तूप प्रदातव्यं भित्तिस्यात्षोडशांशके ।
पंचमांशे निरंधारे भित्ति प्रासाद शैलजे ॥१५०॥

દશ હાથથી ચૌદ હાથના સાંધાર પ્રાસાદના મધ્ય સ્તૂપ (મધ્ય લિંગ મૂળ ગર્ભગૃહ અને ભીંતો સાથેનો ભાગના નહિ પરંતુ બહાર રેખાયે હોય તે)ના દશમા-અગ્યારમા કે બારમા ભાગે એમ ત્રિવિધ માન જ્યેષ્ઠ મધ્યમ અને કનિષ્ઠ અનુક્રમે ઓસારનું જાણુવું. મધ્ય સ્તૂપની ભિત્તિ સોળમા ભાગે રાખવી. નિરંધાર પ્રાસાદનું પાષાણુનું ભિત્તિમાન પ્રાસાદના પાંચમા ભાગે રાખવું. ૧૪૮ થી ૧૫૦

दश हाथसे चौदह हाथके सांधार प्रासादके मध्य स्तूप (मध्य लिंग-मूल गर्भगृह और दिवारोंके साथके भाग) के नहीं लेकिन बारह रेखा पर हो उनके दसवें ग्यारहवें या बारहवें भागमें इस तरह त्रिविधमान ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ अनुक्रमसे औसारका जानना। मध्य स्तूपकी भित्ति सोलहवें भागमें रखना। पाषाणके निरंधार प्रासादका भित्तिमान प्रासादके पाँचवें भागमें रखना। १४८-१४९-१५०

उपर्युपरिभूमीनां शंखावर्त (सव्यावर्त) प्रदक्षिणे।
नापसव्येन कुर्वीत् द्वारमारोहणीनि च ॥१५१॥
गर्भमध्ये कृतं द्वारं पुनर्बिंब च स्थाप्यते।
नंदवेद्याकृत्ये मध्ये शिखरं सर्वकामदम् ॥१५२॥

આ મહા ચોમુખની ઉપરની ભૂમિએ શંખાવર્ત (સવ્યાવર્ત) ફરતો પ્રદક્ષિણાએ કરવાઃ તેના દ્વારના કમાડ અપસવ્ય ન કરવા. ઉપર ગર્ભગૃહ કરીને તેમાં વચ્ચે દ્વાર મૂકી ફરી બીંબ-મૂર્તિની સ્થાપના ઉપરના માળે કરવી. તે સર્વ કામનાને દેનારું એવું શિખર ૪૯ પદના મધ્યમાં કરવું. ૧૫૧-૧૫૨

इस महा चोमुखकी उपरकी मूमि पर शंखावर्त (सव्यावर्त) फिरते प्रदक्षिणासें करना। उनके द्वारके किवाड़ अपसव्य न करना। उपर गर्भगृह कर उसमें बिचमें द्वार रखकर फिर बींब-मूर्तिकी स्थापना उपरके मजले पर करना। इससे सर्व कामनाको देनेवाला ऐसा शिखर ४९ पदके मध्यमें करना। १५१-१५२

शुकनासं चतुपक्षे सर्वालंकार माश्रिते।
द्विभूमि संयुता स्तत्रा त्रयो भूमिकृते बुधे ॥१५३॥
एक भूमि द्वयो भूमि यावद् द्वादशभूमिका।
जंघा वृद्धि क्रम योगेन चैकाद्यौ भास्करांतिके ॥१५४॥

આવા મહા ચોમુખ પ્રાસાદને શુકનાશ ચારે તરફ સુશોભિત અલંકૃત કરવો. તે બે ભૂમિવાળો કે ત્રણ ભૂમિવાળો બુદ્ધિમાન શિલ્પીએ કરવો. મહા ચાતુર્મુખ પ્રાસાદ એક-બે મજલા એમ બાર માળ સુધી કરી શકાય. તે મંડોવરની જંઘા તે ક્રમના યોગે કરીને એકથી બાર જંઘા સુધી કરવી. ૧૫૩-૧૫

ऐसे महा चोमुख प्रासादको शुकनाश चारों ओर सुशोभित अलंकृत करना। वह दो या तीन भूमिवाला बुद्धिमान शिल्पीको करना चाहिये। महा चातुर्मुख प्रासाद एक दो मजले इस तरह बारह मजले तक कर सकते हैं। उसकी मंडोवरकी जंघा उस क्रमके योगसे एकसे बारह जंघा तककी करना। १५३-१५४

तथा युक्तिश्च विक्षाता रिषिराज शृणोत्तमाः ।
गर्भार्द्धि षडांशोन षणश्रेष्ठं च तं भवेत् ॥१५५॥
तत्षणं दिकुधा प्रोक्तं कन्यसं सप्तभागतः ।
षणमाने यदाशक्ति किंचिदधिके सविस्तरम् ॥१५६॥
त द्विषण भवेज्जेष्ठं कन्यसंतु द्विषोडश ।
विरतारं युक्तिमित्याहु भद्रैरष्टादशैस्तथा ॥१५७॥

ભાવાર્થ—હે ઋષિરાજ, સર્વોત્તમ એવી (   )ની યુક્તિ હવે સાંભળો. સાંધાર–પ્રાસાદના ગર્ભગૃહના અર્ધ ભાગના છઠ્ઠા ભાગની ? (   ) શ્રેષ્ઠ જાણવી. તેના દશમા ભાગે કનિષ્ઠમાન અને સાતમા ભાગે મધ્યમાન–તેનાથી કંઈક અધિક રાખવું. તેના બે ભાગ જ્યેષ્ઠમાન તેનો બત્રીશમો ? કનિષ્ઠમાન (   ) વિસ્તારની યુક્તિ ભીંત જેટલી....ભદ્ર અઢાર ભાગ. ૧૫૫–૧૫૬–૧૫૭.

हे ऋषिराज, सर्वोत्तम ऐसी ? (   ) की युक्ति अब सुनो। सांधार प्रासादके गर्भगृहके आधे भागके छट्ठे भागकी ? (   ) श्रेष्ठ जानना। उसके दसवें भागमें कनिष्ठमान और सातवें भागमें मध्यमान; उससे कुछ अधिक रखना। उसके दो भाग ज्येष्ठमान–उसका बत्रीसवाँ ! (   ) कनिष्ठमान (   ) विस्तारकी युक्ति दिवारके बराबर....भद्र अठारह भाग। १५५–१५६–१५७

प्रासाद त्रिषणं वृक्ष्ये षणेकं भद्र मेव च ।
मंडपं च भवेत्रिणि क्वचिदायत निर्गमे ॥१५८॥
षणमेकं दंतरंतत्र ! द्येष्टं वा विचक्षणम् ? ।
द्विभूमि वेदिका कार्या त्रयोदश विवस्थिता ॥१५९॥
रंङ्गश्च तस्याग्रेन सार्द्ध भूमी विशेषत् ।
षणपंच प्रकर्तव्या मग्रे बलाणक मंडपः ॥१६०॥
तस्याग्रे द्वयोभूमि वेदीकुर्या द्विचक्षण ।
चत्वारो नवमि माञ्च कृत्वा नालीश्च मग्रत ॥१६०॥

ભાવાર્થ—મહા પ્રાસાદના રેખાયે હોય તેના ત્રણ ભાગ કહું છું. તેના ? ભાગના (બે) ભ્રમો કરવા. અને તેની ત્રણ બાજુ મંડપો કરવા. તે કંઈક ?કળતા રાખવા. એક ભાગ અંદર......વિચક્ષણ શિલ્પીએ કરવું. બે ભૂમિ વેદિકાવાળા મંડપો ત્રણ દિશાએ કરવા. આગળ રંગ મંડપની દોઢ મજલા જેટલી વિશેષ ભૂમિ ઊભણી રાખવી. પાંચ પદ વિભાગનો આગળનો બલાણક મંડપ બે ભૂમિયુક્ત અને વેદિકાવાળા વિચક્ષણ શિલ્પીએ કરવા. ચાર....નવ.... આગળ નાલી મંડપ ડાહ્યા શિલ્પીએ કરવા. ૧૫૮ થી ૧૬૧.

महा प्रासादके रेखापर हो उसके तीन भाग कहता हूँ। उसके एक भागके (दो) भ्रमों करना। और उसकी तीन बाजु पर मंडपों करना। उन्हें कुछ निकलते करना। एक भाग अंदर...विचक्षण शिल्पीको करना। दो–भूमि वेदिकावाले मंडपों तीन दिशाओंमें करना। आगे रंगमंडपकी डेढ़ मजलेके बराबर विशेष भूमि–उभणी रखना। पाँच पद विभागका आगेका बलाणक मंडप दो भूमियुक्त और वेदिकावाला विचक्षण शिल्पीको करना चाहिये। चार....नव....आगे नाली मंडप बुद्धिमान शिल्पीको करना चाहिये। १५८ से १६१

विस्तार युक्तिमाख्यातं निर्गमं श्रृणुतो मुनिः।
ब्रह्म मूलमार्गानि नालिद्वारं च षोडश: ॥१६२॥
त्रयोदक्षे त्रयोपक्षे भद्रांते विचक्षण।
निर्गमं भागमेकेन विस्तारं च त्रयोदश ॥१६३॥
मुखभद्र मूलसंस्थाने निर्गमे भाग भागांतरे।
फालयेत्प्राज्ञ......चतुर्दिक्ष विधियता ॥१६३॥

ભાવાર્થ—વિસ્તારના વિભાગ કહ્યા. હવે નીકળતા કેટલા રાખવા તે હે મુનિ, સાંભળો. ઊભા ગર્ભ બ્રહ્મ મૂલ માર્ગના નાલિદ્વારના સોળ ?....કરવા. ત્રણે દિશાએ ત્રણે બાજુ ભદ્રને અંતે વિચક્ષણ શિલ્પીએ કરવું. તેનો નીકાળો એકેક ભાગ અને વિસ્તારમાં તેર ભાગ–પદ–પણ જાણવા. મૂખભદ્ર મૂળ સંસ્થાન એકેક ભાગના આંતરે તેની ફાલનાઓ ચતુર શિલ્પીએ રાખવી. તે રીતે ચાર દિશાઓનો વિધિ જાણવો. ૧૬૨–૧૬૩–૧૬૪.

विस्तारके विभाग कहे। अब निकलते कितने रखना यह हे मुनि, सुनो। खड़े गर्भ ब्रह्म मूलमार्गके नालिद्वारके सोलह !....करना। तीनों दिशाओंमें तीनों बाजु भद्रके अंतमें विचक्षण शिल्पीको करना चाहिये। उसका निकाला एक एक भाग और विस्तारमें तेरह भाग=पद भी जानना। मुख भद्र मूल संस्थानके एक एक भागके अंतरसे उसकी फालनाओं चतुर शिल्पी रखें। इस तरह चार दिशाओंका विधि जानना। १६२–१६३–१६४

पुनः चैद्र समारभ्यं षड् नंदे प्रदक्षणे।
चत्वारौ मूलयुक्ता च अष्टौते च महाधरा ॥१६५॥
एवंदा समायुक्ता संख्या मष्टोत्तरंशतम्।
तस्योर्द्ध पुनः घष्ट प्रमाणं च अतः श्रृणु ॥१६६॥
त्यक्ता नालि पुनः युक्ति श्रृणुत्वेकाग्रतो मुनि।
मेघनाद स चाग्रे...मंडपे च क्षणंतरे ॥१६७॥

षणान्तरे पुनर्दद्यात् सभ्रमा मंडपोत्तमा।
समवसरण कुते मध्ये अर्चामूलस्य न्यूनतः ॥१६८॥

ફરી ચૈઇંદ્ર (દેવકુલીકાઓ)ના આરંભથી છન્નુ-૯૬ પ્રદક્ષિણાએ અને ચાર મૂળ ખૂણાના અને આઠ મહાધર (ચાલુ પંક્તિમાં મોટા મંદિરો આવે તે મહાધર) એમ મળીને કુલ ૧૦૮ એકસો આઠની સંખ્યા જાણવી. તેની ઉપર ફરી આઠનું પ્રમાણ હવે સાંભળો. પ્રવેશની નાલી છોડીને મંડપોની ફરી યુક્તિ હે મુનિ, એકાગ્રતાથી સાંભળો. પ્રમુખ ચોમુખના આગળ મંડપનું એક પદનું અંતર છોડીને મેઘનાદ મંડપ આગળ કરવા. વળી એક પદનું અંતર રાખીને ફરી ભ્રમના પદ સાથેનો એવો ઉત્તમ મંડપ કરવો. તે મંડપની મધ્યમાં સમવસરણની રચના કરવી. અને તેની પ્રતિમા મૂળ નાયકથી નાની પધરાવવી. ૧૬૫-૧૬૬-૧૬૭-૧૬૮.

फिर चैइद्र (देवकुलिकाओं) के आरंभसे छियानवे (९६) प्रदक्षिणामें और चार मूल कोनेके और आठ महाधर (चालु पंकिमें बड़े मंदिरों आवें वह महाधर) इस तरह मिलकर कुल १०८ एकसौ आठकी संख्या जानना। उसके पर फिर आठका प्रमाण अब सुनो। प्रवेशकी नालीको छोडकर मंडपोंकी युक्ति हे मुनि, एकाग्रतासे सुनो। प्रमुख चोमुखके आगे मंडपके एक पदका अंतर छोडकर मेघनाद मंडपको आगे करना। और एक पदका अंतर रखकर फिर भ्रमके पदके साथका ऐसा उत्तम मंडप करना। उस मंडपके बिचमें समवसरणकी रचना करना। और उसकी प्रतिमा मूलनायकसे छोटी पधरानी चाहिये। १६५-१६६-१६७-१६८

मंडप स्यांतरे यावत् मंडपाः सभूमिकाः।
समवसरणं च दातव्यं सन्मुखे च महाधरः ॥१६९॥
एवमा चतुरोदक्ष कारयस्याद्विचक्षण।
मंडपा चतुरोदक्ष यावत्मष्टोत्तरं शतम् ॥१७०॥
द्वितीया महाधरा मध्ये समवसरण च यावत्।
द्वयोर्मध्ये च कर्तव्यं समवसर्ण महामुनि ॥१७१॥
तेन माने भवे युक्ति मुनि विद्याधरैर्युता।
न तेषां दोषदा स्तत्र युक्ति येष्टेन संशय ॥१७२॥
महाधरा द्वितीया पंक्ति प्रदक्षणे स्तृष्टि दीयते।
भ्रमं तं च जिनालयं शत् मष्टोत्तर (भवे)त्संख्या ॥१७३॥

બે મંડપના અંતર ભાગ સુધી (મધ્યનો) મંડપ ભૂમિ મજલાવાળો ઊંચો કરવો. મહાધરની સન્મુખ સમવસરણ કરવું. એવી રીતે ચારે દિશામાં

ચતુર શિલ્પીએ કરવું. ચારે તરફ મંડપો યુક્ત એકસો આઠ જિનાયતન સુધીની દેવકુલીકાઓની રચના કરવી. બીજા મહાધરોની વચ્ચે સમવસરણની રચના કરવી. તેમ જ બે મહાધરોની વચ્ચે પણ હે મુનિરાજ, સમવસરણાદિની રચના કરવી. તે સર્વ માન પ્રમાણ યુક્તિથી કરવાં. તેમાં મુનીંદ્રો, વિદ્યાધરો, ગંધર્વાદિના રૂપો સહિત કરવાં. તેમાં વેધ દોષોનો સંશય ન રહે તેમ કરવું. મહાધરની બીજી પંક્તિમાં તેની પાછળ પ્રદક્ષિણા કરવી. એ રીતે ભ્રમયુક્ત જિનાયતન એકસો આઠની સંખ્યામાં રાખવી. ૧૬૯ થી ૧૭૩.

दो मंडपके अंतरभाग तक (मध्यका) मंडप भूमि मजलेवाला ऊँचा करना। महाधरकी सन्मुख समवसरण करना। इस तरह चारों दिशाओंमें चतुर शिल्पीको करना। चारों तरफ मंडपोंसे युक्त एकसौ आठ जिनायतन तककी देवकुलिकाओंकी रचना करना। दूसरे महाधरोंमें समवसरणकी रचना करना। और दो महाधरोंके बिच भी हे मुनिराज, समवसरणादिकी रचना करना। उसमें सब मान प्रमाण युक्तिसे करना। उसमें मुनींद्रों, विद्याधरों, गंधर्वादिके रूपोंके सहित करना। उसमें वेध दोषोंका संशय न रहे इस तरह करना। महाधरकी दूसरी पंकिमें उसके पीछे प्रदक्षिणा करना। इस तरह भ्रम-युक्त जिनायतन एकसौ आठकी संख्यामें रखना। १६९ से १७३

इति श्री विश्वकर्मा कृतायां क्षीरार्णवे नारद पृच्छायां क्षीरार्णव महा चातुर्मुखादि लक्षण नाम शताग्रेविंशतितमोऽध्याय ॥ १२० ॥

ઈતિ શ્રી વિશ્વકર્મા વિરચિત ક્ષીરાર્ણવ શ્રી નારદજીએ પૂછેલ મહાચતુર્મુખ લક્ષણ શિલ્પ વિશારદ સ્થપતિ શ્રી પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈએ રચેલી ગુર્જર ભાષામાં સુપ્રભા નામની ભાષા ટીકાનો એકસો વીસમો અધ્યાય ॥ ૧૨૦ ॥ (ક્રમાંક અ૦ ૨૨)

इति श्री विश्वकर्मा विरचित क्षीरार्णवमें श्री नारदजीके पूछे हुए महाचतुर्मुख लक्षण शिल्प विशारद स्थपति श्री प्रभाशंकर ओघडभाईकी रचि हुई गुर्जर भाषामें सुप्रभा नामकी भाषाटीका का एकसौ बीसवाँ अध्याय ॥ १२० ॥ (क्रमांक अ० २२)

इति श्री

स्थपति प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा शिल्प विशारद का संशोधित
प्राचिन शिल्प स्थापत्य कलाका अलभ्य साहित्य ग्रंथों का

प्रकाशन

१. दीपार्णव—

श्री विश्वकर्मा प्रणित शिल्पका प्राचिन महान ग्रंथ ७६ + ४८८ = ५५४ पृष्ठों बड़ी रोयल साइज ३५० लाईन ब्लोक रेखाचित्र, १०५ हाफटोन फोटो ब्लोक सहित-मूल संस्कृत श्लोक और उनके गुजराती अनुवाद-मर्म और टीप्पणके साथ भरपुर संपूर्ण विवरणके साथ दलदार ग्रंथ, अध्याय २७-जीनमें प्रासादका संपूर्ण प्रमाणो अनेक देव-देवीयोंकी शिल्पाकृतीयां :अनेक प्लानों इलिवेशन साथ दीये गये हैं। स्थपति श्री प्रभाशंकरजीका दीर्घ-सक्रीय अनुभवकी प्रसंशा विद्वानोंने की है। ५० पृष्ठकी विद्वद्पूर्ण प्रस्तावना पढ़नेसे संपादक की कुशलता और विद्वद्‌ताका परिचय होता है। यह ग्रंथ संपादन में ६० प्राचिन ग्रंथोंका प्रमाण दीया गया है। मूल्य रु. २५ पच्चीस डाक खर्च पृथक्।

२-३. प्रासाद मञ्जरी—हिन्दी और गुजराती अनुवादित

मूल संस्कृत साहित्य, हिन्दी-गुजराती अनुवाद पृथक् पृथक् ८० रेखाचित्र हाफटोन ब्लोक २० है। यह ग्रंथ पंदरमी शताब्दीमें मेवाड़में कुंभाराणाके समयमें मंडन सूत्रधारका लघुबंधु नाथजीने ग्रंथ रचना की है। संपादकका शील्पका विस्तृत ज्ञान और विद्वत्ताका परिचय होता है। अनुवादके साथ मर्म-टीप्पणसे भरपुर है। अनेक शिल्पग्रंथोंका प्रमाण दीया गया है। प्रत्येकका मूल रु. ७ सात। डाक खर्च पृथक।

4. PRASADA MANJARI—

मूल सहित अंग्रेजी अनुवाद-उपरोक्त दीये हुए विवरणकी अंग्रेजी आवृत्ति जीनका अंग्रेजी अनुवाद और अन्य विभाग स्थपति प्रभाशंकरजीकी प्रस्तावनाका अंग्रेजी अनुवाद, प्रासादकी १४ जातियाँ वर्तमान प्राप्त शिल्पग्रंथोंका विवरण आदि पुरातत्वज्ञ श्री मधुसुदनभाई अ० ढाकीने अच्छी तरहसे लीखा है। भारतके प्रत्येक प्रांतकी शिल्प स्थापत्य कलाका सुंदर परिचय दीया है। श्री मधुसुदनजी अब अमेरिकन एकेडेमीमें वास्तुशास्त्रके शब्दकोश तैयार कर रहे हैं। यह ग्रंथ प्रेसमें है। मूल्य रु. १५ बारा डाक खर्च पृथक।

५. जिनदर्शन शिल्प—

यह ग्रंथ दीपार्णवके उत्तरार्ध रुप है-इनमें जैन प्रासाद शिखर जिन प्रतिमा लक्षण, परिकर लक्षण, २४ यक्ष, २४ यक्षीणी, दश दीग्पाल नौग्रहो षोडश विद्यादेवी-आदि। जीनमें १७५ देव-देवीयोंका रेखाचित्र स्वरुप फोटा आदि दीया गया है। मूल्य रु. १० दश, डाक खर्च पृथक।

६. वेधवास्तु प्रभाकर—

मूल हिन्दी-गुजराती अनुवाद सहित है। इस ग्रंथमें प्रासादगृह प्रतिमा आदिके वेध दोष आदि अनेक प्रकारके दीये हुए है। विविध प्राचिन ग्रंथोंके प्रमाणोंके सार अच्छी तरह दीये हैं। दीपार्णव ग्रंथकी पूर्ति रुप है। थर स्थापन शल्यविज्ञान-द्वार स्तंभ पाट घंटा आदिके मुहूर्तचक्र-वास्तु-वज्रलेप, संक्षिप्त पूजाविधि मंत्र-पूजाद्रव्यादी सूत्रधार पूजनविधि गणित कोष्टक अनेक विषयोंसे भरपुर अलभ्य सुंदर ग्रंथमें रेखाचित्रों, फोटा आलेखनों आदि दीया हुआ है। मूल्य रु. १० दश, डाक खर्च पृथक।

७. बेडाया प्रासाद तिलक—

मूल हिन्दी गुजराती अनुवाद सहीत है। पंद्रमी शताब्दीका सूत्रधार वीरपालकी सुन्दर ग्रंथ रचना अन्य शिल्पग्रंथोंसे पृथक है, यह ग्रंथ सुंदर छंद रचनासे लीखा है। प्रासाद शिल्पविषयका अपूर्ण ग्रंथका संशोधन कार्य पुरा हुआ है। थोड़े रोजमें प्रेसमें जायगा। मूल्य रु. १० दश, डाक खर्च पृथक।

८. क्षीरार्णव ग्रंथ। ९. वृक्षार्णव ग्रंथ—

विश्वकर्मा प्रणित है, नारद और विश्वकर्माका संवाद रुप अद्भुत अद्वितिय महाग्रंथ है। सांधार प्रासादों—चातुर्मुख महाप्रासादोंके विषय सविस्तर दीया हुआ है। तीन साढेतीन भूमिका मेघनादादि मंडप-रचना-द्वादश जंघा युक्त १२ भूमिका मंदिरकी रचना अनेक मंडपो पृथक पृथक प्रकारके कहा है जीनमें अनेक विषयोंकी चर्चा की है। यह दोनु ग्रंथ दुष्प्राप्य अवर्णनिय है।

क्षीरार्णव ग्रंथका २२ अध्याय ८०० श्लोक पुरे हैं। क्षीरार्णव ग्रंथमें मूल संस्कृत, हिन्दी और गुजराती अनुवाद टीप्पण मर्म प्रत्येक अङ्कका आलेखन अनेक देव-देवीयोंका सुन्दर आलेखन अनेक नकसे-फोटो, ब्लोक बत्तीस देवाङ्गनाका मूल संस्कृत पाठ सहित उनका आलेखन दीया हुआ है। शिल्प स्थापत्यके अब तक जो ग्रंथका प्रकाशन हुआ है। उनमें क्षीरार्णवका प्रकाशन अद्भुत है। भूमिका पुरातत्त्वज्ञ विद्वान डॉ. मोतीचंद्रजीने लीखी है।

वृक्षार्णव ग्रंथका संशोधनकार्य पूर्ण हुआ है। आशा है के यह ग्रंथ गुजरातकी बड़ी विद्वद संस्थाकी तरफसे प्रकाशन होनेका संभव है।

क्षीरार्णव ग्रंथका मूल्य रु. २७ सत्ताईश, डाक खर्च पृथक।

शिल्प स्थापत्य साहित्य-संपादक स्थपति **प्रभाशंकर ओ० सोमपुरा,** शिल्प विशारद

शिल्प स्थापत्यकला साहित्य प्रकाशन
३ .पथिक सोसायटी, सरदार पटेल कोलोनी
Publisher अहमदाबाद-१३
B. P. Sompura & Bros
3. Pahtik Society, *Ahmedabad-13*

गोरावाडी पालीताणा (सौराष्ट्र)
: प्रकाशक :
बलवंतराय प्र. सोमपुरा,
आदि भ्रातृओ।